राजा राममोहन राय

जीवन और दर्शन

राजा राममोहन राय
जीवन और दर्शन

कार्तिक चन्द्र दत्त
साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-1 द्वारा प्रकाशित

●

कार्तिक चन्द्र दत्त

●

प्रथम संस्करण

मूल्य : 160.00

●

सुपरफाइन प्रिंटर्स
4/2 बाई का बाग
इलाहाबाद-3 द्वारा मुद्रित

लेखकीय निवेदन

आधुनिक भारत के निर्माता राजा राममोहन राय का जन्म इतिहास के ऐसे संक्रमण-काल में हुआ जब देश में चारों ओर घोर अराजकता और राजनैतिक अस्थिरता व्याप्त थी। धार्मिक और सामाजिक स्तर पर संकीर्णता, अज्ञानता, और रूढ़िवादिता का सर्वत्र बोलबाला था। इधर दूसरी ओर, सात समुद्र पार से आये पश्चिमी सभ्यता ने व्यापारिक रास्ते से भारत की भूमि पर पाँव जमाना आरम्भ कर दिया था। इस नयी शक्ति और सभ्यता के आक्रमण से देश की राजनैतिक सत्ता के साथ, धर्म और शाश्वत संस्कृति को भी खतरा पैदा हो गया। ऐसे अन्धकाराच्छन्न समय में पूरे भारत में राममोहन एकमात्र व्यक्ति थे जिन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर संघर्ष के द्वारा धर्म, समाज, शिक्षा, संस्कृति, राजनीति, अर्थनीति यहाँ तक कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में सुधार या परिवर्तन के लिए शास्त्रार्थ, लेखों, रचनाओं और परिचर्चाओं का आयोजन किया। बुद्धिजीवी वर्ग को प्रेरित करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक परिप्रेक्ष्य और अपने सामंतवादी जमींदार वर्ग-चरित्र के बावजूद राममोहन अपने समय में केवल मात्र सुधारक ही नहीं, बल्कि निस्सन्देह एक प्रगतिवादी और दूरदर्शी युग-मनीषा थे।

यद्यपि आज का भारत राममोहन के समय से दो सौ वर्ष आगे निकल चुका है और राममोहन के समय में जिस औपनिवेशिक विदेशी साम्राज्य की स्थापना हुई थी उससे भी देश को मुक्त हुए चालीस साल बीत चुके है, फिर भी देश की मूल समस्याएँ आज भी मुँह बाये खड़ी है। सतियों की चिताएँ जलायी जा रही हैं और स्त्रियाँ आज भी दहेज की आग में झोंकी जा रही है। धर्म के नाम पर ढकोसला, व्यभिचार और संकीर्णता का बोलबाला आज भी है। साम्प्रदायिकता की समस्या से हम अभी तक जूझ रहे हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, समस्याओं के बीहड़ जंगल मे पथ की खोज आज भी जारी है। ऐसी परिस्थिति में राममोहन का विचार-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना उनके जीवन काल में।

राममोहन के जीवन और कृतित्व पर उनके जीवन-काल से ही, विशेष रूप से विदेशों में विद्वानों ने ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। उनके जीवन-काल में ही इंगलैण्ड और अमेरिका से उनकी अंग्रेजी रचनाओं के विदेशी संस्करण प्रकाशित हुए। जर्मन और डच अनुवाद भी उनके जीवन काल में ही प्रकाशित

होने लगे थे। उनके व्यक्तित्व के बारे में, तत्कालीन विद्वानों, पर्यटकों और ईसाई पादरियों की पुस्तकों, संस्मरणों और लेखों में उल्लेख पाया जाता है। उनके यूरोप पहुँचने से पहले ही 'फ्रेंच एनसाइक्लोपीडिया' में उनकी रचनाओं और कार्यकलाप के बारे में विस्तृत प्रविष्टि छपी थी। इंगलैण्ड के अतिरिक्त सुदूर अमेरिका के पत्र-पत्रिकाओं में भी, राममोहन के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित सूचनाएँ छपी हैं।

पिछले दो सौ वर्षों में राममोहन पर भारतीय और विदेशी लेखकों की अंग्रेजी, बाङ्ला और दूसरी भारतीय भाषाओं में सैकड़ों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखादि का अनुमान लगाना कठिन है। अभी पिछले दशक में भी अंग्रेजी और बाङ्ला में राममोहन पर कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। उनके जीवन के अछूते पहलुओं पर शोध जारी है और नये पहलुओं पर शोध-कार्य चल रहे हैं। उनके जीवन और कृतित्व का एक-एक पक्ष आज भी खोज की अपेक्षा रखता है। दुर्भाग्य से, उनके प्रारम्भिक जीवन के बारे में कई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हो सके, यहाँ तक कि इंगलैण्ड प्रवास-काल के सारे तथ्य और दस्तावेज भी उपलब्ध नहीं हैं। उनके द्वारा प्रकाशित कई पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें अभी तक इतिहास के अन्धकार में छिपी पड़ी हैं। कितनी ही पुस्तिकाएँ, लेख, पत्रादि ऐसे हैं जिनका संदर्भ तो मिलता है, लेकिन उपलब्ध नहीं हैं। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में उनके जीवन पर और भी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध होगी। सौभाग्य से विदेश यात्रा के दौरान ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में कुछ दस्तावेज देखने तथा ब्रिस्टल में उस युगपुरुष की समाधि के दर्शन करने का अवसर मिला।

ऐसे महान युग-पुरुष के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर दुर्भाग्य से हिन्दी में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ। दो चार छोटी परिचयात्मक पुस्तक-पुस्तिकाओं के अलावा उन पर न कोई पूर्णांग जीवनी है और न कोई शोध कार्य। आधुनिक भारत के इतिहास में 'पुनर्जागरण' एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है, जो प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित है। विद्वानों ने एक स्वर से यह स्वीकार किया है कि राममोहन ही भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। ऐसी स्थिति में हिन्दी भाषा में राममोहन विषयक पुस्तकों का अभाव बहुत खटकता है। वैसे जीवन-साहित्य का अभाव तो हिन्दी में आरम्भ से रहा है। और तीस वर्षों से पुस्तकालयों से संबद्ध होने के कारण इस अभाव का अहसास मुझे हमेशा रहा है।

यद्यपि लेखन, सम्पादन और संकलन का मुझे कुछ अनुभव है लेकिन किसी युगपुरुष की जीवनी लिखने का यह मेरा पहला प्रयास है। यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह कोई नया शोध-ग्रन्थ नहीं, और इस पुस्तक में मैंने राम-

मोहन के बारे में किन्हीं नयी धारणाओं और सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने की कोशिश भी नहीं की है। प्रस्तुत पुस्तक सीधे-सीधे अब तक मुद्रित अंग्रेजी और बाङ्ला में उपलब्ध प्रामाणिक ग्रन्थों और दस्तावेजों पर आधारित राममोहन राय पर एक पूर्णांग जीवनी है तथा भारतीय पुनर्जागरण के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक आन्दोलनों में राममोहन की भूमिका पर संक्षिप्त विवेचन है। जीवन भाग के लिए मुख्यतः सोफिया डॉबसन कोलेट की अंग्रेजी पुस्तक और नगेन्द्रनाथ व चट्टोपाध्याय की पुस्तक का आधार लिया गया है। इसके अतिरिक्त दर्जनों दूसरी पुस्तकों, पुस्तिकाओं और सन्दर्भ-ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। मुख्यतः जिन सहयोगी पुस्तकों की सहायता ली गई है, उनका उल्लेख प्रत्येक अध्याय के अन्त में संदर्भ और टिप्पणियों में है। निर्वाचित संदर्भ-ग्रन्थों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

पुस्तक चार खण्डों में विभाजित है—पहला—देश-काल : दूसरा—जीवन-गाथा : तीसरा—दर्शन-दिग्दर्शन और चौथा—परिशिष्ट। पहले खण्ड में तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति की संक्षिप्त रूप-रेखा खींची गयी है। दूसरा भाग मोटे तौर पर राममोहन के संघर्षमय जीवन की चमत्कारपूर्ण गाथा है। तीसरा खण्ड उनके कृतित्व और विचार दर्शन पर संक्षिप्त विवेचन से सम्बन्धित है। इस खण्ड में आलोचना के प्रसंग में कभी-कभी विचारों और घटनाओं की पुनरावृत्ति हो गई है जो एक सीमा तक अपरिहार्य थी, इसी से बचा नहीं जा सका। परिशिष्ट-खण्ड में कुछ मूल अंग्रेजी दस्तावेज विद्यार्थियों, शोधकर्त्ताओं और जिज्ञासु पाठकों की सुविधा और सूचना को ध्यान में रखकर दिया गया है। पुस्तक में मूल अंग्रेजी उद्धरण भी इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर दिये गये हैं।

पुस्तक के लेखन कार्य में दो वर्ष से अधिक समय लग गया। नौकरी के साथ-साथ लेखन के लिए समय निकाल पाना कठिन काम था फिर भी कार्य पूरा हो गया तो इसका श्रेय मेरे मित्रों और शुभचिंतकों को है जो मुझे लगातार इस दिशा में प्रोत्साहित करते रहे। सबसे पहले मित्रवर डा० नामवर सिंह का उल्लेख आवश्यक है जो मुझे हमेशा कुछ-न-कुछ लिखने के लिए प्रोत्साहित करते रहते हैं। इस पुस्तक लेखन में उनका आग्रह सर्वोपरि रहा है। धन्यवाद देन के पर्याप्त शब्द मेरे पास नहीं हैं, और यह मात्र औपचारिकता होगी। मेरे परम मित्र श्री श० बालूराव इस कार्य में मुझे प्रत्येक पग पर हौसला बढ़ाते रहे। मित्र और सहकर्मी डॉ० रणजीत साहा ने अपनी व्यस्तता के बावजूद पाण्डुलिपि को देखकर आवश्यक सुधार किये और सुझाव दिये। सहयोग के लिए कृतज्ञता मात्र जाहिर कर सकता हूँ। मेरे अनुज कल्याण कुमार दत्त ने लन्दन से राममोहन विषयक कुछ मूल्यवान दस्तावेज और चित्रादि भेजकर

मेरे कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ० निरंजन चक्रवर्ती के सौजन्य से राममोहन पर 1859 में प्रकाशित बाङ्ला की एक दुष्प्राप्य पुस्तक देखने को मिली, जिसका हवाला संदर्भ-सूची में है।

इस यज्ञ की समाप्ति पर पुत्री नन्दिनी, पुत्र जयदेव और पत्नी वीथिका ने लम्बे धैर्य और उत्सुकता की स्थिति से मुक्ति पाकर राहत की साँस ली है। इनके सहयोग के बिना कार्य पूरा कर पाना असम्भव था। नन्दिनी ने टाइप-कापी मिलाने के कार्य में सक्रिय सहयोग दिया। लोकभारती प्रकाशन के श्री रमेशचन्द्र ग्रोवर को पुस्तक के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ।

राममोहन जैसे महान् व्यक्तित्व के जीवन वृत्त को समझने-परखने के लिए वृहत्तर पटल और बहुत बड़े परिदृश्य की आवश्यकता है। इस छोटी-सी पुस्तक में सम्पूर्ण विवेचन सम्भव नहीं। तुलनात्मक धर्म-दर्शन, राजनीति, समाज-सुधार तथा भाषा-साहित्य आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में राममोहन की अगुआई एक आश्चर्यजनक घटना थी। उनके कर्ममय और चुनौतीपूर्ण जीवन दर्शन का प्रत्येक पक्ष शोध की विषय बन सकता है। राममोहन के जीवन और दर्शन के विभिन्न पक्षों की आज भी खोज जारी है और आशा की जा सकती है कि भविष्य में विद्वानों की इस ओर रुचि बढ़ेगी। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा हिन्दी के सुधी पाठकों और शोधकर्त्ताओं का ध्यान इस दिशा में आकर्षित करने में सफल हो सका तो अपना परिश्रम सार्थक समझूंगा।

15 अगस्त,
नयी दिल्ली

—कार्तिक चन्द्र दत्त

विषय-सूची

देश-काल

जीवन गाथा

दर्शन-दिग्दर्शन

राजा राममोहन राय

जीवन और दर्शन

देश-काल

अध्याय -1

राममोहन का भारत—देश-काल

पलासी-युद्ध (1757) के कोई पन्द्रह वर्ष बाद 1772 में भारत के बंगाल प्रदेश में एक ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया, जिन्होंने बंगाल ही नहीं पूरे भारत के जीवन-प्रवाह को नवजागरण के आलोक से प्रकाशित किया। उन्होंने धर्म, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, समाजनीति सभी क्षेत्रों में अपनी अमिट छाप छोड़ी। आज के आधुनिक भारत की जो भी उपलब्धियाँ हैं, उनमें राजा राममोहन के व्यक्तित्व या कृतित्व का कुछ न कुछ प्रभावी योगदान अवश्य रहा। महाकवि रवीन्द्रनाथ ने राममोहन को 'भारत पथिक' कहा था। इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य गहरा है। वेद-उपनिषद के काल से आधुनिक काल तक जो अंतर्निहित उदार बौद्धिक तथा आध्यात्मिक धारा प्रवाहित रही है उस धारा के प्रवर्तकों में राममोहन का स्थान है। उस काल में जब भारत मध्ययुगीन अंधकार के घटाटोप में डूबा हुआ था, अंधकाराच्छन्न उस काल में राममोहन ने उस अंधकार से मुक्ति पाने का अलोकमय पथ दिखाया। ऐसे एक महान व्यक्ति के जीवन और कार्यकलाप को समझने के लिए तत्कालीन भारत का इतिहास, समाज, राजनीति और परिस्थिति को समझना आवश्यक है। राम-मोहन जैसे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति का जीवन अनेकानेक विचित्र विषयों और वस्तुओं से जुड़ा हुआ था। कोई भी व्यक्ति व्यक्तिगत साधना के अलावा सम्पूर्ण समाज, देश और काल का प्रतिनिधि है। उस काल और समाज के परिप्रेक्ष में उस व्यक्ति के जीवन का अध्ययन ही वैज्ञानिक माना जाएगा, और इसी रास्ते से सही परिचय और मूल्यांकन हो सकता है।

आधुनिक युग और राममोहन के काल में अन्तर इतना अधिक है कि उस काल की भावनाएँ, विचार, जीवन-आदर्श, आर्थिक मान्यताएँ हमारे लिए धुँधली पड़ गई हैं। दो सौ वर्ष पूर्व का भारत हजारों वर्ष के संचित रूढ़ियों और अंध-विश्वास में कितना डूबा था आज के बीसवीं शती के अंतिम चरण में समझ पाना या सही चित्रण करना कठिन है। उस काल के भारत को जानने के लिए, उस काल के सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति को समझने के लिए सबसे पहले उस काल के सामाजिक और राजनैतिक इतिहास का जायजा लेना होगा। आइये इतिहास के पन्ने पलटें—

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

औरंगजेब की मृत्यु का वर्ष था 1707। इसके बाद मुगल साम्राज्य का

पतन इतनी तेजी से होने लगा कि देश के राजनीतिक केन्द्र दिल्ली का शासन नाम मात्र को रह गया था। देश छोटे-छोटे सामंतवादी राज्यों में बँटता जा रहा था। मुहम्मद शाह के काल में आकर अवध, बंगाल, हैदराबाद और कर्नाटक आदि वस्तुतः स्वतंत्र मुस्लिम राज्य बन गये थे। मुगल साम्राज्य की शक्ति का यह हाल बना कि औरंगजेब की मृत्यु के केवल तीस वर्ष के भीतर लुटेरे नादिरशाह ने दिल्ली को 1739 में बुरी तरह लूट लिया। दिल्ली की गलियों में खून की नदियाँ बहीं। लेकिन किसी की हिम्मत न हुई कि उससे डटकर मुकाबला करे।

नादिरशाह के हमले ने वस्तुतः मुगल साम्राज्य पर ऐसी करारी चोट की थी कि उससे मुगल फिर कभी उबर न सके। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रदेश बिल्कुल ही हाथ से निकल गया। पंजाब का पूरा प्रदेश पूरी तरह अराजकता और हमलों का शिकार बना। नादिरशाह की मृत्यु के बाद अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब और बाद में दिल्ली तक का प्रदेश बार-बार लूटा।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भारत विशेष रूप से उत्तरी भारत में सम्पूर्ण रूप से अराजक स्थिति थी। देश की हालत एक जंगल की तरह थी जहाँ खूँखार जानवरों की तरह छोटे-छोटे राजा, नवाब या सूबेदार अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे से लड़ रहे थे।[1] इस आपसी संघर्ष और झगड़ों में पूरा देश ध्वंस हो रहा था। लेकिन इस समय कोई भी ऐसा राजा या नेता पैदा नहीं हुआ जो पूरे देश को अपने झंडे के नीचे संगठित कर सकता। इस अवस्था का नतीजा यह हुआ कि रुहेलखण्ड से आगे दिल्ली के मुगल साम्राज्य का शासन ही नहीं रह गया था। अवध, बिहार, बंगाल और उड़ीसा ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। राजपूताना और चंबल का क्षेत्र भी मुगल शासन से मुक्त हो चुका था। विंध्याचल के दक्षिण के इलाके में मराठों ने पूरी तरह से अपना अधिकार जमा रखा था। वस्तुतः मुगल साम्राज्य दिल्ली और आगरा के आसपास के इलाके में सिमट कर रह गया था। मुगल साम्राज्य का शासन देश में जब केवल मात्र औपचारिक रह गया था, जो केवल खिताब और वजीफे बाँटने भर तक सीमित था।[2]

एक ओर शासन की शिथिलता ने साम्राज्य को भीतर से बुरी तरह कमजोर कर दिया तो दूसरी ओर राजकोष खाली होता जा रहा था। यहाँ तक कि साम्राज्य की रक्षा के लिए फौज के रख-रखाव के लिए भी धन नहीं रहा। इस प्रकार साम्राज्य के केन्द्र के रूप में दिल्ली का प्रभाव समाप्त हो गया।

मुगल शासन तो नाममात्र को रह गया। शाहआलम कि गद्दी पर आने के बाद से बंगाल की सूबेदारी मुर्शीद कुलीखाँ, अलीवर्दी खाँ से होकर नज्मउद्दौला खाँ और अंत में सिराजउद्दौला तक आ पहुँची।

अठारहवीं शती में भारत की भूमि पर दो अलग-अलग आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं की टक्कर हो रही थी। यूरोप के लोग अपनी विद्या और बुद्धि के जोर पर सारे व्यापार को अपने कब्जे में लेने की कोशिश कर रहे थे। इधर भारतीय अपने ह्रासोन्मुख सामन्तवादी व्यवस्था के घेरे में थे। पलासी के युद्ध ने यूरोपियन सैनिक शक्ति और अस्त्र-शस्त्रों की श्रेष्ठता को प्रमाणित कर दिया। शीघ्र ही यूरोपियनों की व्यापारिक बस्तियाँ सैनिक छावनी में बदलती जा रही थीं। यूरोपीय लोग एक ओर सफल व्यापारी थे तो दूसरी ओर सफल सैनिक, राजनीतिज्ञ, बाद में प्रशासक भी बने। इंगलैण्ड और फ्रांस की राजनैतिक प्रतिस्पर्धा से इस देश की राजनीति भी उलझ गई। दक्षिण और पश्चिम भारत में फ्रांस, इंगलैण्ड और मराठों के बीच काफी दिनों तक कशमाकश चलती रही। इधर दिल्ली के बादशाह शाहआलम के 1765 के फरमान के द्वारा ईस्ट इण्डिया कंपनी को सूबे बंगाल का दीवानी अधिकार प्राप्त हो गया। बदले में दिल्ली सल्तनत को सालाना कर की छोटी-सी राशि देने की बात तय हो गई। राजस्व अदायगी और सुरक्षा की जिम्मेदारी कंपनी को सौंप दी गयी। राजस्व का छोटा सा हिस्सा बंगाल की निजामत को भी मिलता रहा और बाकी सारा भाग कंपनी के हिस्से का था। कंपनी रातों-रात मालामाल हो गई। वारेन हेस्टिंग्स के राजत्व के दौरान ब्रिटिश शासन का और विस्तार हुआ। मराठों में फूट पड़ गई और उनका राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। मैसूर में हैदरअली की सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया था। कार्नवालिस ने दक्षिणी राज्यों को हड़पने में और टीपू को हराने में सफलता प्राप्त की। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सारा दक्षिण भारत वस्तुतः ईस्ट इण्डिया कंपनी की छत्रछाया के नीचे आ गया। उत्तर भारत में बंगाल से लेकर मुगल साम्राज्य की राजधानी दिल्ली के दरवाजे तक अँगरेजी साम्राज्य का प्रभुत्व फैल चुका था।

एक बार फिर सूबे बंगाल के इतिहास की ओर दृष्टि डाली जाय। क्योंकि अठारहवीं शती में ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के इतिहास में तत्कालीन बंगाल का इतिहास सबसे महत्वपूर्ण है। यहीं साम्राज्य विस्तार की पहली सीढ़ी थी। वक्त गुजरते देर नहीं लगती। ईस्ट इण्डिया कंपनी जो केवल व्यापार के लिए आई थी, सूबे बंगाल का शासक बन बैठी। मुर्शिदाबाद के नवाब केवल नाममात्र के सुल्तान बने रहे। 1765 के बादशाही फरमान का एक नतीजा यह हुआ कि ब्रिटिश व्यापारियों के अलावा जो दूसरे यूरोपीय व्यापारी जैसे डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि थे, उन सभी के व्यापार में रुकावटें खड़ी होने लगीं। ये व्यापारी दो एक छोटे-छोटे केन्द्रों को छोड़ भाग खड़े हुए। विदेशी व्यापारियों में एक लम्बे समय तक कशमकश चलती रही थी। अन्त में ब्रिटिश व्यापारी

अपने व्यापारिक संगठन, पूँजी नियोजन की क्षमता और व्यावसायिक निपुणता के कारण दूसरे यूरोपीय व्यापारियों को हटाने में समर्थ हुए। धीरे-धीरे व्यापारिक शक्ति से राजनैतिक शक्ति में बदलने में भी कोई विशेष देर नहीं लगी। साथ ही देशी व्यापारियों की आर्थिक दुर्दशा का लाभ उठाकर देश का आर्थिक शोषण आरम्भ हो गया। 1757 में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद केवल इतना लाभ हुआ कि देश में कुछ हद तक प्रशासनिक व्यवस्था कायम हुई। भारत भूमि पर ब्रिटिश व्यापारियों का एकछत्र और निरंकुश अधिकार बढ़ता गया। यह सारी घटना कुछ ही वर्षों के अन्दर हो गई। दिल्ली के मुगल शासक और सूबों के शासक सभी अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक झगड़ों मे या ऐशो-इशरत में पड़े थे। देश का शासन उनके बूते के बाहर की बात थी। सारे देश में न कहीं सुरक्षा थी न शान्ति। अराजकता का सर्वत्र बोलबाला था। मुगल शासन और बंगाल का नवाबी शासन अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था और चारों ओर भूख, अकाल, चोरी, डकैती का बोलबाला था।

1757 में पलासी के युद्ध में अँगरेजों के निर्णायक विजय ने ही ब्रिटिश साम्राज्य की नींव रखी। देश के दूसरे भागों में भी स्थिति अच्छी नहीं थी। मराठे और सिख यद्यपि बहादुर थे, लेकिन आपसी गुटबंदी और झगड़ों में व्यस्त थे। यहाँ तक कि मराठा सिपाही लूट खसोट का सहारा लेकर बंगाल तक हमला कर रहे थे। सिख बराबर राजपूत और मुस्लिम राजाओं से उलझे हुए थे। इनमें किसी में भी शक्ति नहीं थी कि अँगरेजों की कूटनीति और राजनीति का मुकाबला कर सकें। एक के बाद दूसरा प्रदेश अँगरेजों के अधिकार में चला गया। देश की यह अराजक स्थिति, जहाँ सब एक दूसरे के शत्रु बने थे, अँगरेजों के लिए मुँह माँगी मुराद जैसी थी। वेलेज़ली ने कलकत्ते में आते ही मराठा सरदारों से, जो अभी तक शक्तिशाली थे, बातचीत शुरू कर दी। मराठे सरदारों के आपसी झगड़ों का फायदा उठाते हुए अँगरेजों को उनसे लोहा लेने में कोई कष्ट नहीं हुआ और धीरे-धीरे सारा मध्य देश अँगरेजों के अधीन आ गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सूबे बंगाल की दीवानी अधिकार हासिल करने की घटना विश्व के इतिहास में अनोखी घटना थी। लोगों ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि डेढ़ सौ वर्षों से जो फिरंगी व्यापार कर रहे थे, अचानक ही पलासी के युद्ध के बाद दीवान बन बैठे। कम्पनी दीवान तो बने लेकिन प्रशासनिक कार्यों के लिए न उनके पास जन बल था, न ही अनुभव और न ही आवश्यक ज्ञान। कम्पनी के छोटे-मोटे गुमाश्ते और कारिन्दे, जो अब तक मसाले, कपड़े, सूत, शोरा आदि का व्यापार किया करते थे, अचानक राजस्व-कर वसूलने का अधिकार पा गये। देश के शासन की जिम्मेदारी मुर्शिदाबाद के नवाब के ऊपर ही रही जो अपनी ऐशो-इशरत में डूबे पड़े थे। उन्हें भी अपने

रेजाखाँ जैसे कारिन्दों पर भरोसा था। राममोहन के पूर्वज भी राजदरबार के आश्रय प्राप्त कर्मचारी ही थे, जिन्होंने धन-दौलन, जमीन-जायदाद काफी मात्रा में जमा कर लिया था। 1765 में कम्पनी ने सूबे बंगाल की दीवानी हासिल की थी। लगभग सत्तर वर्षों के भीतर 1835 तक कम्पनी का व्यावसायिक स्वरूप समाप्त होकर शासक रूप पूरी तरह, पूरे भारत में स्थापित हो गया।[3]

बंगाल के पहले गवर्नर रॉबर्ट क्लाइव (1757 से 1760) के शासन काल के दौरान सूबे बंगाल के इलाके में कुछ कानूनी और प्रशासनिक व्यवस्था लौटी। इसी काल में सबसे पहले, अँगरेजी प्रभाव के कारण पश्चिमी ज्ञान का आलोक भारत में आना आरम्भ हो गया था। कम्पनी के दीवानी अधिकार प्राप्त करने के बाद 1765 में क्लाइव एक बार फिर बंगाल के गवर्नर बनकर आए और 1767 तक रहे। 1772 में जब वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर बने उस समय कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट में क्लाइव पर महाअभियोग का मुकदमा चल रहा था। 1773 तक क्लाइव को न केवल सारे अभियोगों से मुक्त कर दिया गया बल्कि, उनकी सेवाओं की प्रशंसा की गई। लेकिन इस मुकदमे ने क्लाइव को मानसिक रूप से तोड़ दिया था। 1774 में इन्होंने आत्महत्या कर ली थी।

1773 के रेगुलेशन एक्ट के बाद 1774 में हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बने। यह काल अँगरेजी साम्राज्य के पाँव जमाने का काल था। इसी काल में सबसे अधिक और जटिल राजनैतिक दाँव-पेच खेले जा रहे थे और भारत के एक के बाद दूसरे प्रदेश अँगरेजी राज्य के एकाधिकार में चले आ रहे थे। इसी काल की एक मुख्य घटना थी, महाराज नन्दकुमार की फाँसी। नन्दकुमार ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध मुन्नी बेगम से घूस लेने का आरोप लगाया था। हेस्टिंग्स के विरोधी मौका ढूँढ़ ही रहे थे लेकिन हेस्टिंग्स चतुर प्रशासक थे। नन्दकुमार के विरुद्ध कलकत्ते के किसी व्यापारी का जालसाजी का आरोप उनके पास आया था। इसी आरोप का सहारा लेकर नन्दकुमार के विरुद्ध मुकदमा चलाया गया और 1775 में फाँसी की सजा दे दी गई। हेस्टिंग्स साफ बच गए।[4]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी हेस्टिंग्स, अपने समय के सबसे लोकप्रिय गवर्नर जनरल थे। उनके काल में ब्रिटिश साम्राज्य ने चहुँमुखी प्रगति की। राज्य विस्तार के साथ-साथ प्रशासनिक स्थिरता दृढ़तर होती जा रही थी। शिक्षा, संस्कृति और साहित्य के प्रसार और प्रचार के क्षेत्र में उन्होंने काफी कार्य किया। संस्कृत और फारसी दोनों भाषाओं के प्राचीन साहित्य का अनुवाद करवाया। 1784 में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना में सर विलियम जोन्स की पूरी मदद की। 1781 में उन्होंने अरबी-फारसी का शिक्षा केन्द्र 'मुस्लिम मदरसा' की स्थापना की।

सार्वभौम अँगरेजी साम्राज्य की नींव लार्ड कार्नवालिस (1786-93) ने रखी थी। इसी नींव पर पक्की इमारत खड़ी की लार्ड वेलेजली ने।[5] कार्नवालिस ने ही राजस्व के लिए जमींदारी प्रथा और स्थायी बन्दोबस्त लागू कर दिया। इस प्रकार किसानों और सरकार के बीच एक जमींदार वर्ग को जन्म दिया, जो न केवल राजभक्त होंगे बल्कि सरकारी खजाने में लगान या राजस्व को पहुँचाने की जिम्मेदारी भी लेंगे। कार्नवालिस ने ही धीरे-धीरे अँगरेज युवकों को भारत के प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करना आरम्भ कर दिया था। वेलेजली के जमाने तक पूरा देश ब्रिटिश शासन के नीचे आ गया था। वेलेजली के ज़माने की दो घटनाएँ महत्वपूर्ण रहीं, जो देश के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में अपना स्थान रखती हैं। पहला था कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और दूसरा श्रीरामपुर में बेप्टिस्ट मिशन की स्थापना। ये दोनों घटनाएँ राममोहन के जीवन और कार्यक्रम से काफी जुड़ी थीं, जिनका विवेचन यथास्थान किया जाएगा।

उस काल में पूरे भारत की राजनैतिक परिस्थिति को समझना भी आवश्यक है। वैसे सारे भारत में, अंगरेज शासित क्षेत्रों को छोड़कर जहाँ थोड़ी-बहुत प्रशासनिक-स्थिरता थी, राजनैतिक और सामाजिक स्थिति डाँवाडोल और अस्थिर थी। देश के उत्तरी पश्चिम और दक्षिणी प्रदेशों में अभी लड़ाइयाँ जारी थीं। इन प्रदेशों के कई एक वीर योद्धा और शासक इतिहास मे प्रसिद्धि पा चुके हैं। इनमें दिल्ली के शाहआलम दक्षिण के हैदरअली और टीपू सुलतान, मराठा नामक रघुनाथ राव और नाना फड़नवीस और सिख नेता महाराजा रणजीत सिंह अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अँगरेजों से टक्कर ले रहे थे। ये सभी अपनी व्यक्तिगत वीरता के लिए इतिहास के पन्नों में अमर हो चुके है। लेकिन इनके प्रयासों में एकजुट होकर लोहा लेने का मौका ही न था। इसी कारण अँगरेज अपनी बेहतर कूटनीति और सगठन के कारण अपने प्रयासों में सफल हुए। इस अराजक और अस्थिर काल में पूरे भारत में मध्ययुगीन, सामंतवादी आचार-विचार, धार्मिक पाखण्ड, कुरीतियाँ जीवन का अग बनी हुई थीं। चारों ओर अज्ञान का अंधकार व्याप्त था। इसी काल में सबसे पहले आधुनिक पश्चिमी ज्ञान का प्रकाश भी अँगरेज शासकों के और ईसाई मिशनरियों के माध्यम से फैलना आरम्भ हुआ। अँगरेजी शासन के साथ एक नये प्रकार के उपनिवेशीय संस्कृति ने जन्म लिया और नये जमींदार वर्ग तथा मध्यवर्ग का जन्म हुआ।

सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति

इतिहास के इस काल खण्ड में देश और समाज, धर्म, सम्प्रदाय और जाति के आधार पर पूरी तरह विखण्डित था। देश की सामाजिक और वैचारिक एकता के पथ में यह विखण्डित समाज हमेशा बाधा बनकर आया है। यही

सवाल अठारहवीं शताब्दी के भारत में भी मौजूद था। इसका समाधान हम लोग हमेशा खोजते रहे हैं। राममोहन ने भी सामाजिक और धार्मिक समन्वय की इसी खोज में सारा जीवन लगा दिया।

ग्राम-जीवन की आत्मनिर्भरता के होते हुए भी सामाजिक ठहराव और विखण्डन ही इस काल का मुख्य चित्र था। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, जात-पात का यक्ष-प्रश्न समान रूप से समाज को चुनौतियाँ दे रहा था।

देश की जनता का सबसे बड़ा भाग पारम्परिक तरीकों से खेती-बाड़ी में लगा था तो कुछ लोग उद्योग और दूसरे व्यापार धंधों में लगे थे। गाँवों के समाज जीवन के अलावा रियासतों और रजवाड़ों की राजधानियाँ और अनेक तीर्थस्थान सारे देश में फैले थे, जो सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों और कार्यकलापों के केन्द्र थे। यही केन्द्र उस इलाके के सामाजिक जीवन को नियंत्रित करते थे।

समाज में एक स्तर पर थोड़े से धनी लोग, राजदरबारी, अमीर-उमराव, जमींदार और व्यापारी भोगविलास में लगे थे, दूसरी ओर धार्मिक स्तर पर पाखण्डों और रीति-रिवाजों का बोलबाला था। फलस्वरूप इस काल में सांस्कृतिक, नैतिक और बौद्धिक स्तर पर देश अवनति की गहराइयों में पड़ा था। धार्मिक और सामाजिक उत्सवों के नाम पर फिजूलखर्ची का प्रचलन आम लोगों की आर्थिक अवस्था पर भारी चोट थी। उत्पादन के दकियानूसी तरीके, भोग-विलास, फिजूलखर्ची और जनसंख्या वृद्धि के कारण देश की आर्थिक स्थिति दिनोंदिन खराब होती जा रही थी।

समीक्ष्य काल में एक नौकरी पेशा मध्यवर्ग का जन्म हुआ। नवाबों के राजदरबारों, खजानों और अदालतों और दूसरे प्रशासनिक विभागों में इस वर्ग ने जन्म लेकर यूरोपीय व्यापारियों के व्यापारिक गद्दियों और बाद में ईस्ट इण्डिया कंपनी के राजस्व विभाग, कारोबारी दफ्तरों में काम करना शुरू किया। इस वर्ग ने छोटे-बड़े शहरों, नये व्यापारिक केन्द्रों और बन्दरगाहों में बसना आरम्भ कर दिया था। यूरोपीय व्यापारियों के आगमन काल से नये बन्दरगाह और व्यापारिक केन्द्र खुले तो नौकरी-पेशा वर्ग के साथ-साथ नया मजदूर वर्ग भी जन्म लेने लगा। मध्यवर्ग का एक हिस्सा जो शिक्षा और संस्कृति की ओर झुका और देश में नयी बौद्धिक चेतना को जागृत करने में सफल हुआ। इसी काल में शिक्षा और संस्कृति के नये केन्द्र बनने लगे थे।

अठारहवीं शती में समाज जीवन में धर्म का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण था। हिन्दू, मुस्लिम दो प्रमुख धर्मों के अलावा सारा देश छोटे-छोटे धार्मिक सम्प्रदायों, मत-मतांतरों और पंथों में बँटा हुआ था। हिन्दू और मुसलमान सभी अपने-

अपने धार्मिक रूढ़ियों और कर्मकांडों का कट्टरता से पालन करना अपना परम कर्तव्य मानते थे। इसमें एक प्रकार होड़ सी लगी होती। लोग जान की बाजी लगाने से भी नहीं चूकते। संकीर्णता ही धार्मिक जीवन की प्रमुख विशेषता थी। हिन्दुओं में वैष्णव और शैवों के अलावा न जाने कितने छोटे-छोटे सम्प्रदाय बने हुए थे। मुसलमानों में भी शिया-सुन्नी सम्प्रदाय में अलगाव और टकराव बना रहा।

धार्मिक जीवन का केन्द्रीय पक्ष था अनुष्ठान और कर्मकांड। इन्हीं को धर्म का पर्याय मान लिया गया था। इन अनुष्ठानों और धार्मिक कर्मकांडों में इतनी फिजूलखर्ची होती कि अन्दाजा लगाना मुश्किल है। जन्म से मृत्यु तक के सारे अनुष्ठानों में, मन्दिर निर्माण, ब्राह्मण और साधु-सन्तों की सेवा, तीर्थ-यात्रा आदि असंख्य कार्यकलापों में धन खर्च करना ही धर्म का ही अग समझा जाता था। मथुरा, वृन्दावन, पुरी, वाराणसी के अलावा सारे भारत में असंख्य तीर्थ स्थानों पर हिन्दू यात्री काफी धन खर्च करते। अंधविश्वासों का बोलबाला था और इनको कायम रखने के लिए पुरोहित, ब्राह्मण, मुल्ला और मौलवी सभी ने अपनी-अपनी भूमिका पूरी तरह निभाई। ये ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छूआछूत, जातिभेद और धार्मिक कट्टरता को तूल देते रहते। धार्मिक कट्टरता और पाखण्ड हिन्दू और मुसलमानों में समान रूप से विद्यमान थे। इस काल में जाति-भेद और छूआ-छूत के अलावा खान-पान के मामले में भी भारी नियम कानून प्रचलित थे। छोटी-छोटी धार्मिक गलतियों के लिए 'प्रायश्चित्त' करना पड़ता था। हिन्दू बहुधा वेदों और दूसरे शास्त्रों का हवाला देते लेकिन उनमें लिखे उपदेशों, तत्वों या विचारों की ओर ध्यान तक नहीं देते थे। धर्म की आड़ में सारे पाप प्रमाद किये जाते। धार्मिक मठ और सम्प्रदायवाद का बोलबाला था। धार्मिक अन्धविश्वासों पर आधारित 'सती प्रथा' का प्रचार सारे उत्तर भारत में था जिसके विरुद्ध राममोहन ने आगे चलकर संघर्ष किया। यद्यपि प्राचीनकाल में भारत में नारी का स्थान सम्मानपूर्ण रहा लेकिन सत्रहवीं-अठारहवीं शती में नारी की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई थी। बहुविवाह, कुलीन प्रथा, बाल विवाह आदि आम कुरीतियाँ प्रचलित थीं। विधवाओं की दयनीय स्थिति इस काल की विडम्बना थी। पति की मृत्यु के बाद न तो परिवार में और न ही समाज में विधवाओं का कोई स्थान था। इस परिस्थिति ने शायद सहमरण या सती-प्रथा को बढ़ावा दिया। धार्मिक पाखण्डों और सामाजिक कुरीतियों के अलावा समस्त पददलित वर्गों के शोषण और अत्याचार के विरुद्ध राममोहन ने आजीवन आन्दोलन और संघर्ष किया। सामाजिक मुक्ति के लिए आधुनिक शिक्षा को एक समर्थ और सार्थक हथियार के रूप व्यवहार में लाने का बीड़ा राममोहन ने ही सबसे पहले उठाया।

आर्थिक परिस्थिति

राजनैतिक कारणों के अलावा समसामयिक आर्थिक परिस्थितियों और नीतियों पर उस काल विशेष की परिस्थिति या प्रगति निर्भर होती है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कई एक अर्थशास्त्री या समाजशास्त्री इस समस्या की ओर ध्यान देने लगे। इसी परिप्रेक्ष्य में उस काल की आर्थिक परिस्थिति पर विचार करना होगा। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार इस काल में ज्यों-ज्यों बढ़ने लगा, यूरोप के कल-कारखानों में उत्पन्न उपभोक्ता वस्तुओं के लिए नये-नये बाजारों की खोज आरम्भ हो गई। इसी समय व्यापारियों ने 'स्वतन्त्र व्यापार नीति' अपनाने के लिए नये पूँजीवादी देशों में नारे लगाना आरम्भ कर दिया था। शायद यही कारण था कि राममोहन भी देश के अशक्त और अविकसित मध्ययुगीन कुटीर उद्योग और कृषि पद्धति को हटाकर समृद्ध और विकसित यूरोपीय उद्योग और कृषि पद्धति प्रवर्तित करना चाहते थे।

यद्यपि मुगल शासन की गिरती हुई हालत से देश के व्यापार-धंधे, खेती-बाड़ी पर बुरा प्रभाव पड़ा फिर भी, मध्यवर्ग, कृषक और मजदूर, यूरोपियन व्यापारियों की अपेक्षा कोई बहुत बुरी हालत में नहीं थे। लेकिन ईस्ट इण्डिया कंपनी की व्यापारिक एकाधिकार और आर्थिक शोषण से देश के आर्थिक संतुलन में फर्क पड़ने लगा। इसी काल में कलकत्ता बन्दरगाह व्यापार का प्रमुख केन्द्र बन गया। सारे पश्चिमी जगत से साहसिक व्यापारी धन कमाने के लिए यहाँ आना शुरू हो गये। मुस्लिम शासन के अन्तिम काल में व्यापार और उद्योग धंधे, अराजकता, लड़ाइयों और प्रशासनिक अस्थिरता के कारण गिरते जा रहे थे। व्यापार में भी भ्रष्टाचार का बोलबाला था। ईस्ट इण्डिया कंपनी तथा दूसरे व्यापारी जिनमें पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी आदि थे अपना कारोबार दिनोदिन बढ़ाते चले जा रहे थे। उनके लिए यह देश सोने की चिड़िया थी। इस होड़ में ईस्ट इण्डिया कंपनी ने यहाँ अपना पाँव अब पूरी तरह जमा लिया।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना इस देश के पहले सारे आक्रामकों और विजेताओं के तौर तरीकों से भिन्न था। जब अफगान या मुगल शासक इस देश में आये तो उस समय की इस देश की कृषि और कुटीर उद्योग आधारित आर्थिक परिस्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। प्रशासनिक उथल-पुथल और युद्धों का प्रभाव केवल राजघरानों या शासक श्रेणी तक ही सीमित था। लेकिन ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आरम्भ हो गये। एक ओर नई आर्थिक और औद्योगिक क्रान्ति की दबाव के नीचे सामंतवादी पुराना ढाँचा टूटना आरम्भ हो गया और दूसरी ओर नई वर्ग व्यवस्था और नई शक्तियाँ जन्म ले रही थीं।

भारत, जो आरम्भ से ही एक कृषिप्रधान देश रहा है, का मुख्य व्यवसाय खेती ही था लेकिन औद्योगिक क्षेत्र में भी वह पीछे नहीं था। खेती के अलावा कपड़ा बुनने का धंधा कुटीर शिल्प के रूप में सर्वत्र प्रचलित था। भारत से कपड़ों का भारी निर्यात होता था। लेकिन ब्रिटिश व्यापारियों को कच्चे माल के लिए और ब्रिटेन के कारखानों में बने सामान को बेचने के लिए भारी बाजार और इलाका मिल गया। जिसके फलस्वरूप भारत का शोषण आरम्भ हो गया। ब्रिटेन में शिल्प-विप्लव के साथ मशीनी युग आरम्भ हो गया था। भारत में अपना राज्य जमाने के साथ-साथ उद्योग और कारखानों के मामले में ब्रिटिश शासक जो वस्तुतः व्यापारी ही थे, भारतीय कुटीर उद्योग को दबाने या समाप्त कर देने में सफल हो गये। भारत में कपड़ा उद्योग 18वीं शती तक काफी समृद्ध उद्योग था। मैनचेस्टर और लिवरपूल के मिलों में बने कपड़ों ने भारत के करघे बन्द करवा दिये। कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित न जाने कितने सहायक छोटे-छोटे उद्योग समाप्त हो गये। देश के हजारों बुनकर भूखे मरने लगे। देश का यह एक सम्पन्न कुटीर उद्योग अठारहवीं शती के अंत तक आखिरी साँस लेने लगा। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि सन् 1815 में भी भारत से यूरोप को निर्यात किये गये कपड़े का मूल्य एक करोड़ तीस लाख रुपया था।[6] यह निर्यात घटते-घटते 1832 में, जब राममोहन ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने भारत की परिस्थिति के सम्बन्ध में गवाही दे रहे थे, मात्र दस लाख रुपये रह गया था। कुछ ही वर्षों में भारत से कपड़े का निर्यात बिल्कुल बन्द हो गया। 1800 ई० तक भारत में विलायत से एक गज कपड़ा भी आयात नहीं होता था। 1814 ई० में पहले पहल मैनचेस्टर से भारत को कपड़ा आना आरम्भ हुआ। इसके साथ ही देश का आर्थिक पासा पलट गया। कृषि और उद्योग का संतुलन इसी कालान्तर में नष्ट हो गया। पश्चिमी विज्ञान और तकनीकी विद्या, मशीन और कलकारखानों के सहारे हमारी आर्थिक व्यवस्था पर पूरी तरह हावी हो गई। ईस्ट इण्डिया कंपनी की समृद्धि के साथ जब हमारे कुटीर उद्योग समाप्त होने लगे तो कारीगर लोग फिर से खेती का पेशा अपनाने पर मजबूर हुए या गाँवों को छोड़कर नौकरी की खोज में शहरों की ओर भागने लगे। भारत इस चरण में आकर फिर से इसी अविकसित खेती पर निर्भर रहने लगा। इसी अवधि में देश को लगातार कई भयंकर अकालों का सामना करना पड़ा। लाखों लोग भूखों मर गये। देश की आर्थिक स्थिति सम्पूर्ण रूप से ध्वस्त हो गई। एक समृद्ध देश गरीबी के शिकंजों में फँसता चला गया।

देश का शोषण जब अपनी चरम अवस्था में था, उस समय राममोहन कच्ची उम्र के छोटे से बालक थे।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति

बंगाल या भारत में 1772 तक का काल इतिहास की न जाने कितनी अजीबो-गरीब घटनाओं का साक्षी है। लेकिन ठीक इसी काल में पश्चिमी जगत की बौद्धिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक अवस्था का विश्लेषण करना आवश्यक है। क्योंकि आगे चलकर हम देखेंगे कि राममोहन की विचारधारा के अनेक स्रोतों का उद्गम पश्चिम ही था। उन्होंने अपने जीवन काल में यूरोप और अमेरिका की बहुत सी घटनाओं के बारे में तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। 1772 में जब राममोहन का जन्म हो रहा था, उसी समय फ्रांस में राज्य क्रांति का परिवेश बनना आरम्भ हो गया था। कुछ वर्षों बाद लूई सोलह को प्रायश्चित्त अवश्य करना पड़ा। राममोहन जब 20 वर्ष के थे उस समय (1792) फ्रांसीसी क्रांति का आर्तनाद सुनाई दिया। नेपोलियन का उत्थान और पतन भी राममोहन के जीवन काल में घटित हो रहा था। इस दौरान में यूरोप भारी उथल-पुथल से गुजर रहा था और भारत के शासक भी नये दृष्टिकोण को अपनाने लगे थे। इंगलैण्ड में आर्थिक और प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तन हो रहे थे साथ ही बौद्धिक स्तर पर भारी परिवर्तन के आसार दीखने लगे। औद्योगिक क्रांति अठारहवीं शताब्दी के मध्य से ही गतिशील होने लगा था। इंगलैण्ड धीरे-धीरे औद्योगिक देश के रूप में परिवर्तित होता जा रहा था। यह विज्ञान, तकनीकी और औद्योगिक क्षेत्र में यूरोप में सबसे आगे था। कारखानों की स्थापना, पूंजी निवेश और धन-दौलत की निरंतर वृद्धि ने इंगलैण्ड के सामाजिक और आर्थिक स्थिति को पूरी तरह बदल दिया।

दूसरी ओर यूरोप मे ही, फ्रांस में व्यक्ति स्वतंत्रता और बौद्धिक क्रांति का श्रीगणेश हो रहा था। समानता, स्वतंत्रता और मैत्री के नारे लगाये जा रहे थे। इस प्रकार दो अलग-अलग क्रांतियाँ यूरोप में घटित हो रही थीं। इसी के फलस्वरूप गरीबी, बौद्धिक दासता और सत्तावाद के विरुद्ध राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। यूरोप में वाल्टेयर, रूसो, कांट जैसे महापुरुषों ने अपना प्रभाव फैलाया, तो इंगलैण्ड में वर्ड्सवर्थ जैसे कवि आडम स्मिथ और बेन्थम जैसे अर्थशास्त्री और दर्शनशास्त्रियों ने जन्म लिया।

राममोहन की उम्र जब केवल चार वर्ष की थी, 1776 में अमेरिका में ब्रिटिश गुलामी की जंजीरें तोड़ने के लिए संघर्ष शुरू हो गया था। 17,89 में स्वतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना हुई। इस घटना ने फ्रांसीसी विप्लव को आगे बढ़ाने में सहायता की थी। वैचारिक स्तर पर इसी काल में नये विचारों का जन्म भी हो रहा था। मनुष्य की अस्मिता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता लोकतंत्र आदि समाजवादी विचारों के आधुनिक अर्थ ढूंढ़े जा रहे थे।

टॉमस पेइन के 'राइट्स ऑफ मैन' (1791) और 'एज आफ रीज़न' (1794) जैसी पुस्तकों का प्रभाव सारे पश्चिमी जगत पर हुआ। इन पुस्तकों की विचार-धारा की लहरें सात समुद्र पार भारत के तट पर भी आ पहुँचीं। भारत के बुद्धिजीवी युवक काफी उत्तेजित हो उठे थे। 'एज आफ रीज़न' की सैकड़ों कापियाँ जब कलकत्ते पहुँचीं तो हाथों हाथ बिक गईं। राममोहन को भारत में इस 'एज आफ रीज़न' का जनक कहा जा सकता है। पाश्चात्य के जिन मनीषियों ने राममोहन के विचारों को सबसे अधिक प्रभावित किया, उनमें बेन्थम, ह्यूम, रिकार्डो, जेम्स मिल, जॉन स्टूअर्ट मिल जैसे महारथियों की पुस्तकें और विचार थे। अठारहवीं शती के दूसरे चरण में इंग्लैण्ड में जो औद्योगिक क्रान्ति हुई, उसके पीछे वैज्ञानिक और तकनीकी आविष्कारों का हाथ था। मशीन का प्रयोग धीरे-धीरे फैलता जा रहा था। उत्पादन का स्वरूप ही बदल गया। इसी के फलस्वरूप व्यापार का ढंग भी बदल गया। पूँजीवाद और बुर्जुआ अर्थनीति की जड़ें इसी काल में जमने लगीं। आधुनिक काल की राजनैतिक और सामाजिक विचारधारा जैसे लोकतंत्र और समाजवाद के बीज भी इसी काल में बोये गये।[7]

यूरोपीय सांस्कृतिक इतिहास में यह काल बहुत महत्वपूर्ण रहा है। रेनांसाँ या पुनर्जागरण के चरण आगे बढ़ते जा रहे थे। एक ओर ग्रीक और लैटिन से क्लासिक्स का अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में होने लगा दूसरी ओर मानव कार्य कलाप में धार्मिक और लौकिक निरपेक्षता या मुक्ति की भावना का समावेश हुआ। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ। मानवतावाद और व्यक्ति स्वतंत्रता का वैचारिक आधार इसी युग में बना। इसका प्रभाव अँगरेजों और अँगरेजी के माध्यम से भारत के तट पर भी पहुँचा। पुनर्जागरण की मशाल थोड़े से यूरोपीय विद्वान अपने साथ लेते आये थे। उसी मशाल को राममोहन ने आगे बढ़ाया। इस विषय पर आगे विस्तृत विवेचन किया जायगा। 1765 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सूबे बंगाल की दीवानी हासिल की थी और इसके ठीक 70 वर्ष बाद 1835 तक कम्पनी अपने व्यापारी चोले को उतार कर, शासक बन बैठी। राममोहन का आरम्भिक जीवन इति-हास के इसी संक्रान्ति-काल से होकर बीता था। इसी काल में बंगाल और भारत अपने मध्ययुगीन अंधकार से निकल कर आधुनिक युग के आलोक में प्रवेश कर रहा था। फ़ारसी और संस्कृत भाषा के बंधन से मुक्त होकर अँगरेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी विचारधारा ज्ञान-विज्ञान का प्रचार और प्रसार आरम्भ हुआ। प्रेस की स्थापना भी इस काल की एक क्रान्तिकारी घटना थी। इसी काल में भारत की आधुनिक भाषाओं में सबसे पहले गद्य साहित्य का आरम्भ हुआ। राजनैतिक और अर्थनैतिक परिवर्तन ने एक ऐसे मध्यवर्ग को जन्म दिया जिसने आगे चल कर राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए

महत्वपूर्ण कार्य किया। आधुनिक भारत के बौद्धिक, सामाजिक विकास में राममोहन और उनके सहयोगियों का स्थान सर्वोपरि और सर्वमान्य है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि राममोहन जब भारतीय-इतिहास के मंच पर उतरे तब मुगल साम्राज्य का सूरज डूब रहा था। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक अराजकता के बीच ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें मजबूत हो रही थीं। 1772 में जब राममोहन का जन्म हुआ उस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल के पद पर थे। वारेन हेस्टिंग्स स्वयं विद्वान् थे और उन्हें भारतीय साहित्य और संस्कृति से भारी लगाव हो गया। उन्हीं की प्रेरणा और प्रोत्साहन से भारतीय भाषाओं के साहित्य धर्म और संस्कृति के बारे में यूरोपीय विद्वानों की उत्सुकता बढ़ी। 1784 में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना में उनका पूरा सहयोग था। 1785 में चार्ल्स विल्किन्स ने भगवद्गीता का अंगरेजी अनुवाद किया और 1790 में सर विलियम जोन्स ने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद किया। ये अनुवाद जब यूरोप पहुँचे तो पाश्चात्य विद्वत् समाज में हलचल मच गई। श्लीगल, शोपेनहावर, और गेटे जैसे महापंडित भारतीय साहित्य और संस्कृति की ओर आकृष्ट हुए। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना इस दिशा में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। पाश्चात्य जगत द्वारा इस मान्यता का नतीजा यह हुआ कि भारतीय विद्वान् भी अपनी समृद्ध परम्परा और सांस्कृतिक धरोहर को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विचारने लगे। राममोहन बुद्धिजीवियों की इस नयी गोष्ठी के अगुआ बने।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Tara Chand : Freedom Movement in India Vol. I, Page 52.
2. वही, पृ० 53.
3. मुखोपाध्याय : राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगला) पृ० 56.
4. Dasgupta : The life and times of Raja Rammohan Roy, Vol I Page 29.
5. मुखोपाध्याय : राममोहन आ....(बंगला) पृ० 23.
6. वही, पृ० 26.
7. वही, पृ० 15.

जीवन-गाथा

अध्याय—2

पारिवारिक पृष्ठभूमि और जन्म

राममोहन ने अपने पारिवारिक इतिहास और जीवन के बारे में, अपने इंगलैण्ड के प्रवास काल में अपने एक अँगरेज मित्र को पत्र लिखकर एक संक्षिप्त विवरण दिया था जो 'लंदन एथेनेयम' और बाद में 'लिटरेरी गजट' में प्रकाशित हुआ। सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, राजनैतिक विषयों पर लिखी पुस्तकों लेखों, समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समाचारों, सरकारी दस्तावेजों और समसामयिक विशिष्ट लोगों के विवरणों के अलावा यही उनका एकमात्र आत्म परिचयात्मक दस्तावेज है। अतः यहाँ पूरे अँगरेजी पत्र[1] का अनुवाद उद्धृत करना उपयुक्त होगा।

"···आपने प्रायः मेरे जीवन का संक्षिप्त विवरण लिख भेजने के लिए अनुरोध किया था। इसलिए मैं प्रसन्नतापूर्वक अपने जीवन का अत्यन्त संक्षिप्त विवरण दे रहा हूँ।

"मेरे पूर्वज उच्च कुल के ब्राह्मण थे, और स्मरणातीत काल से वे वंशानुसार धार्मिक कृत्यों में अब से पाँच पुरखे पहले तक लगे थे। कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले ये लोग जजमानी और पण्डिताई छोड़कर व्यावसायिक कार्यों के द्वारा पारिवारिक समृद्धि की ओर बढ़े। उनके वंशज तभी से इन्हीं रास्तों पर चलकर, जैसा राजदरबारों के भाग्य में होता है, कभी सफलता, कभी विफलता, कभी समृद्धि और कभी गरीबी, कभी सम्मानित और कभी अपमानित होते रहे। लेकिन मेरे मातामह (नाना) के वंशज पारम्परिक जजमानी ही करते थे और इस पेशे में उनसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं था। वे हाल तक धार्मिक कार्यों और उपासना में ही लगे रहे। सांसारिक उच्चाकांक्षाओं और वैभव की अपेक्षा वे आत्मिक-शांति को श्रेयकर समझते थे।

"अपनी पैतृक वंश-परम्परा के अनुसार और पिता की इच्छानुसार मैंने फारसी और अरबी भाषाओं में शिक्षा प्राप्त की, क्योंकि मुस्लिम राज-दरबारों से सम्बद्ध लोगों के लिए यह आवश्यक था। अपने ननिहाल की परम्परा के अनुसार मैंने संस्कृत और उसमें लिखे धार्मिक ग्रंथों का भी अध्ययन किया क्योंकि हिन्दुओं में धार्मिक ग्रंथ, शास्त्र और साहित्य इसी भाषा में लिखे हैं।

"मैं जब केवल सोलह वर्ष का था उसी समय मैंने हिन्दुओं में प्रच-

लित मूर्तिपूजा के विरोध में एक लेख प्रस्तुत किया। लेख और मेरे ज्ञात विचारों से परिचित होने पर मेरे निकट सम्बन्धियों से जब मेरा मतभेद आरम्भ हो गया तो मैं देश-भ्रमण पर निकल पड़ा। कई प्रदेशों की यात्रा के बाद भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से आहत होकर, मैंने भारत से बाहर के कई देशों की भी यात्रा की। जब मैं बीस वर्ष का था उस समय मेरे पिता ने मुझे वापस बुला भेजा और मैं दुबारा उनका प्रियपात्र बना। इसी समय से मैं पहले-पहल यूरोप-वासियों के संपर्क में आया और जल्दी ही उनके विधि-विधान और सरकारी प्रशासन के बारे में जानकारी प्राप्त की। उन लोगों को अक्सर अधिक बुद्धिमान, संयमी और व्यावहारिक पाकर मेरे मन में उन लोगों के प्रति जो पूर्वग्रह था, उसे मैंने छोड़ दिया और मेरा झुकाव उनकी ओर बढ़ने लगा। मुझे विश्वास होने लगा कि यह विदेशी दासता देशवासियों की हालत सुधारने में सहायक सिद्ध होगी। मैं धीरे-धीरे उन लोगों का विश्वासपात्र बना, शासकीय स्तर पर भी। मूर्तिपूजा और अंधविश्वासों के बारे में ब्राह्मणों के साथ लगातार विरोध और वाद-विवाद होने, मेरे विधवाओं को जलाने की प्रथा का विरोध करने के कारण मेरी उन लोगों से शत्रुता बढ़ती चली गई और मेरे परिवार के लोगों में उनके प्रभाव के कारण, मेरे पिता एक बार फिर खुले आम मेरे विरोधी हो गये। फिर भी थोड़ी बहुत आर्थिक मदद करते रहते थे।

"पिता की मृत्यु के बाद मैंने पूर्तिपूजा के विरुद्ध आन्दोलन और अधिक तीव्रता और हिम्मत के साथ शुरू कर दिया। इस समय भारत में छपाई की सुविधा का लाभ उठाकर मैंने लोगों में फैले भ्रम के विरोध में पुस्तकें और लेख देशी और विदेशी भाषाओं में प्रकाशित किये। इससे मेरे विरुद्ध ऐसी उत्तेजना फैली कि केवल दो या तीन स्कॉट बन्धुओं को छोड़कर जिनका और जिनके देश का मैं बड़ा आभार मानता हूँ, सभी मेरा साथ छोड़ गये।

"इन वाद-विवादों में मैंने ब्राह्मणवाद का नहीं, बल्कि केवल उसमें पैदा हुई विकृतियों का विरोध किया था। मैंने इतना भर दिखाने की कोशिश की थी कि ब्राह्मणों की मूर्तिपूजा उनके पूर्वजों की धार्मिक पद्धतियों के न केवल विपरीत है बल्कि धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित जिन सिद्धान्तों और शास्त्रों को वे मानने का दावा करते हैं, उनके प्रतिकूल हैं। मेरे विचारों का विरोध और भारी आक्रमण के बावजूद मेरे कुछ अपने लोगों ने और कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने मेरी भावनाओं और विचारों को अपनाना शुरू कर दिया।

"इस समय मेरे मन में यूरोप परिभ्रमण की तीव्र इच्छा पैदा हुई, जिससे वहाँ के आचार-व्यवहार, धर्म, राजनैतिक संस्थाओं के बारे में व्यक्तिगत रूप से अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। लेकिन मैं इस योजना को तब तक कार्यान्वित नहीं कर सका जब तक मेरे समान विचार वाले मित्रों और सहयोगियों की संख्या पर्याप्त नहीं हो गई। आखिरकार जब मेरी आशाएँ किसी सीमा तक पूरी हो गईं, तो मैं नवम्बर 1830 को इंगलैण्ड की यात्रा पर रवाना हुआ। क्योंकि इसी समय ईस्ट इण्डिया कंपनी के नये चार्टर, जिसके द्वारा भारतीयों की भावी शासन व्यवस्था, लम्बे समय तक चलने वाले भविष्य के सरकारी ढाँचे के बारे में होने वाली बहस में शामिल होने के विचार से और सती-दाह प्रथा निवारण के विरोध में किंग-काउंसिल में पेश की गई अपील की सुनवाई के समय उपस्थित रहने की इच्छा थी। इसके अलावा दिल्ली के बादशाह ने अधिकार-हनन के मुद्दों पर ईस्ट इण्डिया कंपनी के खिलाफ अपील करने के लिए मुझ पर भार सौंपा था। अतः मै अप्रेल 1831 को इंगलैण्ड पहुँच गया।"

"आशा है मेरे इस संक्षिप्त विवरण के लिए क्षमा करेंगे, इस समय विस्तारपूर्वक लिखने का अवकाश नहीं है।"

यह रही संक्षिप्त आत्मजीवनी, उन्हीं की जबानी।

राजा राममोहन राय का जन्म पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के खानाकुल कृष्ण नगर क्षेत्र के राधानगर गाँव में 22 मई 1772 में हुआ। जन्म-तिथि के बारे में विद्वानों में विशेष मतभेद नहीं है किन्तु जन्म-वर्ष के बारे में काफी मतभेद पाया जाता है। 1772 के अलावा, 1774 और 1780 के वर्ष भी अलग-अलग स्रोतों से पाया जाता है। वस्तुतः किसी न किसी सरकारी दस्तावेज में उनकी जन्म-तिथि होनी चाहिए थी लेकिन आज तक वह नही मिल पाया। विवाद 1772 और 1774 के बीच है। भारत सरकार ने इस विषय पर एक समिति का गठन भी किया था जिसने 1772 के पक्ष में निर्णय दिया था। लेकिन रवीन्द्र नाथ ठाकुर के पितामह द्वारका नाथ ठाकुर जो उनके परम मित्र थे और जिन्होंने ब्रिस्टल में उनकी समाधि पर स्मारक-प्रस्तर लगवाया था, उसमें 1774 वर्ष लिखा है। उनके प्रमुख जीवनीकार मिस सोफिआ डॉबसन कोलेट, जिन्होंने बहुत परिश्रम करके उनकी जीवनी की सामग्री एकत्रित की थी, ने भी 1772 का वर्ष माना है। उनके जीवन के कालानुक्रम से 1772 का वर्ष सटीक बैठता है। इसके अतिरिक्त उनके परम मित्र जोन डिगबी, राममोहन के पुत्र रामप्रसाद राय और पौत्र ललित मोहन चट्टोपाध्याय तथा रवीन्द्र नाथ ठाकुर के पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर आदि सभी ने इस तिथि और वर्ष के पक्ष में राय दी है।[2]

राममोहन के प्रपितामह कृष्णचन्द्र बन्द्योपाध्याय मुर्शिदाबाद जिले के शाँकासा गाँव के मूल निवासी थे। वे नवाबों के राजदरबार में नौकरी करते हुए 'राय' उपाधि से भूषित हुए। वंश वृक्ष के आधार पर यह कहा जाता है कि इनके पुरखे कन्नौज के प्रसिद्ध विद्वान भट्टनारायण के वंशज थे, जो बाद में कन्नौज के पूर्वी प्रदेश की ओर स्थानान्तरित होकर अंत में मुर्शिदाबाद में आ बसे। ये शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण थे। वस्तुतः राममोहन के पुरखों में से कई पीढ़ी पहले से ही पुरोहितगिरी या जजमानी का धंधा छोड़कर राज दरबारों में नौकरी करने लगे थे। उनको नया पेशा काफी रास आया था। केवल सम्मान ही नहीं, कृष्णचन्द्र ने काफी धन-दौलत और जमीन-जायदाद भी एकत्रित की। कहा जाता है कि एक बार जब वे नवाब की ओर से जमींदारी बन्दोबस्त करने के लिए वर्धमान के अधिकार क्षेत्र में खानाकुल-कृष्णनगर पहुँचे तो यह जगह उन्हें पसन्द आ गयी। यहीं राधानगर में वे जायदाद खरीदकर बस गये। नये मकान के साथ ही उन्होंने गोपीनाथ का मन्दिर बनवाया। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे वैष्णव थे। राधानगर में ही कृष्णचन्द्र ने जीवन के अन्तिम वर्ष बिताए। एक धनी जमींदार और धार्मिक व्यक्ति के रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी।

कृष्णचन्द्र के तीन पुत्र थे अमरचन्द, हरिप्रसाद और ब्रजविनोद। छोटे पुत्र ब्रजविनोद ही पिता के पदचिह्नों पर चलकर मुर्शिदाबाद के नवाब के दरबार में ऊँचे पद पर नौकर रहे।[3] लेकिन बाद में मतभेद होने के कारण नौकरी से इस्तीफा देकर चले आए। ब्रजविनोद भी ऐश्वर्यशाली धार्मिक और परोपकारी थे। यह वंशपरम्परा, इतिहास के पन्नों से होती हुई बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के शासन काल में पहुँच गई। यद्यपि ब्रजविनोद सिराजुद्दौला की नौकरी से इस्तीफा देकर चले आए थे लेकिन फिर भी उन्होंने अपने सात पुत्रों में से पाँचवें पुत्र रमाकान्त को परिवार की परंपरा के अनुसार सिराजुद्दौला के राजदरबार में नौकरी के लिए भेज दिया। रमाकान्त नवाब के पदाधिकारी के रूप में अधिक सफल हुए और काफी धन-दौलत और जमीन जायदाद जोड़ने में भी सफल हुए। लेकिन वे भी आखिरकार अपने पिता की तरह नौकरी छोड़कर चले आए। मुर्शिदाबाद की नौकरी छोड़ने के बाद रमाकान्त राधानगर लौट आए और बाद में वर्धमान के महाराज की जायदाद की देखभाल के लिए नियुक्त हुए। इसके अलावा उनकी अपनी पारिवारिक जायदाद का इंतजाम भी कोई छोटा काम नहीं था।

यही रमाकान्त, राममोहन राय के पिता थे। रमाकान्त की तीन पत्नियाँ थीं मझली पत्नी तारिणी देवी से उनकी तीन सन्तान थीं—दो पुत्र और एक कन्या। पहला पुत्र जगमोहन और दूसरा राममोहन। पुत्री का नाम आज भी

अज्ञात है। रमाकान्त की पहली पत्नी सुभद्रा देवी निसन्तान थी और सबसे छोटी—तीसरी पत्नी राममणी देवी से एक पुत्र रामलोचन थे। शायद दो पुत्रों की माँ होने के कारण या जो भी अन्य कारण रहे हों, तारिणी देवी जो 'फूलठाकुरानी' के नाम से ही परिवार में पुकारी जाती थी, घर की सर्वेसर्वा मालकिन थी। तारिणी देवी का पितृकुल शाक्त सम्प्रदाय में दीक्षित था। कठोर साम्प्रदायिक नियमों को तोड़कर कैसे एक वैष्णव के घर में एक शाक्त सम्प्रदाय की कन्या ब्याही गई, इसके बारे में कई रोचक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जिनसे प्रमाणित इतना ही होता है कि तब भी इस प्रकार के आन्तर-साम्प्रदायिक विवाह होते थे। कहानी कुछ इस प्रकार है। अपने अन्तिम समय में जैसा उस काल में प्रतिष्ठित लोगों में प्रचलित था, ब्रजविनोद गंगा के किनारे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक दिन श्रीरामपुर के चातरा इलाके के पण्डित श्याम भट्टाचार्य ने उनके पास आकर एक अनुरोध किया। श्याम भट्टाचार्य इलाके के प्रसिद्ध विद्वान और गुरु थे। ब्रजविनोद ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, तो उन्होंने निवेदन किया कि वे अपनी पुत्री का विवाह उनके किसी एक पुत्र से करने की भीख चाहते हैं। श्याम भट्टाचार्य शाक्त थे, ब्रजविनोद वैष्णव और कुलीन वंशज। लेकिन गंगा के किनारे दिए गए वचन के अनुसार ब्रजविनोद ने अपने सभी बेटों के सामने प्रस्ताव रखा। केवल पाँचवें पुत्र रमाकान्त ही राजी हुए। तारिणी देवी से उनका विवाह हो गया, जिन्होंने राममोहन को जन्म दिया।[4]

तारिणी देवी के बारे में जीवनीकारों का मत है कि वे अनेक सद्गुणों से युक्त, बुद्धिमान, चतुर, धर्मपरायणा और दृढ़ चरित्र की स्त्री थीं। उनका धर्मानुराग बहुत ही प्रबल था। अपन पति के जीवनकाल में भी तारिणी देवी ही वस्तुतः परिवार की वास्तविक संचालिका थीं। वे केवल पारिवारिक मामलों में ही नहीं, बल्कि जमीन जायदाद के मामले में भी अपनी दक्षता दिखाती रहीं। महापुरुषों के जीवन में अकसर माता के चारित्रिक गुणों का समावेश पाया जाता है। राममोहन इन सभी गुणों के सहज अधिकारी बने। तारिणी देवी की चारित्रिक दृढ़ता के बारे में कई कथाएं प्रचलित हैं। जिनमें एक यह कि बुढ़ापे में उन्होंने जगन्नाथपुरी की यात्रा की। तीर्थयात्रा में जाने के लिए कष्ट भोगने से ही पुण्य मिलता है, इस विचार से, धन-दौलत और सामर्थ्य के बावजूद, उन्होंने अपनी यात्रा पैदल ही पूरी की।[5] नौकर-चाकर भी साथ नहीं रखे। अपने पति की मृत्यु के बाद उन्होंने जिस दृढ़ता और योग्यता से जमींदारी का संचालन किया वह वस्तुतः उनकी बुद्धिमानी और चारित्रिक दृढ़ता का ही परिचायक था। अपने विचारों और धर्मपरायणता के लिए उन्होंने अपने पुत्र के विचारों की भी परवाह नहीं की। धर्मविरोधी पुत्र राममोहन को पारिवारिक

जायदाद के अधिकार से वंचित करने के लिए उन्होंने अपने बेटे के खिलाफ मुकदमा भी किया और अपने घर से निकाल भी दिया था।

तारिणी देवी जन्म से शाक्त धर्मावलम्बी परिवार से थीं लेकिन विवाह के बाद अपनी ससुराल के वैष्णव मत में पूरी तरह परिवर्तित हो गई थीं। वे इस परिवार के सारे धार्मिक आचार-विचार और परंपरा को पूरी तरह निभाती रहीं। अपनी माता के चरित्र का राममोहन के प्रारम्भिक जीवन पर काफी प्रभाव था। बचपन से ही राममोहन के मन में कुल देवता राधागोविन्द के प्रति भक्ति की मात्रा इतनी अधिक थी कि वे भागवत पुराण का एक अध्याय पाठ किए बिना—जल भी नहीं पीते थे। उनके मित्र विलियम एडम ने 1826 में लिखा था कि चौदह वर्ष की आयु में एक बार राममोहन के मन में साधु बनकर घर छोड़ने की प्रबल इच्छा जगी लेकिन अपनी माता के अनुरोध पर ही उन्होंने अपना यह विचार त्याग दिया था।[6]

यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक है कि राममोहन के पिता रमाकान्त के साथ वर्धमान के राजाओं की जमींदारी के मामले में अकसर मतभेद होते रहे। तंग आकर वे कामकाज से उदासीन रहने लगे। घण्टों तुलसी के बगीचे में बैठ हरिनाम की जाप किया करते। अन्तिम दिनों वे राधानगर के पास ही, लांगुलपाड़ा में सपरिवार जा बसे थे। पिता के काल से चले आ रहे मतभेद के कारण राममोहन को भी वर्धमान के राजाओं के साथ कई मामलों-मुकदमों में फंसना पड़ा।

शिक्षा और प्रारम्भिक घुमक्कड़ी

ऐसे वैभवशाली और किसी सीमा तक रूढ़िवादी जमींदार परिवार में राममोहन का बचपन बीता। पिता ने शिक्षा के लिए उस समय की प्रथा और पारिवारिक प्रतिष्ठा के अनुसार सारी सुविधाएँ भी जुटा दीं। प्रचलित विधि के अनुसार, उनकी शिक्षा गाँव की पाठशाला से आरम्भ हुई। कहा जाता है कि वे बचपन से मेधावी और तीव्र स्मरणशक्ति के अधिकारी थे। बंगला के साथ-साथ फ़ारसी, जो उस समय की राजभाषा थी, की शिक्षा भी प्राप्त की। फारसी वह किसी मौलवी से सीखने जाया करते। चूंकि परिवार में मुर्शिदाबाद के राजदरबार की नौकरी परंपरा के रूप में चली आ रही थी इसी से राममोहन के लिए फ़ारसी की पढ़ाई आवश्यक समझी गई। राजभाषा की पढ़ाई की सुविधाएँ गाँव में बहुत ही सीमित थीं लेकिन इसमें योग्यता प्राप्त करना उस समय महत्वपूर्ण समझा जाता था। इसीलिए राममोहन को फ़ारसी और अरबी की शिक्षा के लिए पटना भेज दिया गया। उन दिनों एक नौ-दस[7] वर्ष के बालक को इतनी दूर भेजना कोई सहज काम नहीं था। न रेलगाड़ी थी और न ही यातायात की अन्य सुविधाएँ। फिर भी राममोहन को घर से लगभग

तीन सौ मील दूर पटना भेज दिया गया। पटना उस समय अरबी-फ़ारसी की शिक्षा का केन्द्र था। यहाँ प्रायः दो-तीन वर्ष रहकर राममोहन अरबी और फारसी की योग्यता प्राप्त कर वापस घर लौट आये। पटना प्रवास-काल में राममोहन के विद्यार्थी जीवन का विवरण भी उपलब्ध नहीं है। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि राममोहन ने बहुत ही उत्साह से अरबी-फ़ारसी भाषा और इस्लामी धर्म दर्शन का अध्ययन किया होगा।

राममोहन को पटना भेजने के पीछे चाहे केवल व्यावहारिक उद्देश्य रहा हो लेकिन वहाँ भाषा अध्ययन के साथ राममोहन फारसी सूफियों के रहस्यवादी कविता की ओर आकृष्ट हुए और यह आकर्षण आजीवन बना रहा। इसके अलावा यहीं उनका परिचय इस्लाम और उसके एकेश्वरवाद से हुआ। इसी समय उन्होंने इस्लाम और सूफी साहित्य का भी अध्ययन किया होगा। पटना में ही उनके मौलवियों और शिक्षकों ने पश्चिमी दर्शन और ज्ञान के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करने में सहायता की थी। कुछ जीवनीकारों का मत है कि राममोहन ने युक्लिड और अरस्तू जैसे यूनानी दार्शनिकों को अरबी—अनुवाद के माध्यम से पढ़ा था।[7a] सूफी साहित्य और धर्म का उनके जीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे जीवन भर सादी, हाफिज़, रूमी, शामी और ताब्रिज जैसे सूफी कवियों की रचनाएँ पढ़ते रहे। उनकी कविताएँ उन्हें ज़ुबानी याद थीं और जिन्हें वे अकसर उद्धृत करते थे। सूफ़ियों के विचार वेदान्त से मिलते हैं। लगता है उनके धार्मिक विचारों में परिवर्तन और सुधारों के पीछे इन विचारों का काफ़ी हाथ था। धार्मिक रूढ़ियों और मूर्तिपूजा-विरोध के बीज सम्भवतः इसी काल में बोये गये।

पटना प्रवास के बाद, कहा जाता है कि उनकी माता-पिता की इच्छानुसार उनको संस्कृत पढ़ने के लिए वाराणसी भेज दिया गया था।[8] उस समय उनकी उम्र केवल बारह वर्ष की थी। उनकी धार्मिक माता भला कैसे सहन करती कि एक ब्राह्मण का बेटा फारसी और अरबी तो पढ़े लेकिन संस्कृत और हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन न करे। काशी आकर थोड़े ही समय में उन्होंने हिन्दू धर्म शास्त्रों का सम्यक अध्ययन और ज्ञान प्राप्त किया। इस्लाम के एकेश्वरवाद से उनका परिचय पटना में हो चुका था। उन्हें वेदान्त ब्रह्म में भी वही एकेश्वरवाद दिखाई दिया। जब राममोहन काशी से लौटे तो उनके चिन्तन और विचारधारा में भारी परिवर्तन हो चुका था।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि राममोहन, जो बाद में बहुविवाह के घोर विरोधी बने, अपने पिता की आज्ञा या उस काल की सामाजिक प्रथा के अनुसार उनका बहुत ही छोटी उम्र में विवाह करा दिया गया था। सम्भवतः नौ वर्ष की उम्र में उनका पहला विवाह हुआ। दुर्भाग्यवश पहली पत्नी का विवाह के

कुछ ही दिनों के अनन्तर देहान्त हो गया। इस घटना का राममोहन के बालक मन पर शायद ही कोई प्रभाव पड़ा होगा। पारिवारिक स्तर पर भी घटना का विशेष मूल्य नहीं रहा होगा। क्योंकि पहली पत्नी की मृत्यु के एक वर्ष के भीतर ही राममोहन का दूसरा ही नहीं बल्कि तीसरा विवाह भी सम्पन्न करा दिया गया। उस काल के कुलीन ब्राह्मणों में शायद यही प्रचलित रीति रही होगी। वस्तुतः राममोहन के बहुमुखी जीवन में उनकी पत्नियों की किसी विशेष भूमिका का विवरण नहीं मिलता। दूसरी पत्नी का नाम श्रीमती देवी और तीसरी का उमा देवी था। राममोहन के परिवार में ये दोनों बड़ी बहू और छोटी बहू के नाम से परिचित थीं।[9]

यह पहले ही बताया जा चुका है कि राममोहन में बचपन से ही धार्मिक रुझान पाया जाता था और वे बचपन में अनेक धार्मिक रीतियों और कर्मकाण्डों का निष्ठापूर्वक पालन करते थे। लेकिन पटना और बनारस की शिक्षा ने उनके युवक मन में हलचल सी पैदा कर दी थी। वे हिन्दू धर्म-दर्शन के प्रश्नों के समाधान में विचार-निमग्न रहने लगे। एक के बाद एक प्रश्न, एक के बाद एक संदेह उनके मन में उठने लगा। ये धार्मिक रूढ़ियाँ और कर्मकाण्ड, पाखण्ड और ढकोसले लगने लगे। मूर्तिपूजा क्या है ? सच्चा धर्म क्या है ? एक ओर मुस्लिम एकेश्वरवाद, सूफी रहस्यवाद और प्राचीन वेद उपनिषदों ने प्रश्न पर प्रश्न खड़े कर दिये। उनके विचारों में परिवर्तन के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इसी अवधि में अक्सर वे अपने पिता से इन प्रश्नों पर वाद-विवाद में उलझने लगे। रमाकान्त अपने बेटे के प्रचलित धर्म विरोधी विचारों को सुनकर दुखी रहने लगे। आगे चलकर पिता-पुत्र में भारी मतभेद पैदा हो गये।

विलियम एडम ने राममोहन विषयक अपने संस्मरणों में उनको उद्धृत करते हुए लिखा था कि "एक दिन उनके पिता ने कहा कि मैं जब भी कोई तर्क तुम्हारे सामने रखता हूँ तुम हमेशा उसका उत्तर 'किन्तु-परन्तु' से आरम्भ करते हो।" अपने पिता के विचारों का खुलेआम विरोध न करते हुए भी वे बहुधा अपने सन्देह को हलकी-सी मुस्कुराहट के साथ पेश करने में हिचकते नहीं थे।[10] अन्त में ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई कि राममोहन समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें। इसी समय उन्होंने प्रचलित धार्मिक पाखण्डों और मूर्तिपूजा के विरुद्ध 'हिन्दुओं की मूर्तिपूजा और धर्मप्रणाली' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी।[11] उनके आत्मपरिचयात्मक पत्र में इस पुस्तिका का उल्लेख है। इस पुस्तिका में लिखे विचारों से राममोहन के संस्कारवादी वैष्णव पिता अत्यन्त क्षुब्ध हुए और आखिरकार उनके आपसी सम्बन्धों में भारी दरार पड़ गया।

राममोहन के लन्दन प्रवास काल में उनके परम मित्रों में से डॉ० लान्ट कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में इस घटना का वर्णन इस प्रकार दिया है :

"पिता के अधिकारों का विरोध न करते हुए भी वे अकसर उनसे धार्मिक विश्वासों के बारे में प्रश्न पूछते रहते। उन्हें कोई संतोषपूर्ण उत्तर न मिलता और अन्त में केवल पन्द्रह वर्ष की छोटी सी आयु में उन्होंने घर छोड़ने की ठान ली और कुछ समय के लिए तिब्बत तक हो आये जिससे वहाँ वे एक दूसरे धर्म के बारे में जान सकें। उस देश में उन्होंने दो या तीन वर्ष बिताये।"[12]

डॉ० कार्पेन्टर ने एक टिप्पणी में यह व्यक्त किया था कि यह बयान उन्होंने स्वयं राममोहन से लन्दन में सुना था और बाद में यही एक बार फिर स्टेपलटन ग्रोब (ब्रिस्टल) में भी सुना।

राममोहन घर छोड़कर निकल पड़े। इस समय उनकी उम्र केवल पन्द्रह या सोलह वर्ष की रही होगी। भारत के कई प्रदेशों में घूमने के बाद हिमालय की ऊँची पहाड़ियों को पार कर सम्भवतः प्राचीन काल के मानसरोवर वाले तीर्थयात्रा पथ से होते हुए तिब्बत की भूमि पर भी पहुँचे। बौद्ध धर्म के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा ही इस यात्रा का कारण रहा हो या केवल घुमक्कड़ी। यह सब उस काल की घटना है जब न रेलगाड़ियाँ थीं, न मोटर और न ही और कोई आधुनिक साधन। आने-जाने के रास्ते बीहड़ जंगलों और दुर्दम घाटियों से होकर गुज़रते थे। उनके तिब्बत पहुँचने और वहाँ रहने के बारे मे कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलते। कुछ विद्वानों ने इस पर सन्देह भी प्रकट किया है। लेकिन उनके सभी जीवनीकार और कुछ मित्रों ने इस बारे में पर्याप्त प्रमाणों के न होते हुए भी घटना को उनके जीवन-कथा का हिस्सा माना है। वस्तुतः उनके जीवन का यह भाग मुख्यतः किंवदन्तियों और अनुमानों पर ही आधारित है। राममोहन ने स्वयं कहीं भी जीवन के इस भाग के बारे में कोई विस्तृत विवरण नहीं छोड़ा। अपने आत्म परिचयात्मक पत्र में जिसका उद्धरण पहले दिया जा चुका है राममोहन ने लिखा था—"कई प्रदेशों की यात्रा के बाद भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना से आहत होकर भारत के बाहर के कई देशों की यात्रा की।"

उनके तिब्बत प्रवास काल के समय की एक कहानी प्रायः सभी जीवनीकारों ने उद्धृत की है। राममोहन ने जब तिब्बत में किसी जीवित लामा को भगवान् बुद्ध के रूप में पूजित होते देखा तो वे चकित रह गये। यह मूर्तिपूजा या अवतारवाद की पराकाष्ठा थी। इसके अलावा न जाने कितने संस्कारों, धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों में उन्होंने उस पूरे सामन्तवादी समाज को डूबा देखा। वे कभी-कभी विरोधी विचारों को प्रकट कर ही देते थे। नतीजा यह हुआ कि तिब्बती धार्मिक पण्डे उनसे उलझ पड़े। तब उन्हें अपनी जान तक बचाना मुश्किल काम हो गया। कहा जाता है कि, एक तिब्बती स्त्री ने इस

हालत में उनकी बड़ी मदद की और वे जान बचाकर भागने में सफल हुए ।[13] इसी से वे सारी उम्र स्त्री जाति के प्रति अपनी कृतज्ञता जताने में कभी न चूके । उनके हिमालय पार के देशों के भ्रमण के बारे में कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है, फिर भी यह तय है कि तीन-चार वर्ष तक देश और विदेशों की यात्रा करके वे वापस लौट आये । पिता रमाकान्त भी बेटे के लिए स्वाभाविक रूप से चिन्तित थे और उनके आदमी राममोहन की खोज में लगे हुए थे । जो भी हो, राममोहन घर लौट आये और बाप-बेटे में फिर से मेल-मिलाप होने के आसार दिखने लगे ।

राममोहन के तिब्बत प्रवास के बारे में कई एक विद्वानों ने सन्देह प्रकट किया है लेकिन डॉ० कार्पेन्टर ने स्पष्ट लिखा है कि उन्होंने स्वयं राममोहन से इस घटना का विवरण दो बार सुना था । इस वक्तव्य पर संदेह करने का कोई कारण नहो है ।[14] अपने संस्मरणों में रेवरेण्ड के० एस० मेकडोलैण्ड ने, जो कलकत्ता में 1879 में प्रकाशित हुआ, विवरण इस प्रकार है । "अपने पटना प्रवास-काल में उन्होंने बौद्ध धर्म के बारे में काफी सुना होगा....तिब्बत जाकर वे बौद्ध धर्म को निकट से जान सकते थे और साथ ही वहाँ के आदिम निवासियों की पैशाचिक पूजा भी देख सके....।"

इसके अलावा उनकी फारसी पुस्तक 'तुहफतुल मुवाहद्दीन' की भूमिका में लिखा है "मैंने दुनिया के दूरदराज के इलाके में, मैदानों और पहाड़ों में दूर-दूर तक भ्रमण किया है....।" फ्रेंच विद्वान गर्सा द तासी जो उनके समसामयिक विद्वान थे और जिनसे उनका पत्र व्यवहार भी था, ने भी उनके तिब्बत प्रवास के बारे में लिखा है ।[15]

देश-विदेश भ्रमण से लौटने के बाद राममोहन एक बार फिर पारिवारिक धंधों के अलावा, धर्म, दर्शन और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में जुट गये । पिता के साथ एक बार फिर से धर्म और धार्मिक आचार-व्यवहार के बारे में अकसर बहस होने लगी । मतभेद बढ़ते चले गये और वे एक बार फिर घर से निकाल दिये गये । इस बार वे बनारस चले गये । इसी बीच 1796 में राममोहन के पिता रमाकान्त ने अपनी जायदाद का बँटवारा अपने तीन पुत्रों के बीच कर दिया । इस बँटवारे के अनुसार लागुलपाड़ा का मकान जगमोहन और राममोहन के हिस्से में संयुक्त रूप से आया । इसके अलावा कलकत्ते की जायदाद का हिस्सा भी राममोहन के हिस्से में आया । लेकिन इस बँटवारे ने राममोहन को अपने परिवार से करीब-करीब अलग-थलग कर दिया । जायदाद के झमेलों से भी राममोहन किसी हद तक तंग आ गये थे । वर्धमान के राजघराने के साथ इन जायदाद के मामले में पहले से ही कई मुकद्दमे चल रहे थे । यहाँ तक कि वर्धमान राज द्वारा दायर किये गये मुकद्दमे में रमाकान्त को अदायगी न कर

सकने के आरोप में थोड़े समय के लिए जेल जाना पड़ा।[16] रमाकान्त और राममोहन के बीच गहरे मतभेद थे, क्योंकि राममोहन को जायदाद के बन्दोबस्त में अपने पिता और भाइयों के अपनाये रास्ते पसन्द नहीं थे। इसी सिलसिले में जगमोहन को भी सजा भुगतनी पड़ी। रमाकान्त जैसे-तैसे जेल से छूट आये लेकिन अब वे पूरी तरह टूट चुके थे 1803 में रमाकान्त चल बसे। यहाँ एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि रमाकान्त ने अपने बेटों से, विशेष कर राममोहन के साथ मतभेद होते हुए भी जायदाद के बँटवारे के प्रश्न पर कोई भेदभाव नहीं बरता।

राममोहन के सहयोगी विलियम ऐडम ने अपने संस्मरणों में, जो 1826 में प्रकाशित हुए लिखा था कि पिता से मतभेद के कारण राममोहन को कोई दस या बारह वर्ष तक वाराणसी में जाकर रहना पड़ा। उनके जीवनीकार मिस कोलेट ने भी इसका हवाला दिया है।[17] लेकिन इतने लम्बे समय तक बनारस में ठहरने की बात कोई जँचती नहीं क्योंकि बाद की शोध सूचनाओं से जाहिर है कि 1796 में जब रमाकान्त की जायदाद का बँटवारा हुआ उसके ठीक नौ महीने बाद राममोहन अपनी दोनों पत्नियों को अपनी माँ तारिणी देवी के जिम्मे छोड़कर लागुलपाड़ा से कलकत्ते चले गये। वहाँ उन्होंने साहूकारी का व्यापार आरम्भ कर दिया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बड़े-बड़े अफसर उनके ग्राहकों में थे। इस धंधे में उन्होंने काफी धन कमाया।[18] इसके अलावा इस काल में उन्होंने कम्पनी के कागजात और हुण्डियों में भी धन लगाने का व्यापार किया। 1799 में उन्होंने गोविन्दपुर और रामेश्वरपुर के कुछ तालुके खरीदे थे। इसके बाद ही कुछ समय के लिए राममोहन पटना और वाराणसी चले गये। अपने व्यापार और जायदाद की देखरेख वे अपने एक विश्वस्त मित्र राजीव-लोचन राय के जिम्मे छोड़ गये थे। 1800 में उनके पहले पुत्र राधाप्रसाद का जन्म हुआ।[19] उत्तर भारत में राममोहन का निवास काल बहुत अधिक दिन नहीं रहा। राममोहन ने उत्तर भारत में चाहे जितने ही दिन बिताये हों यह स्पष्ट है कि वाराणसी में उन्होंने हिन्दू धर्म और शास्त्रों के अध्ययन में समय लगाया। प्रमाणों के आधार पर अब यह बात सामने आ गई है कि 1800 के आसपास राममोहन कलकत्ता लौट आये थे। 1801 में पहले-पहल उनकी मित्रता जोन डिगबी से हुई जो बाद में उनके अंतरंग मित्र और शुभचिंतक बने। डिगबी उन दिनों फोर्ट विलियम कॉलेज में स्नातक थे। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि इन्हीं दिनों राममोहन का फोर्ट विलियम कॉलेज, जिसकी स्थापना सन् 1800 में हो चुकी थी, से गहरे सम्बन्ध स्थापित हो गये थे। सदर दीवानी अदालत के मुख्य काज़ी और फोर्ट विलियम कॉलेज के पण्डित और मौलवियों से राममोहन का अच्छा खासा परिचय हो गया था, और सभी राममोहन की योग्यता और चरित्र के कायल थे।[20]

संदर्भ और टिप्पणी

1. Collet : The life and letters of Raja Rammohun Roy ed. by Biswas and Ganguli (3rd ed. 1962) p. p. 496-498.

सम्पादकीय टिप्पणी के अनुसार यह पत्र श्री सैण्डफोर्ड आर्नट ने पहले पहल 5 अक्टूबर 1833 में लन्दन एथेनेयम (Athenaeum) पत्रिका में प्रकाशित किया था। कहा जाता है कि यह पत्र राममोहन ने अपनी पेरिस यात्रा से पूर्व, कलकत्ते में अपने एक मित्र श्री गार्डन को लिखा था। जोन हेयर ने इस पत्र की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया था। डा० लान्ट कार्पेन्टर और मेरी कार्पेन्टर इस पत्र को एक महत्वपूर्ण दस्तावेज मानते हैं। मिस कोलेट (राममोहन के जीवनीकार) के विचार से यह पत्र जाली है। मैक्समुलर ने अपनी पुस्तक में लिखा था "Whether the Rajah wrote or dictated the whole of it may be doubted but to reject the whole as a fabrication would be going much too far." (Biographical Essays)

2. Dasgupta B. N. : Life and times of Rajah Rammohun Roy Vol. I. p. 79.

लेखक के अनुसार 1774 के पक्ष में भी पर्याप्त तर्क पेश किये जा सकते हैं जिनमें प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर द्वारा स्थापित राममोहन के समाधि प्रस्तर का आलेख प्रमुख है। द्वारकानाथ राममोहन के परम मित्र और अनुयायी थे। इसके अतिरिक्त रेवरेण्ड लान्ट कार्पेन्टर और अलेक्सेण्डर डफ ने भी 1774 का वर्ष माना है।

3. Collet : p. 2. 8. 12. मिस कोलेट के अनुसार ब्रजविनोद मुर्शिदाबाद के नवाब सिराजुद्दौला के दरबार में थे। लेकिन सम्पादकों ने इस तथ्य को गलत कहा है। सम्पादकों के अनुसार ब्रजविनोद राय सिराजुद्दौला के पूर्वज नवाब अलीवर्दी खाँ के दरबारी थे। उन्होंने दिल्ली के बादशाह शाह आलम द्वितीय की भी सेवा की थी जिसका जिक्र मुगल बादशाह अकबर द्वितीय के, राममोहन को लिखे पत्र (1828) में था।

कुछ विद्वानों का मत है कि ब्रजविनोद ने नवाबों के यहाँ नौकरी नहीं की।

4. नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय : महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित, पाँचवाँ सं० 1928, पृ० 7 मिस कोलेट ने भी राममोहन की जीवनी में इस घटना का वर्णन दिया है।

5. वही, पृ० 7-8.

6. वही, पृ० 9.

7. वही, पृ० 9 में लिखा है कि राममोहन ने अपने घर पर ही फारसी शिक्षा प्राप्त की थी। लेकिन उस भाषा में अधिक ज्ञान प्राप्त करने और अरबी भाषा की शिक्षा प्राप्त करने के लिए नौ वर्ष की उम्र में रमाकान्त राय ने उनको पटना भेज दिया। वहाँ कोई दो तीन वर्ष रहकर उन्होंने अरबी भाषा में युक्लिड और आरिस्टाटल के ग्रंथों का अध्ययन किया। मिस कोलेट ने आगे लिखा है कि यहीं उनका कुरान से पहले परिचय हुआ (कोलेट, पृ० 5)। Iqbal Singh. Rammohan Roy पृ० 31 में लिखा है कि नौ-दस वर्ष के बालक से ऐसी आशा करना युक्तिपूर्ण नहीं कहा जायगा।

8. वही, पृ० 10 पर लिखा है "पटना में फारसी और अरबी की शिक्षा समाप्त होने पर रमाकान्त राय ने उनको संस्कृत शास्त्र के अध्ययन के लिये बारह वर्ष की आयु में काशी भेज दिया। यहाँ उन्होंने थोड़े ही समय में प्राचीन वैदिक शास्त्रों का आश्चर्यजनक तरीके से शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त किया।

9. बागची, पृ० 36.

10. Collet, पृ० 7.

11. चट्टोपाध्याय, पृ० 10.

12. Carpentar, Lant : Review of the Labours, opinins and character of Ram Mohan Roy 1833. पृ० 101-102.

13. चट्टोपाध्याय, पृ० 11. लेखक ने कुमारी कार्पेन्टर को उद्धृत करके लिखा है, "राममोहन राय का कोमल और भावुक हृदय, मैं चालीस वर्ष बाद भी अत्यन्त आग्रह के साथ उन घटनाओं का स्मरण करता था। उन्होंने स्वयं कहा था कि तिब्बत की नारियों के स्नेहपूर्ण व्यवहार के लिए वे हमेशा नारी जाति के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता अनुभव करते हैं।"

14. Collet, पृ० 7-8. डा० लन्ट कार्पेन्टर को उद्धृत करते हुए लिखा है, "With out disputing the authority of his father, he often sought from him information as to the reason of his faith; he obtained no satisfaction; and he at last determined at the early age of 15, to leave the parental home, and sojouran for a time in Tibet, that he might see another form of religious faith...."

15. Collet, पृ० 13 में सम्पादकीय टिप्पणी में जोड़ा गया है "In the Arabic preface to his Persian tract Tuhfatul Mawahhidin Rammohan makes a further reference to his early travels in the following words" I travelled in the remotest parts of the world, in Mains as well as in hilly lands...."

16. Iqbal Singh, Rammohan Roy (1982 ed.) पृ० 28.

17. Collet, पृ० 8.

18. Collet, पृ० 14. सम्पादकों ने अपनी टिप्पणी में लिखा है कि राममोहन ने कलकत्ते में साहूकारी का धंधा आरम्भ किया....और कम्पनी की हुण्डियों में धन लगा रहे थे। (Chanda and Majumdar : Letters and documents pp. 136, 184.) 1799 में राममोहन ने गोविन्दपुर और रामेश्वरपुर नाम के दो ताल्लुक खरीदे थे जिनसे उनको सालाना साढ़े पाँच हजार रुपये की आमदनी होने लगी थी।

19. Collet, पृ० 15. सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा है कि विश्वास किया जाता है कि राधाप्रसाद का जन्म जुलाई 1800 में हुआ। इस तिथि के बारे में भी कुछ मतान्तर है।

20. Collet, पृ० 15. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

अध्याय—3
उद्योग-पर्व कम्पनी की नौकरी

मार्च 1803 में हम राममोहन को टॉमस वुडफोर्ड जो ढाका-जलालपुर (बंगला देश) के कलक्टर थे, के अधीन दीवान या खास मुंशी के पद पर काम करते हुए पाते हैं। राममोहन के साथ वुडफोर्ड का परिचय कलकत्ते से ही था। शोध सूचनाओं के आधार पर स्पष्ट है कि 1795-97 तक अपनी जायदाद के प्रशासन में लगे रहे। 1797-98 में वे अक्सर साहूकारी के काम के लिए कलकत्ता जाया करते थे। इस समय वे वाराणसी में संस्कृत शास्त्रों के अध्ययन के लिए चले गये। सम्भवतः वे 1801 के आसपास बनारस से लौट आये थे। लगता है इसी समय राममोहन का कलकत्ते में डिगबी साहब से परिचय हुआ, और यहीं वुडफोर्ड साहब के भी परिचय हुआ। कहा जाता है कि उन्होंने वुडफोर्ड साहब को पाँच हजार रुपये का कर्ज दिया था।[1] बाद में वुडफोर्ड जब (ढाका-जलालपुर में) कलक्टर बने तो राममोहन को अपने साथ कचहरी के 'खास मुंशी' के रूप में नियुक्त किया। लेकिन अभी नौकरी करते हुए राममोहन को सिर्फ दो ही महीने हुए थे कि बर्धमान से उनके पिता रमाकान्त की कठिन बीमारी का समाचार आ पहुँचा। नौकरी से त्यागपत्र देकर राममोहन सीधे पिता की मृत्युशय्या के पास पहुँचे।[2] संतोष की बात थी कि पिता-पुत्र में मतभेद होते हुए भी राममोहन अन्तिम समय में वहाँ उपस्थित हो सके। रमाकान्त की मृत्यु 1803 में हो गई। यहाँ पर एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। पिता की मृत्यु के बाद श्राद्धादि कार्यक्रमों में राममोहन अपने धार्मिक विचारों के अनुरूप, सम्मिलित नहीं हुए। उनके भाई जगमोहन उस समय जायदाद के मुकद्दमें में हारकर जेल की हवा खा रहे थे। सौतेले भाई रामलोचन ने श्राद्ध संस्कार पूरे किए। कहा जाता है कि राममोहन ने बाद में कलकत्ता जाकर अपने वैदिक शास्त्रीय विचारों के अनुसार अलग से श्राद्ध-संस्कार सम्पन्न किए।[3]

पहले ही बताया गया है कि रमाकान्त ने अपनी जायदाद का बँटवारा अपनी मृत्यु से पहले ही कर दिया था। राममोहन को भी उनके हिस्से से वंचित नहीं किया गया था। लेकिन माता-पिता के रूढ़िवादी विचारों के विरोधी होने के कारण उन्होंने उस जायदाद पर लगभग बीस वर्ष तक अपना अधिकार नहीं जताया। उनकी माता फूलठाकुरानी जब तक जीवित रहीं पूरी जायदाद की संरक्षिका बनी रहीं।[4] वस्तुतः जब राममोहन ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध खुले

रूप से 'जिहाद' की घोषणा की तो उनकी माता उनसे इतनी दुखी हुईं कि उन्हें विधर्मी करार देकर जायदाद के अधिकार से वंचित करने के लिए उनके खिलाफ मुकद्दमा ठोक दिया। वर्षों मुकद्दमा चलता रहा लेकिन उनके विधर्मी होने का आरोप किसी भी अदालत में प्रमाणित नहीं हो सका। राममोहन यदि स्वार्थी होते तो जायदाद के खातिर अपनी माता से समझौता कर लेते। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, और जायदाद उनकी माँ के संरक्षण में रही यहाँ पर यह बताना भी आवश्यक है कि अपने वाराणसी के प्रवास के दौरान आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने अपने पिता से सहायता नहीं माँगी।

उसी वर्ष 1803 अगस्त में टामस वुडफोर्ड, जिनके खास मुंशी के रूप में राममोहन कुछ महीने काम कर चुके थे, की बदली, मुर्शिदाबाद की अदालत में हो गयी। जो हेस्टिंग्स के जमाने तक बंगाल की राजधानी मानी जाती थी।

राममोहन एक बार फिर उनके निजी मुंशी नियुक्त हुए लेकिन इस बार भी वे अधिक दिनों तक इस नौकरी में रह न सके। वुडफोर्ड साहब का स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। वे अक्सर बीमार पड़ने लगे। 1805 की गर्मियों में वे लम्बे अवकाश पर स्वदेश लौट गये। इस प्रकार राममोहन का मुर्शिदाबाद-प्रवास एक तरह से समाप्त हो गया। लेकिन मुर्शिदाबाद में राममोहन का निवास एक विशेष घटना के कारण महत्त्वपूर्ण बन गया।

पिता की मृत्यु के उपरान्त राममोहन खुलकर अपने विचारों को प्रचारित करने के लिए आगे आये। यहीं 1804 में उनकी पहली पुस्तिका "तुहफात-उल-मुवाहिद्दीन"—एकेश्वरवादियों के लिए तोहफा, का प्रकाशन हुआ। पुस्तिका फारसी भाषा में थी; जो उस समय की राजभाषा या बुद्धिजीवियों की भाषा थी। भूमिका अरबी भाषा में थी। यह पुस्तिका मूर्तिपूजा और धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध पहली युद्ध घोषणा थी। इसमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि सारे धर्मों का आधार एक ईश्वर है। वही इस विश्व का निर्माता और रक्षक है वही सत्य है। बाकी सारे धार्मिक संस्कार, लोकाचार और अन्ध-विश्वास सच्चे धर्म से दूर हैं। राममोहन के फारसी-अरबी शिक्षा और पटना के इस्लामी शिक्षा का प्रभाव इस पुस्तिका में पूरी तरह देखा जा सकता है। कुछ असंगतियों के होते हुए भी पुस्तक में राममोहन की उभरती हुई विचार-धारा के मूल तत्वों का प्रकाश बखूबी हुआ है। इस पुस्तक का महत्व इस बात से है कि यह उनकी पहली प्रकाशित पुस्तक थी और इसमें आगे चलकर विकसित विचार धारा के अंकुर देखे जा सकते हैं। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने एक और पुस्तक का जिक्र किया है। जिसका शीर्षक था 'मनाजरातुल आदियान' अर्थात् 'विविध धर्मों पर विचार'। विद्वानों का विचार है कि शायद यह पुस्तक कुछ दिनों पहले लिखी गई थी। यह खेद का विषय है कि इस

पुस्तक की कोई भी प्रति आज तक नहीं मिल सकी। शोधकर्ताओं की कोशिशें अभी तक सफल नहीं हो सकी हैं। यह पुस्तक कभी प्रकाशित हुई हो इन बारे में विद्वानों को सन्देह है। इसी से "तुहफात-उल-मुवाहिद्दीन" को ही उनकी पहली प्रकाशित पुस्तक समझना चाहिए।[5] यद्यपि उनके प्रमुख जीवनीकार मिस कोलेट ने इस पुस्तक को प्रौढ़ कृति नहीं माना है, लेकिन डॉ० ब्रजेन्द्रनाथ शील और काजी अब्दुल वदूद जैसे विद्वानों ने इस पुस्तक को राममोहन के विचारधारा की नींव माना है। इस पुस्तक में कोई धार्मिक प्रचार नहीं, वस्तुतः इसमें धार्मिक पाखण्डों के विरोध में बुद्धिवाद और एकेश्वरवाद का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। राममोहन ने स्वयं लिखा है कि उन्होंने इस पुस्तक को स्वयं छपवाकर प्रकाशित किया। वस्तुतः इसमें इस्लाम के सूफी सम्प्रदाय के विचारों और भावनाओं का सम्यक् समावेश पाया जाता है। सूफ़ी संतों और कवियों में सादी, रूमी और हाफिज के मानवतावाद से राममोहन बहुत ही प्रभावित थे।

राममोहन ने अरबी और फ़ारसी भाषा में कितनी पुस्तकों की रचना की, इस बारे में शोधकर्ताओं में मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि राममोहन ने शायद "तुहफात" और "मनाजरात्-उल आदियान्" के अतिरिक्त एक और पुस्तक फारसी में लिखी थी जिसका हवाला उन्होंने "अपील टू द क्रिश्चियन पब्लिक" (1820) की भूमिका में दिया है। एक और पुस्तिका जो प्रकाश में आई है वह है "जवाब-इ-तुहफात उल मवाहहिदीन" जो अज्ञात-नाम प्रकाशित हुई थी। शीर्षक के विवरण में कहा गया है "an anonymous defence of Rammohun Roy's Tuhfat-ul-Muwahhidin ...against attack of Zoroastians" अनुमान है कि पुस्तक 1820 के लगभग कलकत्ते से प्रकाशित हुई थी और इसके लेखक राममोहन ही थे।[6]

राममोहन वुडफोर्ड के सहकारी के रूप में कार्य करते हुए अधिक दिनों तक मुर्शिदाबाद नहीं रह पाये। बात यों हुई कि 1805 के अगस्त में वुडफोर्ड बीमार पड़ गये और वे छुट्टी लेकर घर चले गये। राममोहन को फिर से नौकरी ढूंढ़ने की कोशिश करनी पड़ी। उन्हीं दिनों उनके पुराने मित्र डिगबी साहब जिनसे राममोहन का परिचय कलकत्ते में हो चुका था, रामगढ़, जो उन दिनों हज़ारीबाग ज़िले का सदर मुक़ाम था, के मजिस्ट्रेट के पद पर आसीन थे। राममोहन को उन्होंने अपने निजी मुंशी के पद पर ले लिया। राममोहन के साथ डिगबी का यह परिचय उनके अधीन काम करते हुए, गहरी मित्रता में बदल गया था। इसके बाद के कोई दस वर्ष राममोहन का डिगबी के साथ निकट का सम्बन्ध बना रहा। डिगबी के साथ-साथ वे रामगढ़ से जसोर, वहाँ से भागलपुर और फिर वापस जसोर आये और अन्त में 1809 में रंगपुर

आये। यहाँ डिगबी कलक्टर पद पर पदोन्नत होकर आये। डिगबी के साथ राममोहन का यह निकट का संपर्क राममोहन के जीवन और विचारों के गठन में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राममोहन के डिगबी के साथ का संपर्क वस्तुतः कुछ असाधारण था। राममोहन के बारे में लिखते हुए मोण्टगुमरी मार्टिन ने कोर्ट जर्नल में लिखा था कि राममोहन ने डिगबी के अधीन काम लेते समय शर्त रखी थी, कि वे दूसरे कर्मचारियों की तरह 'साहब' के सामने पेश होते समय खड़े नहीं रहेंगे जैसाकि उन दिनों नियम था।[7] इस तथ्य की प्रामाणिकता के बारे में कुछ कहना सम्भव नहीं लकिन इतना प्रमाणित है कि डिगबी ने राममोहन के साथ अधीनस्थ कर्मचारी के रूप में कभी व्यवहार नहीं किया। वे हमेशा उनको एक परम मित्र का सम्मान देते थे। लगता है, डिगबी स्वयं एक दूरदेशी और संवेदनशील व्यक्ति थे और उनको राममोहन के प्रतिभा और योग्यता को पहचानने में देर नहीं लगी। इसी से वे राममोहन को बराबरी का स्थान देने में नहीं हिचकिचाये। यह मित्रता बाद में फलप्रद सिद्ध हुई। कुछ विद्वानों के अनुसार वस्तुतः राममोहन को खोज निकालने का श्रेय डिगबी को ही जाता है जिन्होंने राममोहन को हमेशा उत्साहित किया और पश्चिमी जगत् के विचार, दर्शन और बुद्धिवाद से राममोहन का परिचय कराया।

सन् 1805 में राममोहन ने डिगबी के अधीन नौकरी आरम्भ की थी, और डिगबी के साथ-साथ हजारीबाग जिले के रामगढ़, भागलपुर, जसौर और बाद में रंगपुर में रहे।[8] जसौर और रंगपुर आजकल बंगलादेश के जिले हैं। डिगबी रामगढ़ में मजिस्ट्रेट के दफ्तर में रजिस्ट्रार थे और राममोहन उनके निजी मुंशी। यहीं पहले पहल राममोहन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी की। यहाँ कोई तीन महीने के लिए फौजदारी अदालत में 'शेरिस्तेदार' के पद पर काम किया। डिगबी ने इस समय थोड़े समय के लिए मजिस्ट्रेट के पद पर भी काम किया।[9] जसौर और भागलपुर में राममोहन कम्पनी की नौकरी नहीं बल्कि डिगबी साहब के निजी मुंशी के रूप में काम करते रहे। भागलपुर (1809) के जमाने की एक घटना मशहूर है।[10] सर फ्रेडरिक हेमिल्टन भागलपुर के कलक्टर थे। एक दिन राममोहन पालकी पर चढ़कर गंगा के घाट से शहर की ओर जा रहे थे। इधर हेमिल्टन साहब अपने घोड़े पर सैर को निकले थे। हो न हो वे उधर से गुजरे। जो देशी बाबू पालकी पर जा रहे थे वे साहब को देखकर उतरकर खड़े नहीं हुए। यही उस समय राजा-प्रजा का सम्बन्ध था। कलक्टर साहब आगबबूला हो गये। उन्होंने पालकी रुकवा दी और राममोहन को बुरा भला कहना आरम्भ कर दिया। राममोहन ने कुछ समझाने की कोशिश भी की लेकिन साहब का गुस्सा कैसे ठण्डा हो। राममोहन ने जब देखा कि समझाना व्यर्थ है तो वे हेमिल्टन साहब के सामने हा पालकी

पर सवार होकर चल दिये। कलक्टर साहब तिलमिलाकर रह गये। राममोहन भला इस अपमान को कैसे बरदाश्त करते। उन्होंने 12 अप्रैल 1809 को हेमिल्टन के व्यवहार के विरोध में, उस समय भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो के पास एक लम्बी याचिका भेज दी। शायद यही उनकी पहली अँगरेजी रचना थी। इस अपील का नतीजा यह हुआ कि कलक्टर साहब को फटकार पड़ी। लेकिन कलकत्ते का अँगरेज सरकारी अमला राममोहन से नाराज हो गया। अँगरेज शासकों का एक वर्ग जो भविष्य में भी राममोहन का विरोधी रहा, इसके पीछे भागलपुर वाली घटना की छाया अवश्य रही है। यह घटना राममोहन के साहस और स्वाभिमान की परिचायक थी, जो हम उनके आगे आने वाले जीवन-चरित्र में अक्सर पाते हैं। याचिका लार्ड मिण्टो को सम्मान दिखाते हुए और मानव अधिकारों और सम्मान का संरक्षक कहते हुए, ब्रिटिश क़ानून की निरपेक्षता और न्यायप्रियता की दुहाई देकर प्रशंसात्मक वाक्यों से आरम्भ होता है। इसके पश्चात उन्होंने जिन परिस्थितियों में सर हेमिल्टन के हाथों अपमानित होना पड़ा, उसका विवरण है। पत्र लम्बा है। कुछ प्रासंगिक अंशों का अनुवाद उद्धृत है।[11]

····"पिछली एक जनवरी को आपका आवेदक, जिसने भागलपुर में एक मकान किराये पर ले रखा है, नदी के घाट पर पहुँचा। शाम के कोई चार बजे जब आवेदक पालकी में चढ़कर घर की ओर जा रहा था तो सड़क के बायीं ओर कुछ ईंटों के ढेर पर सर फ्रेडरिक हेमिलटन खड़े थे। पालकी का दरवाजा धूल से बचने के लिए बन्द था इसी से आवेदक ने महाशय को नहीं देखा और पालकी के आगे चल रहे चपरासी ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया, और न ही आवेदक को सचेत किया। यह अनुमान लगाना कठिन था कि ईंटों के ढेर पर जिला के कलक्टर महोदय खड़े हैं।

...."ज्यों ही आवेदक की पालकी गुजरी सर फ्रेडरिक हेमिलटन ने बार-बार चिल्लाकर मुझे पालकी से उतरने को कहा और साथ ही जिस अकथ्य भाषा में गाली-गलौज करना आरम्भ कर दिया उसका शब्दों में विवरण देना आपकी तौहीन करना होगा। एक नौकर ने, जो पालकी के पीछे चल रहा था, सर फ्रेडरिक हेमिलटन को बताने की कोशिश की कि आवेदक का गुजरते हुए उनकी ओर ध्यान नहीं गया। लेकिन महाशय बराबर गालियाँ बके जा रहे थे। जब पालकी, जहाँ सर फ्रेडरिक हेमिलटन खड़े थे, वहाँ से कोई तीन सौ गज दूर निकल गयी, तो वे अपना घोड़ा दौड़ाकर पालकी के सामने आ गये। आवेदक को उस समय पहले पहल मालूम हुआ कि जो महाशय घोड़े पर सवार होकर पालकी के सामने पधारे

हैं, जिला कलक्टर हैं और उनके सम्मान में कुछ औपचारिक सम्मान-सूचक प्रदर्शन आवश्यक है ।....

"....सम्मान दिखाते हुए आवेदक ने पालकी से उतरकर सर फ्रेडरिक हेमिलटन को सलाम दिया और बताया कि अनिच्छापूर्वक अनादर दिखाने का कारण केवल यह था कि उन्होंने महाशय को देखा नहीं था (क्योंकि पालकी के दरवाजे बन्द थे) आवेदक ने साथ ही यह भी कहा कि पालकी का दरवाजा खुला भी होता तो भी कोई उनके जिला कलक्टर होने का अनुमान भला कैसे लगा सकता था.... '

...."बहस के दौरान हेमिलटन साहब की नाराजगी को दूर करने, और क्षमा माँगने के बावजूद, महाशय ने गाली-गलौज जारी रखी ।.... आवेदक के इस अपमान की खबर सारे शहर में फैल गई है....महामहिम अपने मानवीय गुणों और प्रबुद्ध ज्ञान के आधार पर आसानी से समझ सकेंगे कि किसी देशी प्रतिष्ठित सज्जन को इस प्रकार खुलेआम बेइज्जत होने पर कैसी यातना सहनी पड़ी होगी'। यह बेइज्जती, एक अंगरेज महोदय द्वारा जो सरकारी अधिकारी हैं और उनके नाराजगी का चाहे जो भी कारण रहा हो, इस प्रकार का दुर्व्यवहार बेलगाम स्वेच्छाचार ही कहा जायगा ।...."

पत्र में आगे अपने पारिवारिक प्रतिष्ठा और पद का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा था कि गवर्नर जनरल इस अनादर और अपमान सूचक दुर्व्यवहार के लिए सर फ्रेडरिक हेमिलटन की निन्दा करेंगे और उचित व्यवस्था करेंगे ।

इस आवेदन पत्र ने लार्ड मिन्टो और कलकत्ता के फोर्ट विलियम के अधिकारियों पर पर्याप्त प्रभाव डाला होगा क्योंकि लार्ड मिन्टो ने तत्काल अपने न्यायिक सचिव को भागलपुर के मजिस्ट्रेट से घटना की रिपोर्ट माँगने को कहा । 20 मई 1809 को मजिस्ट्रेट साहब ने मामले की रिपोर्ट भेजी, जिसके साथ सर हेमिलटन साहब की सफाई का बयान भी संलग्न था । बयान में राममोहन राय को अपमानित या गाली-गलौज करने की बात पूरी तरह इनकार किया गया । हेमिलटन साहब के 'सच्चे और सही' बयान में कुछ ऐसे आरोप थे जो जांच करने पर झूठे निकले । नतीजा यह हुआ कि घटना के बारे में हेमिलटन साहब का बयान अधिकारियों का विश्वास प्राप्त न कर सका । इसी से 12 जून 1809 के पत्र में न्यायिक सचिव ने भागलपुर के मजिस्ट्रेट को लिखा कि वे आशा करते हैं कि सर फ्रेडरिक हेमिलटन को आगाह किया जायेगा कि भविष्य में वे देशी लोगों के साथ वाद-विवाद में नहीं फसेंगे ।

डिगबी साहब कलक्टर के पद पर नियुक्त होकर रंगपुर चले आये तो उनके साथ राममोहन भी अक्तूबर 1809 को चले आये । डिगबी रंगपुर में 20 जुलाई

1814 तक रहे ।[12] रंगपुर के कलक्टर बनने के बाद ही सम्भवतः नवम्बर 1809 में उन्होंने राममोहन को दीवान के पद पर नियुक्त किया । पद अस्थायी था क्योंकि कलकत्ता के 'बोर्ड ऑफ रेवेन्यू' ने नियुक्ति का अनुमोदन नहीं किया । कुछ विद्वानों के अनुसार राममोहन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नहीं बल्कि डिगबी के निजी दीवान के रूप में कार्य करते रहे । वस्तुतः राममोहन की नियुक्ति का अनुमोदन पाने के लिए डिगबी साहब ने बड़ी कोशिश की थी लेकिन इसके बावजूद अनुमोदन न मिल सका । बाद के खोजों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भागलपुर वाली घटना इसके पीछे थी । डिगबी और कलकत्ते में कम्पनी के डाइरेक्टरों के बीच का पत्र व्यवहार और दूसरे दस्तावेज़ों का जो विवरण उपलब्ध है, वह इस बात का प्रमाण है । इसके बाद डिगबी जब तक रहे उनके साथ राममोहन उनके निजी दीवान के रूप में नियुक्त रहे ।[13] उपलब्ध विवरणों के आधार पर ज्ञात होता है कि राममोहन ने जीवन में केवल दो बार थोड़े समय के लिए कम्पनी की नोकरी की । बाकी समय वे डिगबी साहब के निजी दीवान के रूप में रहे । डिगबी जिस समय जसौर में थे उन दिनों राममोहन उनके खास फ़ारसी-मुंशी थे इस बात का उल्लेख डिगबी साहब के एक पत्र में पाया जाता है । देशी लोगों के साथ कामकाज में सुविधा होने के कारण उस जमाने में अक्सर अंगरेज अधिकारी बंगाली 'बाबू' नियुक्त करते थे, जिन्हें दीवान कहा जाता था । राममोहन भी 'डिगबी का दीवान' के रूप में परिचित थे ।

रंगपुर में राममोहन ने कोई पाँच या छह वर्ष बिताये थे । यद्यपि उनका मुख्य समय डिगबी साहब की दीवानी में बीतता फिर भी इस दौरान उन्होंने अंगरेजी भाषा की शिक्षा के अलावा यूरोपीय इतिहास, विज्ञान, दर्शन शास्त्र का गहरा अध्ययन किया । डिगबी साहब, जिनके साथ उनका दोस्ताना रिश्ता बन गया था, उनकी इस मामले में काफी मदद की । डिगबी ने राममोहन के वेदान्त सार के अंगरेजी अनुवाद, जिसका प्रकाशन लन्दन से हुआ था, की भूमिका में लिखा है : उन्होंने बाईस वर्ष की आयु में सबसे पहले अंगरेजी पढ़ना आरम्भ किया था । लेकिन ध्यान लगाकर न पढ़ने के कारण, पाँच वर्ष बाद जब मेरे साथ परिचय हुआ उस समय वे मुश्किल से अँगरेजी बोल पाते थे । लेकिन शुद्ध अँगरेजी लिख नही पाते थे । लेकिन बाद में मेरे अँगरेजी पत्र-व्यवहार और यूरोपीय पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते-पढ़ते, और यूरोपीय लोगों से पत्र-व्यवहार करते हुए और बातचीत के द्वारा वे अँगरेजी में पारंगत हो गये । उसी भूमिका में उन्होंने लिखा है कि राममोहन यूरोपीय अखबारों के शौकीन थे और फ्रांस आदि देशों के राजनीतिक घटनाओं के बारे में काफी दिलचस्पी लेते थे ।[14]

रंगपुर के जमाने में नौकरी के अलावा वे अपने जीवन के प्रमुख उद्देश्य को भूले नहीं थे। उनके घर में अकसर शाम को धर्म विषयक आलोचना की बैठक हुआ करतीं। यहाँ भी वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध और ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता पर अपने विचारों का प्रचार करते। अभिजात वर्ग के बहुत से पढ़े-लिखे और सम्पन्न लोग इन बैठकों में शामिल होते थे। यहाँ तक कि कुछ मारवाड़ी और जैन धर्म अनुयायी लोग भी आने लगे थे। इस तथ्य को भी मान लेने में आपत्ति नहीं है कि जैनियों के संसर्ग में आकर उन्होंने जैन धर्म के 'कल्पसूत्र' आदि से परिचय प्राप्त किया होगा। यहाँ भी उनके विरोधी खड़े हो गये। कुछ धार्मिक विषयों पर बहस और विवाद भी चले। इसी दौरान राममोहन विशिष्ट तांत्रिक संत और अवधूत श्री हरिहरानन्द तीर्थस्वामी के निकट सम्पर्क में आये। कहा जाता है हिन्दू शास्त्रों के समझने, एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद के विवेचन में राममोहन की दीक्षा वस्तुतः हरिहरानन्द के द्वारा हुई। हरिहरानन्द से राम-मोहन का परिचय बचपन से ही था तब वे अवधूत नहीं बने थे। लेकिन रंगपुर में अवधूत हरिहरानन्द ने राममोहन के धार्मिक • विचारों को सँजोने में भारी सहायता की। यहाँ तक कि जब राममोहन कलकत्ता आकर बस गये तो उन्होंने हरिहरानन्द को काशी से अपने पास बुलवा लिया।

हरिहरानन्द वामचारी तांत्रिक संन्यासी थे। वे 'महानिर्वाण तंत्र' के अनुसार ब्रह्मोपासना करते थे और अकसर राममोहन से शास्त्रार्थ में लगे रहते। इन्हीं हरिहरानन्द के छोटे भाई रामचन्द्र विद्यावागीश राममोहन के धार्मिक विचारों के प्रथम अनुयायी थे। जो बाद में ब्रह्म-समाज के प्रथम आचार्य के पद पर नियुक्त हुए थे। रंगपुर काल की एक और महत्वपूर्ण घटना थी, सरकारी दूत के रूप में उनकी भूटान की यात्रा। उन दिनों भूटान और कूचबिहार के बीच सीमा सम्बन्धी झगड़े काफी दिनों से चले आ रहे थे। इधर ब्रिटिश सरकार नेपाल युद्ध में व्यस्त थी। इस समय सीमा पर शान्ति कायम रखना आवश्यक था। इसी कारण डिगबी के बाद रंगपुर के नये कलक्टर स्कॉट साहब ने राममोहन की सेवाएँ प्राप्त कीं। दस्तावेजों के आधार पर स्पष्ट है कि राममोहन को एक और भारतीय अफसर कृष्णकान्त बसु के साथ भूटान भेजा गया। राममोहन की योग्यता और ईमानदारी पर ब्रिटिश प्रशासन को इतना विश्वास था कि राममोहन को सीमा सम्बन्धी झगड़ों के निबटारे के लिए भूटान भेजा गया। उन्होंने भूटान की राजधानी पुनाख की यात्रा की। दस्तावेजों के आधार पर स्पष्ट है कि उनके साथ एक सहयोगी कृष्णकान्त वसु ही थे। भूटान सरकार का भी राममोहन पर पूरा विश्वास था जैसा कि भूटान के सरकारी दस्तावेजों से प्रमाणित होता है। एक पत्र में (पत्र संख्या 140 में) भूटान सरकार ने मि० स्कॉट को लिखा था कि यदि वे स्वयं न आ सकें

तो राममोहन राय को भूटान भिजवाने की व्यवस्था करें। भूटान के राजा ने 12 नवम्बर 1815 को एक पत्र में जो उन्होंने रंगपुर के मजिस्ट्रेट के नाम लिखा था राममोहन के कार्य की प्रशंसा की थी। यदि उनके तिब्बत यात्रा की कथा सही मानी जाय तो उस क्षेत्र में उनकी यह दूसरी यात्रा थी। उन दिनों भूटान की यात्रा बहुत ही बीहड़ जंगलों और खतरनाक पहाड़ों से होकर थी। भूटान मिशन की सफलता से शायद राममोहन के, भविष्य में किये गये ऐसे ही राजनैतिक कार्यभार लेने का इशारा मिलता है। यह घटना 1814 के अन्तिम दिनों में और 1815 के शुरू की है।[15] इस रंगपुर प्रवास के दौरान ही राममोहन ने पहले-पहल वेदान्त का बंगला और अँगरेजी अनुवाद आरम्भ किया था।

इसी दौरान उनके पारिवारिक जीवन में एक दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं—जिनका वर्णन आवश्यक है। 1812 में राममोहन के बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु हो गई।[16] जगमोहन की तीन पत्नियों में एक राममोहन की विधवा भाभी अपने पति की चिता पर सती हो गई। कहा जाता है कि राममोहन ने अपनी भाभी को समझाने की बहुत कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुए। रूढ़िवादी समाज का दबाव भी जारी था। नतीजा यह हुआ कि जब चिता की आग धू धू करके जल उठी तो उस बेचारी औरत ने चिता से निकलने की जी तोड़ कोशिश की, लाख चीखी चिल्लाई लेकिन नगाड़े और ढोल की आवाजों के बीच उसकी चीख दब गई। दूसरी ओर नाते-रिश्तेदार और पुरोहित बांस के डंडों से उस देवी का शरीर दबाये हुए थे कि चिता से उठ न सके। यह था एक धार्मिक कृत्य! ऐसी नृशंसता के साथ वह जिन्दा जला दी गई। यह सब कुछ हुआ धर्म के नाम पर। राममोहन ने खड़े-खड़े सारा दृश्य देखा। उनका हृदय इस निर्ममता पर हाहाकार कर उठा। एक निरपराध स्त्री की रक्षा करने में वे अपने को असहाय पा रहे थे। उसी दिन उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस भयंकर और नृशंस निर्मम प्रथा को खत्म जरूर करेंगे।[17] इस घटना का विवरण राममोहन के एक और प्रमुख जीवनीकार नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय की पुस्तक में है—राजनारायण ने अपने पिता नन्दकिशोर वसु, जो राममोहन के निकटतम भक्तों में से थे इस घटना को सुना था। कुछ विद्वानों ने इस घटना की सच्चाई पर सन्देह प्रकट किया है क्योंकि उनका मत है कि राममोहन अपने बड़े भाई की मृत्यु के समय घर से दूर रंगपुर में थे।[18] राममोहन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की थी। उन्हीं के आन्दोलन का नतीजा यह हुआ कि इस घटना के कोई 17 वर्ष बाद, 4 दिसम्बर 1829 में सतीप्रथा का अन्त एक सरकारी अध्यादेश के द्वारा करा दिया गया।

रंगपुर काल के दौरान राममोहन ने नौकरी और साहूकारी के द्वारा काफी

धन और जायदाद जमाकर लिया था। इस समय वे रंगपुर और कलकत्ता दोनों जगह अपना व्यापार चलाते थे। रंगपुर में उनके व्यापार की देखभाल भवानी घोष नामक एक व्यक्ति करते थे और कलकत्ते का व्यापार गोपीमोहन चट्टोपाध्याय के जिम्मे था। कहा जाता है कि रंगपुर छोड़कर जब राममोहन कलकत्ते में स्थायी तौर पर बस गये। तब भी उनका साहूकारी व्यापार चलता रहा। इन थोड़े से वर्षों में तीन जमींदारी जायदाद (तालुक) खरीदे थे। पहला बीरलूक दूसरा कृष्णनगर जहानाबाद परगने में, और तीसरी जायदाद थी श्रीरामपुर भूरसूट परगने में [19]

थोड़े से काल में इतनी जायदाद और धन-दौलत जमा करने के कारण कई लोगों ने इस आर्थिक उन्नति के पीछे अनुचित उपाय का लांछन लगाने की भी कोशिश की थी। लेकिन ब्रजेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय के अनुसार सरकारी नौकरी के मध्यम आय भला कितनी हो सकती थी उन्होंने केवल दो वर्ष के करीब सरकारी नौकरी की थी। बाकी समय वे डिगबी साहब के निजी मुंशी रहे थे। वस्तुतः उनकी समृद्धि के पीछे साहूकारी और कम्पनी के हुण्डियो का व्यापार था।[20]

इस प्रकार जब राममोहन दिनों-दिन आर्थिक समृद्धि की ओर बढ़ रहे थे उन्हीं दिनों लागुलपाड़ा में उनके परिवार के दूसरे लोग आर्थिक संकट से गुजरते हुए गरीबी की स्थिति में पहुँच गये थे। 1804 में जब राममोहन मुर्शिदाबाद में थे उस समय उनके बड़े भाई जगमोहन जायदाद के मामले में मिदनापुर के दीवानी जेल की हवा खा रहे थे। सरकारी खजाने में रुपये जमाकर छूटने के लिए उन्होंने राममोहन से एक हजार रुपये कर्ज लिया था। किश्तों में पूरी रकम चुकाने का वादा करके जेल से छूट कर आये। राममोहन की रकम जगमोहन चुका नहीं पाये। 1812 में उनकी मृत्यु हो गई। जगमोहन के नाबालिग पुत्र गोविन्द प्रसाद, अपने पिता की मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बने। इसी बीच 1809-10 में राममोहन के सबसे छोटे भाई रामलोचन की भी मृत्यु हो गई थी। जब परिवार, ऐसी आर्थिक संकट और अस्तित्व के विघटन की स्थिति से गुजर रहा था उन दिनों राममोहन घर से दूर नौकरी और रोजगार के सिलसिले में जगह-जगह घूम रहे थे। राममोहन ने स्वयं स्वीकार किया था कि 1803 से 1814 तक वे केवल मात्र भाइयों और माता से ही नही बल्कि अपने पुत्र-परिवार से भी दूर रहे।[21] इन दस वर्षों में 1805 से 1815 तक राममोहन डिगबी साहब के साथ अलग-अलग स्थानों पर कभी सरकारी और कभी गैर-सरकारी पदों पर काम करते रहे। इस दौरान वे लगातार अपने घर से दूर ही रहे। यहाँ तक कि उनकी दोनों पत्नियाँ और पुत्र के साथ भी उनका कोई विशेष सम्बन्ध रहा होगा ऐसा लगता

नहीं है। अपनी माँ और परिवार के दूसरे लोगों से भी उनका अलगाव पूर्णतया स्पष्ट है। केवल जमींदारी के मामले में कभी घर पर आते रहे होंगे क्योंकि इसी दौरान उन्होंने और अधिक जायदाद बना ली थी। कलकत्ते में उनका साहूकारी का व्यापार अच्छा खासा चल रहा था। लेकिन परिवार के वृत्त से वे पूरी तरह बाहर आ गये थे। भावुकता और बौद्धिकता के स्तर पर इन दस वर्षों में राममोहन में एक नया व्यक्तित्व उभर रहा था। 1812 में जब राम-मोहन के बड़े भाई की मृत्यु हुई उस समय लांगुलपाड़ा में उनका भतीजा गोविन्दप्रसाद 1817 तक उनके साथ संयुक्त परिवार की तरह ही रहा। इसी समय राममोहन ने निकट के गाँव रघुनाथपुर में अपना नया मकान बनवाकर अलग जा बसे। ठीक इसी समय उनके भतीजे गोविन्दप्रसाद ने जायदाद पर अधिकार जमाने के लिए 23 जून 1817 को सुप्रीम कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया था, जिसमें वे अपनी सारी कोशिशों के बावजूद हार गये थे। जिसका विवरण यथास्थान दिया जायगा।

इन्ही दिनों राममोहन ने अपने लड़के राधाप्रसाद का विवाह कराया। विवाह के समय उन्हे उनके धार्मिक विचारों के कारण काफ़ी सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ा लेकिन फिर भी विवाह हो ही गया।

अपनी माता के साथ राममोहन का धार्मिक मुद्दों पर विरोध काफी दिनों से चल रहा था। हालत यहाँ तक पहुँची उन्होंने राममोहन को दोनों पत्नियो और नई पुत्रवधू सहित घर से निकाल देने की ठान ली। राममोहन ने सोचा कि चलो गाँव में ही दूसरा मकान बनवा लेंगे। लेकिन गाँव की जमींदारी माता के नाम थी भला वे विधर्मी पुत्र को जगह क्यों देने लगी। राममोहन गाँव से बाहर रघुनाथपुर में श्मशान भूमि के निकट अपना मकान बनवा कर रहने लगे।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Dasgupta, B. N. Life and Times of Rajah Rammohun Roy Vol. I. पृ० 120.

2. Collet, पृ० 15-16. सम्पादकीय टिप्पणी में कहा है कि ब्रजेन्द्रनाथ बंधोपाध्याय के अनुसार राममोहन अपने पिता की मृत्यु शय्या पर उपस्थित नहीं थे। फिर भी एडम साहब के व्यक्तिगत संस्मरणों की प्रामाणिकता भी विचार-णीय है।

3. Dasgupta, पृ० 120.

4. चट्टोपाध्याय, पृ० 13. लिखा है कि रमाकान्त राम ने अपनी मृत्यु से दो वर्ष पूर्व अपनी सम्पत्ति का बँटवारा कर दिया था लेकिन राममोहन ने पिता की मृत्यु के बहुत दिनों बाद भी सम्पत्ति पर अधिकार नहीं जमाया।....यद्यपि

कानूनन वे सम्पत्ति के अधिकारी थे....फिर भी यह उनकी माता के अधीन ही रहा ।....जमींदारी के प्रशासन में राममोहन ने कोई ढील नहीं बरती ।

5. इस पुस्तक का अंगरेजी अनुवाद मौलवी उबैदुल्लाह, जो ढाका मदरसा के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे, ने किया था। 1884 में साधारण ब्रह्म समाज कलकत्ता से प्रकाशित हुआ ।

6. विश्वास दिलीप कुमार : राममोहन समीक्षा (बंगला) पृ० 576 में आलोचना करते हुए लिखा है कि इसकी एक प्रति लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में उपलब्ध है । यद्यपि पुस्तिका में लेखक का नाम नहीं है फिर भी इसका उल्लेख राममोहन की रचनाओं की तालिका में संयोजित है । लेखक के अनुसार उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि इस पुस्तक के लेखक राममोहन स्वयं नहीं थे (पृ० 583) हो सकता है राममोहन के किसी विद्वान मित्र ने राममोहन के विचारों का समर्थन करते हुए 'तुहफात' के आलोचकों को 'जवाब' दिया होगा । रचना चाहे जिसकी भी रही हो, फिर भी पुस्तिका का महत्व कम नहीं हो जाता । यह तय है कि पुस्तिका का लेखक राममोहन के निकट बन्धुओं या प्रशंसकों में से रहा होगा, जिसने बहुत ही योग्यता से राममोहन का पक्ष समर्थन किया ।

7. Collet, पृ० 25 में लेखिका ने लिखा है कि राममोहन ने डिगबी साहब के साथ एक लिखित इकरारनामा किया था कि वे साधारण कर्मचारियों की तरह उनके सामने खड़े होकर पेश नहीं होंगे । नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने भी राममोहन की जीवनी में इस घटना का जिक्र किया है । इस घटना से केवल यही बात सामने आती है कि डिगबी साहब और राममोहन में मालिक-कर्मचारी के संबंध के अलावा गहरी मित्रता के संबंध थे और डिगबी साहब राममोहन का आदर करते थे ।

8. वही, पृ० 37 देखें, सम्पादकीय टिप्पणी ।

9. वही, पृ० 37 देखें, सम्पादकीय टिप्पणी ।

10. वही पृ० 37-38. सम्पादकीय टिप्पणी में ब्रजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय ने 'राममोहन राय' पृ० 24-28 का हवाला दिया है क्योंकि इन्होंने ही इस घटना को खोज निकाला था । Dasgupta पृ० 120 में लिखा है कि इस घटना से राममोहन की सार्वजनिक काफी प्रतिष्ठा बढ़ गई ।

11. ब्रजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय : राममोहन राय, पृ० 24-29. लेखक के विचार में इस अंगरेजी पत्र को लिखने में डिगबी साहब का हाथ था ।

12. Collet, पृ० 38 देखें, सम्पादकीय टिप्पणी ।

13. वही, पृ० 38. सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा है कि ब्रजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय के विचार से 1810 के बाद से 1814 तक राममोहन डिगबी

साहब के साथ व्यक्तिगत रूप में नियुक्त रहे थे और उनको उदासी के राजकिशोर चौधरी की जायदाद की देखरेख का भार सौंपा गया था। इस कार्य पर वे डिगबी साहब के रंगपुर से जाने के बाद भी 1815 तक बने रहे।

14. Collet, पृ० 23-24.

15. Collet, पृ० 39-40. सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा है कि प्रसिद्ध इतिहासकार डा० सुरेन्द्रनाथ सेन नें राष्ट्रीय अभिलेखागार में से कुछ दस्तावेज ढूंढ़ निकाले, जो उस काल में भूटान और कूचबिहार के राजाओं के साथ ब्रिटिश सरकार ने आदान-प्रदान किया था। इनमें से चारों पत्रों में राममोहन राय का जिक्र आता है। इन्हीं सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि इससे पहले भी राम-मोहन डिगबी साहब के साथ 1812 में भूटान कूच बिहार की सीमा तक हो आये थे। राममोहन इस पद पर कोई 1815 के अन्तिम दिनों तक नियुक्त रहे। इससे यही प्रामाणित होता है कि राममोहन सम्भवतः 1815 के अंत में ही जाकर कलकत्ता आये होंगे।

16. Collet, पृ० 33. पाद टीका देखें।

17. Collet, पृ० 33-34. सम्पादकीय टिप्पणी (पृ० 58) में लिखा है कि राममोहन ने इस निर्मम सती प्रथा को अवश्य ही अपनी आँखों देखा होगा क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक 'सहमरण विषये प्रवर्तक ओ निवर्तकेर द्वितीय संवाद' में लिखा था कि विश्व के सारे लोग अंधे नहीं हैं कि औरत को चिता पर जिन्दा जला देने का उद्देश्य न समझ सकें।

18. बन्द्योपाध्याय : राममोहन राय, पृ० 33-34 के अनुसार राममोहन का भानजा गुरुदास मुखोपाध्याय उनके साथ रंगपुर में रहता था। गुरुदास के पिता ने एक पत्र द्वारा राममोहन को उनके बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु का समाचार भेजा था।

19. वही, पृ० 82

20. वही, पृ० 32

21. वही, पृ० 33

अध्याय—4

कलकत्ता-संघर्ष का आरम्भ

सन् 1814 में डिगबी साहब रंगपुर छोड़ आये थे। अस्वस्थता के कारण कम्पनी की नौकरी से त्यागपत्र देकर 1815 में स्वदेश चले गये। अब रंगपुर में राममोहन के लिए कोई विशेष आकर्षण नहीं रह गया था। यद्यपि रंगपुर में उनके दूसरे मित्र भी थे लेकिन डिगबी साहब का स्थान कोई भी पूरा न कर सका। वे डिगबी साहब के जितने निकट थे उतना शायद और किसी के नहीं। इसी से उन्होंने कलकत्ता आकर बसने का निश्चय किया। इस प्रकार 1815 में कोई 42 या 43 वर्ष की प्रौढ़ आयु में ब्रिटिश भारत की राजधानी में आ बसे।[1] इसी समय वे पहली बार गाँव या कसबे के जीवन से निकलकर राजधानी के राष्ट्रीय जीवन में आ धमके। यह शहर उनके लिए कोई नया नहीं था। अपने कामकाज व्यापार और साहूकारी के काम में वे अकसर कलकत्ता आया-जाया करते थे। साहूकारी का व्यापार उनका अच्छा-खासा चल निकला था। वस्तुतः केवल व्यापार के लिए वे कलकत्ता नहीं आये। कलकत्ते में बसने के पीछे उनके कुछ और ही उद्देश्य थे, जो उनके आगे आने वाले जीवन और कार्यक्रमों से स्पष्ट हो जायगा। आगामी सोलह वर्षों में कलकत्ता शहर ही उनके कार्यक्रमों का केन्द्र बना रहा। राममोहन कलकत्ता आये तो पारिवारिक प्रतिष्ठा और आकर्षण व्यक्तित्व के कारण उन्हें यहाँ के प्रतिष्ठित समाज में स्थान बनाने में देर नहीं लगी। उनका प्रायः छह फुट लम्बा कद, तन्दुरुस्त शरीर, सुन्दर और आकर्षक चेहरा, उनके प्रतिभाशाली और प्रभावी व्यक्तित्व के अंग थे।

ऐसा जान पड़ता है कि राममोहन के पास कलकत्ते में दो मकान थे।[2] लेकिन वे मानिकतला इलाके की कोठी में ही मुख्यतः रहे। ऐसा अनुमान है कि इस मकान को बनाने में उनके चचेरे भाई रामतनुराय ने बड़ी सहायता की। पूरी कोठी अंगरेजी क़ायदे से सजाई थी।[3] दूसरा मकान चौरंगी इलाके में था।

मकान खरीद कर कलकत्ते में बसना राममोहन के लिए कोई मुश्किल काम नहीं था वस्तुतः उनके सामने मुख्य प्रश्न था कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कैसे और कहाँ से कार्य आरम्भ किया जाय। उनका कार्य कितना कठिन और चुनौतियों से भरा था, इसका अन्दाजा लगाना, विशेषतः आज के जमाने में, असम्भव है। पहले अध्याय में उस काल के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक

स्थिति के बारे में संक्षेप में विवेचन किया जा चुका है। अज्ञानता और अंध-विश्वास के काले बादलों ने सारे आकाश को घेर लिया था, न तो पर्याप्त संख्या में छपी पुस्तकें ही थीं और न समाचार-पत्र। मूर्तिपूजा अपने निकृष्टतम स्वरूप में विद्यमान थी। सामाजिक स्तर पर धार्मिक पाखण्डों की आड़ में बहु विवाह और शिशु-वध के अलावा नारी जीवन का प्रचलित कलंक सतीप्रथा का बोलबाला था और जिसकी चिता की ज्वाला पूरे समाज को कलंक की आग में जला रही थी।

कलकत्ता आकर राममोहन ने मानों सारे देश के समाज-जीवन का हृदय-स्पन्दन अनुभव किया। अनुभव किया कि पूरा समाज अज्ञानता और कुसंस्कारों के घने अंधकार में डूबा है। सर्वत्र धार्मिक पाखण्ड और मूर्तिपूजा का बोलबाला है। प्राचीन भारत के शाश्वत धर्म, वेद और उपनिषदों को लोग भुला बैठे हैं। पुरोहित तंत्र ने पूरे देश को जकड़ रखा है। वास्तविक धर्म क्या है इसकी ओर किसी का ध्यान नहीं। जातपाँत और अस्पृश्यता से सारा हिन्दू समाज टुकड़े-टुकड़े हो गया है। नतीजा यह था कि लोग स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति भुला बैठे। हिन्दू समाज का नैतिक स्तर बहुत ही गिर चुका था। हिन्दू नारी का जीवन दयनीय असहाय अवस्था में था। इसके अलावा एक सामन्तवादी समाज और अर्थव्यवस्था को आधुनिक युग के दरवाजे तक लाकर खड़ा करने का प्रश्न था। ऐसे समाज-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का बीड़ा उठाकर राममोहन ने कल-कत्ते का जीवन आरम्भ किया। 1815 से 1830 तक कलकत्ता जीवन के ये पन्द्रह वर्ष सबसे कार्य-व्यस्त और महत्वपूर्ण वर्ष थे। इन पन्द्रह वर्षों में राम-मोहन इतने सारे कार्यों में व्यस्त रहे कि उनका सिलसिलेवार विवरण देना भी कठिन है। उन्होंने जीवन और समाज के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में चाहे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या बौद्धिक हो, सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाई। इसलिए इस काल का विवरण उनके कार्यक्रमों के आधार पर ही करना उचित होगा।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कलकत्ता पूर्वी जगत का सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र ही नहीं था बल्कि यह शहर पूर्वी और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान, विचार और दर्शन के आदान-प्रदान का केन्द्र बन गया था। मालवाही जहाजों से जहाँ व्यापारिक माल का आयात-निर्यात होता वहीं विदेशी विचारधारा और यूरोपीय जागरण और औद्योगिक क्रान्ति के समाचार भी भारत भूमि पर पहुँचने लगे थे। इसी से एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का जन्म होने लगा था। उस काल में ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान और परिवर्तन की हवा चलनी शुरू हो गई थी। प्रतिष्ठित और शिक्षित हिन्दू परिवारों में उदारतावादी और कुछ सीमा तक

प्रगतिवादी तत्वों ने जन्म लेना आरम्भ तो कर दिया था लेकिन इन सबके लिए कोई सार्वजनिक मंच या संस्था नहीं थी जिसका सहारा लेकर कोई आन्दोलन खड़ा किया जा सके।

जब राममोहन कलकत्ता आकर बसे तो उन्होंने ही पहले-पहल एक संस्था को जन्म देने की कोशिश शुरू कर दी। वस्तुतः राममोहन ने रंगपुर प्रवास के दौरान ही एक ऐसी संस्था या समिति बनाने की चेष्टा की थी। वहाँ भी उनके चारों ओर कुछ प्रतिष्ठित और बौद्धिक लोगों का एक छोटा-सा वृत्त तैयार हो गया था। कलकत्ते में भी उन्होंने उसी तरीके को अपनाया और यह रंगपुर की बैठक के मुकाबिले कुछ अधिक सुव्यवस्थित तौर पर स्थापित हो गई। विद्वान, धनवान और प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में वे समाज में परिचित थे। अकसर उनके पास धनी और प्रतिष्ठित लोग मुलाकात करने आते थे। लेकिन जब उन्होंने पहले-पहल मूर्तिपूजा के विरुद्ध और एकेश्वरवाद पर अपने विचार पेश करना आरम्भ किया तो कई लोगों ने उनके पास आना धीरे-धीरे बन्द कर दिया। केवल थोड़े से व्यक्ति उनके पास रह गये, जिनमें द्वारकानाथ ठाकुर, राजा कालीकिंकर घोषाल, जयकृष्ण सिंह और गोपीनाथ मुंशी प्रमुख थे। 1815 में मानिकतला की कोठी में उन्होंने इन मित्रों के साथ ही 'आत्मीय सभा' अर्थात मित्रों की सभा की स्थापना की।[4] 1815 के अन्तिम दिनों में राममोहन के मानिकतला वाली कोठी में हर हफ्ते कम से कम एक दिन एक छोटी-सी सभा आयोजित होने लगी। सभा का नामकरण भी कर दिया गया—'आत्मीय सभा' अर्थात मित्रों की सभा। इस प्रयोग में राममोहन पूरी तरह सफल हुए। इस सभा का उद्देश्य था आध्यात्मिक उन्नति के साधनों पर विचार करना। सप्ताह में एक दिन इसकी बैठकें हुआ करतीं। वेदों तथा दूसरे हिन्दू शास्त्रों से पाठ होता। वेदों और उपनिषदों की ऋचाओं का गायन होता और समसामयिक विषयों पर आलोचना। यह सभा कोई सार्वजनिक सभा नहीं थी। इसमें केवल राममोहन के व्यक्तिगत मित्र ही भाग लेते थे। उनमें गोपी मोहन ठाकुर, वृन्दावन मित्र, ब्रजमोहन मजुमदार और महाकवि रविन्द्रनाथ के पितामह द्वारकानाथ ठाकुर जैसे प्रतिष्ठित लोग शामिल थे। वस्तुतः ये सारे लोग उस समय समाज के अगुआ और विशिष्ट नागरिक थे। इस संगठन के कार्य में एक व्यक्ति जो राममोहन की विशेष सहायता कर रहे थे वह थे, हरिहरानन्द तीर्थस्वामी[5] जिनके बारे में रंगपुर काल के प्रसंग में लिखा जा चुका है। ये काशी चले गये थे लेकिन राममोहन ने इन्हें कलकत्ता बुला लिया। राममोहन के साथ ही रहते। इन्हें अपने तांत्रिक साधना की पूरी छूट दी हुई थी। वस्तुतः राममोहन का हरिहरानन्द तीर्थस्वामी बहुत ही पुराना बचपन का परिचय था। हरिहरानन्द संन्यासी जीवन के पूर्व नन्दकुमार विद्यालंकार के नाम से

जाने जाते थे। बचपन की मित्रता बराबर बनी रही और रंगपुर के बाद हरिहरानन्द हमेशा राममोहन के धार्मिक और सामाजिक कार्यक्रमों के निकट के सहयोगी रहे। राममोहन के मित्रों में एक ओर जहाँ हरिहरानन्द तीर्थस्वामी जैसे साधक थे तो डेविड हेयर जैसे विद्वान और सुधारक भी शामिल थे।

उसी समय की एक पत्रिका में प्रकाशित 'आत्मीय सभा' के कार्यक्रम का विवरण कुछ इस प्रकार है :

'आत्मीय सभा' में सायंकाल वेद पाठ और ब्रह्मसंगीत होता लेकिन वेदों की व्याख्या नहीं की जाती। राजा (राममोहन) के गुरु श्रीयुत शिवप्रसाद मिश्र वेद पाठ करते और गोविन्द माला ब्रह्म संगीत का गायन करते। श्रीयुत द्वारकानाथ ठाकुर वहाँ समय-समय पर उपस्थित रहते थे। श्रीयुत ब्रजमोहन मजुमदार, राजनारायण सेन, रामनृसिंह मुखोपाध्याय, दयालचन्द्र चट्टोपाध्याय, हलधर बसु, नन्दकिशोर बसु (राजनारायण बसु के पिता) एवं मदनमोहन मजूमदार ने श्रद्धापूर्वक ब्रह्मोपासनारूप, परमधर्म को स्वीकार किया।....इस धर्म के प्रति लोगों का विद्वेष समाप्त नहीं हुआ। लोग इन्हें स्वेच्छाचारी और नास्तिक आदि कहा करते। राममोहन के एक प्रिय मित्र ने इसे यहाँ तक बदनाम करने की कोशिश की कि आत्मीय सभा में गोहत्या की जाती है।....जो उनके खुले विरोधी थे, अनेक प्रकार से विरोध करने की कोशिश करने लगे...."[6] आत्मीय सभा की बैठकें कभी-कभी दूसरे सदस्यों के घरों में आयोजित होतीं। वृन्दावन मित्र के घर के अलावा राजा कालीकिंकर घोषाल के घर पर भी सभा की बैठक बुलाई जाती। बड़ा बाजार के बिहारी लाल चौबे के घर एक सभा की बैठक में सुब्रह्मण्य शास्त्री के साथ उनका प्रसिद्ध शास्त्रार्थ भी हुआ था जिसका विवरण आगे दिया जायेगा।

आत्मीय सभा का कार्यक्रम किसी विशेष जाति या धर्म के लिए सीमित नहीं था। इसके दरवाजे सभी के लिए खुले थे। डेविड हेयर जैसे सुधारक भी इस सभा में बिना किसी निमंत्रण के आये थे और धीरे-धीरे राममोहन के निकटतम सहयोगी बने। डेविड हेयर वस्तुतः घड़ीसाजी का काम करते थे। व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता आये थे। व्यापार अच्छा चल निकला और आमदनी की पक्की व्यवस्था हो गई तो उन्होंने अपना ध्यान समाजसुधार, शिक्षाप्रसार और धार्मिक प्रचार की ओर लगाया। शिक्षा विशेष रूप से अँगरेजी शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने भारी प्रयत्न किया। सम्भवतः शिक्षा प्रसार के कार्य में सहयोगी ढूँढ़ने की कोशिश में ही हेयर साहब राममोहन के आत्मीय सभा में गये थे। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी दिलचस्पी उन्हें राममोहन के पास ले आई। क्योंकि वे समझ गये थे कि यह व्यक्ति उनके उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है। यद्यपि सभा में बिन बुलाये ही आये थे, लेकिन सभा के बनकर रह

गये। राममोहन के साथ पूरे हेयर परिवार का घनिष्ठ सम्बन्ध जीवन भर बना रहा। शिक्षा के क्षेत्र में डेविड हेयर और राममोहन के योगदान का विवरण अगले पृष्ठों में दिया जायगा। 'आत्मीय सभा' की स्थापना के साथ-साथ राममोहन ने हिन्दू धर्म के मूल ग्रन्थों का बँगला, हिन्दी और अंगरेजी अनुवाद करने का बीड़ा उठाया। सौभाग्य से तब तक छापाखाने की सुविधा इस देश में उपलब्ध होने लगी थी। उस काल तक छापेखाने का प्रयोग मुख्य रूप से केवल ईसाई धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए ही होता था। राममोहन ने पहले-पहल वेदों उपनिषदों का अनुवाद करके छपवाकर जनता के बीच टवाना शुरू किया। इस प्रकार वे शाश्वत हिन्दू धर्म का स्वरूप साधारण जनता के सामने ले आये। मूर्तिपूजा और धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध उनका यह पहला आक्रमण था। कलकत्ता और ब्रिटिश साम्राज्य के कोने-कोने में खलबली सी मच गई। शहर से लेकर सुदूर गाँवों में राममोहन की चर्चा होने लगी।

राममोहन समझ गये थे कि हिन्दू धर्म को अंधविश्वास और रूढ़िवाद के शिकंजे से निकालने का एक मात्र उपाय प्राचीन वैदिक धर्म का सही विवेचन और प्रचार है। इस काल में जो यूरोपीय पर्यटक भारत आते वे हिन्दू धर्म के बाह्य स्वरूप को ही देख पाते और इसी को हिन्दू धर्म समझते। यूरोपीय मिशनरी वाले भी अपना पाँव जमाने की कोशिश कर रहे थे।

यह हम पहले ही जान चुके हैं कि मुर्शिदाबाद (1803) में उन्होंने धर्म के मूल तत्वों और अपने धार्मिक विचारों के बारे में एक पुस्तिका फ़ारसी में लिखी थी और रंगपुर के ज़माने में ही वेदान्त का अनुवाद कार्य आरम्भ कर दिया था। कलकत्ता आकर वे इस कार्य में जोर-शोर से लग गये। 1815 में उन्होंने वेदान्त का संस्कृत से बंगला अनुवाद कर वेदान्त ग्रंथ या वेदान्त सूत्र का प्रकाशन किया। लेकिन विषय कठिन था इसलिए साधारण जनता के लिए उन्होंने 1816 में 'वेदान्तसार' का प्रकाशन बंगला हिन्दुस्तानी (हिन्दी) और अंगरेजी में कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपनिषदों का बंगला और अँगरेजी में अनुवाद प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया। ये आरम्भिक अनुवाद चाहे किसी सीमा तक स्तरीय न भी रहे हों फिर भी इनके प्रकाशन के पीछे जो महत् उद्देश्य था—उससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस योजना के पीछे उनका कोई व्यक्तिगत लाभ क्या हो सकता था भला ? यह तय था कि इन अनुवादों के प्रकाशन से सारा रूढ़िवादी ब्राह्मण समाज बुरी तरह उनका विरोधी हो गया। केवल अनुवाद ही नहीं अपितु अपने खर्च पर प्रकाशित करके निःशुल्क जनता में बँटवाया। 1815 से 1816 के दौरान प्रकाशित वेदान्त और उपनिषदों की सूची इस प्रकार है :

बंगला अनुवाद : वेदान्त ग्रन्थ (सूत्र) 1815
वेदान्त सार 1816
तलबकारोपनिषद या केनोपनिषद 1816
ईशोपनिषद 1816
कठोपनिषद 1816
माण्डुक्योपनिषद 1817
मुण्डकोपनिषद 1819
आत्मानात्मविवेक (शंकराचार्यकृत) 1819

हिन्दुस्तानी (हिन्दी) अनुवाद : वेदान्त ग्रंथ 1815
वेदान्त सार 1816

अँगरेजी अनुवाद : Translation of an abridgement of the Vedanta 1816
Translation of Kena Upanishad 1816
Translation of Mundaka Upanishad 1816
Translation of Katha Upanishad 1819

इसके अतिरिक्त 1817 में ही वेदान्त सार का जर्मन अनुवाद जर्मनी[7] से प्रकाशित हो गया था। यह उनके पहले तीन चार वर्षों की कड़ी मेहनत का नतीजा था। इन सभी कृतियों में उन्होंने अपनी विस्तृत भूमिका और टीका-टिप्पणियाँ पेश की और अपने इस लेखन कार्य के अलावा अब वे शास्त्रार्थ में अकसर व्यस्त रहने लगे थे। क्योंकि अब उनके मूर्तिपूजा विरोधी विचार देश भर में प्रचारित हो चुका था। उन्होंने 'वेदान्त सार' के अँगरेज़ी अनुवाद में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की थी, जिसको हम उनके 'धर्मयुद्ध' की घोषणा कह सकते हैं। उक्त पुस्तक का शीर्षक इस दृष्टि से बहुत ही प्रासंगिक है।

"Translation of an Abridgement of the Vedant or Resolution of all the Vedas; the most celebrated and revered work of Brahminical theology : establishing the Unity of Supreme Being and that he alone is the object of propitiation and Worship." Calcutta 1816.

अर्थात्, वेदान्त या वेदों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त अनुवाद जो सर्वसम्मानित हिन्दू धर्म मीमांसा ग्रंथों के आधार पर सर्वशक्तिमान ईश्वर की एकात्मता को प्रतिपादित करते हुए सिद्ध करता है कि वही एकमात्र पूजा या उपासना के योग्य है।

इस पुस्तक को पढ़कर ईसाई मिशनरी पादरी भी आश्चर्य चकित रह गये थे। इसका प्रचार यूरोप में भी हुआ। उनकी पहली अँगरेजी पुस्तक की भूमिका में से प्रासंगिक अंश :

> "My Constant reflections to the inconvenient, or rather injurious rites, introduced by the peculiar practice of Hindu idolatry, which more than and other Pagan worship, destroys the texture of the society, together with compassion for my country-men, have compelled me to use every possible effort to awaken them from their dream of error : and by making them acquainted with their scriptures, enable them to contemplate with true devotion the unity and omnipresence of Nature's God."[8]

अर्थात्, "हिन्दू मूर्तिपूजा के विचित्र रीति-रिवाजों से उत्पन्न असुविधापूर्ण या हानिकारक अनुष्ठानों के बारे में सतत् चिन्तन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी भी दूसरे धर्म की अपेक्षा यह, हमारे समाज की संरचना को नष्ट किये दे रहा है। इसी से सहानुभूतिपूर्वक मैंने देशवासियों को इस भ्रान्ति के स्वप्नलोक से जगाने की हर सम्भव तरीके से चेष्टा की है। उनको अपने धर्म-ग्रन्थों का सम्यक् ज्ञान देकर सच्ची साधना का स्वरूप, प्रकृति और ईश्वर की सर्वव्यापिता से परिचित कराने की कोशिश कर रहा हूँ।"

इन पंक्तियों में राममोहन के धार्मिक आन्दोलन की रूपरेखा स्पष्ट हो जाती है। धार्मिक रीति-रिवाजों और मूर्तिपूजा के नाम पर प्रचलित पाखण्ड से हिन्दू धर्म को शुद्ध वैदिक धर्म की ओर मोड़ना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। यहीं से उनके धार्मिक आन्दोलन का श्रीगणेश समझना चाहिए।

'वेदान्त सूत्र' और 'वेदान्त सार' के बाद उन्होंने उपनिषदों की ओर ध्यान दिया।

पाँच उपनिषदों का बंगला अनुवाद करके छपवा कर बँटवाया। 'केन उपनिषद' की भूमिका में राममोहन ने कहा कि उन्होंने श्रीशंकराचार्य की व्याख्या के अनुरूप अनुवाद किया है : 'वेदों की प्रामाणिकता में जिनका विश्वास है वे अवश्य इसकी मान्यता को ग्रहण करेंगे। जिनके लिए वेद प्रामाणिक नहीं उनके साथ मेरा कोई वास्ता नहीं।" यह उन्होंने मूर्तिपूजक साकारवादियों को लक्ष्य करके लिखा था। साकारवादी हिन्दुओं के लिए वेदों को अस्वीकार करने का कोई रास्ता नहीं है। उपनिषद वेदों की ही व्याख्या है।

'ईशोपनिषद की भूमिका में राममोहन कहते हैं कि निराकार परमेश्वर

की उपासना ही वेदान्त या उपनिषदों का मूल सिद्धान्त है। इसी उपनिषद के अँगरेजी अनुवाद की भूमिका में भी उन्होंने साकारवादी मूर्तिपूजा की खासी खबर ली।

इन ग्रंथों के प्रकाशन और राममोहन के दूसरे संस्कारविरोधी आन्दोलन के कारण प्रतिक्रियावादी, रूढ़िवादी हिन्दू समाज शास्त्रियों में राममोहन के विरुद्ध भारी विरोध शुरू हो गया। वेदों और शास्त्रों को पढ़ने और सुनने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को था और मान्यता यही थी कि इनके सिवा दूसरे लोग इनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। राममोहन इन शास्त्रों को साधारण भाषा में यहाँ तक कि म्लेच्छ भाषा में अनुवाद करके साधारण जनता यहाँ तक कि म्लेच्छों के हाथों में पहुँचा दिया। जिस 'ओम्' शब्द का उच्चारण करने पर शूद्रों की जीभ काट दी जाती थी, उस पवित्र शब्द को राममोहन ने सबके लिए सुलभ कर दिया। जिसने इतना अनर्थ किया वह न जाने हिन्दू धर्म को कहाँ ले जायेगा? घोर कलिकाल आ पहुँचा था। पण्डितों और पुरोहितों के क्रोध की सीमा न रही। जहाँ भी मौका मिलता राममोहन को जी भर कर गाली गलौज किया करते। यह वाद-विवाद दुश्मनी में बदल गई। क्योंकि यह हिन्दू रूढ़िवादियों के स्वार्थ पर सीधा आक्रमण था।

आधुनिक शिक्षा की नींव

पहले ही लिखा जा चुका है कि इस काल में राममोहन ने धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जब एक के बाद दूसरे हमले आरम्भ किये तो कुछ प्रगतिवादी, बुद्धिजीवी लोग उनके साथ हो लिए। इनमें से कुछ विशिष्ट नागरिक भी थे। उनके साथ पाश्चात्य विचारों के प्रतिनिधि के रूप में प्रमुख सुधारक और शिक्षा प्रचारक डेविड हेयर जैसे विद्वान भी थे। जैसा हम जानते हैं कि हेयर 'आत्मीय सभा' में अनाहूत ही आये थे लेकिन बाद में राममोहन के मित्र और निकटतम सहयोगी बने। हेयर का 'आत्मीय सभा' में आने का अपना उद्देश्य था। वे पश्चिमी अर्थात अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए साथियों की खोज में थे। आत्मीय सभा में जब धार्मिक और सामाजिक सुधारों के बारे में आलोचना का कार्य आरम्भ हुआ तो हेयर ने सुझाया कि अंगरेजी और आधु-निक शिक्षा ही इन बुराइयों को दूर कर सकती है। राममोहन के लिए यह सुझाव मानो उनके मन की ही बात हो। आत्मीय सभा ने तत्काल इस ओर कार्य करने का आश्वासन दिया। डेविड हेयर पर सरकारी समर्थन और सहायता प्राप्त करने का भार सौंपा गया। राममोहन भी धन जुटाने और नागरिकों का समर्थन प्राप्त करने के कार्य में जी जान से लगे। जल्दी ही महसूस किया कि धनी वर्ग तभी धन देने को राजी होंगे जब योजना को सरकारी या फोर्ट विलियम का आशीर्वाद प्राप्त होगा, अब किसी उदार सरकारी अफसर की

खोज शुरू हुई जो, देशी लोगों की शिक्षा में विशेष दिलचस्पी रखता हो। सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस पर एडवर्ड हाइड ईस्ट से राममोहन के 'आत्मीय सभा' के वैद्यनाथ मुखोपाध्याय और डेविड हेयर ने मुलाकात की। कहना न होगा कि सर एडवर्ड प्रस्ताव पर राजी हो गये। इस विषय में सर एडवर्ड का अपने मित्र को इंगलैण्ड में लिखे एक पत्र का कुछ अंश इस ओर कुछ रोशनी डालेगी जो 16 मई 1816 को उन्होंने लिखा था।

"....An interesting and curious scene has lately been exhibited hare, which shows that all things pass under change in due season. About the beginning of May a Brahmin of Calcutta, whom I knew, and who is well known for his intelligence and active interference among the principal Native inhabitants, and also intimate with many of our own gentleman of distinction, called upon me and informed me that many. of the leading Hindus were desirous of forming an establishment for tha education of their children in a liberal manner an practiced by Europeans of condition, and desired that I would lend them my aid towards it, by having a meeting held under my sanction....."

इस पत्र से स्पष्ट होता है कि यह व्यक्ति विशेष, अर्थात राममोहन, सर एडवर्ड से पश्चिमी वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर आधारित एक शिक्षण संस्था की स्थापना के लिए पैरवी करने गये थे। सर एडवर्ड हाइड ईस्ट उदारवादी और सुसंस्कृत न्यायविद थे। वे प्रस्ताव पर राजी हो गये और उनके संरक्षण में एक सभा बुलाने का आयोजन चलने लगा। 16 मई 1816 को सर एडवर्ड के घर एक अँगरेजी स्कूल या कालेज की स्थापना के लिए सभा बुलाई गई जिसमें लगभग पचास विशिष्ट हिन्दू नागरिक उपस्थित हुए। उनमें कुछ पण्डित और विद्वान भी थे लेकिन इस सभा में न तो राममोहन उपस्थित थे और न ही डेविड हेयर। जिन दोनों व्यक्तियों ने इस कार्य के लिए दिन रात कड़ी मेहनत की वही दोनों वक्त आने पर हटकर किनारे खड़े हो गये। इसका कारण यह था कि कट्टर पंथी हिन्दू नेताओं ने राममोहन के साथ एक ही कमेटी में सहयोग देने से अस्वीकार कर दिया यहाँ तक कि उन्होंने यह शर्त लगा दी कि राममोहन से चंदा भी न लिया जाय—सिर्फ इसलिए, चूँकि राममोहन ने धार्मिक पाखण्डों के खिलाफ अपना आक्रमण छेड़ रखा था। इस बारे में सर एडवर्ड के पत्र के कुछ और अंश प्रासंगिक हैं :

"....Talking afterwards with several of the company, before I proceeded to open the business of the day, I found that one of them in particular, a Brahmin of good caste, a man of wealth and influence, was mostly set against Rammohun Roy....(who has lately written against Hindu idolatry and upbraids his countrymen pretty sharply). He expressed a hope that no subscription would be received from Rammohun Roy."[10]

जब सर एडवर्ड ने कहा कि मैं तो ईसाई हूँ मुझसे चंदा लेने में तुम्हें कुछ आपत्ति तो हो सकती है तो उन्होंने कहा—

"....No, not at all we shall be glad of your money; but it is different thing with Rammohun Roy, who is a Hindu and yet has publicly reviled us and written against us and our religion...."[11]

राममोहन को जब पता चला कि हिन्दू समाज का एक प्रभावशाली वर्ग जिनकी सहायता और धन से हिन्दू कालेज की स्थापना हो सकती है, उनको नहीं चाहते तो उन्होंने एक महान उद्देश्य की सफलता की खातिर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ या मर्यादा की भी परवाह नहीं की। उन्होंने सर एडवर्ड हाइड ईस्ट को पत्र लिखकर यह सूचित कर दिया कि उनका नाम हिन्दू कॉलेज की कमेटी से निकाल दिया जाय जिससे कार्य-सिद्धि में कोई बाधा न पड़े। ऐसा ही निर्णय किया गया और 21 मई 1816 की सभा में हिन्दू कॉलेज की कार्यकारिणी सभा बनाई गई, जिसमें आठ यूरोपियन और बीस भारतीय थे। धन इकट्ठा हो गया और 20 जनवरी 1817 को हिन्दू स्कूल जो बाद में हिन्दू कॉलेज और आज प्रेसीडेन्सी कॉलेज के नाम से प्रसिद्ध है की स्थापना हो गई। समारोह में सर एडवर्ड और डेविड हेयर के अलावा अनेक विशिष्ट देशी और विदेशी नागरिक उपस्थित थे। अनेक वक्ताओं ने भाषण दिये लेकिन किसी ने भी राममोहन का एक बार नाम तक नहीं लिया। जिन्होंने इस योजना के पीछे अपनी पूरी शक्ति लगाई थी।[12] अकसर इस तथ्य को भुला दिया जाता है कि दीवान वैद्यनाथ मुखोपाध्याय, जिन्होंने इस संस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया था और इस संस्था के पहले देशी-सचिव नियुक्त हुए थे, वस्तुतः राममोहन के अंतरंग के सहयोगी थे और 'आत्मीय सभा' के आरम्भिक सदस्य भी। इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने अवश्य ही इस कार्य में राममोहन से प्रेरणा और सलाह ली होगी।[13]

1817 में राममोहन कलकत्ता में दो वर्ष पूरे कर रहे थे। इस समय

उन्होंने एक पत्र द्वारा अपने पुराने मित्र डिगबी साहब को अपने कार्यक्रम और उद्देश्यों का ब्योरा लिख भेजा था। इसी समय राममोहन ने "वेदान्त सार" और "केन उपनिषद्" के अँगरेजी अनुवादों की प्रतियाँ डिगबी के पास विलायत भेजी थी। इन अनुवादों का डिगबी ने लन्दन से 1817 में पुनर्मुद्रण कराया जिनकी भूमिका में राममोहन का परिचय देते हुए उस पत्र का उद्धरण दिया था :

इस पत्र के प्रासंगिक अंशों का भावानुवाद नीचे दिया जा रहा है। पत्र राममोहन की चिन्तन और विचारधारा के विकास को समझने में सहायक होगा ;—

"आपके भारत छोड़ने के बाद, मुझे अपने कार्यक्रमों के बारे में संक्षिप्त विवरण भेजने का यह पहला सुयोग प्राप्त हुआ है। वास्तविक सच्चा धर्म क्या है इस विषय पर सतत अनुसंधान और शोधकार्य के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सम्भवतः ईसामसीह के उपदेश और ईसाई धर्म सिद्धान्त, परिचित दूसरे धर्मों की अपेक्षा, नैतिक स्तर पर बुद्धि-सम्पन्न लोगों को अधिक ग्रहण योग्य लगे। मुझे यह भी प्रतीत होता है कि हिन्दू लोग स्वाभाविक रूप से अधिक अंधविश्वासी और दयनीय स्थिति में है। वे अपने धार्मिक रीति-रिवाजों के पालन में और घरेलू आचार-व्यवहार में, पृथ्वी की दूसरी जातियों से पिछड़े हुए हैं। इसी से मैंने इन लोगों को इहलोक और परलोक में सुखी बनाने के उद्देश्य से, न केवल मूर्तिपूजा की विसंगतियों को दूर करने के लिए शास्त्रार्थ का रास्ता अपनाया, बल्कि उनके सम्मानित पवित्र धर्मग्रंथों में "वेदान्त" का बंगला और हिन्दुस्तानी में, तथा वेदों के कुछ अंश का अनुवाद प्रकाशित किया। जिससे ईश्वर की एकरूपता और मूर्तिपूजा की विसंगतियों के बारे में उनका सन्देह दूर किया जा सके जैसा कि उनके अपने धर्म-ग्रंथों में स्पष्ट रूप से लिखा है। मेरी इन प्रचेष्टाओं के प्रारम्भिक स्थिति में स्वार्थी धार्मिक नेताओं और ब्राह्मण वर्ग से मुझे भयंकर विरोध का सामना करना पड़ा और मुझे मेरे निकटतम नाते रिश्तेदार भी छोड़ गये। फलस्वरूप मुझे बहुत ही निराशा हुई। उस संकट की घड़ी में मुझे केवल यूरोपीय लोगों में विशेष रूप से स्कॉटलैण्ड और इंगलैण्ड के थोड़े से मित्रों से सहानुभूति और सम-वेदना मिली।

लेकिन अब मैं प्रसन्नतापूर्वक कह सकता हूँ कि अब मेरे कुछ अपने देशवासी भी अंधविश्वासों से उबरकर सत्य की खोज में जुटे हैं और बहु-तेरे जिनसे मेरा मतविरोध था अब मेरे समविचार वाले बन गये हैं। इस व्यस्तता के कारण मैं इच्छानुसार यूरोप रवाना नहीं हो सका। लेकिन

आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि मैं शीघ्र ही इंगलैण्ड के लिए रवाना हो जाऊँगा....।"[14]

इस पत्र से स्पष्ट है कि राममोहन के मन में विलायत जाने की इच्छा शुरू से ही थी और उनकी इस अभिलाषा के पूरे होने में काफी वर्ष लग गये। 1830 में वे इंगलैण्ड की यात्रा पर जा सके।

डिगबी साहब एक बार फिर 1821-22 में हिन्दुस्तान लौट आये। इस बार वे वर्धमान में नियुक्त हुए। कहना न होगा कि राममोहन इस दौरान अकसर अपने पुराने मित्र से मिलते रहे होंगे।[15] दुर्भाग्यवश डिगबी 1824 ई०, में बीमार पड़े और साल भर की छुट्टी पर लौटते हुए 'केप आफ गुड होप' (उत्तमाशा अन्तरीप) के आसपास उनका निधन हो गया।

रूढ़िग्रस्त समाज पर एक और आक्रमण

हम पहले ही देख चुके हैं कि राममोहन के बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु पर उनकी पत्नी को उसी चिता में जला दिया गया था जिस घटना का राममोहन के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने इस प्रथा को समाप्त करने की प्रतिज्ञा की थी। यह किंवदन्ती सच हो या न हो, राममोहन इस बर्बर रीति के घोर विरोधी थे। इस पैशाचिक रीति का विरोध किसी न किसी रूप में हमेशा ही विद्यमान था। यहां तक कि मुगल बादशाह अकबर, जहाँगीर और औरंगजेब ने भी इस प्रथा को समाप्त करने की थोड़ी बहुत कोशिश की थी। मराठों में बाजीराव पेशवा ने अपने अधिकार क्षेत्र में सती प्रथा बन्द करवा दी थी।[16] लेकिन इन कोशिशों के बावजूद यह प्रथा चली आ रही थी और सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में जब देश में अराजक स्थिति विद्यमान थी तो यह पैशाचिक प्रथा और भी जोरों पर थी। इसका प्रकोप मुख्यतः उत्तरी-पूर्वी भारत और बंगाल क्षेत्र में अधिक था। यूरोपियों का भारत में आगमन आरम्भ हुआ तो स्वाभाविक ही था कि उन लोगों का ध्यान इस ओर जाता। यहाँ तक कि 1510 में पुर्तगाली इलाकों में अलबुकार्क ने सती-प्रथा पर निषेधाज्ञा जारी करने की कोशिश की थी। बाद में, डच और फ्रांसीसियों ने इसकी रोकथाम के लिए कुछ प्रयास किये थे।[17] अँगरेजों ने जब देश पर अधिकार जमाया तो उनके सामने भी यह समस्या मुँह बाये खड़ी थी। प्रश्न यद्यपि मानवीय था लेकिन धर्म की आड़ होने के कारण अँगरेज शासक इस ओर हाथ बढ़ाने से घबराते थे। इस प्रसंग में जॉब चार्नक के बारे में किंवदन्ती मशहूर है[18] कि उन्होंने एक रूपवती स्त्री को सती होने से बचाया था और बाद में उसी स्त्री से विवाह भी किया।

इसी बीच यद्यपि यह प्रश्न काफी गम्भीर बनता जा रहा था, किन्तु 1812-13 तक कम्पनी तय नहीं कर पाई थी कि इस समस्या को कैसे हल

किया जाय। आखिरकार सुप्रीम कोर्ट की आज्ञानुसार इस प्रथा को नियंत्रित करने के उपाय मात्र सुझाये गये ताकि किसी विधवा को उसकी इच्छा के विरुद्ध चिता में न झोंका जा सके। आश्चर्य की बात यह है कि इस सरकारी आदेश के विरुद्ध भी कुछ पुरानपंथी और रूढ़िवादी लोग खड़े हो गये। उनकी दलील थी कि यह धर्म में खुल्लम खुल्ला हस्तक्षेप है। कम्पनी के पास रूढ़िवादियों की ओर से एक आवेदन पत्र भेजा गया। सम्भवत: यही कारण रहा होगा जिसके चलते राममोहन ने इस समस्या की ओर लोगों का ध्यान खीचने के लिए इस प्रथा के विरोध में एक और आवेदन पत्र नागरिकों की ओर से सरकार के पास भिजवा दिया। आवेदन पत्र राममोहन का ही लिखा हुआ था या नहीं इसमें संदेह की गुंजाइश हो सकती है लेकिन पत्र उनके विचारों से प्रभावित अवश्य ही था। इस आवेदन में स्पष्ट कहा गया था—

"....All these instances, your petitioners humbly submit, are murders according to every SHASTRA, as well as the common sense of all nations."[19] अर्थात् इस प्रथा को किसी भी शास्त्र या किसी भी सामान्य-ज्ञान के आधार पर केवल मात्र 'हत्या' ही कहा जायगा।

यह घिनौनी प्रथा पूरे हिन्दू समाज के लिए कलंक का टीका थी। भारतीय नारी की दयनीय दशा मध्ययुगीन काल से ही चली आ रही थी। अठारहवी सदी के अन्त में यह अवस्था विद्रूपता की परम सीमा पर थी। राममोहन ने सती होने की घटनाएँ देखी-सुनी थीं। अपने बड़े भाई की पत्नी को भाई के साथ चिता पर जलाये जाते देखा था और तभी उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि इस निर्मम और हिंस्र प्रथा का अंत करके रहेंगे। इस मध्ययुगीन प्रथा की नृशंसता की ओर सबसे पहले यूरोपीय मिशनरियों का ध्यान गया था। यद्यपि राममोहन के काल तक पहुँचते-पहुँचते अँगरेजी शासन के पचास वर्ष पूरे हो चुके थे तथापि अंगरेज शासक इस प्रथा को उखाड़ फेंकने का साहस जुटा नहीं सके थे। उन्हें हमेशा डर लगा रहता कि ऐसी किसी भी कार्यवाही को धर्म में हस्तक्षेप न समझा जाय। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उस समय राज्य विस्तार के काम में व्यस्त थी, इसी से वह फूँक-फूँककर कदम रखने की नीति पर चल रही थी। धर्म और धार्मिक मामले में हाथ लगाना नीति विरुद्ध था। हमेशा डर बना रहता कि कहीं विद्रोह न खड़ा हो जाय। श्रीरामपुर के ईसाई पादरी इस प्रथा के विरोध में दबी जुबान से प्रचार करते थे। और कुछ अंगरेज राजकर्मचारी भी इस प्रथा को उखाड़ फेंकने के पक्ष में थे, लेकिन कुछ हो नहीं पा रहा था। इधर स्थिति कितनी भयंकर थी, इसका ब्योरा 1815 से 1818 तक कुछ जिलों में हुई सती की घटनाओं की सूची से स्पष्ट हो जायेगा :

	1815	1816	1817	1818	योग
कलकत्ता डिविजन	253	289	442	544	1528
ढाका	31	24	52	58	165
मुर्शिदाबाद	11	21	42	30	104
पटना	20	29	49	57	155
बनारस	48	65	103	137	353
बरेली	15	13	19	13	60
	378	441	707	839	2365

आज जब हम इस भयंकर स्थिति पर विचार करते हैं तो दिल दहल उठता है। राममोहन को तभी लगा कि ये सब सती के नाम पर घटित हत्याएँ हैं, केवल सीधी हत्याएँ। शास्त्रों का बहाना वे मानने को तैयार नहीं थे। फिर क्या था उन्होंने इस विषय पर गहराई से अध्ययन आरम्भ कर दिया और इस कलंक के विरुद्ध लेखनी उठा ली। समाज के संस्कारवादी पुरोहितों के खिलाफ़ आवाज़ उठाने की हिम्मत केवल उन्हीं में थी। इस विषय पर उनकी पहली पुस्तिका 'सहमरण विषयक प्रवर्तक ओ निवर्तकेर संवाद' का प्रकाशन 1818 में हुआ। पुस्तिका में राममोहन ने लोकाचार, शास्त्रीय ढकोसले और आधार भूत शास्त्रीय व्याख्या के साथ इस प्रथा का तीव्र विरोध किया। प्रतिक्रियाशील हिन्दू समाज के संरक्षक परम्परा की दुहाई दे रहे थे। राममोहन ने उनको जवाब देते हुए लिखा। 'कोई भी व्यक्ति जिसको लोकभय और धर्मभय है, वह कभी नहीं कहेगा कि परम्परा से स्त्री वध, मनुष्य वध और चोरी आदि करके कोई भी व्यक्ति निष्पाप बना रह सकता है।'' इस पुस्तक का अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित करके राममोहन ने बँटवाया।

26 दिसम्बर 1818 के 'समाचार दर्पण' में इस पुस्तक के प्रकाशन का उल्लेख करते हुए लिखा था 'कलकत्ते के श्रीयुत् राममोहनराय ने सहमरण के विषय में एक पुस्तक लिख सर्वत्र प्रचारित किया है....इसमें मोटे तौर पर यही लिखा है कि सहमरण के बारे में ठीक-ठीक विचार करें तो पायेंगे कि शास्त्रों में इस प्रथा के पक्ष में कहीं भी कुछ भी नही लिखा है।....''

इंग्लैण्ड से प्रकाशित **'एशियाटिक जर्नल'** के 19 जुलाई 1819 के अंक में यह तथ्य प्रकाशित हुआ जिसका भावानुवाद कुछ इस प्रकार है—

एक ब्राह्मण के छोटे से शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन से चारों ओर सनसनी फैल गई है—यह सती प्रथा पर छोटी सी पुस्तिका है।

इंडिया गजट का कहना है 'हमें सूचित किया गया है इस छोटी सी पुस्तिका (सती प्रथा पर) को दुबारा एक अखबार में छापा गया है। यह पुस्तिका

कुछ समय से बँगला भाषा में छपवाकर बँटवाया जा रहा है। यह देशी लोगों द्वारा ही परिचालित हो रहा है। राममोहन राय के परिश्रम से जो यह अतिरिक्त प्रचार किया जा रहा है उससे अवश्य ही लाभदायक फल निकलेगा और हमें प्रसन्नता है कि बँगला पत्रिका के परिचालक इस लेख को छापकर अपने देश वासियों की सेवा कर रहे हैं। इधर एक प्रभावशाली हिन्दू विद्वान ने घोषणा की है कि हैजा-महामारी से तब तक राहत नहीं मिल सकती जब तक क्रुद्ध देवी-देवताओं को पूजा-अर्चना से शान्त नहीं किया जाता....।'[21]

यह ठीक है कि राममोहन ने सती विषयक पहली पुस्तिका 1818 में प्रकाशित की थी लेकिन वस्तुतः उनका यह आन्दोलन कुछ वर्ष पहले ही आरम्भ हो गया था। श्रीमती फ्रांसीस कीथ मार्टिन ने **बंगाल हरकारू** में 1829 में प्रकाशित एक पत्र में इस बात की पुष्टि की है। उन्होंने लिखा था कि राम-मोहन पिछले अठारह वर्षों से बुद्धिमानी, साहस और शक्ति के साथ इस आन्दोलन में जुटे हैं।[21] (a)

राममोहन और उनके साथी प्रगतिवादियों के विरोध में कुछ प्रतिक्रिया-वादी हिन्दुओं की ओर से एक जवाबी अपील लार्ड हेस्टिंग्स के पास अगस्त 1818 को भेजा गया। उस समय कुछ हल्की पाबंदियाँ थीं। 1819 में **इंडिया गज़ट** में प्रकाशित एक पत्र से इस अपील के बारे में मालूम हुआ:

In the year 1818, a body of Hindoos prepared a petition to Government, for the removal of existing restrictions on burning Widows.... while another body petitioned for at least further restrictions, if not the total abrogation of the practice, upon the ground of its absolute illegality."[22]

राममोहन की सहमरण विषयक बंगला पुस्तिका के प्रकाशन और उसके अंगरेजी अनुवाद के प्रचार से कलकत्ता और बंगाल क्षेत्र के रूढ़िवादी कट्टर हिन्दुओं में रोष की लहर दौड़ गई। अब वे लोग एकजुट होकर राममोहन के प्रगतिवादी विचारों के विरुद्ध खड़े हो गये। कलकत्ता के व्यापारी वर्ग के अगुआ कालाचाँद बसु के अनुरोध पर काशीनाथ तर्कवागीश ने सती प्रथा के पक्ष में एक पुस्तिका 'विधायक निषेधकेर संवाद' 1819 में प्रकाशित की। यह पुस्तिक बिना किसी नाम के प्रकाशित हुई। राममोहन ने 1819 में ही इसके उत्तर में एक दूसरी पुस्तिका 'सहमरण विशये प्रवर्तक ओ निवर्तकेर द्वितीय संवाद' और इसका अंगरेजी अनुवाद 'A second conference between an Advocate and an opponent of the practice of Burning widows alive' (Calcutta, Nission Press 1819) प्रकाशित किया।[23] अँगरेजी अनुवाद का समर्पण To the most noble the Marchioness

of Hastings अर्थात बड़े लाट साहब लार्ड हेस्टिंग्स की पत्नी को जानबूझ कर किया गया। समर्पण पृष्ठ की दूसरी ओर लिखा था 'The following tract being the translation of a Bengalee essay, published sometime ago, as an appeal to reason in behalf of humanity I take the liberty to dedicate to YOUR LADY SHIP for, to whose protection can any attempt to promote a benevolant purpose be with so much propriety committed ?[24] गवर्नर जनरल की पत्नी को किया गया समर्पण राममोहन की व्यवहार कुशलता का ही परिचायक था।

राममोहन ने काशीनाथ तर्कवागीश के तर्कजाल को एक से एक दलील देकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

इस पुस्तक के प्रकाशन के काफी वर्षों बाद 1829 में राममोहन ने सती-दाह पर अन्तिम पुस्तिका लिखी। यद्यपि तब तक ब्रिटिश सरकार ने इस प्रथा पर रोक लगाने का फैसला कर लिया था, फिर भी इस पुस्तिका को लिखने के तात्कालिक कारण था **'समाचार चन्द्रिका'** में सतीप्रथा के पक्ष में प्रकाशित दो पत्र। इसके पश्चात उनका अंतिम लेख अँगरेजी में था जो उन्होंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश किया था।

1805 से 1830 तक पच्चीस वर्षों के दौरान ब्रिटिश सरकार किस प्रकार धर्म के नाम पर चलते इस नारी हत्या की प्रथा को बन्द किया यह एक लम्बा इतिहास है। अन्त में 4 दिसम्बर 1829 को लार्ड बेन्टिक ने सतीप्रथा पर निषेधाज्ञा जारी करके इंगलैण्ड में कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास अपना फैसला लिख भेजा। इस घटना के बाद कुछ रूढ़िवादी हिन्दुओं ने एक बार फिर बड़े लाट साहब के पास आवेदन-पत्र भेजा। उसमें लिखा था—'Some blasphemous persons whose minds are infected with atheism, misinterpret the meanings of text of several intelligent sages through their incompetence to understand the genuine construction of the law.'

कुछ विधर्मी लोग जिनका हृदय नास्तिकता के विष से जर्जरित है वे मुनि-ऋषियों द्वारा रचित शास्त्रों का गलत अर्थ लगायेंगे क्योंकि धर्म का मूल अर्थ समझने की शक्ति उनमें नहीं है।[25] यह था राममोहन और उनके साथियों पर सीधा आक्रमण।

बड़े लाट साहब ने इस अपील के उत्तर में लिखा कि उन्होंने सब कुछ समझ-बूझकर ही निषेधाज्ञा जारी की है और इस अपील को खारिज कर देना

ही ब्रिटिश सरकार अपना परम कर्तव्य समझती है। यह उत्तर 14 जनवरी 1830 को सरकारी दफ्तर से भेजा गया।

सरकार की ओर से जो उत्तर मिला उसका अंश इस प्रकार है '....have made it an urgent duty of the British Government to prevent the usage in support of which the petition has been preferred.'

..only confirmed the supposition that widows are not by the religious writings of the Hindoos commanded to destroy themselves. अर्थात् किसी भी हिन्दू शास्त्र में आत्महत्या का प्रावधान नहीं हैं।

उसी दौरान और भी प्रदर्शन हुए, जिनमें सरकार के सतीप्रथा विरोधी नीति का समर्थन किया गया। पहला था, कलकत्ते के ईसाई निवासियों की ओर से। इस अपील पर आठ सौ लोगों के हस्ताक्षर थे और दूसरी अपील राममोहन और उनके सहयोगियों की ओर से पेश की गई। यह पत्र वस्तुतः राममोहन का लिखा हुआ था, जो टाउन हाल में 16 जनवरी 1830 को एक सभा बुला कर बड़े लाट साहब को अभिनन्दन-पत्र में रूप के पेश किया गया। इस पत्र में, इस महान कार्य के लिए हार्दिक कृतज्ञता का ज्ञापन किया गया।

अगले ही दिन राममोहन के विरोधी दल ने भी संस्कृत कालेज में एक सभा बुलाई और तय किया गया कि इंगलैण्ड पार्लियामेंट के सामने अपनी अपील भेजेंगे। इस काल का विस्तृत विवरण यथास्थान दिया जायगा।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collet, पृ० 59 में राममोहन के कलकत्ता आने का वर्ष 1814 माना है। सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया है कि बाद में शोध कार्यों के आधार पर स्पष्ट है कि राममोहन नवम्बर 1815 से पहले कलकत्ता नहीं पहुँचे होंगे (देखें पाद टीका)।

2. मुखोपाध्याय, पृ० 78-79 के अनुसार 1814 के आसपास राममोहन ने दोनों मकान अंगरेज मालिकों से खरीदा था। वे मानिकतला के मकान में ही रहा करते थे।

3. Collet, पृ० 60. सम्पादकीय पाद टीका देखें।

4. मुखोपाध्याय, पृ० 82.

5. Collet, पृ० 101. सम्पादकीय टिप्पणी देखें। हरिहरानन्द हुगली जिला के पालपाड़ा गाँव के निवासी थे। साधु बनने के बाद जगह-जगह घूमते फिरे। रंगपुर में जाकर वे अपने बचपन के मित्र से फिर मिले। वे बाद में

आत्मीय सभा की बैठकों में भाग लेते थे। तांत्रिक सन्यासी होते हुए भी प्रगतिशील विचारों के पोषक थे। 1818 में उन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध राममोहन का समर्थन किया था। उन्होंने 'कुलार्णव तंत्र' के नाम से 'महानिर्वाण तंत्र' की टीका प्रकाशित की थी। 1832 में उनकी बनारस में मृत्यु हुई।

6. मुखोपाध्याय, पृ० 82-83. तत्वबोधिनी पत्रिका से उद्धृत।

7. Collet, पृ० 98-99. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

8. Collet, पृ० 64. राममोहन की अंगरेजी रचनावली से उद्धृत।

9. Iqbal Singh, पृ० 126. इंगलैण्ड में जे० एम० हेरिंगटन को लिखे पत्र में।

10. वही, पृ० 126.

11. वही, पृ० 127.

12. वही, पृ० 128.

13. Collet, पृ० 104, सम्पादकीय टिप्पणी में (पृ० 103 में) योगेश चन्द्र बागाल के लेख THE ORIGINS OF THE HINDU COLLEGE से उद्धृत करते हुए आगे लिखा है कि अंगरेजी शिक्षा के लिए एक उच्च शिक्षा की संस्था की स्थापना का प्रस्ताव डेविड हेयर ने, राममोहन के घर पर मित्रों की छोटी सी सभा में रखा गया था, जिसका समर्थन सभी उपस्थित व्यक्तियों ने किया।

14. Collet, पृ० 71-72. यह पत्र लन्दन से प्रकाशित Abridgment of the Vedant और Kena Upanishad की भूमिका में है, जिसका प्रकाशन 1817 में हुआ था। प : अवश्य ही 1816 के अन्तिम दिनों मे या 1817 के आरम्भ में लिखा गया होगा। (सम्पादकीय टिप्पणी देखें)।

15. Collet, पृ० 72.

16. Iqbal Singh, पृ० 193.

17. वही, पृ० 193.

18. वही, पृ० 194.

19. Majumdar, J. K. : Rammohun Roy and Progressive movements in India. p. 116.

'एशियाटिक जर्नल' के जुलाई 1819 के अंक में कलकत्ता के प्रतिष्ठित नागरिकों के द्वारा हस्ताक्षर युक्त एक आवेदन-पत्र को गवर्नर जनरल को दिया गया था, प्रकाशित हुआ। मजुमदार के अनुसार यह आवेदन-पत्र सम्भवत: 1818 में पेश किया गया था। (पृ० 115)

20. Collet, पृ० 84.

21. Majumdar, पृ० 117-118.

21 (a). Collet, पृ० 105-106.

22. वही, पृ० 113. 'इण्डिया गजट' में प्रकाशित (27 मार्च 1818) 'हरिहरानन्द' के पत्र से ।

23. मुखोपाध्याय, पृ० 318-319.

24. वही, पृ० 319 में उद्धृत ।

25. वही, पृ० 321-322.

अध्याय—5

शास्त्रार्थ का युग—प्रथम चरण

एक बार फिर 1817 के काल में लौट आयें। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वेदान्त, उपनिषदों के अनुवाद, सती-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन ने राममोहन को वाद-विवाद और सामाजिक आन्दोलनों के बीच में खड़ा कर दिया था। जिन वेदों और शास्त्रों का ब्राह्मणों के सिवा किसी को पढ़ने या सुनने का अधिकार नहीं था, वही अब साधारण जनता के हाथों में आसानी से उपलब्ध था। रूढ़िवादियों के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी थी। दूसरी ओर सती-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन ने जिसमें राममोहन ने तथाकथित शास्त्रों और उनके व्याख्याताओं को खुले आम चुनौती दी जिसका आंशिक विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। यहाँ तक कि गाली-गलौज और झूठे लांछन लगाना आरम्भ कर दिया। चारों ओर से राममोहन पर आक्रमण होने लगे। वस्तुत: राममोहन के लिए 1817 से 1824 का समय इन आक्रमणों से बचाव और प्रत्याक्रमण का काल था। इस काल में न जाने कितने ही पण्डितों और विद्वानों से वे पत्र, लेख, पुस्तिकाओं के प्रकाशन और शास्त्रार्थ सभाओं के द्वारा अपना आन्दोलन जारी रखे हुए थे। इस काल के पहले चरण में उनका संघर्ष हिन्दू रूढ़िवाद के खिलाफ़ था और दूसरे चरण में उन्होंने ईसाई धर्म प्रचारकों के विरुद्ध अपना आन्दोलन चलाये रखा। उनके प्रकाशनों और आन्दोलन की खबर देश के कोने-कोने में यहाँ तक कि इंगलैण्ड, यूरोप और अमेरिका में फैलने लगी थी।

शास्त्रार्थ के इस दौर में सबसे पहला शास्त्रार्थ, जिसके बारे में बाद के शोधकर्ताओं ने खोज निकाला था वह था उनके अपने आत्मीय सभा के एक वरिष्ठ सदस्य उत्सवानन्द विद्यावागीश भट्टाचार्य के साथ। उत्सवानन्द वैष्णव पण्डित थे। बाद में, राममोहन के शिष्य और ब्राह्म समाज का मन्दिर स्थापित होने पर प्रमुख कार्यकर्ता बने।[1] उन्होंने अनेक तर्कों के द्वारा प्रतिपादित करने की कोशिश की कि राममोहन के आत्मीय सभा में जो एकेश्वरवाद और निराकार ब्रह्म के बारे में प्रचार होता है वह शास्त्र सम्मत नहीं है। उत्सवानन्द विष्णु के भक्त थे इसी से उन्होंने पूरा प्रयत्न किया कि विष्णु ही भगवान का मुख्य स्वरूप है और इसी रूप की पूजा श्रेयकर है। राममोहन ने इसके उत्तर में शास्त्रों से उद्धृत करते हुए जो कुछ लिखा वह पहला शास्त्रार्थ ग्रंथ 'उत्सवानन्द विद्यावागीशेर सहित विचार' 1816 में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रति, उत्सवा-

नन्द का उत्तर, और इसका प्रत्युत्तर ये तीनों पुस्तिकाएँ, श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय ने श्रीरामपुर कालेज पुस्तकालय में से ढूंढ़ निकाली थी।[2] ये बंगला लिपि में संस्कृत भाषा में है। उत्सवानन्द विद्यावागीश ने मई 1816 को कुछ प्रश्न और अपने तर्क आत्मीय सभा में भिजवा दिये थे। प्रश्नों का उत्तर राममोहन ने संस्कृत में दिया था। यद्यपि पुस्तिकाओं में राममोहन राय का नाम नहीं है फिर भी यह स्पष्ट है कि इन पुस्तिकाओं के लेखक राममोहन ही हैं। कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी के 1819-20 के वार्षिक विवरण के परिशिष्ट में देशी छापाखाना में मुद्रित पुस्तकों की तालिका में इन पुस्तिकाओं के नाम हैं और इनके लेखक का नाम राममोहन राय दिया हुआ है। 19 नवम्बर 1816 के मद्रास कुरियर में राममोहन की पुस्तकों और कार्य पर एक प्रशंसात्मक सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित हुई। इस सम्पादकीय की प्रतिक्रिया स्वरूप 26 दिसम्बर 1816 को उसी पत्रिका में एक तीव्र आलोचनात्मक लम्बा पत्र प्रकाशित हुआ। पत्र के लेखक थे मद्रास गवर्नमेन्ट कालेज के कोई अंगरेजी अध्यापक श्री शंकर शास्त्री। उन्होंने राममोहन के निराकार ब्रह्म की उपासना का उपहास करके मूर्तिपूजा की पैरवी की। द्वैत और अद्वैत साधना की व्याख्या करते हुए अनुष्ठानों तथा धार्मिक रीति-रिवाजों के औचित्य की पैरवी करते हुए उन्होंने राममोहन की तीव्र आलोचना की। उन्होंने यहाँ तक कहा कि परब्रह्म या निराकार ब्रह्म की साधना से पहले देवी-देवताओं की पूजा या साधना ही सही रास्ता है।

राममोहन ने शंकर शास्त्री के पूरे पत्र को उद्धृत करते हुए एक सारगर्भित लेख "A Defence of Hindu Theism" हिन्दू ईश्वरवाद के पक्ष में प्रकाशित किया। पत्र अँगरेजी में था तो राममोहन ने अँगरेजी में ही इसका उत्तर दिया। लेख के आरम्भ में ही क्षमा माँगते हुए यह लिखा कि दुख का विषय है कि हिन्दू धर्म पर वाद-विवाद उन्हें विदेशी भाषा में करना पड़ रहा है। इस पुस्तक में शंकर शास्त्री द्वारा उठाये गये सभी आपत्तियों का एक-एक करके शास्त्रीय तरीके से खण्डन किया। वैसे शंकर शास्त्री नामधारी व्यक्ति वस्तुतः कोई भारतीय था या छद्मवेशी कोई अँगरेज, इस बारे में सन्देह की गुंजाइश रही है। शंकर शास्त्री का पत्र पढ़कर राममोहन को सन्देह हुआ कि यह किसी अँगरेज छद्मनाम धारी व्यक्ति का लिखा हुआ होगा :

"The letter is the production of an Englishman, whose literality, I suppose, has induced him to attempt an apology even for the absurd idolatry of his fellow creatures."

लेख में राममोहन ने प्रकृति में किस प्रकार ईश्वर का विश्वास दीख पड़ता है इसकी व्याख्या की है :

विद्वान सज्जन के इस कथन से, कि अदृश्य सर्वशक्तिमान परमात्मा के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की असुविधाओं को पिछले कुछ श्लोकों में स्पष्ट किया गया है, से मैं सहमत हूँ। मेरे विचार में ईश्वरीय प्रकृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव सा है। लेकिन मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि साधारण बुद्धिसम्पन्न और पूर्वग्रह मुक्त मनुष्य के लिए सर्व-शक्तिमान ईश्वर की सत्ता को प्रकृति में खोज पाना कठिन नहीं। लेकिन यह सोचना कि कृत्रिम मूर्तियाँ मानवीय या ईश्वरीय गुणों से युक्त हो सकती हैं जैसा कि मूर्तिपूजक अकसर अपनी देवी-देवताओं की मूर्तियों के बारे में आरोपित करते है और आश्चर्यजनक रूप से विश्वास करते हैं कि गढ़ी हुई मूर्तियाँ धर्मानुष्ठानों के द्वारा संसार के निर्माता का स्थान ले सकती है—यह विचार युक्तिसंगत नहीं लगता।[8]

मूर्तिपूजा का विरोध करते हुए राममोहन ने आगे तर्क दिया कि जो निराकार का ध्यान करने में असमर्थ हैं उनके लिए शास्त्रों में साकार पूजा की व्यवस्था है लेकिन सारे मानव जाति में ऐसी कोई व्यवस्था है, यह सत्य नहीं। मुसलमानों में धनी-दरिद्र विद्वान-मूर्ख, यूरोप के प्रोटेस्टेन्ट ईसाई, भारत के कबीर पन्थी और नानक पंथी सिख, सभी मूर्ति के बिना ही ईश्वर की पूजा करते हैं।[4]

शंकर शास्त्री यदि अँगरेज न भी रहे हों तो भी कैथलिक-ईसाई अवश्य थे इसी से उन्होंने मूर्तिपूजा का समर्थन किया।[5] इसी सिलसिले में एक और घटना का विवरण देना प्रासंगिक होगा। कुछ विद्वानों का मत है इस पत्र के लेखक और कोई नही, 'मदरास लिटरेरी सोसाइटी' के श्री ऐलिस थे। एलिस महोदय ने राममोहन पर वैदिक शास्त्रों की ठीक व्याख्या न करने और साहित्यिक जालसाजी का आरोप लगाया। 6 अगस्त 1817 को कलकत्ते के एशियाटिक सोसाइटी की एक सभा में एलिस साहब की ओर से एक लेख पढ़ा गया। इस लेख में एलिस साहब ने आरोप लगाया कि राममोहन ने दक्षिण भारत के किसी प्रक्षिप्त वेद ग्रन्थों के आधार पर वेदान्त की व्याख्या आदि प्रचारित की है। 'कलकत्ता मंथली जर्नल' के अगस्त 1817 के अंक में सभा में पढ़े गये लेख के बारे में रिपोर्ट छपी।[6] विवरण संक्षेप में कुछ इस प्रकार है :

1778 में पेरिस से वेदों के बारे में एक पुस्तक 'L'Ezour Vedam' प्रकाशित हुई। यह भारतीय विद्वानों द्वारा वेदों की व्याख्या का संस्कृत से फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद था। लेकिन बाद की खोजों से ज्ञात हुआ पुस्तक जाली है और किसी ईसाई मिशनरी ने लिखी है। एलिस साहब ने यह भी बताया कि इस पुस्तक के हस्तलेख की प्रतिलिपि पांडिचेरी के कैथोलिक मिशनरियों के पास है। इसके अतिरिक्त कुछ और हस्तलेख भी हैं जिन सबका उद्देश्य हिन्दुओं

के प्रचलित विश्वासों का खण्डन करना है। स्थानीय ईसाइयों का मत है, ये ईसाई पादरी Robertus de Nobilibus के लिखे ग्रंथ हैं। यह व्यक्ति हिन्दुओं और ईसाइयों में अपनी विद्वत्ता के लिए परिचित था। शायद इन ग्रंथों की नकल और फ्रांसीसी अनुवाद ही पेरिस से प्रकाशित हुआ क्योंकि विषय वस्तु में भारी मेल है। इधर राममोहन के लेख भी धार्मिक विषयों पर उक्त ईसाई पादरी के विचारों से मिलते-जुलते हैं।

राममोहन पर विषयवस्तु और विचारों की चोरी का एलिस साहब का आरोप चाहे तर्क के आधार पर ठहरता न हो फिर भी यह स्पष्ट है कि मुख्य उद्देश्य राममोहन को बदनाम करना ही था। लेकिन Calcutta Monthly Journal के अंक में राममोहन के पक्ष का समर्थन करते हुए और एलिस साहब के आरोपों का खण्डन करते हुए एक लेख प्रकाशित हुआ। इसमें स्पष्ट किया गया कि राममोहन का उद्देश्य हिन्दू धर्म सिद्धान्तों का खण्डन नहीं बल्कि हिन्दू धर्म के वास्तविक सिद्धान्तों को सही शब्दों में प्रस्तुत करना है जो एकेश्वर-वाद पर आधारित है।[7]

शास्त्रार्थ का यह केवल आरम्भ मात्र था। 'मद्रास कुरियर' के पत्र के प्रकाशन के कुछ ही महीनों के फोर्ट विलियम कॉलेज के हेड पण्डित मृत्युंजय विद्यालंकार[8] ने बंगला और अँगरेजी में 'वेदान्त चन्द्रिका' और An Apology for the Present System of Hindu worship' के नाम से 1817 में एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें राममोहन के विचारों की तीव्र समालोचना थी। इस लेख में कटु समालोचना के अलावा उपहास और व्यंग का सहारा लिया गया। राममोहन भला चुप रहने वाले कहाँ उन्होंने एक काफी लम्बा उत्तर 'भट्टाचार्येर सहित विचार' प्रकाशित किया। इसका अँगरेजी संस्करण 'A Second Defence of the Monotheistical System of the Veds' भी प्रकाशित किया गया। इस लेख में उन्होंने और अधिक विद्वत्तापूर्ण तर्क पेश किये। कटूक्ति और व्यंग्य के बारे में उन्होंने लिखा 'हम लोगों के बारे में जो व्यंग्य, उपहास और कटूक्तिपूर्ण दोषारोप भट्टाचार्य महोदय ने किया है उनका उत्तर न देने का कारण केवल इतना ही है कि परमार्थिक विषयों पर विचार करते समय कटूक्ति का प्रयोग उचित नहीं है। दूसरे, हम लोगों में ऐसी रीति नहीं है कि कटूक्ति के द्वारा कोई शास्त्रार्थ में जीत जाये। इसलिए मैं भट्टाचार्य के कटूक्तियों का उत्तर न देने का अपराधी हूँ।'[9] राममोहन ने इस लेख में यह प्रतिपादित किया कि सम्पूर्ण हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मोपासन ही श्रेष्ठ उपासना का स्वरूप है। 'वेदान्त चन्द्रिका' में मुख्यतः मूर्तिपूजा और परम्पराओं का समर्थन किया गया था। यद्यपि पुस्तक के शीर्षक से लगता है मानो पुस्तक वेदान्त विषयक होगी। लेकिन पुस्तक में ऐसा कुछ नहीं है। तर्क इसी बात पर

जुटाये गये हैं कि हिन्दू धर्म और समाज में प्रचलित धार्मिक रीति-रिवाज और संस्कार जैसे के तैसे कायम रखे जायँ। मूर्तिपूजा के पक्ष में विद्यालंकार महोदय ने कई तर्क पेश किये जिनमें मुख्य तर्क यह था यह सब परम्परा सिद्ध है और प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इस तर्क के उत्तर में राममोहन ने लिखा कि प्राचीनकाल की अपेक्षा आधुनिक काल में मूर्तिपूजा का प्रचार अधिक हुआ है। अधिकतर मन्दिरों का निर्माण पिछले सौ वर्षों में ही अधिक हुआ है। प्राचीनकाल में बहुत थोड़े मन्दिर थे। वस्तुतः देश में जब धन की वृद्धि होती है और ज्ञान का अभाव हुआ है वहीं परमार्थ की साधना शास्त्रीय ढंग से न होकर संस्कारों और लोकाचारों में बदल जाती है।

राममोहन ने 'भट्टाचार्येर सहित विचार' का अँगरेजी अनुवाद विदेशी पाठकों के लिए 'A Second Defence of the Monotheistical System of the Veds' प्रकाशित किया था। ग्रंथ में विज्ञापन में लिखा था 'For my European readers I have thought it advisable to make some additional remarks to those contained in the Bengali publication, which, I hope, will tend to make my arguments more clear and intelligible to them than a bare translation would do.'[10]

अंगरेजी अनुवाद करने का मुख्य कारण यूरोपीय ईसाई पादरियों को हिन्दू धर्म के मूल तत्वों के बारे में सूचित करना था।

राममोहन के पक्ष का समर्थन करते हुए उनके ही शिष्य और मित्र ब्रजमोहन मजुमदार ने 'ब्राह्म पौत्तलिक संवाद' नामक एक पुस्तिका 1820 में प्रकाशित की। ब्रजमोहन के घर पर आत्मीय सभा की बैठकें हुआ करती थी। राममोहन पर जब चारों ओर से हमले शुरू हुए तो स्वाभाविक था कि उनके शिष्य उनका पक्ष समर्थन करते। इस पुस्तिका के रचयिता के बारे में कुछ विद्वानों का विचार है कि यह राममोहन का ही लिखा हुआ था जो उन्होंने ब्रजमोहन के नाम से प्रकाशित किया। पादरी लांग साहब की बंगला पुस्तकों की जो तालिका बनाई थी उसमें इस पुस्तक का लेखक राममोहन ही बताया गया है। राममोहन अकसर छद्मनाम से अपने लेखादि प्रकाशित करते थे। आश्चर्य नहीं कि इस पुस्तिका की रचना में राममोहन का हाथ रहा हो। इस पुस्तिका का अँगरेजी अनुवाद Deocar Sehmidt नामक एक जर्मन विद्वान ने किया। स्मिड के साथ राममोहन का परिचय था। ग्रन्थ के अँगरेजी अनुवाद में उन्होंने राममोहन का सहयोग लिया था।[11] इस पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए श्रीरामपुर के पादरियों की पत्रिका 'The Friend of India' (दिसम्बर 1820) ने लिखा—

'It is a masterly exposure, by a native, of the absurdities of the present Hindoo System....What European could have written a work equally delicate and equally....in its application ?....a native of India has been capable of producing so masterly a treatise by the pure force of unassisted genius.'[12]

इसके अलावा अकसर छोटे-मोटे धार्मिक वादानुवाद या शास्त्रार्थ चलते रहते। पण्डित शिवनाथ शास्त्री ने अपने ब्रह्म समाज के इतिहास में इन वादानुवादों का सुन्दर विवरण कुछ इस प्रकार दिया है :

कभी-कभी आत्मीय सभा की बैठकों में दिलचस्प वादानुवाद या शास्त्रार्थ चलते रहते जिसमें बड़ी संख्या में लोग रुचि लेते थे। इनमें सबसे प्रमुख बैठक जो दिसम्बर 1816 में बड़ा बाजार के बिहारी लाल चौबे के घर पर हुई।[13] एक विद्वान तमिल (मद्रासी) पण्डित सुब्रह्मण्य शास्त्री जो अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे एक बड़ी सभा के सामने, जिसकी अध्यक्षता कट्टरपंथी हिन्दुओं के अगुआ राधाकान्त देव जैसे विशिष्ट नागरिक कर रहे थे, के सामने राममोहन को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा गया। राममोहन ने चुनौती को स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ काफी लम्बा चला। अन्त में राममोहन ने विपक्षियों को पूरी तरह परास्त कर दिया। इस शास्त्रार्थ में उन्होंने अपने दलीलों के पक्ष में वेदों, उपनिषदों और दूसरे शास्त्रों से उद्धरण पेश किये।

सुब्रह्मण्य शास्त्री को दिया गया उत्तर, चार भाषाओं संस्कृत, बंगला, हिन्दी और अंगरेजी में प्रकाशित हुआ।[14] सुब्रह्मण्य शास्त्री के साथ हुए शास्त्रार्थ की पुस्तकें कोई चार साल बाद 1820 ई० में प्रकाशित हुई थी। घटना कुछ इस प्रकार थी। शास्त्री जी इस शास्त्रार्थ के बाद स्वदेश लौट गये थे। वहाँ से उन्होंने कलकत्ते के ब्राह्मण वर्ग को एक पत्र लिखा था उसका कुछ अंश इस प्रकार है : 'वेदाध्याय हीन व्यक्तियों को स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, और जिस व्यक्ति ने वेदों का अध्ययन किया है उसे ही केवल ब्रह्मविद्या का अधिकार है....एवं ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होने से पूर्व वेदोक्त एवं स्मृति-उक्त कर्म आवश्यक है।'[15] पत्र संस्कृत भाषा में था और राममोहन ने इसका उत्तर भी संस्कृत में ही दिया और बाद में बंगला, अँगरेजी और हिन्दी में प्रकाशित किया। राममोहन ने सुब्रह्मण्य शास्त्री के प्रत्येक तर्क का ब्रह्मसूत्र के शंकर भाष्य से उदाहरण देते हुए खण्डन किया। अँगरेजी अनुवाद का शीर्षक है 'An Apology for the pursuit of final beatitude independently of Brahmanical observances' जो 1820 में प्रकाशित हुआ।

इसके अलावा इसी काल में एक चैतन्यपंथी गोस्वामी के साथ भी शास्त्रार्थ

चला। गोस्वामी जी ने वैष्णव धर्म का पक्ष लेकर कोई ग्यारह-बारह पृष्ठों का एक लम्बा पत्र राममोहन के पास भेजा। पत्र में उन्होंने अपना वास्तविक नाम नहीं दिया। गोस्वामीजी का असली नाम सम्भवतः 'रामगोपाल शर्मा' था।[16] कैलकटा स्कूल बुक सोसाइटी की पुस्तकों की तालिका में इस नाम का उल्लेख पाया जाता है। गोस्वामीजी ने शास्त्रों का मन्थन करके मूर्तिपूजा के पक्ष में दलील पेश की। उनका मुख्य तर्क था कि भागवत पुराण में वेदान्तसूत्र का भाष्य ही है। राममोहन ने अपना उत्तर बहुत पाण्डित्यपूर्ण ढंग के दिया। बाद में यह 'गोस्वामीर सहित विचार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। भागवत पुराण वेदान्त का भाष्य नहीं हो सकता यह तर्क उन्होंने सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया। राममोहन ने कहा कि भागवत पुराण के बारे में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। इस पुस्तिका में राममोहन ने भागवत पुराण और शंकराचार्य के अद्वैतवाद पर विस्तृत विवेचन किया है।

एक और महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ पण्डित कविताकार के साथ हुआ। राममोहन ने 'कविताकारेर सहित विचार' ग्रन्थ में शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयास किया, कि सर्वव्यापी परमेश्वर का ज्ञान श्रमण और मनन द्वारा ही होना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था इस प्रकार की साधना में सहायक हो सकती है लेकिन ऐसा होना आवश्यक नहीं।

कविताकार ने यहाँ तक लिखा था कि राममोहन के विचारों और ग्रन्थों के प्रकाशन से देश में अकाल और महामारी का प्रकोप हो रहा है। कुछ ऐसा हुआ कि 1817 में कासिम बाजार इलाके में महामारी के प्रकोप से इलाके के लोग गाँव और शहर छोड़कर भाग खड़े हुए थे। जसौर इलाके में प्लेग का प्रकोप फैला था। इसी से कविताकार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि राममोहन के धर्म विरुद्ध आचरण ही इन प्राकृतिक प्रकोपों का कारण है।

कविताकार ने यह भी आरोप लगाया कि राममोहन यवन और म्लेच्छों की तरह पहनावा पहनकर राजदरबार में जाते हैं। एक और मुख्य आरोप था कि राममोहन धार्मिक पुस्तकें छपवाकर बँटवाते हैं। यहां तक कि पाखण्डी, नास्तिक तथा अन्य विशेषणों से भूषित किया। इसके उत्तर में शास्त्र से उद्धृत करते हुए राममोहन ने कहा था कि वे पुस्तकों का प्रचार शास्त्रों के आज्ञानुसार ही कर रहे हैं :

वेदार्थ यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि।
मूल्येन लेखायित्वा यो दद्यादेति स वै दिवं ॥

अर्थात् जो व्यक्ति वेदार्थ, यज्ञशास्त्र और धर्मशास्त्र अपने व्यय पर लिखवाकर दान करते हैं, वह स्वर्ग प्राप्त करता है।

राममोहन के लिए इन आरोपों और गाली-गलौज का उत्तर देना बायें हाथ

का खेल था। उन्होंने उत्तर देते हुए अन्तिम पंक्तियों में लिखा 'हे परमेश्वर कविताकार को आत्मा और अनात्मा को समझने की बुद्धि दो, तभी कविताकार समझेंगे कि हम लोग उनके आत्मीय हैं या अनात्मीय।'

इस खण्डन-मण्डन के शास्त्रीय तर्कयुद्ध के अलावा राममोहन इस काल में अपने विचारों के प्रचार में लगे रहे। कितनी ही बाधाएँ आईं लेकिन उन्हें अपने लक्ष्य से विचलित न कर सकीं। उनका शास्त्रार्थ और विचार विनिमय बराबर अपने अनुयायियों, भक्तों, मित्रों और विरोधियों के साथ चलता रहा। यही उनकी प्रमुख दिनचर्या थी। अपनी जमींदारी और व्यावसायिक कार्यकलाप के अलावा वे इन धार्मिक और सामाजिक सुधारों की ओर ही लगे रहते।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. मुखोपाध्याय, **राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य** (बंगला) पृ० 254.

2. वही : पृ० 254. फुटनोट में ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय के राममोहन (पृ० 83) से उद्धृत करके बताया गया है कि ये पुस्तिकाएँ 'संस्कृत प्रेस' से 1816 में प्रकाशित हुईं। श्रीरामपुर कालेज के पुस्तकालय में ये पुस्तिकाएँ उपलब्ध है।

3. वही : पृ० 268. राममोहन के A Defence of Hindoo Theism in Reply to an Attack of an Advocate for Idolatry at Madras. से उद्धृत।

4. वही : पृ० 268.

5. वही : पृ० 268.

6. Majumdar, Progressive movements in India. पृ० 6-8. दस्तावेज नं० 4, जिसमें राममोहन पर साहित्यिक जालसाजी का आरोप लगाया गया है।

7. वही : पृ० 8 दस्तावेज नं० 5, जिसमें राममोहन के पक्ष का समर्थन किया गया। दोनों लेख Calcutta Monthly Journal के अगस्त 1817 के अंक में प्रकाशित हुए थे।

8. Collet, RAJA RAMMOHUN ROY : पृ० 73. सम्पादकीय पादटीका देखें। मृत्युंजय विद्यालंकार फोर्ट विलियम कालेज में कोई पन्द्रह वर्ष कार्यरत रहे (1801-1816) बाद में सुप्रीम कोर्ट के पण्डित नियुक्त हुए। ये अपने समय के बंगला और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। आधुनिक बंगला गद्य के निर्माताओं में राममोहन के साथ उनका नाम भी लिया जाता है।

9. मुखोपाध्याय : पृ० 258.

10. वही : पृ० 259-60. राममोहन के अँगरेजी ग्रन्थावली से उद्धृत।

11. वही : पृ० 263. इस पुस्तक का एक और अनुवाद W. Morton ने 1843 में प्रकाशित किया था।

12. वही : पृ० 263. Stephen Hay की पुस्तक A Tract against the Prevailing System of Hindoo Idolatry से उद्धृत। लेखक ने टिप्पणी करते हुए आगे लिखा है रामगोहन ने Precepts of Jesus लिखा उस समय पादरी मार्शमैन ने राममोहन को 'Heathen' काफिर या मूर्तिपूजक की संज्ञा दी थी।

13. Collet : पृ० 104. सम्पादकीय टिप्पणी में डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के एक लेख 'हिन्दी भाषाय राममोहन' से उद्धृत करते हुए लिखा है कि बिहारीलाल चौबे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सहयोगी, हिन्दी कवि थे। प्रभात कुमार मुखोपाध्याय की पुस्तक में बिहारीलाल दूबे और बिहारीलाल चौबे दोनों नाम प्रयुक्त हैं।

14. Collet : पृ० 104.

15. मुखोपाध्याय : पृ० 253.

16. वही : पृ० 269.

अध्याय—6

शास्त्रार्थ का नया दौर—ईसाई पादरियों के साथ

इस तथ्य को मानने के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि उन्नीसवीं सदी के पहले दशक में ही, श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन के संस्थापक संस्कृत और दूसरे भारतीय भाषाओं के पण्डित पादरी विलियम केरो से राममोहन का परिचय फोर्ट विलियम कालेज के माध्यम से हुआ।[1] केरी उन दिनों कालेज के अध्यापक थे। साथ ही कालेज के कई दूसरे अध्यापकों पण्डित और मौलवियों से राममोहन की घनिष्ठता के भी प्रमाण मिलते हैं। श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन के पादरी ईसाई धर्म के प्रचार के लिए भारतीय और प्राच्य भाषाओं के अनुशीलन पर जोर दे रहे थे। राममोहन के संस्कृत अरबी और फारसी के ज्ञान और साथ ही अँगरेजी भाषा पर अधिकार ने, उनके मूर्तिपूजा विरोध और एकेश्वरवादी विचारों ने, अवश्य ही ईसाई पादरियों को उनकी ओर आकृष्ट किया होगा। राममोहन ने ईसाई धर्म दर्शन पर कब से अनुसंधान आरम्भ किया, यह जानना सम्भव नहीं फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि 1801 से 1807 के बीच केरी साहब द्वारा सम्पादित 'न्यू टेस्टामेन्ट' और 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' के बंगला अनुवाद राममोहन ने अवश्य पढ़े होंगे। बैप्टिस्ट चर्च के अलावा एंग्लिकन चर्च के विशप मिडिलटन के साथ उनका सम्बन्ध 1814 के आस-पास स्थापित हो चुका था। 1815-16 तक राममोहन पण्डित और विद्वान के रूप में पूरी तरह प्रसिद्ध हो चुके थे इसलिए श्रीरामपुर मिशनरी के पादरियों के बीच उनकी खाशी प्रतिष्ठा थी। सुप्रसिद्ध पादरी और संस्कृत विद्वान विलियम येट्स के अगस्त 1816 के एक पत्र के कुछ अंश का अनुवाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :[2]

"कोई एक वर्ष हुआ उनसे मेरा परिचय हुआ है, इससे पूर्व उनका शायद ही किसी से परिचय रहा हो, जो उनकी आत्मिक शान्ति की परवाह करता। ....वे एक बार श्रीरामपुर आये थे और कुछ ही हफ्तों में फिर आने का वादा कर गये हैं। उन्होंने यूस्टेस (केरी) को स्कूल के लिए जमीन का टुकड़ा देने की पेशकश की थी...." यूस्टेस केरी, विलियम केरी के भतीजे थे।[3]

श्रीरामपुर मिशन के 1816 के कार्य विवरण पुस्तिका (पीरियोडिकल अकाउन्ट) में राममोहन के बारे में जो विवरण है उससे राममोहन को एक ओर संस्कृत और फारसी का विद्वान कहा है तो दूसरी ओर अँगरेजी और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता बताया गया था। विवरण इस प्रकार है :

"राममोहन राय कलकत्ते के धनी, राढ़ी ब्राह्मण और श्रद्धेय संस्कृत विद्वान हैं। फारसी में इतने पारंगत हैं कि मौलवी राममोहन राय के नाम से मशहूर हैं। अँगरेजी शुद्ध लिखते है और अँगरेजी में विज्ञान और धार्मिक पुस्तकें सरलतापूर्वक पढ़ लेते हैं। इन्होंने एक दो दार्शनिक ग्रंथों का संस्कृत से बंगला में अनुवाद किया है। वे आशा करते हैं कि इन ग्रंथों के द्वारा वे देशवासियों को मूर्तिपूजा परित्याग करने में प्रेरित कर सकेंगे। ....इस समय वे केवलमात्र ईश्वर उपासक हैं, और ईसा मसीह के प्रशंसक भी, लेकिन प्रायश्चित्त के बारे में तनिक भी चिन्तित नहीं। उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा है इसी से हिन्दू धनी परिवारों में बिना बाधा के आते-जाते हैं। वे बहुत सदाचारी कहे जाते हैं, लेकिन रूढ़िवादी हिन्दू उन्हें चरित्रहीन पापी समझते हैं।"[4]

इस व्यक्ति के बारे में श्री येट्स ने अगस्त 1816 के पत्र में जिसका हवाला ऊपर दिया जा चुका है लिखा था...."वे ऑस्टेस् (केरी) के घर आये थे, और पारिवारिक प्रार्थना सभा में शामिल होकर बहुत ही प्रसन्न हुए। ऑस्टेस् ने उन्हें डा० वाट की भजनावली की प्रति भेंट की। राममोहन ने कहा था कि वे इस पुस्तक को हमेशा अपने हृदय से लगाये रखेंगे।"

राममोहन अकसर धार्मिक विषयों पर आलोचना करने और आयोजित परिचर्चा में भाग लेने के लिए श्रीरामपुर जाया करते थे। यहीं उनका परिचय पादरी ऐडम, येट्स और मार्शमैन से हुआ। लेकिन राममोहन ने जब 1820 में 'The Precepts of Jesus' के शीर्षक से ईसा के नीति वचनों का संकलन प्रकाशित किया तो यह मित्रता भारी वाद-विवाद में बदल गयी। इस वाद-विवाद के सिलसिले में प्रमुख प्रकाशन और तिथियों का ब्यौरा इस प्रकार है :

1820 में 'प्रिसेप्ट्स आफ जीसेस' का प्रकाशन।

1820 श्रीरामपुर मिशन की पत्रिका 'फ्रेण्ड आफ इंडिया' में (फरवरी 1820) पुस्तक की आलोचना और सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित।

1820 इस आलोचना के उत्तर में राममोहन की ईसाई जनता के नाम पहली अपील 'An Appeal to the Christian Public' का प्रकाशन।

1820 'अपील' का तीव्र विरोध करते हुए डॉ० मार्शमैन द्वारा 'फ्रेण्ड आफ इंडिया' में लेख प्रकाशित।

1821 मार्शमैन का उत्तर देते हुए दूसरे अपील 'Second Appeal to the Christian Public' का प्रकाशन।

1821 मार्शमैन द्वारा 'फ्रेण्ड आफ इंडिया' में विस्तृत आलोचना।

1823 राममोहन द्वारा अन्तिम अपील 'Final Appeal to the Christian Public' का प्रकाशन ।[5]

इस घटना के साथ हम राममोहन के जीवन और कार्यकलापों को एक नये परिदृश्य में देखा जा सकता है। उन्होंने 1817 में जोन डिगबी को पत्र में लिखा था कि अपने सतत अनुसंधान और शोध से वे निर्णय पर पहुँचे हैं कि यीशू मसीह की धर्मशिक्षा मानव आचार-संहिता के लिए सबसे उपयुक्त हैं। बाईबल को उसके मूल रूप में पढ़ने के लिए उन्होंने पूर्ण लगन और अध्यवसाय के साथ ग्रीक और हिब्रू भाषाओं का भी अध्ययन किया।[6] पादरी येट्स ने अपने संस्मरण में राममोहन के ग्रीक और लैटिन भाषा के ज्ञान का उल्लेख किया है।[7] भाषा ज्ञान कितना गहन था इस पर मतभेद हो सकता है किन्तु यह तय है उनके अपने कार्य के लिए पर्याप्त था। इस गहन अध्ययन का नतीजा था कि 1820 में उन्होंने "The Precepts of Jesus, a guide to peace and happiness; extracted from the books of the New Testament, ascribed to the four Evangelists, with translations into Sanskrit and Bengali."

मैंने ईसामसीह के नीति वचनों का संग्रह प्रकाशित किया। राममोहन ने यह पुस्तक ईसाई धर्म की विशेषताओं से परिचित कराने के लिए लिखा था। इसको लिखते समय उनको 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' के लिए हिब्रू और 'न्यू टेस्टामेन्ट' के लिए ग्रीक भाषा का गहरा अध्ययन करना पड़ा। यद्यपि वे स्वयं अपनी योग्यता की सीमाओं को पहचानते थे और यह उनके लिए गौरव का विषय था कि वे इस पुस्तक को लेकर ईसाई दुनिया के सामने साहस के साथ खड़े हो सकें। इस पुस्तक के प्रकाशन के साथ ही ईसाई मिशनरियों के बीच में खलबली मच गई। भला एक देशी हिन्दू के द्वारा ईसाई धर्म, जो कि राजधर्म था, पर किसी पुस्तक को भला वे कैसे सहन कर सकते थे ? राममोहन पर इस बार ईसाई पादरियों का हमला आरम्भ हो गया। राममोहन ने अपनी पुस्तक ईसा मसीह के नीति वचनों में मुख्यतः नैतिक शिक्षाओं का संकलन किया था। क्योंकि उस समय भी ईसाई धर्म के अन्दर धर्म की कई रीतिरिवाजों और मान्यताओं के बारे में आपसी मतभेद थे। इसी से राममोहन ने इस पुस्तक की भूमिका में अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया है।

"I confine my attention at present to the task of laying before my fellow creatures the words of Christ, with a translation from English into Sanskrit and the language of Bengal. I feel persuaded that by seperating from the other matters in the New Testament, the moral precepts will be

more likely to produce the desirable effect of improving the hearts and minds of men of different persuasion and degrees of understanding."[8]—अर्थात् इस समय मेरा ध्यान केवल अपने लोगों के लिए ईसा मसीह के उपदेशों का अँगरेजी से संस्कृत और बंगला में अनुवाद करने में लगा है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि न्यू टेस्टामेन्ट से अन्य विवरण पृथक करके केवल नीति-वचनों का प्रभाव हृदय और मस्तिष्क की उन्नति में अधिक सहायक होगा।

उन्होंने यह भी लिखा कि उनके विचार अनुसार ईसाई धर्म विशेषत: ईसामसीह की शिक्षा, नैतिकता के मूल्यों पर अधिक खरे उतरते हैं, और बौद्धिक स्तर पर सर्वथा उपयुक्त जँचते हैं। यद्यपि उन्होंने इस पुस्तक की रचना मन की शान्ति और सुख की प्राप्ति के लिए किया था लेकिन उन्हें इसके विपरीत उन्हें वादविवाद का सामना करना पड़ा। भूमिका और उपशीर्षक में यथा प्रस्तावित संस्कृत और बंगला के अनुवाद शायद कभी प्रकाशित नहीं हो पाये। यदि हुए भी होंगे तो प्रतियाँ आज तक उपलब्ध नहीं हो सकीं। मिस कोलेट ने शायद ठीक ही अन्दाजा लगाया था कि राममोहन के मन में ये अनुवाद प्रकाशित करने की इच्छा रही होगी लेकिन उनकी आशा शायद पूरी न हो सकी।[9] इसी बीच वे भारी वादविवाद में पूरी तरह डूब गये। लगभग इसी समय के आसपास सती प्रथा के विरोध में उनका 'सहमरण विषये प्रवर्त्तक निवर्तकेर द्वितीय संवाद' का प्रकाशन भी हुआ। राममोहन एक ओर हिन्दू रूढ़िवादियों और दूसरी ओर ईसाई पादरियों के साथ एक ही समय में जूझ रहे थे। उनके ईसाई मित्र मुँह फुलाकर बैठ गये। और ईसाई मिशनरी विशेषत: श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन के पादरी उनके विरोधी बन बैठे। उन्होंने इस प्रकाशन को उनके अपने अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप समझा। पुस्तक का प्रकाशन बैप्टिस्ट मिशन प्रेस से ही हुआ था। इस पुस्तक की समालोचना तत्काल ही बैप्टिस्ट मिशन की पत्रिका 'फ्रेण्ड ऑफ इण्डिया' में फरवरी 1820 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि यह लेख छद्म नाम से प्रकाशित हुआ था लेकिन बाद की खोजों के आधार पर यह सिद्ध हो गया कि इस आलोचना के लेखक मिशन के पादरी Rev. Deocar Schmidt थे। पादरी श्मिड जाति के जर्मन थे और जेना विश्वविद्यालय के विद्यार्थी रह चुके थे। बाद में लन्दन आकर 'चर्च मिशनरी सोसाइटी' के सदस्य बने। लन्दन में ही, उन्होंने राममोहन के वेदान्तसार अँगरेजी अनुवाद पढ़ा था। और जब उन्होंने देखा कि एक भारतीय ईसामसीह के नीति वचनों का प्रशंसक है तो उनको आशा बंधी थी कि यह व्यक्ति ईसाई धर्म अपनाने के उपयुक्त हैं। 1818 में श्मिड मद्रास पहुँचे। वहीं से उन्होंने राममोहन को पत्र लिखा कि वे उनके प्रशंसकों में हैं और उनसे

व्यक्तिगत रूप से परिचित होने के लिए आतुर हैं। 1819 में श्मिड कलकत्ता बदली होकर चले आये। यहीं राममोहन से उनकी मुलाकात हुई। लेकिन इस मुलाकात से कोई विशेष आशा नहीं बँधी, क्योंकि राममोहन के मन में ईसा-मसीह के प्रति चाहे कितनी भी श्रद्धा रही हो उनका धर्म उन्हें आकर्षित नहीं कर सका था।[10] श्मिड का संकेत राममोहन के धर्म परिवर्तन की ओर था। इसीलिए 'प्रीसेप्टस आफ जीसस' की आलोचना श्मिड ने छद्मनाम से कुछ दुखी होकर किया था। आलोचना का मूल स्वर था 'Rammohun Roy would injure the cause of Christianity'.—राममोहन ईसाई धर्म के उद्देश्यों को हानि पहुँचा रहे हैं।

पत्रिका के ही सम्पादकीय में डा० जोशुआ मार्शमैन ने सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा—'An intelligent heathen, whose mind is as yet completely opposed to the grand design of the saviour becoming incarnate....' मुक्तिदाता ईसा मसीह के अवतार-रूप को समझने की शक्ति इस बुद्धिमान काफिर में नहीं है।

श्रीरामपुर के पादरियों ने इस पुस्तक को अपने धर्म के विरुद्ध एक विदेशी हस्तक्षेप समझा। आलोचना में 'विधर्मी' या 'काफिर' शब्द के कुरुचिपूर्ण प्रयोग और व्यक्तिगत हमले से राममोहन भी दुखी हुए।[11] राममोहन 'प्रीसेप्टस' पर हमले के लिए तैयार थे क्योंकि उन्हें आशा थी कि उनके अपने धर्म के प्राचीनपंथी इस पर अवश्य हमला करेंगे कि क्योंकि इसको ईसाई धर्म की ओर राममोहन का झुकाव ही समझा जायगा। लेकिन हमला जब श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट पादरियों की ओर से आया तो राममोहन तनिक विचलित हो उठे। क्योंकि उन्होंने ऐसी आशा बिल्कुल नहीं की थी। इसके विपरीत उन्हें अपने ईसाई बन्धुओं से उदारता की आशा थी। इसी से 'फ्रेण्ड आफ इण्डिया' में प्रकाशित समालोचना से उन्हें आन्तरिक वेदना अनुभव किया। इस अपमान को सहन करते हुए और अपने को सम्हालते हुए समालोचना का उत्तर लिखने के लिए तुरंत ही बैठ गये और कुछ ही दिनों के पश्चात् लगभग बीस पृष्ठों का एक लेख, मार्शमैन और श्मिड के समालोचना के उत्तर में, 'An Appeal to the Christian Public in Defence of the 'Precepts of Jesus' by a Friend of Truth.' प्रकाशित किया।

> अपने व्यक्तिगत अपमान के बारे में लिखा....'मैं विनम्रतापूर्वक जनता के समक्ष इस गैर-ईसाई सुलभ असभ्य आचरण के विरोध में निवेदन करना चाहता हूँ, क्योंकि सम्पादक महोदय ने इस संकलन के विरुद्ध अपनी आपत्तियों को प्रस्तुत करते हुए व्यक्तिगत आरोप लगाया और संकलनकर्त्ता को 'हीदन' (काफिर) जैसे शब्दों से भूषित किया

है। मैंने गैर-ईसाई सुलभ इसलिए कहा क्योंकि सम्पादक महोदय ने 'हीदन' शब्द का प्रयोग करके मेरे विचार से, ईसाई धर्म के मूल्य सिद्धान्त सत्य, दयालुता और उदारता का उल्लंघन किया है।'[12] यह अपील इतना सटीक, विद्वत्तापूर्ण और तर्कपूर्ण था कि दोनों पादरी महोदय बगलें झाँकने लगे। वैसे राममोहन के इस उत्तर में कहीं भी किसी अनादर का भाव नहीं था।

मार्शमैन ने 1820 के 'फ्रेण्ड आफ इण्डिया' के मई अंक में एक बार फिर राममोहन के दलीलों का खण्डन किया लेकिन इस बार की भाषा कुछ संयत थी। लेकिन यह लेख राममोहन के तर्कों के सामने कुछ भी नहीं था।

राममोहन ने 1821 में ईसाई जनता के लिए दूसरी अपील (Second Appeal to the Christian Public) प्रकाशित की। यह कोई सौ पृष्ठों का विचार ग्रंथ था जिसमें उन्होंने ईसाई धर्म के मूल तत्वों पर विस्तार से विवेचन किया। मिस कोलेट ने राममोहन की 'जीवनी' में इस अपील का सारांश दिया है, जिसका कुछ अंश प्रासंगिक होगा : 'राममोहन ने, 'न्यू टेस्टामेन्ट' के चामत्कारिक अंशों की विश्वसनीयता को चुनौती देने या उनको हिन्दू पौराणिक चमत्कारों के समकक्ष रखने की इच्छा न रखते हुए भी, ईसाई धर्म के प्रति आदर भाव के कारण ही उसको बहु-ईश्वरवाद के आरोप से मुक्त करना चाहा। उनके विचार से त्रित्ववाद भी मूलतः बहु ईश्वरवाद का रूप है। डॉ० मार्शमैन के 'ओल्ड-टेस्टामेन्ट' पर आधारित त्रित्व रूप के व्याख्या का खण्डन करने में राममोहन को तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने ईसाई धर्म के प्रारम्भिक काल का हवाला देते हुई स्पष्ट किया कि उस काल में भी 'परमपिता', 'पुत्र' और 'पवित्र आत्मा' जैसे त्रित्ववादी विषयों पर ईसामसीह के शिष्यों के विचार कुछ भिन्न थे लेकिन विचारों की भिन्नता के लिए उन्हें धर्मच्युत नहीं किया गया।'[13]

दूसरी अपील विद्वत्तापूर्ण विवेचन के अतिरिक्त राममोहन के ईसामसीह के प्रति गहरी श्रद्धा और आदर की ही परिचायक थी। एक बार फिर जून 1821 में डा० मार्शमैन ने इस 'दूसरी अपील' का उत्तर 'फ्रेण्ड ऑफ इण्डिया' में प्रकाशित किया यह उत्तर कोई 128 छपे हुए पृष्ठों में था। बैप्टिस्ट पादरी वर्ग राममोहन के उदारपंथी विचारों को भला कैसे सहन करते। मार्शमैन ने 'त्रित्ववाद' और 'प्रायश्चित्त' पर राममोहन के विचारों का खण्डन करते हुए व्यंग्यात्मक भाव से लिखा है, 'ईसा मसीह उनको सद्बुद्धि दे।'

राममोहन समझ चुके थे कि मार्शमैन जैसे रूढ़िवादी पादरियों को ईसामसीह का सही उपदेश समझाना सम्भव नहीं। इसी से उन्होंने इस विवाद को समाप्त करने के लिए सुविस्तृत लम्बा आलेख तैयार किया, जो लगभग

256 पृष्ठों में था। 'Final Appeal to the Christian Public in defence of the Precepts of Jesus'. इसका प्रकाशन 1823 में हुआ। इस लेख में उनके विश्वास, उनकी गहरी समझ और ईमानदारी का पूरी तरह निर्वाह हुआ है। इससे पहले की दोनों अपील बैप्टिस्ट मिशन प्रेस से छपी थीं। लेकिन जब यह अन्तिम अपील उन्होंने छपने के लिए भेजी तो प्रेस के पादरी अधिकारियों ने इस पुस्तक को छापने से इनकार कर दिया। इस अन्तिम पुस्तक के आरम्भ में दी गई सूचना से स्पष्ट होता है कि प्रेस के अधिकारियों द्वारा इनकार करने पर राममोहन को स्वयं टाइप खरीदकर इस पुस्तक को छापने की व्यवस्था करनी पड़ी। उस समय देश में छापाखाना अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। केवल अंगरेजों द्वारा संचालित दो एक छापे खाने ही उपलब्ध थे। राममोहन के सामने अब एक नयी समस्या खड़ी हो गई। लेख का प्रकाशन कैसे किया जाय? राममोहन ने चुनौती को स्वीकार करते हुए धर्मतल्ला स्ट्रीट में युनिटेरियन प्रेस की स्थापना की। राममोहन को इस तरह सबसे पहला स्वदेशी छापाखाना खोलने का श्रेय भी प्राप्त हुआ। अन्तिम अपील इसी प्रेस में छपकर प्रकाशित हुई।[14] इस अपील की भूमिका में उन्होंने लिखा—

....I feel myself obliged to lay before the public at large, this my self-defence. 'A Final Appeal to the Christian Public'.[15]—आत्मरक्षा के लिए मैं ईसाई जनता के नाम यह अन्तिम अपील पेश कर रहा हूँ।

इस अन्तिम अपील में राममोहन ने अपने पाण्डित्य और तर्कशक्ति का ऐसा परिचय दिया कि लोग चकित रह गये। राममोहन ने लेख में ग्रीक और हिब्रू से उद्धृतियाँ देकर अपना पक्ष प्रस्तुत किया। इस अन्तिम अपील के बावजूद डॉ० मार्शमैन 'फ्रैण्ड आफ इण्डिया' के पृष्ठों में अपना धर्मयुद्ध जारी रखे हुए थे। राममोहन ने मुख्यतः ईसामसीह के 'देवत्व' और 'प्रायश्चित्त' के सिद्धान्तों के विरुद्ध आक्रमण किया था। मार्शमैन ने दो लेख उक्त विषय के समर्थन में लिखे थे। राममोहन ने आगे इसका उत्तर नहीं दिया क्योंकि तब तक वे किसी दूसरे शास्त्रार्थ में फँस चुके थे। मार्शमैन को इस तर्क युद्ध में मुँह की खानी पड़ी। क्योंकि उस समय सारा जनमत स्पष्टतः राममोहन के पक्ष में गया। उस समय 17 मई 1824 के 'इंडिया गजट' में अंगरेज सम्पादक ने अपने सम्पादकीय में टिप्पणी करते हुए लिखा कि राममोहन से धार्मिक विषयों में टक्कर लेने वाला इस देश में कोई नहीं है।[16]

इस तर्कयुद्ध के बारे में 'कलकत्ता जर्नल' ने 27 फरवरी 1823 के अंक में जो कुछ लिखा था उसका कुछ अंश का अनुवाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा— 'इस विशिष्ट विद्वान के लेखों से यूरोप और एशिया में दिलचस्पी पैदा हो गई

है। इसी से हमारा कर्तव्य बनता है कि हम यथाशीघ्र अपने पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक के बारे में, जो अभी-अभी छपकर आई है, अवगत कराएँ।....इस प्रकार का शास्त्रार्थ जिसमें एक ओर अकेला एक देशी भारतीय सज्जन, जो निःसंदेह एक प्रकाण्ड विद्वान है और दूसरी ओर अंगरेज धार्मिक मिशनरियों की पूरी शक्ति है जिसमें कई विद्वान और धर्मपरायण व्यक्ति शामिल हैं। शाश्वत धर्म का समर्थक वर्ग इस शास्त्र-विवाद में अवश्य ही रुचि ले रहा है। हमें उस अकेले व्यक्ति के साहस की प्रशंसा करनी होगी जो इस असमान प्रतियोगिता में इतने सारे महारथियों के साथ अकेले एक सिद्धान्त के लिए जूझ रहा है।'[17] इस सम्पादकीय टिप्पणी के साथ पत्रिका में 'तीसरे अपील' की पूरी भूमिका भी प्रकाशित हुई।

इस वाद-विवाद की गूँज विलायत, यूरोप के कई देशों और अमेरिका के ईसाई धार्मिक समाज में भी फैल गई थी। वस्तुतः वहाँ कुछ उदारपंथी धार्मिक नेता ईसाई धर्म की इस नयी व्यवस्था को काफी महत्व दे रहे थे।

राममोहन ने 'प्रीसेप्टस आफ जीसस' का संकलन क्यों किया था, इसकी कैफियत उन्होंने 'पहले अपील' में ईसाई जनता के सामने पेश की थी। उन्हें आशा नहीं थी कि ईसाई पादरी उन पर इस तरह से हमला करेंगे। जब आक्रमण चला तो उन्होंने दूसरी और तीसरी अन्तिम अपील के माध्यम से इन आक्रमणों का यथोचित उत्तर दिया। उन्हीं दिनों जब वे ईसाई धर्म के गहन अध्ययन में लगे थे और शास्त्रार्थ चल रहा था उस समय उसके मन में बाइबिल पर शोध कार्य के लिए एक मासिक पत्रिका प्रकाशन का विचार आया था। 'अन्तिम अपील' के अन्तिम अध्याय में लिखा था—'I therefore propose, ...to establish a monthly periodical publication, commencing from the month of April (1823), to be devoted to Biblical Criticism....'[18]

उसकी यह अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी और न ही ईसाई पादरी ही इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का साहस जुटा सके। सम्भवतः इसीलिए राममोहन एक आठ-आठ पृष्ठों की दो छोटी-सी पुस्तकाएँ 1823 में प्रकाशित कीं, जिसमें ईसाई धर्म के त्रित्ववाद पर कुछ तर्कसंगत जिज्ञासाएँ की गई थीं। ये प्रश्न अवश्य ही ईसाई पादरियों को सम्बोधित थे। पुस्तिका का शीर्षक था 'A Few Queries for the Serious Consideration of Trinitarians' इसके अतिरिक्त एक छोटी-सी पुस्तिका में दो परिसंवाद 'The Dialogues' भी 1823 में ही प्रकाशित हुए। इनमें 'एक ईसाई पादरी और उनके तीन चीनी धर्मान्तरित शिष्यों के बीच कथोपकथन' अपनी व्यंगात्मक व्यंजना के लिए प्रसिद्ध है। परिसंवाद के थोड़े से प्रासंगिक अंश का नमूना इस प्रकार है—

पादरी—अपने तीनों शिष्यों को प्रश्न करते हैं और अरे भई, ईश्वर एक है या अनेक ?

पहला शिष्य—जवाब दिया, ईश्वर तीन हैं।

दूसरा शिष्य—बोला, ईश्वर दो हैं।

तीसरे शिष्य ने कहा, ईश्वर है ही नहीं।

प्रश्नोत्तर के आगे बढ़ने पर प्रथम शिष्य तर्क इस प्रकार देता है। आपने कहा था कि पिता ईश्वर और पुत्र ईश्वर है और 'होली गोस्ट' भी धर्मात्मा ईश्वर है इसी से हमारी गिनती में एक, एक और एक मिलाकर अवश्य ही तीन बनते हैं।

पहले शिष्य को त्रित्ववाद की गूढ़ समस्या समझाने में असफल पाकर पादरी महोदय ने दूसरे शिष्य से प्रश्न किया—तुमने भला दो ईश्वर के होने की बात कैसे सोची ?

द्वितीय शिष्य—यह सत्य है कि आपने दो ईश्वर होने की बात नही कही, लेकिन आपने जो कुछ कहा उसका तात्पर्य कुछ ऐसा ही है।....हम लोग चीन देश के वासी है।....आप ही ने उपदेश दिया था कि तीन व्यक्ति अलग-अलग पूर्ण ईश्वर है। इसके पश्चात आपने यह भी बताया था कि इन तीनों में एक ईश्वर की बहुत दिन हुए पश्चिम के किसी देश में मृत्यु हो गई। इसी से मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि दो ईश्वर अभी विद्यमान हैं।'

पादरी साहब सिर पीट कर रह गये। तीसरे शिष्य से जब यह पूछा गया कि तुम इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे कि ईश्वर है ही नहीं तो उसका उत्तर और भी भयंकर था।

तीसरा शिष्य—आप पश्चिम के बुद्धिमान लोग हैं हम लोगों की तरह नही। आप लोगों की गूढ़ बातें हमारी समझ में नहीं आतीं क्योंकि आपने बार-बार कहा है कि एक ईश्वर के सिवा और कोई नहीं है और ईसामसीह ही वास्तविक ईश्वर थे। लेकिन कोई 1800 वर्ष पहले अरब सागर के किनारे यहूदियों ने उनको पेड़ से लटाकर उनकी हत्या कर दी थी। अब महोदय स्वयं विचार करें कि भला 'ईश्वर नहीं है' के अलावा मै और क्या उत्तर दे सकता हूँ।....[19]

ऊपर ईसाई त्रित्ववाद पर राममोहन की व्यंगात्मक आक्रमण का नमूना दिया गया। इस आलोचना में कोई एक मि० राईट ने भाग लिया था।[20] अभी 'प्रीसेप्टस आफ जीसेस' के प्रकाशन से उत्पन्न वाद-विवाद चल ही रहा था कि राममोहन को श्रीरामपुर के मिशनरियों की बंगला पत्रिका 'समाचार दर्पण' के साथ एक और तर्क युद्ध में उतरना पड़ा। इस पत्रिका के 14 जुलाई

1821 के अंक में किसी छद्म नामधारी 'हिन्दू धर्म विशेषज्ञ' ने वेदान्त, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पुराण तत्र आदि विषयों पर कुछ तात्विक प्रश्न उठाते हुए हिन्दू धर्म और दर्शन की तीखी आलोचना प्रकाशित की।[21] इन्हीं दिनों 'फ्रेण्ड आफ इण्डिया' के साथ राममोहन का तर्क-वितर्क चल ही रहा था। यह तर्क-युद्ध अंगरेजी में था लेकिन अब बंगला के माध्यम से एक और मोर्चा खुल गया। आक्रमण सीधे-सीधे राममोहन पर था। लेख में छोटी सी भूमिका के साथ छः अनुच्छेदों में प्रश्न उठाये गये। साथ ही विद्वान और पण्डितों से आग्रह किया गया कि इन प्रश्नों का सही उत्तर 'समाचार दर्पण' में प्रकाशित किया जायगा। अनुमान लगाया जा सकता है कि इस लेख के प्रणेता सम्भवतः रेवरेण्ड श्मिड ही रहे होंगे।

राममोहन जो हिन्दू धर्म को सुधार कर विश्वधर्म का स्वरूप देने की कोशिश में लगे थे तो इस आह्वान की उपेक्षा भला कैसे करते। उन्होंने 'शिव-प्रसाद शर्मा' के छद्मनाम से 'समाचार दर्पण' के पास उत्तर भेज दिया। लेखन-शैली और तर्क के ढंग को देखकर 'दर्पण' के सम्पादक वर्ग को समझने में जरा भी देर न लगी कि इस विद्वत्तापूर्ण उत्तर का लेखक राममोहन के सिवा और कोई नहीं हो सकता। लेकिन इस उत्तर को छापने की उन्हें हिम्मत नहीं हुई, साथ ही वे अपना उत्तर छापने का वादा भी भूल गये। पहली सितम्बर 1821 के अंक में एक सूचना प्रकाशित हुई : 'श्रीयुत शिवप्रसाद शर्मा द्वारा भेजा गया पत्र यहाँ पहुँचा है। इस पत्र को न छापने का कारण यह है कि पूर्वपक्ष के सिद्धान्तों के अतिरिक्त इसमें अनेक विसंगतियाँ है....।'[22]

आगे यह सूचना थी कि वे चाहे तो पत्र अन्यत्र भी छपवा सकते हैं। इन विसंगतियों में एक था ईसाई धर्म के त्रित्ववाद पर आक्रमण, जो राममोहन ने हिन्दू धर्म दर्शन के पक्ष के समर्थन में किया था। 'समाचार दर्पण' के सम्पादक द्वारा इस पत्र को छापने से इनकार कर देने की इस घटना से राममोहन के मन में अपने ईसाई मित्रों की धार्मिक निरपेक्षता और सच्चाई के बारे में संदेह पैदा हो गया।

इसी दौरान एक और घटना घटी जिसका विवरण राममोहन मित्र ऐडम साहब के संस्मरणों से प्राप्त हुआ है। कलकत्ते के ऐंग्लिकन चर्च के बिशप हेनरी मार्टिन की मृत्यु के बाद डॉ० मिडलटन कलकत्ता के प्रथम बिशप नियुक्त हुए। उनके कार्यकाल में चर्च का काम काफी तेज हो गया था।[23] इधर राममोहन का ईसाई धर्म और बैप्टिस्ट मित्रों के साथ काफी घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। मिडलटन साहब को उम्मीद बंधी थी कि राममोहन जैसा प्रभाव-शाली व्यक्ति जो अकसर चर्च में आया-जाया करता है अवश्य ही एक दिन

ईसाई धर्म ग्रहण कर मुक्ति प्राप्त करेगा। उन्होंने राममोहन को प्रलोभन भी दिखाने की कोशिश की।

"The grand career which would open to him by a change of faith....He would be honoured in England, as well as in India, his name would descend to posterity as that of the modern apostle of India...."[24]

कहना न होगा कि कोशिश का फल उलटा हुआ। ऐडम साहब ने अपने राममोहन विषयक संस्मरणों में इस घटना का विवरण दिया है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

> गर्मियों में एक दिन दोपहर के वक्त जब मैं सामान्यतः अपनी पढ़ाई में व्यस्त था राममोहन मेरे दरवाजे पर हाजिर हुए। उनका ऐसे बेवक्त आना मुझे कुछ अजीब सा लगा। बाद में मालूम हुआ कि वे बिशप मिडलटन के यहाँ से लौट रहे थे। भरी दोपहरी में कुछ सुस्ताने और जलपान करने के लिये रुक गये, क्योंकि उनका घर बीचोंबीच पड़ता था। वस्तुतः वे मानसिक रूप से परेशान नजर आ रहे थे। सुस्ताने और जलपान करने के बाद राममोहन ने उनको बताया कि उनकी परेशानी का मुख्य कारण यह था कि मिडलटन साहब ने उनके साथ धार्मिक विषयों पर लम्बी बहस की और बाद में खुले तौर पर ईसाई धर्म अपनाने के लिए अनुरोध किया। क्योंकि उनका विचार था कि इससे राममोहन को इंगलैण्ड और भारत में सम्मान तथा इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त होगा। राममोहन इस सीधे प्रलोभन से भारी दुखी हुए। उन्हें यह खुलेआम बइज्जती लगी। राममोहन जैसे दृढ़ मानसिक और चारित्रिक गुण सम्पन्न व्यक्ति के लिए यह बहुत अपमानजनक प्रस्ताव था।[25]

ऐडम साहब ने ही लिखा है कि इसके पश्चात राममोहन ने मिडलटन साहब से मिलना बिल्कुल बन्द कर दिया।[26] इतना ही नहीं अब उनमें अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का विचार और प्रबल हो उठा। बैप्टिस्ट मिशन की पत्रिका में उनके उत्तर छापने से इनकार कर ही दिया था इधर 'कलकत्ता जर्नल' जैसी पत्रिका ने धार्मिक बहस में पड़ने से इनकार कर दिया। राममोहन के लिए अब और कोई रास्ता बाकी नहीं था। उन्होंने अपनी पत्रिका प्रकाशित करने की ठान ली। 1821 में ही बंगला और अंगरेजी में 'ब्राह्मण सेवधि' और 'ब्राह्मनिकल मैगजीन' नाम से पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ कर दिया। 'ब्राह्मनिकल मैगजीन' के शीर्षक के नीचे दी हुई विवरणात्मक व्याख्या इस प्रकार है : "The Missionary and the Brahmun, being a

vindication of the Hindu religion against the attacks of Christian missionary."[27]

इस विवरण से स्पष्ट है कि पत्रिका का उद्देश्य ईसाई मिशनरियों के हिन्दू धर्म के विरुद्ध आक्रमण का प्रतिरोध करना ही था। पत्रिका के एक पृष्ठ में बंगला और उसके सामने वाले पृष्ठ में अंगरेजी अनुवाद छपते थे। पत्रिका के प्रकाशन के बारे में उन्होंने कारण स्पष्ट करते हुए लिखा था कि 'समाचार दर्पण' ने उनका उत्तर छापने से इनकार कर दिया तो उन्होंने पूरा वाद-विवाद अँगरेजी अनुवाद के साथ छापने का निश्चय किया। 1821 के सितम्बर 'शिवप्रसाद शर्मा' के के नाम से 'ब्राह्मण सेवधि' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। प्रथम अंक में पत्रिका के उद्देश्यों पर जो लेख दिया गया था उसके कुछ अंश का भावानुवाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।

'अंगरेजों को इस देश में शासन करते हुए पचास वर्ष से अधिक हो गये। पहले तीस वर्षों तक उनके वचन और व्यवहार से यही प्रसिद्ध था कि वे किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते। सभी अपने-अपने धर्म का पालन करें यही उनकी कामना है....लेकिन इधर कोई पिछले बीस वर्षों से कुछ अँगरेज जो मिशनरियों के नाम से परिचित हैं हिन्दू और मुसलमानों में खुलेआम धर्म-परिवर्तन के लिए प्रचार कर रहे हैं।....निन्दा, तिरस्कार या प्रलोभन दिखाकर धर्म प्रचार या प्रसार युक्तिपूर्ण या न्यायसंगत नहीं माना जा सकता, यदि तर्क द्वारा हिन्दू धर्म की हीनता और अपने धर्म के बड़प्पन को प्रमाणित कर सकें तो स्वेच्छा से बहुतेरे लोग उनके धर्म को स्वीकार करेंगे....सत्य और धर्म सर्वदा ही, ऐश्वर्य, सत्ता, ऊँचे पद और बड़े-बड़े महलों से जुड़ी होगी, ऐसा कोई नियम नहीं है। हाल ही में श्रीरामपुर, मिशनरी ने हिन्दू धर्म और सारे शास्त्रों को असंगतिपूर्ण कहकर प्रकाशित किया था। उनके प्रश्न और उत्तर सहित यहाँ प्रकाशित हैं....।'

राममोहन ने इसके बाद उठाये गये छः महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर एक-एक करके दिया। 'ब्राह्मनिकल मैगजीन' और 'ब्राह्मण सेवधि' के अँगरेजी भाग के चार अंक और बंगला के कुल तीन अंक प्रकाशित हुए थे। इन सभी में लेखक का नाम दिया गया था, पण्डित शिवप्रसाद शर्मा, जबकि सभी को मालूम था कि ये और कोई नहीं, स्वयं राममोहन ही हैं। पहले दो अंकों में राममोहन 'समाचार दर्पण' में प्रकाशित हिन्दू धर्म विरोधी पूरा लेख और उसका उत्तर, जिसे 'समाचार दर्पण' ने छापने से इनकार कर दिया था, प्रकाशित किया। इस लेख में राममोहन ने वेदान्त में प्रतिपादित अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद को सामने रखते हुए हिन्दू धर्म का ईसाई धर्म के साथ तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की। इसी लेख में उन्होंने ओल्ड टेस्टामेंट की कुछ एक चामत्कारिक विश्वासों

की भी आलोचना की। उन्होंने यह भी कहा कि वेदान्त को समझने की क्षमता मिशनरियों में नहीं है। 'मैगजीन' के चौथे और अंतिम अंक में पादरियों द्वारा वेदान्त में 'नास्तिकता' के आरोप का खण्डन करते हुए उन्होंने लिखा था :

> '....अब मैं थोड़े शब्दों में मिशनरी सज्जनों की जानकारी के लिए अपने हिन्दू धर्म के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। पवित्र वेदान्त में समाविष्ट हमारे प्राचीन धर्म के निर्देशानुसार, जिने आधुनिक काल में लोग भुला बैठे हैं, एकमात्र सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर ही सब जीवों में प्राणसंचार करनेवाला और संसार के सभी जीवों को संचालित करता है। मूर्तिपूजा को चाहे किसी भी कृत्रिम, प्राकृतिक या काल्पनिक रूप में क्यों न हो, या तर्कजाल के किसी भी आवरण के पीछे क्यों न हो, हम अस्वीकार करते हैं। हम लोगों के लिए ईश्वर की वन्दना केवल मात्र दूसरे जीवों पर 'दया' या परोपकार ही है। शारीरिक अंग प्रत्यंग जैसे हाथ-पाँव सिर जिह्वा आदि की पूजा या किसी मंच या मन्दिर में ईश्वर की पूजा नही हो सकती।'[29]

'ब्राह्मण सेवधि' के तीसरे अंक में राममोहन ने ईसामसीह के बारे में कुछ मूल प्रश्न उठाये। चूंकि ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओं के मूर्त्ति पूजा और रीति-रिवाजों पर तीव्र आक्रमण किया था इसीलिए अपने धर्म के बचाव के लिए राममोहन ने प्रत्याक्रमण आरम्भ किया। एक ओर 'ब्राह्मण सेवधि' और 'ब्राह्मनिकल मैगजीन' के अंक और दूसरी ओर 'अपील'। राममोहन के जीवन के कोई चार वर्ष 1820 से 1823 तक, ईसाई धर्म विषयक अध्ययन और शास्त्रार्थ में ही बीत गये। 1823 में ब्रह्मनिकल मैगजीन के अँगरेजी लेखों के नये संस्करण में राममोहन ने लिखा था कि उन्होंने 'मैगजीन' की तीसरी संख्या में जो प्रश्न उठाये थे उनका उत्तर पादरियों ने पिछले दो वर्षों में भी नहीं दिया। जब उत्तर नहीं आया तो यह सुनिश्चित हो गया कि उनके पास कोई तर्कसगत उत्तर नहीं है और उन लोगों ने राममोहन के तर्कों को स्वीकार कर लिया है। यह विवाद आगे 'ब्राह्मनिकल मैगजीन' के चौथे अंक में भी चलता रहा। आगे आने वाले समय में भी केशवचन्द्र सेन के जमाने तक यह विवाद चलता रहा।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. विश्वास, **राममोहन समीक्षा** (बंगला) 1983 : पृ० 229. विलियम केरी 1801 मे ही फोर्ट विलियम कालेज में संस्कृत और बंगला के अध्यापक नियुक्त हुए थे। अनुमान है कि 1803-04 में जब राममोहन की पुस्तक 'तुहफात' के प्रकाशन ने उनको अरबी-फारसी के विद्वत मण्डली में पूरी तरह प्रतिष्ठित कर दिया था (पृ० 227)। इसी से 'कालेज' के फारसी विभाग के

अध्यापक और विद्वान राममोहन के चरित्र शिक्षा और योग्यता के बारे में ऊँची धारणा पोषण करते थे। हिन्दुस्तानी या उर्दू के तत्कालीन श्रेष्ठ विद्वान गिल क्राइस्ट से भी राममोहन का घनिष्ठ परिचय था। गिलक्राइस्ट 1804 तक फोर्ट विलियम कालेज में अध्यापक थे (पृ० 228)।

2. Collet : Rajah Rammohun Roy 3rd ed. 1962 (ed. Biswas and Ganguli) पृ० 114. उद्धृत पत्र में यह भी लिखा है कि राममोहन अकसर केरी साहब के साथ पारिवारिक प्रार्थना सभाओं में भाग लेते थे। युस्टेस केरी ने उन्हें बाइबिल के एक भजनावली का संग्रह भेंट किया, जिसे राममोहन हमेशा बहुमूल्य सम्पत्ति समझते थे।

3. विश्वास, पृ० 231.

4. Collet : पृ० 113-114। Periodical Accounts Relative to the Baptist Missionary Society Vol. IV (Bristol 1817) से उद्धृत।

5. वही : पृ० 156-161. सम्पादकीय टिप्पणी में उस काल के पत्र-पत्रिकाओं और दूसरे उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर इस वाद-विवाद के बारे में विस्तृत विवरण दिया गया है।

6. वही : पृ० 109 के अनुसार उन्होंने किसी यहूदी की सहायता से हिब्रू भाषा छः महीने के अन्दर सीख ली थी। इसी से ओल्ड और न्यू टेस्टामेन्ट में जानकारी हासिल करने में सफल हुए।

7. इक़बाल सिंह राममोहन राय : पृ० 218.

8. Collet : पृ० 10-111. राममोहन 'प्रीसेप्टस' का बंगला और संस्कृत अनुवाद नहीं कर पाये थे।

9. वही : पृ० 112 'प्रीसेप्टस' और बाद में प्रकाशित दो 'अपील' लन्दन से एक साथ 1823 में प्रकाशित हुई थी। अन्तिम 'अपील' भी लन्दन से 1823 में प्रकाशित हुई। (देखें पृ० 537)

10. मुखोपाध्याय : **राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य** (बंगला) : पृ० 261-262 में Stephen Hay की पुस्तक से श्मिड को उद्धृत करते हैं 'Even when I resided in London, it was a matter of great joy to me. that I should probably find an opportunity of forming an aquaintance with you and of conversing with you on the most important subjects that can enter into the consideration of man.'

राममोहन के 'वेदान्तसार' का जर्मन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था। अनुवादक श्मिड ही थे या नहीं ठीक-ठीक तय नहीं हो सका है।

11. Collet, पृ० 115.

12. इंगलिस वर्क्स

13. Collet, पृ० 119-120.

14. वही : पृ० 157. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

15. इंगलिश वर्क्स

16. Majumdar Raja Rammohun Roy and Progressive Movements in India : page. 72

17. वही : पृ० 507 कलकत्ता जनरल ने सम्पादकीय टिप्पणी के साथ 'फाइनल अपील' की पूरी भूमिका प्रकाशित की थी।

18. मुखोपाध्याय, पृ० 414 में Final Appeal to Christian Public से उद्धृत।

19. इंगलिश वर्क्स, वौल्यूम 4, पृ० 75-79.

20. मुखोपाध्याय, पृ० 416.

21. Collet, पृ० 160.

22. वही, पृ० 160. ब्रजेन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय के 'संवादपत्रे सेकालेर कथा' से उद्धृत।

23. मुखोपाध्याय : पृ० 427.

24. Collet, पृ० 125.

25. वही, पृ० 126

26. वही, पृ० 126

27. वही, पृ० 128

28. मुखोपाध्याय, पृ० 418-419. 'ब्राह्मण सेवधि' राममोहन ग्रंथावली से उद्धृत।

29. Collet : पृ० 142 ....''We reject idolatry in every form and under what so ever veil of sophistry it may be practiced either in adoration of an artifical, a natural or an imaginary object....'

अध्याय—7

आदम 'द्वितीय' का पतन—युनिटेरियन कमेटी की स्थापना

'प्रोसेप्टस ऑफ जीसेस' के प्रकाशन ने जो तूफान 1821 में खड़ा किया था वह करीब 1823 तक चलता रहा जिसका विवरण पहले ही दिया जा चुका है। इस काल में राममोहन स्वभावतः ईसाई धर्म और बाइबिल के गहन अध्ययन मे लगे थे। यह भी विदित है कि उनका ईसाई पादरियों से मित्रता और निकट का सम्पर्क था और इस वाद-विवाद के दौरान वे ईसाई धर्म और ईसाइयों के और भी निकट आ गये। श्रीरामपुर मिशन के पादरियों में विलियम ऐडम और विलियम येट्स राममोहन के विशेष मित्र थे। ऐडम और येट्स दोनों अपनी विद्वत्ता और प्राच्य विद्या के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे, और बंगला भाषा का खासा ज्ञान रखते थे। ये दोनों राममोहन के विचारों का आदर करते थे। ईसाई जनता के नाम दूसरी अपील के प्रकाशन के दिनों में ही राममोहन ने एक और महत्वपूर्ण योजना आरम्भ की। ऐडम साहब के संस्मरणों के अनुसार 'दूसरी अपील' के प्रकाशन के बाद राममोहन ने पादरी येट्स और ऐडम साहब के साथ मिलकर बाइबिल के चार गॉसपेल (सुसमाचार) का बंगला अनुवाद करना आरम्भ कर दिया।[1] अनुवाद की इस योजना के पीछे राममोहन को ईसामसीह और बाइबिल के व्यापक मानव-प्रेम की भावना के प्रति गहरी रुचि और आदर भावना का सूचक थी। उनकी तीव्र इच्छा थी कि आम जनता की भाषा में इस बहुमूल्य निधि को पेश किया जाय। इससे पहले बाइबिल का केरी साहब द्वारा किया गया अनुवाद उपलब्ध था लेकिन राममोहन की धारणा थी कि ये अनुवाद कुछ जल्दीबाजी में किये गये थे इसीलिए भाव और भाषागत त्रिशुद्धियां रह गई थी।[2] इसी बात को ध्यान में रखकर राममोहन अनुवाद की इस नयी योजना मे लगे। ऐडम साहब ने बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी को 11 जून 1821 में लिखे पत्र में इस घटना का हवाला देते हुए लिखा था—'मैं पिछले कुछ दिनों ने राममोहन राय और मि० येट्स के साथ चार गॉसपेल के बंगला अनुवाद के कार्य में व्यस्त हूँ।' उन्होंने आगे लिखा था कि राममोहन के अनुसार डॉ० केरी और श्री एल्रटन के दो बंगला अनुवादों मे भाषा और मुहावरों की ढेरों अशुद्धियाँ हैं इसी से फिर एक बार नये सिरे से अनुवाद करने के लिए राममोहन ने इससे सहायता माँगी तो हम दोनों राजी हो गये।[3]

पादरी ऐडम के 30 सितम्बर 1822 के एक और पत्र के अनुसार—'मैं इस समय गॉसपेल के सेंट मैथ्यू के बंगला अनुवाद के कार्य में लगा हूँ जिसका

प्रारम्भ राममोहन राय और रेवरेण्ड येट्स के साथ किया था लेकिन बाद में येट्स ने सहायता से इनकार कर दिया और अब केवल मेरे और राममोहन राय पर, कार्य पूरा करने की जिम्मेवारी है....।'[4]

येट्स के साथ मतविरोध चौथे गॉसपेल के अनुवाद के समय आरम्भ हुआ। वह भी एक छोटे से ग्रीक 'पूर्वसर्ग' के अर्थ को लेकर। अनुवाद का कार्य रुक गया। येट्स साहब ने योजना से हाथ खींच लिया। इन्हीं दिनों ऐडम साहब और राममोहन के बीच ईसाई धर्म के त्रित्ववाद और एकेश्वरवाद पर अक्सर लम्बी आलोचना चलती रहती। इस अनुवाद के सिलसिले में हुई लम्बी आलोचना के दौरान 'राममोहन अक्सर कलम हाथ में थामे ध्यान से सब कुछ सुनते रहते और अक्सर चुप ही रहते' लेकिन अंततः इस बौद्धिक वाक प्रतियोगिता में राममोहन के तर्कों की जीत हुई। इन आलोचनाओं के दौरान पादरी ऐडम, राममोहन को ईसाई त्रित्ववाद के पक्ष में ले आने का सपना देख रहे थे। लेकिन पासा पलट गया। पादरी ऐडम ने अपने को 'युनिटेरियन' या 'एकेश्वरवादी' घोषित कर दिया। ऐडम साहब के अपने मित्र को लिखे एक पत्र का अंश यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

कलकत्ता 7 मई 1821 मि० विलियम ऐडम का पत्र मि० एन० राइट को (अनुवाद)।

> 'इधर पिछले कई महीनों से जीसस क्राइस्ट के परम-ईश्वरत्व के सम्बन्ध में मेरे मन में कुछ संशय पैदा होना आरम्भ हो गया था। अकसर राममोहन राय के साथ विचार विनिमय के दौरान इस ओर संकेत किया गया। जबकि मेरा प्रयत्न राममोहन को हमारे अपने मत में परिवर्तित करना था और मि० येट्स भी इससे शामिल थे, लेकिन उन्हें भी इसमें कठिनाई अनुभव होने लगी। तभी से मैंने इस विषय को ध्यान में रखकर अपनी धर्म पुस्तकों को एक बार फिर मेहनत से पढ़ना आरम्भ किया जिससे ईश्वरीय निर्देश या आलोक प्राप्त हो। लेकिन मुझे स्वीकार करने में जरा भी संकोच नहीं कि मैं हमारे धर्मतत्वों के विरुद्ध उठाये गये आपत्तियों को दूर करने में असमर्थ रहा। इसका अर्थ यह नहीं कि मुझे इन तत्वों को त्यागने में कठिनाई नहीं हुई। लेकिन विरोध में उठाई गई आपत्तियाँ, पक्ष में दिये गये तर्कों के मुकाबले मुझे पहाड़ के सामने राई बराबर लगे।'[5]

इस घटना से सारे ईसाई समाज और पादरी मिशनरियों में खलबली मच गई। ऐडम साहब को बैप्टिस्ट मिशन से निकाला तो नहीं गया लेकिन उनका बैप्टिस्ट मिशन से सम्बन्ध टूट गया।

ऐडम साहब का मत परिवर्तन मिशनरियों के लिए भारी चोट थी। बैप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी के 1822 ये दस्तावेजों से ये पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं :

"We mention with deep regret that Mr. William Adam.. has embraced opinion derogatory to honour of the Saviour—denying the proper Divinity of our Lord Christ in consequence of which the connexion between him and the Society has been dissolved...."

हमें खेद के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि विलियम ऐडम....ने ऐसा मतवाद स्वीकार किया है जो हमारे त्राणकर्ता के प्रतिष्ठा के लिए अपमानजनक है। उन्होंने लार्ड क्राइस्ट के देवत्व को अस्वीकार किया है जिसके फलस्वरूप सोसाइटी और उनके बीच सम्बन्ध समाप्त कर दिया गया है। साथ ही यह भी अफवाह जोरों से फली कि येट्स साहब भी धर्ममत परिवर्तन करने जा रहे हैं। येट्स साहब को इन अफवाहों का खण्डन करने के लिए एक वक्तव्य जारी करना पड़ा। और बाद में ईसाई धर्म-शास्त्रों के पक्ष में कुछ लेख प्रकाशित किये।[6]

ऐडम साहब पर राममोहन का कितना प्रभाव था इसका विवरण स्वयं ऐडम साहब ने अपने संस्मरण में दिया है :

> "I was never more thoroughly, deeply and constantly impressed than when in the presence of Rammohun Roy and in friendly and confidential converse with him, that I was in the presence of a man of natural and inherent genius, of powerful understanding and of determined will, determined with singular energy and uncontrollable self-direction, to lofty and generous purposes ..."[7]

अर्थात—इससे पूर्व इतने सम्यक रूप से, इतनी गहराई से, और इतने अविच्छिन्न भाव से मैं किसी से प्रभावित नहीं हुआ जितना राममोहन राय के सान्निध्य में आकर, उनके साथ मैत्रीपूर्ण और विश्वसनीय वार्तालाप के दौरान हुआ। मुझे ऐसा लगा कि मैं एक ऐसे जन्मजात और स्वाभावित रूप से प्रतिभावान व्यक्ति के सामने हूँ जो ऊँचे और उदार उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त, अदम्य कर्मशक्ति का अधिकारी और अपने लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठ है। चिन्तन, अनुभव, वाक और कर्म में उनकी इतनी निष्ठा है कि लगता है इनके बगैर उनके लिए जीवित रहना सम्भव नहीं....उनके लिए विचार-स्वातंत्र्य के बिना जीवन व्यर्थ है। स्वतंत्रता से लगाव सम्भवतः उनकी आत्मा का प्रमुख स्वर है। केवल मात्र कर्म की स्वतंत्रता नहीं विचारों की स्वतंत्रता भी....।[7]

जब यह घटना हुई उस समय के यूरोपीय समाज में कैसी प्रतिक्रिया हुई

होगी, इसका अन्दाजा लगाना आज सम्भव नहीं। राममोहन के हाथों ऐडम साहब का धर्ममत परिवर्तन उस काल की प्रमुख और अनहोनी घटना मानी गई थी। आखिर एक हिन्दू विधर्मी ने एक माने हुए पादरी का मत परिवर्तन करा दिया था। स्थानीय ऐंग्लिकन चर्च और कलकत्ता के अंगरेजों ने 'दूसरा पतित आदम' (सेकण्ड फालन ऐडम) कहकर मजाक उड़ाना शुरू कर दिया। लेकिन श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशनरियों के लिए यह कोई मजाक नहीं था। उनके लिए यह भारी अपमान और कलंक का विषय था। कहाँ वे राममोहन को ईसाई धर्म में दीक्षित कर ईसाई धर्म के प्रचार के लिए व्यवहार करना चाह रहे थे और कहाँ उनका अपना किला ही टूट-बिखर रहा था। इसी के फलस्वरूप 'बंगाल हरकारू' और 'समाचार दर्पण' के अंकों में हिन्दू धर्म और दर्शन के विरुद्ध जमकर लेख लिखे जा रहे थे और राममोहन को इनके उत्तर में हिन्दू धर्म के बारे में अपना विश्लेषण प्रस्तुत करना पड़ा, जिनका संक्षिप्त विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

युनिटेरियन कमेटी की स्थापना

1821 में ईसाई जनता के लिए प्रचारित 'दूसरी अपील' के तुरन्त बाद ही ऐडम साहब ने त्रित्ववाद से हटकर युनिटेरियन या एकेश्वरवादी बनने की घोषणा की। राममोहन भी इस युनिटेरियन गुट में शामिल थे। यह एक छोटा सा दल था। राममोहन के पहल और सहयोग से सितम्बर 1821 में ही कलकत्ता में ऐडम साहब ने युनिटेरियन कमेटी की स्थापना की। वस्तुतः इसके संस्थापक राममोहन और विलियम ऐडम दोनों ही थे। ऐडम साहब अपने मिशन से अलग होने के बाद राममोहन के प्रभाव में अधिकाधिक आते जा रहे थे। कलकत्ता के कई एक अभिजात लोग जिनमें राममोहन के कुछ मित्र भी शामिल थे, इस सोसाइटी की सभाओं में शामिल होते थे। कुछ अंगरेज भी इस संस्था के सदस्य थे लेकिन प्रायः सभी स्कॉटलैण्ड निवासी थे।[9] युनिटेरियन कमेटी कोई बड़ी संस्था नहीं थी लेकिन यह एक सर्वदेशीय मंच था। कुछ प्रतिष्ठित भारतीय नागरिकों के अलावा व्यापारी वर्ग और सरकारी पदाधिकारियों के उदारपंथी यूरोपीय नागरिक इस कमेटी में शामिल थे। इनमें से कुछ प्रमुख सदस्यों में जार्ज जेम्स गार्डन, व्यापारिक संस्था से संबंधित, थियोडोर डिकेन्स, सुप्रीम कोर्ट के बैरिस्टर, और विलियम टेट वकील थे, इसके अतिरिक्त बी० डब्ल्यू० मैकल्योड एक प्रमुख सर्जन और नारमन कार जैसे सरकारी अफसर इस संस्था के सदस्य थे। प्रमुख भारतीय सदस्यों में राममोहन के अलावा उनके बड़े पुत्र राधा प्रसाद, प्रसन्नकुमार ठाकुर और द्वारकानाथ ठाकुर थे। भारतीय सदस्य प्रायः सभी राममोहन के 'आत्मीय सभा' के सदस्यों में से थे। सरकारी अमले के अँगरेज अफसर अकसर ऐंग्लिकन चर्च के साथ रहे हैं, फिर भी कुछ

प्रभावशाली अंगरेज नागरिक इसके सदस्य बन गये। राममोहन ने सोसाइटी के लिए पांच हजार रुपये दान दिये। राममोहन के मित्र प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार ने ढाई-ढाई हजार रुपये दिये। ऐडम साहब और राममोहन के अथक परिश्रम से संस्था की प्रार्थना सभाओं के लिए धर्मतला स्ट्रीट में एक मकान ले लिया गया। इन प्रार्थना सभाओं में ऐडम साहब पुरोहित या पादरी की भूमिका निभाते। राममोहन अपने मित्रों के साथ इन सभाओं में जाते थे। इस प्रकार कई वर्ष तक राममोहन इस देश में युनिटेरियन धर्म प्रचार में प्रमुख सहायक की भूमिका निभाते रहे। इसी एकेश्वरवाद के प्रचार के लिए राममोहन को उन दिनों यूरोप और अमेरिका के ईसाई मिशनरियों और दूसरे लोगों से पत्र व्यवहार करते हुए पाते हैं। कुछ समय के लिए राममोहन ईसाई युनिटेरियन विचार धारा के प्रबल समर्थक बन गये थे। उन्होंने युनिटेरियन प्रेस की स्थापना की और अपने खर्च पर ढेर सारा साहित्य प्रकाशित कर बंटवाया। इसके अलावा इसी सोसाइटी द्वारा स्थापित एंग्लो-हिन्दू स्कूल भी पूरी तरह राममोहन के आर्थिक सहायता पर ही निर्भर थी।[10] युनिटेरियन सोसाइटी भी आर्थिक तौर पर राममोहन के दान पर ही निर्भर थी। युनिटेरियन सोसाइटी की स्थापना राममोहन के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी। यहाँ तक कि लोगों के मन में धारणा बन गई थी कि राममोहन एकेश्वरवादी ईसाई मत के परिपोषक है। ऐडम साहब की कोशिशों और राममोहन की लगन के बावजूद यूनिटेरियन एसोसियेशन के प्रचार और लोकप्रियता में कोई खास प्रगति नहीं हुई। राममोहन और ऐडम दोनों ही इस बात से काफी निराश हो रहे थे। 1823 और 1824 के दौरान एक ओर राममोहन अपने बेटे राधाप्रसाद के मुकदमों में बुरी तरह फँसे हुए थे तो दूसरी तरफ आत्मीय सभा और युनिटेरियन एसोसियेशन के कार्य प्रायः ठप से होते जा रहे थे। राममोहन भी युनिटेरियन कमेटी की प्रार्थना सभाओं में नहीं जा पाते थे। शुरू-शुरू में 20-25 के आस-पास लोग सभा में भाग लेते थे लेकिन बाद में ऐडम साहब को केवल एक-दो सदस्यों की उपस्थिति से संतोष करना पड़ रहा था।[11] इस परिस्थिति पर पहुँचने से पहले 1827 में ऐडम साहब ने राममोहन की ही सलाह पर इस संस्था का नाम ब्रिटिश इण्डियन युनिटेरियन एसोसियेशन रखा।[12] उद्देश्य था भारतीय और यूरोपीय समान विचार वाले व्यक्तियों को एक संस्था में ले आना। हिन्दू और ईसाई दोनों के लिए एक-ईश्वर स्वरूप की स्थापना ही उद्देश्य था। इस काल में राममोहन ने अमेरिका के बाल्टिमोर में एक सज्जन को पत्र लिखा था उसका कुछ अंश राममोहन के विचारों को स्पष्ट करता है :

"मुझे पूरी आशा है कि ईसाई धर्म के सच्चे स्वरूप को अब गैर-ईसाई जैसे विचारों और ईसामसीह के कुछ अनुयायियों द्वारा प्रचलित

रीति-रिवाजों की आड़ में छिपाये रखा नहीं जा सकेगा, क्योंकि सत्य के अनुरागी अनेक लोग ईसामसीह के धर्म को भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए उत्साहपूर्वक कार्यरत हैं। मैं सत्य की शक्ति पर विश्वास रखता हूँ और मेरे विचार से अंत में इसको अवश्य सफलता मिलेगी।....संख्या की दृष्टि से हम लोग थोड़े हैं, लेकिन मुझे सूचित करने में प्रसन्नता हो रही है कि हम में से किसी में भी उत्साह या निष्ठा का अभाव नहीं है।.... ईसाई धर्म के बारे में मेरा स्पष्ट विचार है कि संसार के सारे जीवों को एक परम-पिता की संतान मान कर चलें तो सभी देश, जाति, रंग और मतवाद से ऊपर उठकर एक दूसरे से प्रेम का संबंध कायम कर सकते हैं....।''[13]

सारी कोशिशों के बावजूद यूनिटेरियन आन्दोलन को सफलता नहीं मिल सकी। राममोहन ने 2 जुलाई 1823 को श्री सेमुअल स्मिथ को एक पत्र में लिखा था कि 'युनिटेरियन' वाद के प्रचार में हमें निराशा का सामना करना पड़ रहा है और सफलता की थोड़ी भी उम्मीद नहीं है। राममोहन ने वस्तुतः अपनी आय का कोई एक तिहाई भाग इस परोपकार और धार्मिक कार्य में व्यय किया।[14]

सारी कोशिशों के बावजूद युनिटेरियन एसोसियेशन को आशानुरूप सफलता नहीं मिल रही थी। राममोहन ने ऐडम साहब पर संस्था के संचालन का भार दे रखा था। पहले पहल केवल सुबह ही प्रार्थना सभा का आयोजन होता। बाद में सभायें शाम को होने लगीं। लेकिन उपस्थिति में कोई खास फर्क नहीं आया। ऐडम साहब ने एक अपने केन्द्र के प्रचार के लिए मद्रास जाने की सोची थी लेकिन राममोहन ने आर्थिक कारणों से प्रस्ताव नहीं माना।[15] इन्हीं बातों से धीरे-धीरे राममोहन और ऐडम साहब के बीच कुछ खिंचाव पैदा हो गया। एसोसियेशन की असफलता के लिए ऐडम साहब को पूरी तरह जिम्मेवार ठहराया नही जा सकता। लेकिन असफलता ही शायद निराशा का मुख्य कारण रही होगी। इस सतही मनमुटाव के होते हुए भी राममोहन का ऐडम साहब से लगाव इतना गहरा था कि राममोहन ने अपनी वसीयत में ऐडम साहब के परिवार के लिए आर्थिक व्यवस्था कर दी थी। यहाँ पर बताना आवश्यक है कि कलकत्ता के युनिटेरियन कमेटी की स्थापना के कई वर्ष पहले मद्रास में एक साउथ इण्डियन युनिटेरियन संस्था की स्थापना 1813 में हुई थी। इसके संस्थापक एक दक्षिण भारतीय (कर्नाटक के) ईसाई विलियम राबर्ट थे। धर्म परिवर्तन के बाद ये धीरे-धीरे युनिटेरियन मतावलम्बी बन गये। इन्होंने काफी परिश्रम करके दक्षिण भारतीय संस्था का गठन किया था। इनका इंग्लैण्ड की युनिटेरियम संस्थाओं से भी संबंध रहा है। कलकत्ते की युनिटेरियन कमेटी से

इस संस्था का कभी सीधा संबंध नहीं रहा था। कलकत्ता की कमेटी और मद्रास की संस्था में विशेष अन्तर यह था कि मद्रास संस्था के सदस्य धर्म परिवर्तित ईसाई थे जबकि कलकत्ता की कमेटी में ईसाई और हिन्दू दोनों ही धर्म के लोग थे जो एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे—धर्म परिवर्तन संस्था का उद्देश्य नहीं था।[16] इसी दौरान राममोहन ऐडम साहब की सहायता से बाइबिल से 'सरमन ऑफ द माउण्ट' का संस्कृत अनुवाद करने में लगे हुए थे। दुर्भाग्यवश इस अनुवाद की प्रति कहीं भी उपलब्ध नहीं है। युनिटेरियन एसोसियेशन की असफलता में से कैसे ब्रह्म समाज का जन्म हुआ इसका विवरण यथास्थान दिया जाएगा।

मिशनरी पादरियों के साथ तर्क युद्ध के जमाने में उन्हें बीच-बीच में अपने धर्म के लोगों के साथ भी शास्त्रार्थ में लगना पड़ता था। इन्हीं दिनों कलकत्ता के ही काशीनाथ तर्कपंचानन ने राममोहन के सामने धर्म विषयक चार प्रश्न रखे। 1822 में राममोहन ने इन चारों प्रश्नों का उत्तर एक पुस्तिका के रूप में 'चारि प्रश्नेर उत्तर' छपवाकर प्रकाशित किया। इन उत्तरों में राममोहन धार्मिक परम्परा, रीति-रिवाजों और सही अर्थों में धार्मिक या शास्त्रीय नीतियों की व्याख्या की। जब यह उत्तर प्रकाशित हुआ तो काशीनाथ तर्कपंचानन[17] महोदय बड़े नाराज हुए। उन्होंने २३८ पृष्ठों की एक पुस्तक 'पाषण्ड पीड़णा' के शीर्षक से प्रकाशित की। इस पुस्तक में उन्होंने राममोहन को खुलकर गाली-गलौज से भूषित किया। राममोहन भला कब चूकने वाले थे। 1883 में उन्होंने भी 'पथ्य प्रदान' शीर्षक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें 'पाषण्ड पीड़णा' के सारे आरोपों का एक-एक करके उत्तर दिया। ईसाई मिशनरियों के साथ अपने शास्त्रार्थ के अन्तिम वर्ष में वे एक नये तर्क युद्ध से जूझ रहे थे। डॉ० टाइटलर, कम्पनी के चिकित्सक और हिन्दू कालेज के शिक्षक थे। ये राममोहन के एकेश्वरवाद और युनिटेरियन कमेटी आदि कार्यकलापों से बड़े अप्रसन्न थे। उन्होंने राममोहन को एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर ईसाई धर्म की श्रेष्ठता और अलौकिक क्रियाओं और मूर्तिपूजा सम्बन्धी प्रश्न उठाते हुए हिन्दू धर्म की बुराइयों को प्रमाणित करने की कोशिश की और राममोहन को बहस के लिए ललकारा। राममोहन ने जवाब में केवल इतना लिखा कि धर्म सम्बन्धी विचार के लिए वे केवल अधिकारी धार्मिक व्यक्ति से ही बहस कर सकते हैं। दूसरों से इस विषय में वे पत्र व्यवहार करने के इच्छुक नहीं है। डॉ० टाइटलर को एक साधारण देशी व्यक्ति से ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी, वे आगबबूला हो गये। उन्होंने बेंगल हरकारा' में बहुत ही कटु भाषा में एक पत्र छपवाया। अब राममोहन के पास उचित उत्तर देने के सिवा कोई रास्ता ही न था। उन्होंने अपना उत्तर 'हरकारा' के पास भिजवा दिया। 'हरकारा' और 'फ्रेण्ड

आफ इण्डिया' दोनों ही राममोहन विरोधी पत्रिकाएँ थीं। हरकारा ने उत्तर छापने से इनकार कर दिया। पत्र 'रामदास' के नाम से भेजा गया था। जबकि सभी जानते थे कि 'रामदास' और कोई नहीं स्वयं राममोहन ही हैं। राममोहन ने अपना उत्तर सीधे डाक मे टाइटलर साहब के पास भिजवा दिया। इस प्रकार जो पत्र युद्ध चला वह बाद में राममोहन ने छपवाकर बंटवाया था।[18] 'रामदास' और टाइटलर के बीच बहस उस काल की दिलचस्प घटना थी। राममोहन के व्यंगपूर्ण उत्तरों का जवाब टाइटलर साहब के पास नहीं था।

बैप्टिस्ट मिशनरियों के अलावा दूसरे ईसाई मतावलम्बियों से भी राममोहन ने धीरे-धीरे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध बना लिए थे। विशेष रूप से इंगलैण्ड और अमेरिका के युनिटेरियन ईसाइयों से उनका अच्छा-खासा पत्र व्यवहार चलता रहा। इसके अतिरिक्त एंग्लिकन चर्च और प्रेसबिटेरियन स्कॉटिश चर्च के कई पादरी उनके मित्रों में थे। स्कॉटिश चर्च के पादरियों से मित्रता के पीछे राममोहन का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में इन पादरियों का सहयोग प्राप्त करना था। स्कॉटिश पादरी शिक्षा के क्षेत्र में अपनी योग्यता और कार्यकुशलता के लिए प्रसिद्ध थे। पादरी एलेक्सेण्डर डफ के साथ राममोहन की मित्रता और शिक्षा प्रसार के कार्य में उनके योगदान के बारे में यथास्थान विवरण दिया जायगा।

राममोहन के युनिटेरियन या एकेश्वरवादी विचारधारा ने उस काल में सुदूर अमेरिका मे भी उनके प्रशंसक बना दिये थे। अंतर्राष्ट्रीय युनिटेरियन वर्ग के प्रमुख विद्वानों में इंगलेण्ड के डॉ० टामस रीस, सर जान बोवरिंग, श्री डेल ओवन, डॉ० लान्ट कार्पेन्टर और डॉ० एस्लिन राममोहन के मित्रों में थे। अमेरिका के बल्टिमोर के पादरी स्पार्क्स के साथ राममोहन का पहला पत्र व्यवहार 1822 में हुआ था।[19] इसके अतिरिक्त अमेरिका के हार्वर्ड कालेज के युनिटेरियन पादरी रेवेरेण्ड हेनरी वेयर ने 1823 में राममोहन से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार की संभावनाओं के बारे में एक लम्बे पत्र के साथ कुछ जिज्ञासाएँ भेजी थीं। इस पत्र का उत्तर देते हुए 2 फरवरी 1824 को राममोहन ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए लिखा था—उन्हें खुशी है कि अमेरिका की काफी बड़ी जनता ईसा मसीह के धर्म के शुद्धिकरण के कार्य में जुटी है। उन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार में जिन बाधाओं का सामना करना पड़ता है उनके मुख्य कारण में, यहाँ के लोगों का अपनी धर्म पुस्तकों के प्रति आस्था और जात खोने का भय आदि कारण बताये थे।

भारत में ईसाई धर्म प्रचार की सम्भावनाओं के बारे में उत्तर देते हुए राममोहन ने लिखा था कि रूढ़िवादी पादरियो से यह कार्य सम्भव नहीं। इसके लिए शिक्षित, सुसंस्कृत शिक्षक भेजे जाने चाहिए जो अँगरेजी साहित्य और

पाश्चात्य विज्ञान की शिक्षा दे सकें। राममोहन ने यह पत्र 1824 में लिखा था। विचारणीय है कि अँगरेजी और पाश्चात्य शिक्षा के बारे में लार्ड आमहर्स्ट को उनका प्रसिद्ध पत्र 1823 में लिखा गया था। इसी सम्बन्ध में मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में बिशप हेबर के एक पत्र का हवाला दिया है। हेबर ने यह पत्र कलकत्ता आने के ठीक छः दिन बाद 16 अक्तूबर, 1823 को इंगलैण्ड के डीन सेन्ट ऑसफ को लिखा था :

"Our chief hinderences are some Deistical Brahmins who have left their old religion and desire to found a sect of their own, and some of those who are professenly engaged in the same work with ourselves, the Dissenters."[20]

स्पष्ट है कि यह इशारा राममोहन और उनके मित्रों की ओर था।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Iqbal Singh, Rammohan Roy : पृ० 254.

2. मुखोपाध्याय : राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगला) : पृ० 432.

3. Collet, Raja Rammohun Roy : पृ० 122.

4. वही : पृ० 122. यह पत्र एडम साहब ने एडवर्ड पूले को लिखा था।

5. वही : 123-124. सम्पादकीय टिप्पणी (पृ० 159) में येट्स को राममोहन के बारे में उद्धृत करते हुए लिखा है "He is one of the most learned men in Sanskrit and Arabic in Calcutta...." The biographer of Yates adds." "He not only studies scriptures diligently; but in 1820 afforded Mr. Yates very effectual assistance in the translation of Gospels into Bengalee. By his aid considerable improvements were made. (Hoby : Memoir of William Yates से उद्धृत)

6. वही : पृ० 158-159. येट्स साहब ने बाद में राममोहन के 'अपीलों' का उत्तर देते हुए 'Essays in defence of important Scripture doctrine in reply to two Appeals' प्रकाशित किया जो 1822 में बैप्टिस्ट मिशन प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

7. वही : पृ० 126-127. 'A lecture on the life and labours of Rammohun Roy by W. Adam (1879) से उद्धृत।

8. वही : पृ० 131. ऐडम साहब ने 26 जून, 1827 को श्री आर० डटन को एक पत्र में लिखा था कि 'कमेटी की स्थापना सितम्बर 1821 में हुई।'

9. वही : पृ० 131. उक्त पत्र में युनिटेरियन कमेटी के सदस्यों की जो सूची दी गई है उनमें प्राय: सभी अंग्रेज सदस्य स्काटिश जाति से सम्बन्धित थे।

10. वही : पृ० 132.

11. वही : पृ० 218.

12. वही : पृ० 218. डॉ० टकरमैन को लिखे एक पत्र का हवाला उद्धृत करते हुए लिखा है कि 30 दिसम्बर, 1827 में युनिटेरियन कमेटी ने एक प्रस्ताव पास करके इसको और विस्तृत स्वरूप देने के लिए, इसका नामकरण 'ब्रिटिश इंडियन युनिटेरियन एसोसिएशन' कर दिया।

13. वही : पृ० 133. यह पत्र 27 अक्टूबर 1822 को लिखा गया था। उसी व्यक्ति को एक और पत्र में 9 दिसम्बर, 1822 को उन्होंने लिखा था :

"...Although our adversaries are both numerous and zealous as the adversaries of truth always have been, yet our prospects are by no necans discouraging, if we only have means of following up what has already been done...."

14. वही : पृ० 134. श्री बकिंगहम ने राममोहन के बारे में लिखा था :

"He has done all this to the great detriment of his private interests, being rewarded by the coldness and jealousy of all the great functinaries of Church and State in India.... Out of a private fortune of which he devotes more than one-third to acts of the purest philonthropy and benevolence."

15. वही : पृ० 218-219.

16. वही : पृ० 163-166. सम्पादकीय टिप्पणी में दक्षिण भारतीय युनिटेरियन संस्था के बारे में विस्तृत विवरण दिया गया है।

17. चट्टोपाध्याय। **महात्मा राममोहन रायेर जीवन चरित** (बंगला), पृ० 199. पाद-टिप्पणी में लिखा है कि काशीनाथ तर्क पंचानन बाद में संस्कृत कालेज के अध्यापक नियुक्त हुए थे।

18. मुखोपाध्याय : पृ० 412. राममोहन ने टाइटलर साहब के साथ अपना शास्त्रार्थ एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया था : A Vindication of the incarnation of the Deity, as the common basis of Hindooism and Christianity against the schismatic attacks of R Tytler, Esq. M. D.....by Ram Doss, Calcutta Printed by S. Smith and Co. Hurkaru Press, 1823.

इस पुस्तक के समर्पण-पत्र में व्यंग्यात्मक चोट इस प्रकार है : 'To all

believers in the Incarnation of the Deity....all Belivers in the Manifestation of God in the flesh, whether Hindoo or Christian, might unite....to check the alarming growth of the Unitarian heresy...."

19. Craford. Rammohun Roy : पृ० 60. B. C. Robertson's Rammohun and American Unitarians से उद्धृत ।

20. Collet : पृ० 155.

अध्याय 8

पारिवारिक अशान्ति : मुकद्दमों का दौर

प्राय: महापुरुषों के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में विरोधाभास पाया जाता है। राममोहन के जीवन में भी सामंजस्य का भारी अभाव रहा है। उनके जीवन में वस्तुत: दो धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती रही थीं। एक ओर था गौरवमय सार्वजनिक जीवन और दूसरी ओर पारिवारिक झगड़े और जमींदारी और जायदाद सम्बन्धी मुकद्दमों का ताँता। न जाने उनके जीवन का कितना बहुमूल्य समय इन झंझटों को सुलझाने में नष्ट हुआ।

1810 में रमाकान्त के पुत्र (तीसरी पत्नी से उत्पन्न) रामलोचन की मृत्यु हो गई और 1812 में राममोहन के बड़े भाई जगमोहन की भी मृत्यु हो गई। उनकी पत्नी सती प्रथा की भेंट हो गई। जगमोहन के पुत्र गोविन्दप्रसाद जायदाद के मालिक बने। लेकिन उसको इस कार्य के अनुपयुक्त पाकर राम-मोहन की माता तारिणी देवी ने जायदाद की रखवाली की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। जैसा हम पहले ही बता चुके है कि राममोहन और उनकी माँ के बीच विरोध शुरू से ही चल रहा था। यह पहले लिखा जा चुका है कि राम-मोहन को दूसरी बार जब घर से उनकी माता ने निकाल दिया तो उन्होंने इन पारिवारिक झगड़ों से बचने के लिए राधानगर के पास रघुनाथपुर में अपना अलग मकान बनवा लिया था। वहीं अपने परिवार के साथ जा बसे थे। इसी मकान में उनके छोटे पुत्र रमाप्रसाद का जन्म हुआ।[1] बाद में दोनों बेटों को लेकर वे कलकत्ते में बस गये। कभी-कभी रघुनाथपुर अवश्य जाया करते थे। इधर राममोहन ने हिन्दू धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध अपना जिहाद छेड़ दिया तो तारिणी देवी अपने पोते गोविन्दप्रसाद के साथ एकजुट होकर राममोहन के खिलाफ साजिश करने लगीं।[2] उनकी माता का विचार था कि विधर्मी पुत्र का अनिष्ट करने से कोई पाप नहीं लगेगा और यह मत उन्होंने खुले आम व्यक्त किया। डॉ० कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में लिखा था कि राममोहन धर्म और जाति दोनों से च्युत हुए हैं, इसी बात को प्रमाणित करके उनको जायदाद के अधिकार से वंचित करना ही इस मुकद्दमे का उद्देश्य था। पादरी एडम साहब ने भी कुछ ऐसा ही विवरण अपने संस्मरणों में दिया था।[3] लेकिन मुकद्दमे का वास्तविक स्वरूप कुछ इस प्रकार था। जब मुकद्दमा दायर किया गया उस समय राममोहन जिन जायदादों का उपभोग कर रहे थे, वे गोविन्द प्रसाद के अनुसार संयुक्त परिवार की जायदाद थी और इसमें उनका भी

अधिकार था। राममोहन ने इस दावे का पूरी तरह खण्डन करते हुए कहा कि यह जायदाद उनकी निजी सम्पत्ति है। इनकी खरीद के समय वे परिवार से अलग हो चुके थे।[4]

जून, 1817 में गोविन्द प्रसाद ने अपने चाचा के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में मुकद्दमा ठोंक दिया कि राममोहन की जायदाद में उसका आधा हिस्सा है। मुकद्दमा कोई ढाई साल तक चला। 1819 के दिसम्बर महीने में मामले का फैसला सुनाया गया। गोविन्द प्रसाद हार गये थे। उस समय गोविन्द प्रसाद की उम्र केवल 19 या 20 वर्ष रही होगी और वह नाबालिग ही थे। इसी से अनुमान किया जाता है कि वस्तुतः तारिणी देवी के उकसाने पर ही उन्होंने मुकद्दमा ठोंका था। मुकद्दमा हारने के बाद गोविन्द प्रसाद ने अपने चाचा के पास आकर माफी माँगी और स्वीकार किया कि उसने लोगों के मुख्यतः अपनी दादी के बहकावे में आकर यह मामला डाला था। गोविन्द प्रसाद ने अपने चाचा को पत्र में लिखा—

'श्री गोविन्द प्रसाद देव शर्मा प्रणाम करके और महाशय के चरणों में प्रार्थना करते हुए सेवक का निवेदन है कि मैंने दूसरे लोगों के बहकावे में आकर आपकी जायदाद का हिस्सा पाने के लिए सुप्रीम कोर्ट के इक्यूयिटी अदालत में मुकद्दमा दायर किया था। अब अनुभव करता हूँ कि मैं भ्रमवश इस मुकद्दमे में फँसा और दुख पा रहा हूँ। आपको खामख्वाह दुखी किया और खर्चे के नीचे डाला। आप मेरे पिता तुल्य हैं यदि मेरे अपराधों को क्षमा करके मुझे अपने पास आने की आज्ञा दें तो उपस्थित होकर मैं सारी बातें आपसे निवेदन करूँगा।'[5]

मुकद्दमे की अन्तिम सुनवाई के दिन (10 दिसम्बर, 1819) गोविन्द प्रसाद अदालत में हाजिर नहीं हुए। मुकद्दमा खारिज हो गया। इसी सिलसिले में राममोहन के पक्ष से उनकी माता तारिणी देवी, जो गोविन्द प्रसाद की ओर से गवाह थीं, के जिरह के लिए बनाई गई प्रश्नावली की प्रति उपलब्ध है। मुकदमा खारिज हो गया। इसी से न तो तारिणी देवी को अपने पुत्र के विरुद्ध अदालत में खड़े होने का मौका मिला और न ही राममोहन के पक्ष को उनसे जिरह करने का मौका। लेकिन यह प्रश्नावली अपने आप में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह दस्तावेज माता और पुत्र के बीच चले तीव्र धार्मिक मतभेद को स्पष्ट करता है। प्रश्नावली के कुछ रोचक और प्रासंगिक अंशों का अनुवाद उद्धृत .[6]

> '....क्या आपके पुत्र राममोहन के धार्मिक विचारों के कारण आपके साथ उनका मतभेद नहीं हुआ और आप जिस प्रकार से हिन्दू-धार्मिक पूजा-पाठ करने की इच्छा रखती हैं, उन्हें मानने से इनकार करने

पर क्या आपने बदला लेने की भावना से अपने पोते को उस पर मुकद्दमा दायर करने के लिए नहीं उकसाया ?'

'....क्या आपने, वादी और अपने परिवार के दूसरे सम्बन्धियों ने, राममोहन कृत रचनाओं और धार्मिक विचारों के लिए उनके साथ सारे सम्बन्ध नहीं तोड़े ?'

'....क्या आपने बार-बार नहीं कहा कि आप राममोहन का सर्वनाश करना चाहती हैं और इसमें पाप लगने के बजाय, यदि राममोहन पूर्वजों के रीति-रिवाजों को फिर से ग्रहण नहीं करते हैं तो उसका सर्वनाश होने पर मुझे पुण्य मिलेगा ?'

'....क्या आपने इस मुकद्दमे के आरम्भ होने पर प्रतिवादी के कलकत्ता स्थित शिमला की कोठी में जाकर देव-विग्रह की पूजा के लिए जमीन का टुकड़ा नहीं माँगा था ? क्या प्रतिवादी ने उसके बदले आपको गरीबों की सहायता के लिए काफी धन देने की पेशकश नहीं की, और मूर्तिपूजा के लिए किसी प्रकार की सहायता देने से इनकार नही किया ?....'

राममोहन की माता अदालत में उपस्थित नहीं हुई; अतः इन प्रश्नों का उनके पास क्या उत्तर रहा होगा, जानना सम्भव नहीं।

इस लम्बे मुकद्दमे की वजह से गोविन्द प्रसाद आर्थिक संकट में फँस गये थे। राममोहन को भी मानसिक अशान्ति और आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा था। लेकिन जब राममोहन उनकी शरण में आये तो अपनी उदार प्रकृति के कारण फिर क्षमा ही नहीं किया बल्कि गोविन्द प्रसाद के लिए जीविका का प्रबन्ध भी कर दिया। अपने मित्र डिगबी साहब, जो तब तक फिर एक बार भारत लौट आये थे, से कहलाकर गोविन्द प्रसाद को 'आबकारी दरोगा' की नौकरी दिलवा दी। डिगबी साहब ने अपने एक पत्र में इस घटना का जिक्र किया था।[7]

अप्रैल, 1821 में गोविन्द प्रसाद की माँ दुर्गा देवी ने राममोहन के विरुद्ध एक और मुकद्दमा दायर किया। दावा किया गया कि रामेश्वरपुर और गोविन्दपुर के तालुकों की खरीद में उन्होंने साढ़े चार हजार रुपये दिये थे; अतः उन तालुकों पर उनका अधिकार माना जाय। यह मुकद्दमा भी गोविन्द प्रसाद की पूरी जानकारी के साथ दायर किया गया था। लेकिन मुकद्दमे की तारीख में जिन तीन गवाहों को उपस्थित होना था उनमें से एक भी गवाह हाजिर नहीं हुआ। मुकदमा नवम्बर, 1821 को हरजाने के साथ खारिज हो गया।[8]

एक और मुकद्दमा 1823 में वर्धमान के महाराजा तेजचन्द राममोहन के खिलाफ दायर किया। जिसमें राममोहन के पिता ने किसी इकरारनामे के

आधार पर जो 1797 में अनुबन्धित हुआ था पन्द्रह हजार रुपये का दावा ठोंक दिया। वस्तुतः इस मामले में भी कोई दम नहीं था। यह केवल राममोहन को परेशान करने की साजिश थी। राममोहन इस दावे के विरुद्ध बहुत ही जबरदस्त दलील पेश करते हुए कहा कि यह सरासर जालसाजी है। उन्होंने यह भी कहा कि वे अपने पिता के परिवार से उनके जीवन-काल में ही अलग हो गये थे क्योंकि उनका रहन-सहन और विचार कुछ भिन्न थे और वे अपनी कमाई हुई आय पर ही बसर करते रहे हैं। इसलिए उनके पिता की जायदाद से उनका कोई सरोकार नहीं। मामलात सदर दीवानी अदालत में खर्च के साथ खारिज हो गया।[9]

इसके साथ ही एक और मुकद्दमा राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद के विरुद्ध भी दायर किया गया। वस्तुतः उस समय राधाप्रसाद वर्धमान के तहसील में डिगबी साहब के अधीन काम कर रहे थे। डिगबी 1819 में दोबारा भारत लौट आये थे और वर्धमान में कलक्टर नियुक्त हुए थे। राममोहन के साथ डिगबी के निकट सम्बन्धों के बारे में पहले ही लिखा जा चुका है। राधाप्रसाद की नौकरी से तहसील के बहुत से करिन्दे सख्त नाराज थे। उन लोगों ने साजिश करके राधाप्रसाद के खिलाफ 450 रुपये के घूस का आरोप लगाया। राधाप्रसाद ने इस्तीफा दे दिया। मामला काफी लम्बा चला। इससे वर्धमान के राजा इस मामले में पूरी तरह राधाप्रसाद के विरोधियों के साथ थे। मामला बाद में सदर निजामत अदालत के सामने गया। काफी परेशानियों के बाद राधाप्रसाद को 1826 में बेकसूर ठहराते हुए रिहा कर दिया गया। यह सारा मुकदमा जान-बूझ कर लम्बा खींचा गया। क्योंकि यह वस्तुतः राधाप्रसाद नहीं राममोहन को परेशान करने की कुछ भारतीयों और अंगरेजों की साजिश थी। क्योंकि इसी बीच राममोहन ने हिन्दू कट्टरवादियों और ईसाई धर्म के कुछ पहलुओं की तीव्र आलोचना की थी, जिससे ये लोग उनके विरोधी हो गये थे।[10]

जब तक इन मुकद्दमों का सिलसिला खत्म हुआ तब तक राममोहन बुरी तरह थक चुके थे। लेकिन फिर भी अपने उद्देश्य को नहीं भूले। इस काल में भी वे महत्वपूर्ण धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में लगे रहे।

राममोहन की माता तारिणी देवी के अन्तिम दिनों के बारे में कुछ तथ्य जो प्रकाश में आये उनसे उनकी चारित्रिक दृढ़ता का परिचय मिलता है। पहले ही कहा जा चुका है कि तारणी देवी ने अपने बेटे के विरुद्ध मुकदमा ही दायर नहीं करवाया बल्कि जी जान से मिटा डालने के लिए कोशिश की। लेकिन इस कोशिश में न केवल वह हार गईं बल्कि अपनी सारी ताकत और धन-दौलत दाँव पर लगा बैठीं और गोविन्द प्रसाद की ही तरह कंगाली की अवस्था में

पहुँच गईं। गोविन्द प्रसाद तो अपने चाचा से माफी माँगने चला गया लेकिन तारिणी देवी का स्वाभिमान इतना प्रबल था कि वे अपने बेटे के सामने आँचल पसारने को तैयार नहीं थीं। इस लम्बे मुकद्दमे और संघर्ष ने उनको मानसिक और शारीरिक रूप से तोड़कर रख दिया था। कहा जाता है कि 1820 के आसपास वे सब कुछ छोड़छाड़ कर पुरी धाम की ओर चल दीं—अकेले और पैदल। साथ में कोई नौकरानी तक नहीं। वहाँ रहते हुए वे रोज प्रात:काल जगन्नाथ के मन्दिर में झाड़ू लगाया करतीं। कोई दो वर्ष बाद किसी भी वैष्णव भक्त की मनोकामना के अनुरूप इसी तीर्थस्थान में 21 अप्रैल, 1822 को उनकी मृत्यु हो गई।[11]

राममोहन यद्यपि इन मुकदमों में जीत गये थे, लेकिन उनके मन में कोई विशेष आनन्द नहीं था। माँ को दुखी बनाकर भला उन्हें खुशी कैसे होती। आखिरकार वे संवेदनशील मनुष्य थे। वे अच्छी तरह समझते थे कि उन्होंने अपनी माँ का दिल दुखाया है। उनके लिए यह जीत भी हार ही थी। उनको इस बात का पश्चाताप हमेशा रहा। डॉ० कार्पेन्टर ने राममोहन की जीवनी में लिखा है कि राममोहन ने स्वयं उनसे कहा था कि तारिणी देवी का अपनी अन्तिम तीर्थयात्रा से पहले अपने बेटे के साथ फिर से समझौता हो गया था। आखिर माँ थी। उन्होंने न केवल अपने बेटे को क्षमा कर दिया बल्कि अपनी गलती भी स्वीकार कर ली। केवल इतना कहा—'राममोहन, शायद तुम्हीं ठीक थे। मैं एक बूढ़ी कमजोर औरत हूँ इसलिए इन रीति-रिवाजों को छोड़ना सम्भव नहीं'। डॉ० कार्पेन्टर ने यह भी लिखा है कि राममोहन के मन में अपनी इस तेजस्विनी माँ के लिए भारी श्रद्धा और आदर की भावना थी। अपनी माँ के बारे में बताते हुए राममोहन की आँखें अकसर छलछला उठती थीं।[12]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. चट्टोपाध्याय। **महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित्** (1928 संस्करण) बंगला : पृ० 227।

2. Dasgupta : Raja Ram Mohun Roy V. I, पृ० 182 : लेखक के अनुसार तारिणी देवी ने ऐसा व्यक्तिगत आक्रोश के कारण ही किया। सम्पत्ति का कारण तो गौण रहा होगा।

3. बन्द्योपाध्याय। **राममोहन राय** (बंगला), पृ० 38

4. वही : पृ० 38,

5. वही : पृ० 39.

6. वही : पृ० 45-46. लेखक ने पृ० 44 में लिखा है, जब तक राममोहन

नौकरी के सिलसिले में बाहर घूमते फिरे तब तक माता के साथ कोई विशेष मतभेद नहीं था। ज्यों ही उन्होंने कलकत्ता आकर वेदान्त और उपनिषदों पर पुस्तकें प्रकाशित कीं उसी समय से माँ के साथ मतभेद आरम्भ हो गया। वेदान्त सार के अंगरेजी अनुवाद की भूमिका में उन्होंने लिखा था : "By taking the path which conscience and sincerity direct, I born a Brahman, have exposed myself to the complainings and reproaches even of some of my relations, whose prejudices are strong, and whose temporal advantage depends upon the present system."

7. Iqbal Singh. Ram Mohun Roy (1983), पृ० 179 में डिगबी साहब के पत्र का अंश उद्धृत किया है : "....Govindaprasad Roy.... ruined himself by an unsuccessful lawsuit in the Supreme Court which he had carried on during my absence in Europe against his uncle Râm Mohum Roy, the latter, after my return, for compassion for his nephew's distress, was induced to request me to give him a situation to keep him from starving...."

8. Collet. Raja Rammohun Roy, 1962 (ed. Biswas and Ganguli), पृ० 51. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

9. वही : पृ० 51-52

10. दासगुप्ता : पृ० 190

11. बन्द्योपाध्याय : पृ० 39

12. Collet, पृ० 50. सम्पादकीय टिप्पणी में डॉ० कार्पेन्टर की पुस्तक से उद्धृत करते हुए लिखा है : "The touching scene of her final farewell from her son is thus described by Dr. Carpenter "It was with glistening eyes that he told us she had repented of her conduct towards him...."

अध्याय 9

खोज के नये आयाम : पत्रकारिता और शिक्षा

जिस तूफानी काल का विवरण अब तक हम दे रहे थे उसी काल में राममोहन की बहुमुखी प्रतिभा ने अन्य-अन्य नये पथों की खोज जारी रखी। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में वाद-विवादों और व्यस्तता के बावजूद वे शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी हमारे पथ-प्रदर्शक थे।

हम जानते ही हैं कि जब बैप्टिस्ट मिशन ने उनके पुस्तकों को छापने से इनकार कर दिया तो उन्होंने युनिटेरियन प्रेस की स्थापना की थी। इसी प्रकार जब मिशन के **'समाचार दर्पण'** ने उनका उत्तर छापने से इन्कार कर दिया तो उन्होंने **'ब्राह्मनिकल मैगजीन'** और **'ब्राह्मण सेवधि'** का प्रकाशन किया था। इस प्रकाशन के क्षेत्र में राममोहन कोई नये न थे। अपने धार्मिक वाद-विवादों के प्रचार और प्रसार के लिए उन्होंने प्रकाशन का कार्य काफी पहले से ही शुरू कर दिया था। जन-जागरण के लिए समाचारपत्र की भूमिका के बारे में भी वे काफी सजग थे। इसी से लार्ड बेलेजली के प्रेस सेंसर कानून में 1818 के संशोधित अधिनियम के द्वारा जब कुछ राहत मिली तो राममोहन ने देशी पत्रकारिता के गठन की ओर ध्यान दिया। यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि प्रेस-नियंत्रण में जब कुछ ढील दी गई तो राजनैतिक पत्रकारिता का वातावरण बना और उदारपंथी अँगरेजी पत्र **'कैलकटा जर्नल'** का प्रकाशन भी इसी समय में आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के सम्पादक सुप्रसिद्ध जेम्स सिल्क बकिंघम थे। इस पत्रिका की सफलता के पीछे सम्पादक महोदय के क्रान्तिकारी विचारों के अलावा राममोहन के साथ इनकी मित्रतापूर्ण सहयोग भी एक कारण था। इन दोनों के विचारों में भारी समानता थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि राममोहन ने हमेशा बकिंघम साहब की पत्रिका को नैतिक सहयोग दिया। राममोहन 1818 से लेकर अगले पाँच वर्ष तक 'कैलकटा जर्नल' के पृष्ठों के द्वारा निरन्तर अपना सुधारवादी आन्दोलन चलाते रहे। लेकिन राममोहन अंगरेजी पत्रिका के प्रचार से संतोष न कर सके। उनको बंगला के माध्यम से साधारण जनता के समक्ष पहुँचना आवश्यक जान पड़ा।

1821 के अन्तिम दिनों 'कैलकटा जर्नल' में एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ जिसमें लिखा था कि शीघ्र ही एक बंगला साप्ताहिक पत्रिका देशी लोगों द्वारा प्रकाशित होगी। इस पत्रिका का नाम रखा गया है, **'संवाद कौमुदी'** और इसमें धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक विषयों के अतिरिक्त देश-विदेश की घटनाओं

का समाचार दिया जायगा।[1] इस पत्रिका का पहला अंक 4 दिसम्बर, 1821 को प्रकाशित हुआ। इसके पहले अंक में पत्रिका के उद्देश्यों का विवरण देते हुए बताया गया था कि यह पत्रिका, बंगाल की जनता के लिए, जनता की भलाई के लिए 'ध्रुवतारा' का काम करेगी।[2] साथ ही आशा व्यक्त की गयी कि इस पत्रिका के फारसी, हिन्दुस्तानी और अंगरेजी संस्करण भी प्रकाशित होंगे।[3]

मिस कोलेट ने इस पत्रिका को देशी प्रबन्ध द्वारा संचालित, देशी भाषा में प्रकाशित प्रथम पत्र लिखा है। वस्तुतः 'संवाद कौमुदी' से पहले तीन बंगला पत्रिकाओं—**'दिग्दर्शन'**, **'बंगाल गेजेटी'** और **'समाचार दर्पण'** का हवाला मिलता है।

'इस काल में बंगला भाषा में केवल तीन पत्रिकाएँ थीं—सभी 1818 ईसवीं के अप्रैल-मई में प्रकाशित हुए, पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार थे : 'दिग्दर्शन' (मासिक), 'समाचार दर्पण (साप्ताहिक) और 'बंगाल गेजेटी'।'[4] **'बंगाल गेजेटी'** कोई एक वर्ष चला और 1819 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। विशुद्ध समाचार पत्रिका के रूप में अब मैदान में केवल **'समाचार दर्पण'** ही रह गया था। इसका प्रकाशन 1818 के मई से आरम्भ हुआ था। इस बात पर भी विवाद काफी दिनों तक चलता रहा कि इनमें पहले किस पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। **'समाचार दर्पण'** वस्तुतः श्रीरामपुर के ईसाई मिशनरियों की पत्रिका थी। इसी से इसको देशी पत्रिका कहना उचित नहीं है। **'बंगाल गेजेटी'** के संपादक थे—गंगाकिशोर भट्टाचार्य। इस पत्रिका के एक प्रमुख संचालक थे श्री हरचन्द्र राय, जो राममोहन के मित्र और आत्मीय सभा के सदस्य थे। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस पत्रिका के प्रकाशन में भी राम-मोहन का उत्साह और सहयोग रहा होगा। राममोहन का सतीविषयक पहला लेख भी इसी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।[5] अतः राममोहन को देशी (बंगला) पत्रकारिता का अगुआ कहना किसी हद तक ठीक ही कहा जायगा। 'कौमुदी' आरम्भ में प्रति मंगलवार को प्रकाशित होती थी लेकिन 16 मार्च, 1822 से इसका प्रकाशन प्रति शनिवार को होना आरम्भ हो गया। यह पत्रिका यों तो साधारण जनता के लिये थी लेकिन राममोहन शिक्षित वर्ग के लिए भी कुछ विचार और समाचार इस पत्रिका में दिया करते थे। इस पत्रिका के सम्पादक श्री भवानी चरण बन्द्योपाध्याय थे। किन्तु वास्तविकता यह थी कि पत्रिका के सम्पादन और प्रकाशन का पूरा दायित्व राममोहन पर ही था। साथ ही यह भी सर्वविदित था कि **'कौमुदी'** के लेख प्रायः राममोहन द्वारा ही लिखे होते थे। यद्यपि आरम्भ में **'कौमुदी'** का प्रकाशन बंगला और अँगरेजी में करना निश्चित हुआ था, लेकिन बाद में केवल बंगला संस्करण ही प्रकाशित हुआ। पत्रिका का पहला अंक आठ पृष्ठों का था।

1822 में राममोहन फारसी भाषा में एक और साप्ताहिक अखबार **'मिरातुल अखबार'** का प्रकाशन आरम्भ किया।[6] यह हर शुक्रवार को निकलता था। इस **'अखबार'** में कौमुदी ही की तरह देशी और विदेशी घटनाओं के समाचार रहते थे। 1822 के **'मिरातुल अखबार'** के एक अंक में राममोहन ने आयरलैण्ड के कैथोलिक ईसाइयों की दुर्दशा पर एक लेख लिखा था, जो इंगलैण्ड के राजा और राज-धर्म पर कड़ी चोट थी।[7] यह लेख शायद आयरिश राष्ट्रीयता के पक्ष में किसी भारतीय प्रवक्ता का पहला संवेदनापूर्ण बयान था। मिरातुल अखबार के 11 अक्तूबर, 1822 के एक दूसरे अंक में आयरलैण्ड में फैले असंतोष और दुखद अवस्था पर एक आलेख प्रकाशित हुआ था।[8]

इस प्रकार के लेख जिनमें अकसर देशी और विदेशी घटनाओं के ब्योरे अखबार में प्रकाशित होते रहते, इनमें अकसर ब्रिटिश सरकार के बारे में समालोचनात्मक लेख भी रहते थे। यद्यपि इन पत्रिकाओं में ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी जाहिर करने में कोई कसर नहीं उठाई जाती थी फिर भी सरकार इस प्रकार के समालोचनाओं को भला कब तक सहन करती।

1822 के अन्त में, लार्ड हेस्टिंग्स का कार्यकाल समाप्त हो रहा था। कार्यवाहक गवर्नर जनरल जोन ऐडम ने अपने नौकरशाही व्यवस्था को मजबूत बनाने के लिए प्रेस की स्वतंत्रता पर रोक लगा दी। यहाँ तक कि अँगरेजी अखबारों के अंगरेज सम्पादकों की वैचारिक स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगा दिया गया। **कैलकटा जर्नल** के एक अंक में सरकारी अमले के व्यवहार के विरोध में कुछ लिखा गया तो उस पत्रिका पर रोक लगा दी गई। पत्रिका के सम्पादक श्री बकिंघम के सहयोगी आर्नट को कैद कर लिया गया और सीधे विलायत जाते हुए जहाज पर चढ़ाकर वापस भेज दिया गया। श्री बकिंघम के निर्वासन का नोटिस भी अचानक दे दिया गया। 14 मार्च, 1823 को कठोर प्रेस ऑर्डिनेन्स की घोषणा की गई।[9] घोषणा की भूमिका में कहा गया था :

"Matters tending to bring the Government ...into hatred and contempt and to disturb the peace....of society have of late been frequently published and circulated in news-papers."

अर्थात "सरकार के विरुद्ध घृणा, अवज्ञा और समाज में शान्ति भंग करने के उद्देश्य से अकसर पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी सामग्री प्रकाशित की जा रही है....।"

आर्डिनेन्स में यह प्रावधान रखा गया था कि आगे से कोई भी अखबार या पत्रिका गवर्नर जनरल के दफ्तर के चीफ सेक्रेटरी के हस्ताक्षरित लाइसेंस के बिना प्रकाशित नहीं होगी।[10] कानून के अनुसार आर्डिनेन्स को अमल में लाने

के लिए सुप्रीम कोर्ट से पारित होना आवश्यक था। 17 मार्च को इस काले ऑर्डिनेन्स के अनुमोदन के लिए कोर्ट में पेश किया गया। 31 मार्च का दिन सुनवाई के लिए तय किया गया।

इस प्रेस स्वतंत्रता विरोधी अध्यादेश का विरोध करने के लिए जो लोग आगे आये उनमें राममोहन सबसे आगे थे। यह स्वाभाविक ही था कि राममोहन अपने मित्र बकिंघम साहब के निर्वासन और सरकारी अध्यादेश के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा करते। इस कार्य में उनको अपने मित्र द्वारकानाथ ठाकुर से बराबर सहयोग मिलता रहा। कार्य सरल नहीं था और समय भी थोड़ा था। हालाँकि समाज के विशिष्ट यूरोपीय और भारतीय नागरिक इस अध्यादेश से नाराज थे, पर उनमें खुलकर विरोध करने की हिम्मत नहीं थी। काफी भाग-दौड़ के बावजूद भी अध्यादेश विरोधी आवेदनपत्र के लिए पर्याप्त हस्ताक्षर प्राप्त करने में कठिनाई हो रही थी। राममोहन और उनके मित्रों ने अँगरेजी और बंगला में आवेदनपत्र तैयार किया और लोगों के हस्ताक्षर लेने का प्रयास आरम्भ किया। तैयारी में कुछ विलम्ब हो गया तो केवल पन्द्रह व्यक्तियों के हस्ताक्षर से पहला आवेदनपत्र पेश किया गया। अगले दिन एक दूसरा आवेदनपत्र राममोहन के पाँच सहयोगियों ने मिलकर सुप्रीम कोर्ट में पेश किया। इन आवेदनपत्रों के प्रणेता स्वयं राममोहन थे।[11] आवेदनपत्र में प्रेस की स्वतंत्रता और उदार प्रेस कानून की सिफारिश की गई थी। अपने पक्ष की वकालत के लिए राममोहन ने ब्रिटिश-कानून और संविधान के ज्ञाता अंगरेज वकील मि० फरगुसन और मि० टरटन को नियुक्त किया था। ये दोनों सुप्रीम कोर्ट में कैलकटा जर्नल के निर्वासित सम्पादक बकिंघम साहब का मुकदमा लड़ रहे थे। लेकिन इन प्रयत्नों का भी विशेष लाभ नहीं हुआ। जज महोदय सर फ्रांसिस मैकनैटन कट्टरपंथी विचारों के थे। उन्होंने इस विषय में कोई भी दलील सुनने से इनकार कर दिया और प्रेस अध्यादेश कानून पारित कर दिया। 5 अप्रैल को सरकारी गजट में सरकारी हुक्मनामा प्रकाशित हुआ।[12] इस प्रकार प्रेस सम्बन्धी उदार नीति का अन्त हो गया।

राममोहन और उनके सहयोगियों के लिए अब एकमात्र रास्ता यही था कि वे सीधे इंगलैण्ड के राजा के पास आवेदनपत्र भेजते। राममोहन इस उपाय का प्रयोग करने से भी नहीं झिझके। उन्होंने 'किंग इन काउंसिल' के पास अपना आवेदनपत्र भेज दिया। यह अपील राममोहन द्वारा लिखे गये सारगर्भित अँगरेजी का सुन्दर नमूना है।[13] इस अपील ने भारत और इंग्लैण्ड में उनकी धाक जमा दी क्योंकि उस समय एक भारतीय के लिए विदेशी भाषा में प्रेस स्वाधीनता के पक्ष में ऐसे भावपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण तर्क पेश करना एक असाधारण घटना थी।[14] यहाँ पर यह सूचना प्रासंगिक है कि बकिंघम साहब ने

अपने निर्वासन और प्रेस आर्डिनेन्स के विरुद्ध जो मुकदमा दायर किया था, वह अन्त में प्रिवी काउंसिल में छः महीने चलने के बाद खारिज हो गया।

यद्यपि प्रेस कानून के पीछे सरकार का मुख्य उद्देश्य बकिंघम साहब के **कैलकटा जर्नल** पर प्रतिबन्ध लगाना था, लेकिन वे देशी पत्रिकाओं में राममोहन के **मिरातुल-अखबार** से भी संत्रस्त थे।[15] नागरिक अधिकार के इस हनन से राममोहन स्वभावतः विक्षुब्ध हुए। उन्होंने अपनी ओर से इस काले कानून का विरोध करने की ठानी। उन्होंने अपनी फ़ारसी भाषाई पत्रिका **'मिरातुल-अखबार'** का प्रकाशन बन्द करने का ऐलान कर दिया। उन्हें ऐसे दमघोंटू वातावरण में अखबार का चलाना सम्भव नहीं लगा। 4 अप्रैल, 1823 के **'अखबार'** के आखिरी अंक में ऑर्डिनेन्स का हवाला देते हुए और पत्रिका को प्रकाशित करने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्होंने एक लम्बा महत्वपूर्ण सम्पादकीय लिखा था, जिसका अंगरेजी अनुवाद **कैलकटा जर्नल** के 10 अप्रैल के अंक में प्रकाशित हुआ था।[16] मिरातुल अखबार का यह अन्तिम सम्पादकीय अग्रलेख राममोहन के समाचारपत्र की स्वाधीनता के पक्ष में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इसका अनुवाद इस प्रकार है :

"पहले ही प्रकाशित किया था कि कौंसिल के महामान्य गवर्नर जनरल द्वारा पारित कानून और आदेश लागू किये गये हैं, जिसके फलस्वरूप इस शहर में पुलिस थाने में, मालिक के द्वारा हलफनामा पेश किये बिना और सरकार के प्रधान सचिव के पास से लाइसेंस हासिल किये बिना किसी भी दैनिक, साप्ताहिक या सामयिक पत्रिका का प्रकाशन नहीं किया जायगा। इसके बाद भी असंतुष्ट होने पर गवर्नर जनरल इस लाइसेंस को रद्द कर सकते हैं। अब मालूम हुआ है कि 31 मार्च को सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश महोदय मान्यवर सर फ्रांसिस मैकनैटन ने इस कानून का अनुमोदन कर दिया है। इस हालत में कुछ विशेष कठिनाइयों की वजह से, मनुष्य समाज में सबसे छोटा होने पर भी, मैं अत्यन्त दुख और अनिच्छा से इस पत्रिका (मिरातुल-अखबार) का प्रकाशन बन्द कर रहा हूँ। कठिनाइयाँ ये हैं :

"सबसे पहले प्रधान सचिव के साथ जिन यूरोपीय महोदयों का परिचय है उनके लिए नियमानुसार लाइसेंस निकालना बहुत ही आसान काम होने पर भी, मुझ जैसे मामूली व्यक्ति के लिए दरबान और नौकरों के बीच में से निकलकर ऐसे ऊँचे पदाधिकारी तक पहुँचना, या पुलिस अदालत के दरवाज़े तक भीड़ धकेल कर ऐसे उद्देश्य के लिए जाना, मेरे विचार से इसकी कोई सार्थकता नहीं। किसी ने कहा है :

'आबरू कि-बा-सुद् खून इ जिगर दस्त् दिहद्।
ब-उमेद-इ करक-इ, खाजाह, ब-दरबान मा फ़रोश॥'

अर्थात जो सम्मान हृदय के सैकड़ों रक्त बिन्दुओं की एवज में खरीदा जाता है, अरे लोगों किसी का अनुग्रह पाने की खातिर दरबान के हाथों न बेचो।

"दूसरे, खुली अदालत में आदरणीय विचारकों के सामने हलफनामा पेश करना समाज में हेय और अपमानजनक समझा जाता है। इसके अलावा अखबार निकालने की कोई ऐसी आवश्यकता नहीं कि किसी काल्पनिक स्वामित्व को प्रमाणित करने के लिए गैर-कानूनी और घृणित काम किया जाय।"

"तीसरे, हलफनामा दाखिल करने की बदनामी और बेइज्जती उठाने के बाद भी लाइसेंस जब्त किया जा सकता है, इस आशंका के लिए कि समाज मे अनादर का भागी होना पड़ेगा, मानसिक शान्ति पूरी तरह नष्ट हो जायगी। मनुष्य स्वभावतः गलतियाँ करता है। सच्चाई कहते हुए उसे ऐसी भाषा का प्रयोग करना होगा जो सरकार को अरुचिकर लगेगी। इसमे मै कुछ कहने की अपेक्षा मौन रहना ही उचित समझता हूँ—

गदा-इ गोशा-नशिनी तु हाफिजा मा खरोश।
रुमूज्-इ-मसलिहत-इ खेश् खुसरोयान् दानन्द ॥

हे हाफिज ! तू एक गरीब भिखारी है, चुप ही रह।
अपनी राजनीति के गूढ़ तत्व राजा लोग ही समझते है।...."[17]

'**कैलकटा जर्नल**' ने न केवल '**मिरातुल**' के अन्तिम अंक के सम्पादकीय का अनुवाद प्रकाशित किया बल्कि साथ ही मिरातुल के बन्द हो जाने पर खेद प्रकट करते हुए लम्बी सम्पादकीय टिप्पणी भी लिखी थी।[18]

मिरात-उल-अखबार बन्द हो गया। यहाँ पर एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि 1835 तक राजभाषा फारसी ही थी। सभी शिक्षित व्यक्ति फारसी के ज्ञाता होते थे। राममोहन ने प्रेस ऑर्डिनेन्स के विरुद्ध अपना विरोध '**मिरात**' तक ही सीमित रखा। '**संवाद कौमुदी**' का प्रकाशन राममोहन के जीवन काल के बाद भी कई वर्षों तक जारी रहा।

प्रेस कानून के विरोध में राममोहन ने एक आवेदनपत्र इंगलैण्ड के राजा के पास भी भेजा था, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। यह आवेदनपत्र स्वाधीन पत्रकारिता के पक्ष में संभवतः पहला भारतीय विरोध था। उस 'मेमोरियल' में राममोहन ने यह दिखाने की कोशिश की थी कि इस ऑर्डिनेंस से शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में भारी बाधा पहुँचेगी। आम जनता की असुविधाओं और सरकारी कर्मचारियों के अन्याय के बारे में सरकार और न्याय के दरवाजे पर खबरों का पहुँचना बन्द हो जाएगा। राममोहन ने आगे जोड़ा कि मेरा अनुभव यह बताता है कि सरकार को मजबूत बनाने के लिए प्रबुद्ध प्रजा का होना आवश्यक है। यह आवेदनपत्र तथ्यपूर्ण और सारगर्भित दस्तावेज है, जिसकी

तुलना प्रेस स्वाधीनता के पक्ष में मिल्टन के 'एरिओपेजिटिका' के साथ की गई है। इतने प्रयत्नों के बाद भी प्रिवी काउंसिल से राममोहन का आवेदन खारिज कर दिया गया था।

पहले ही बताया जा चुका है कि **'समाचार दर्पण'** पादरियों की पत्रिका थी, इसके अलावा भारतीय प्रबन्ध में प्रकाशित बंगला पत्रिका थी **'बंगाल-गजेटी'**, जिसका प्रकाशन 1818 में आरम्भ हुआ था और 1819 के मध्य में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। केवल **'समाचार दर्पण'** ही प्रकाशित होता रहा। एक भारतीय द्वारा प्रकाशित, भारतीय प्रेस में मुद्रित पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** ही सही अर्थों में पहली भारतीय पत्रिका कही जायगी।[19] इसके संचालन और सम्पादन में राममोहन के साथ शुरू-शुरू में ताराचाँद दत्त और भवानीचरण बंद्योपाध्याय थे। भवानीचरण एक विद्वान और अच्छे लेखक थे लेकिन सतीप्रथा के विरोध के प्रश्न को लेकर राममोहन के साथ उनका मतविरोध हो गया। उन्होंने **'संवाद कौमुदी'** छोड़ कर विरोधी रूढ़िवादी हिन्दुओं के नेता राधाकान्त देव की पत्रिका **'समाचार चन्द्रिका'** का सम्पादन करना आरम्भ कर दिया।

'संवाद कौमुदी' की फाइल आज भी उपलब्ध नहीं हो सकी है।[20] लेकिन दूसरे समसामयिक बंगला और अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं में छपी उद्धृतियों और अनुवादों से इस पत्रिका के बारे में कुछ तथ्य मालूम होते हैं। 'कैलकटा जर्नल' में अकसर 'कौमुदी' और 'मिरात' में से लम्बे उद्धरणों और विषय-सूची का अनुवाद प्रकाशित होता था। इन्हीं के आधार पर इन पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का जायजा लिया जा सकता है।[21]

शिक्षा के क्षेत्र में नये कदम

धार्मिक विषयों, सामाजिक समस्याओं और स्कूल-कालेज की स्थापना जैसे सभी विषयों का राममोहन के लिए एक महत् उद्देश्य की पूर्ति के साधन मात्र थे। जन-शिक्षा ही इसका मुख्य उद्देश्य था। जनजागरण और आधुनिकीकरण के लिए उन्होंने छापेखाने और पत्रकारिता का पूरी तरह प्रयोग किया। हिन्दू कालेज की स्थापना में राममोहन की भूमिका और डेविड हेयर के साथ अँगरेजी शिक्षा के क्षेत्र में उनके सहयोग के बारे में पहले ही लिखा जा चुका है। डेविड हेयर के हेयर स्कूल की स्थापना 1823 में हिन्दू कॉलेज के पास ही हुई। इसमें मुख्यतः अँगरेजी शिक्षा दी जाती थी। इस स्कूल की स्थापना और संचालन में राममोहन ने काफी आर्थिक सहायता दी थी।

1822 में उन्होंने अपने कुछ मित्रों की सहायता से एंग्लो-हिन्दू स्कूल की स्थापना की, जो मुख्यतः राममोहन की आर्थिक सहायता पर ही चलता था। स्कूल का उद्देश्य था—अँगरेजी शिक्षा का प्रसार। ऐडम साहब को स्कूल का पर्यवेक्षक (विजिटर) नियुक्त किया गया था। डेविड हेयर भी इस स्कूल की

संचालन समिति से सम्बन्धित थे। स्कूल के बारे में विलियम ऐडम के, 1827 के एक वक्तव्य के अनुसार स्कूल में दो वेतनजीवी शिक्षक थे और लगभग 60 से 80 विद्यार्थी थे। शिक्षा का माध्यम अंगरेजी था। ईसाई धर्म की शिक्षा तो नहीं दी जाती थी फिर भी नीति और साधारण धार्मिक भावनाओं और आदर्शों की शिक्षा दी जाती थी।[22] इस स्कूल के छात्रों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर भी एक थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि देवेन्द्रनाथ के पिता प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर राममोहन के घनिष्ठ मित्रों में थे।[23] वस्तुतः ऐडम साहब स्कूल को सार्वजनिक और युनिटेरियन कमेटी के संचालन अधीन लाना चाहते थे। लेकिन राममोहन इस प्रस्ताव पर राजी नहीं हुए। इस मत-विरोध के कारण ऐडम साहब 1828 में स्कूल से अलग हो गये।[24]

1823 के आसपास जब राममोहन धार्मिक वाद-विवाद के घेरे में फँसे हुए थे, उसी समय शिक्षा के क्षेत्र में भी एक नया विवाद उठ खड़ा हुआ। घटना की पृष्ठभूमि में 1813 के ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारत में शिक्षा-सुधार के सम्बन्ध में लिया गया एक निर्णय था। इस निर्णय के अनुसार, भारतीय साहित्य के पुनरुद्धार, प्रोत्साहन और ब्रिटिश इलाके में वैज्ञानिक ज्ञान-प्रचार के लिए प्रतिवर्ष अनुमानतः एक लाख रुपया खर्च करना था। लेकिन वर्षों इस धन का कोई विशेष उपयोग नहीं हुआ। 1824 में कलकत्ते में संस्कृत कॉलेज की स्थापना में इस धन का उपयोग हुआ। इस समय कुछ विद्वान संस्कृत और अरबी शिक्षा के पक्ष में थे। लेकिन राममोहन ने 1823 में भारत की आगामी शिक्षा-नीति का क्या प्रारूप होना चाहिए, इस विषय पर एक लम्बा विचार-पत्र तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड आमहर्स्ट के पास भेजा। इस पत्र में उन्होंने संस्कृत कॉलेज की स्थापना का स्पष्ट विरोध किया। (दे० परिशिष्ट) उनके पत्र के कुछ अंशों का अनुवाद इस प्रकार है—

> "इस प्रकार देश के लोगों को अज्ञानता के अंधकार में रखना ही यदि सरकार का उद्देश्य और नीति है तो प्राचीन संस्कृत भाषा की शिक्षा देने से अधिक उत्कृष्ट व्यवस्था और कोई नहीं है।....इसके विपरीत, इस देश के लोगों की उन्नति ही जब सरकार का लक्ष्य है तो शिक्षा के सम्बन्ध में विकासशील और उदार नीति का अनुसरण करना आवश्यक है, दूसरे विषयों के साथ गणित, भौतिक और जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र, शरीर विज्ञान और दूसरे आवश्यक विज्ञानों की शिक्षा दी जानी चाहिए.... अंगरेजी शिक्षा के लिए एक कॉलेज की स्थापना करके उसके साथ पुस्तकालय, वैज्ञानिक प्रयोग के यंत्रादि और साज-सामान देने से ही इस उद्देश्य को सफलता मिल सकती है।"....[25]

इस पत्र में राममोहन ने बड़े व्यवस्थित ढंग से यह प्रस्ताव रखा था कि

केवल संस्कृत और फारसी शिक्षा से इस देश के लोगों को विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं है। अंगरेजी शिक्षा के बिना लोगों में फैले गहरे कुसंस्कार को उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं। इसलिए हिन्दू-समाज की दयनीय अवस्था दूर नहीं हो पायेगी। कुसंस्कार के उन्मूलन और सामाजिक उन्नति के लिए पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान बहुत ही आवश्यक है। इस पत्र में पेश किए गए दलीलों और विद्वत्तापूर्ण विवेचन से तत्कालीन यूरोपीय विद्वान भी चमत्कृत थे। विशप हेबर, जिनके माध्यम से उन्होंने यह पत्र लार्ड अमहर्स्ट के पास भेजा था, ने इस पत्र की बड़ी प्रशंसा की थी।[26]

भारत में अंगरेजी शिक्षा के प्रवर्त्तन के इतिहास में इस पत्र का बहुत महत्व माना जाता है। इस पत्र के बारे में बिशप हेबर ने मार्च 1824 को लिखा था :

> "देशी विद्वान राममोहन राय ने, जिन्हें कभी-कभी लोग बिना कारण ही 'ईसाई' कहते हैं, पिछले वर्ष मुझे प्राच्य विद्या प्रवर्त्तन के विरोध में एक लेख भेजा था ताकि मैं लेख लार्ड अमहर्स्ट तक पहुँचा दूँ। यह लेख अच्छी अंगरेजी, अच्छे विचार और सशक्त दलीलों के कारण कुतूहल पैदा करता है, क्योंकि लेख एक एशियावासी का है।"[27]

उस समय शिक्षा के बारे में राममोहन के आवेदनपत्र को छोड़ और किसी का कोई भी आवेदन या प्रस्ताव-प्रारूप नहीं था। फलतः यह आवेदन-पत्र हेरिंगटन साहब के शिक्षाविषयक समिति में पेश किया गया, किन्तु प्रस्ताव के समर्थन मे राममोहन के आवेदन-पत्र को इसलिए खारिज कर दिया गया क्योंकि यह एक व्यक्तिगत पत्र था किसी संस्था या जन-संगठन की ओर से पेश नहीं हुआ था। हैरिंगटन साहब के विरोध के बावजूद लार्ड अमहर्स्ट राममोहन के विचारो के पक्ष में थे। लेकिन हेरिंगटन के अलावा हेनरी प्रिंसेज और विलसन भी संस्कृत और अरबी शिक्षा के पक्ष में थे। संस्कृत कॉलेज की स्थापना 1824 में हो तो गयी लेकिन विवाद चलता रहा। शिक्षा के ही सम्बन्ध में कैम्ब्रिज (बोस्टन) ने हेनरी वेयर को 1824 में लिखे एक पत्र मे राममोहन ने जो कुछ लिखा था उसका कुछ अंश इस प्रसंग में उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

> "....यही उपयुक्त होगा कि अधिक न भी हो तो कम से कम एक या दो सज्जन जो सच्चरित्र तथा अंगरेजी साहित्य और विज्ञान पढ़ाने की योग्यता रखते हों, को इस कार्य के लिए नियुक्त किया जाय। वे अशिक्षित-अज्ञानी पीढ़ी में ज्ञान का संवर्धन कर सकेंगे।....कृपया आप अपने मित्रों को ऐसे विचारशील योग्य शिक्षक भेजने के लिए प्रेरित करें जो यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान के अतिरिक्त धार्मिक पाखण्डों से अलग सच्चे ईसाई धर्म और सदाचार की शिक्षा दे सकें....।"[27(a)]

संस्कृत-अरबी-फारसी और अंगरेजी शिक्षा का विवाद काफी दिनों तक चलता रहा। कोई बारह वर्ष बाद जब राममोहन की मृत्यु हो चुकी थी, 1835 में मैकले के अंगरेजी भाषा सम्बन्धी प्रस्ताव को लार्ड बेन्टिक ने पारित कर दिया। मैकले ने राममोहन के दलीलों को बहुत तर्कसंगत माना था। इस प्रकार देश में अंगरेजी शिक्षा का समारम्भ हुआ और फारसी की जगह अंगरेजी भाषा के माध्यम से विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा का प्रावधान किया गया।

अकसर यह प्रश्न पूछा जाता है कि राममोहन जैसे संस्कृत, हिन्दू धर्म और शास्त्रों के ज्ञाता ने संस्कृत कॉलेज की स्थापना का विरोध क्यों किया ? वस्तुतः इस प्रश्न को वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर देखना चाहिए। राममोहन के अनुसार इस देश की भलाई इसी में थी कि देश पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के समकक्ष हो। इसी से उन्होंने गणित, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि आधुनिक विषयों की शिक्षा पर जोर दिया। संस्कृत और अरबी की शिक्षा के लिए देश में विद्यालयों, मकतबों की कोई कमी नहीं थी। देश के आधुनिकीकरण के प्रश्न पर उस काल में मननशील और दूरदर्शी एकमात्र व्यक्ति राममोहन ही थे।

वेदान्त कालेज की स्थापना

राममोहन ने 1826 में एक वेदान्त कॉलेज की भी स्थापना की थी। यह घटना उनके अंगरेजी शिक्षा के पक्ष में लिखे। 1823 के पत्र के कुछ वर्षों बाद की है। कुछ लोगों को इस कालेज की स्थापना पर आश्चर्य हुआ; लेकिन लगता है इस कॉलेज की स्थापना के पीछे वेदान्त और दूसरे हिन्दू शास्त्रों का सही अध्ययन प्रसार रहा होगा। ईसाई मिशनरियों की रूढ़िवादी हिन्दुओं के हिन्दू धर्म सम्बन्धी विकृत प्रचार को रोकना ही इस कॉलेज का उद्देश्य था। इसके उद्देश्यों और अंगरेजी शिक्षा के उद्देश्यों में कहीं भी कोई अवरोध नहीं था। इस कालेज में वेदान्त और हिन्दू धर्मशास्त्रों के अलावा पाश्चात्य विज्ञान और संस्कृति की शिक्षा भी दी जाती थी। इस विद्यालय के बारे में विलियम ऐडम के 27 जुलाई, 1826 के पत्र में हवाला इस प्रकार है :

> "थोड़े दिन हुए राममोहन राय ने एक छोटा-सा, लेकिन सुन्दर विद्यालय की स्थापना की है। इसका नाम उन्होंने वेदान्त विद्यालय रखा है। इस समय थोड़े से विद्यार्थी एक प्रतिष्ठित पंडित द्वारा संस्कृत साहित्य की शिक्षा प्राप्त करते हैं। हिन्दू एकेश्वरवाद का समर्थन और प्रचार ही इस विद्यालय का उद्देश्य है। राममोहन राय की इच्छा है कि इस विद्यालय में यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा भी दी जाय। बंगला और संस्कृत के माध्यम से ईसाई एकेश्वरवाद की शिक्षा देने की भी योजना है।"[28]

इस प्रकार राममोहन ने वस्तुतः रूढ़िवादी हिन्दू और रूढ़िवादी ईसाई धर्म का डटकर मुकाबला करने की ठान ली थी। एक ओर वेदान्त शिक्षा उनके

लिए केवल हथियार मात्र था। धार्मिक सुधारों के लिए, तो दूसरी ओर अंगरेजी शिक्षा देश के आधुनिकीकरण के लिए ।

शिक्षा के क्षेत्र में उनका कार्य उनके कलकत्ता काल के अन्तिम दिनों तक चलता रहा। 1830 में स्काट नादरी एलेकजैन्डर डफ जब कलकत्ता पधारे तो उन्ही के विवरण के अनुसार, वे राममोहन के पास परामर्श के लिए आए। यद्यपि डफ साहब का मूल उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार ही था, फिर भी अंगरेजी शिक्षा के पुरोगामी कार्य के लिए वे सदा स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने राममोहन से अपनी योजना के बारे में बातचीत की। हिन्दू मोहल्लों में मिशनरी स्कूल खोलना कोई आसान काम नहीं था। लेकिन राममोहन ने अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी फिरंगी कमल बसु का मकान स्कूल के लिए तय कर दिया। स्कूल के लिए मकान तो मिल गया लेकिन इसके बाद विद्यार्थी जुटाने की समस्या थी। राममोहन ने अपने परिचित मित्रों के घर जा-जाकर कुछ थोड़े से छात्र एकत्रित कर दिये। स्कूल के उद्घाटन के अवसर पर स्वय उपस्थित होकर सबको उत्साहित किया। लेकिन एक बाधा फिर सामने खड़ी हुई। जब स्कूल के बच्चों में बाइबिल की प्रतियाँ बाँटी गई तो बच्चे और उनके माता-पिता स्वभावतः घबराए कि बच्चों को ईसाई बनाने की साजिश तो नहीं। राममोहन को जब यह मालूम हुआ तो वे स्वयं स्कूल गये और छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा—"बाईबिल पढ़ने से ही लोग ईसाई नहीं बन जाते। डा० विलसन ने हिन्दू शास्त्रों का अध्ययन किया है लेकिन वे हिन्दू नही बने। मैंने स्वयं बहुत बार कुरान पढ़ी है फिर भी मुसलमान नहीं बना। मैंने स्वयं पूरे बाईबिल का अध्ययन किया है फिर भी तुम्हे मालूम है कि मैं ईसाई नहीं हूँ। बाईबिल पढ़ने से डरो मत। पढ़ो और समझो।"[29]

छात्रों और उनके माता-पिताओं के मन की आशंका समाप्त हो गई। फिर भी महीनों राममोहन बराबर स्कूल जाकर स्वयं सारी प्रणाली देखते रहे। इस स्कूल की सफलता के बाद राममोहन के सहयोगी कालीनाथ राय चौधरी के आग्रह पर डफ साहब ने कलकत्ता से बाहर टाकी में एक और स्कूल की स्थापना की थी जो बाद में एक सफल मिशनरी स्कूल बना। डफ साहब ने एक सभा में स्वीकारा था कि इस देश में आकर राममोहन राय से जितनी सहायता मिली उतनी अन्य किसी भारतीय या यूरोपीय सज्जन से नहीं मिली।[30]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collet. Rajarammohun Roy : Pg. 168 की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है :

"In a copy of Mr. Buckingham's Calcutta Journal in the latter part of 1821 appeared the "prospectus of a Bengalee

weekly newspaper to be conducted by natives, printed and circulated in Bengalee and English" It was to be called Sambad Kaumudi or The Moon of Intelligence.'' It was to deal with religious moral and political matters, domestic occurances, foreign as well as local intelligence...."

2. वही : पृ० 169.

3. वही : पृ० 169.

4. मुखोपाध्याय. राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य बंगला. पृ० 113.

5. Collet : पृ० 204. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

6. वही, pg. 172. "In fhe following year (1822) he started a weekly newspaper in Persian called Mirat-ul-Akhbar or Mirror of Intelligence. This came out on Fridays, as the Bengali organ on Tuesdays."

7. वही : पृ० 163. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

8. वही : पृ० 172.

9. Iqbal Singh. Rammohun Roy : pg. 302.

10. Collet. : pg. 176.

11. वही : पृ० 177. इस विद्वतापूर्ण आवेदनपत्र के बारे में मिस कोलेट ने लिखा था :

"This memorial was attributed by its opponents to an English author, but was really, as was generally acknowledged later. The work of Rammohun. It may be regarded as the Areopagitica of Indian History. Alike in diction and in argument, it forms a noble landmark in the progress of English Culture in the East."

12. Iqbal Singh : pg. 304.

13. Collet : pg. 180.

14. Collet : pg. 206. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

15. मुखोपाध्याय : पृ० 132.

16. वही : पृ० 132.

17. Majumdar. Rammohun Roy and progressive movemenrs in India : pg. 322-323.

18. वही : 321-322 Calcutta Journal (10th april 1823) की सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

19. मुखोपाध्याय : पृ० 129.

20. वही : पृ० 131.

21. मजूमदार : पृ० 285-296. कैलकटा जर्नल 31 जनवरी 1822 के अंक से आरम्भ होकर जून 1822 के अंत तक लगातार संवाद कौमुदी और मिरात-उल-अखबार के विषय-सूची और उद्धरणों का अनुवाद लगातार प्रकाशित होता रहा। इस पुस्तक में ये सारे उद्धरण एकत्रित किए गए हैं।

25. वही : पृ० 184.

23. वही : पृ० 184. सम्पादकीय फुटनोट देखें। एंग्लो हिन्दू स्कूल के बारे में रोचक विवरण उसकी पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा है। इन पत्रिकाओं में ओरिएन्टल आव अखर इण्डिया गजट बंगाल हरकारू कैलकटा गजट आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित विवरणों के संकलन के लिए मजूमदार की पुस्तक में एकत्रित दस्तावेजों को देखें।

24. वही : पृ० 185.

25. मजूमदार : पृ० 250-252। पूरे पत्र के लिए परिशिष्ट देखें।

26. चट्टोपाध्याय। महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित : पृ० 226.

27. Collet : पृ० 188.

27. (अ) English works (Ed. J. C. Ghose), Vol IV : पृ० 875-885. पूरे पत्र के लिए देखें।

28. Collet : पृ० 189.

29. वही : पृ० 281.

30. चट्टोपाध्याय : पृ० 212-213.

अध्याय—10

ब्रह्म समाज की स्थापना—एक और पदाक्षेप

अब हम राममोहन के जीवन काल के एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि जिस वर्ष राममोहन ने अपना कलकत्ता-जीवन आरम्भ किया था उसी वर्ष उन्होंने आत्मीय सभा की स्थापना की थी। इस सभा की नियमित बैठकें मानसिकता वाली कोठी में हुआ करती थीं और जो लगातार वर्षों तक चलती रहीं। यहाँ अलग-अलग विषयों पर आलोचना के अलावा वेद पाठ और ब्रह्म संगीत का गायन होता था। इस सभा के माध्यम से राममोहन ने अपने चारों ओर कई विशिष्ट लोगों का एक छोटा-सा समुदाय बना लिया था। एकेश्वरवादी उपासना का स्वरूप धीरे-धीरे चारों ओर प्रचारित होने लगा। यहाँ आकर कई नये लोग मित्र बने और कई दुश्मन बनकर निकल गये। कुछ लोगों ने राममोहन को विधर्मी, नास्तिक, ईसाई और न जाने क्या कुछ कहा।

1821 में राममोहन की सहायता और प्रेरणा से 'यूनिटेरियन कमेटी' की स्थापना हुई थी। आत्मीय सभा और यूनिटेरियन कमेटी की सभाएँ 1823 तक ठीक-ठाक चलती रहीं लेकिन इसी अवधि में आकर राममोहन और उनके बेटे राधा प्रसाद पारिवारिक मुकदमों में फँस गए। आत्मीय सभा और 'यूनिटेरियन कमेटी' के कार्य-कलाप ढीले पड़ गए। पारिवारिक मुकदमों में फँस कर राममोहन कई वर्षों तक अपने सार्वजनिक कार्य-कलाप से दूर रहने को बाध्य भी हुए थे लेकिन 1826 के आसपास जब उन्हें इन झंझटों से कुछ राहत मिली तो उन्होंने फिर से अपना प्रचार-कार्य और लेखन-कार्य आरम्भ किया। अगले ही वर्ष उन्होंने 'A translation into English of a Sanskrit tract inculating the divine worship' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। यह वस्तुतः वेदों पर आधारित और गायित्री मंत्र का विवेचन था। इसी समय वे ऐडम साहब के साथ मिलकर उन्होंने बाईबल के 'सरमन आन द माउण्ट' का संस्कृत अनुवाद-कार्य करना आरम्भ किया था[1] जो किन्हीं कारणों से पूरा न हो सका। 1827 के अन्तिम दिनों में उन्होंने एक और महत्वपूर्ण पुस्तिका प्रकाशित की। यह पुस्तिका चन्द्रशेखर देव के छद्म नाम से छपी। पुस्तिका थी 'Answer of a Hindoo to the question, why do you frequent unitarian places of worship rnstead of the numerously attended established churches.'[2] ये सारे कार्यक्रम उनके आन्दोलन का ही हिस्सा थे।

इधर राममोहन यूनिटेरियन कमेटी की सभाओं में व्यस्त रहते। वे अक्सर अपने मित्रों को लेकर इन सभाओं में जाते। 1826 के आसपास 'आत्मीय सभा' और 'यूनिटेरियन कमेटी' प्रायः एक-दूसरे से मिल सी गई थीं। यहाँ तक कि राम-मोहन के प्रस्ताव पर कमेटी का नाम बदल कर 'ब्रिटिश इंडियन यूनिटेरियन एसोसिएशन' रख दिया गया। उद्देश्य था—समान विचार वाले एकेश्वरवादी अंगरेजों और भारतीयों को एक ही धार्मिक मंच पर एक-दूसरे के निकट लाना। इसमें द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर और राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद भी थे। कुछ अंगरेज भी उसी संस्था के सदस्य थे। इस समय में राममोहन दो महान धार्मिक विचारों के बीच खड़े होकर एक नयी राह ढूंढ़ रहे थे। फरवरी 1826 को डा० टकरमैन को पत्र लिखते हुए पादरी ऐडम ने लिखा था कि राममोहन और ईसाई और हिन्दू दोनों ही हैं। '...He is both a Christian and a Hindoo,–Christian with Christians and Hindu with Hindus....although he may safely relinguish idolatry, he cannot safely profess Christianity...''[3]

इसी पत्र में ऐडम साहब ने लिखा था कि राममोहन ने जिस आसानी से मूर्ति पूजा का त्याग किया है, उतनी ही सरलता से ईसाई धर्म ग्रहण करने को तत्पर नहीं हैं।

इधर ऐडम साहब 'यूनिटेरियन कमेटी' को यूनिटेरियन क्रिश्चियन चर्च का रूप देने की जी तोड़ कोशिश कर रहे थे। किसी सीमा तक ऐडम साहब और डॉ० टकरमैन को विश्वास हो चला था कि राममोहन ईसाई एकेश्वरवाद के बहुत नजदीक पहुँच चुके हैं। ऐडम साहब अपने एक और पत्र में बताते हैं कि राममोहन आजकल किसी सभा में नहीं जाते, लेकिन यूनिटेरियन प्रार्थना सभा के फिर से आरम्भ होने पर अवश्य ही आने लगेंगे।[4] 1827 से जब 'यूनि-टेरियन एसोसिएशन' को पुनर्जीवित किया गया तो राममोहन ने इसमें प्रमुख भाग लिया। ऐडम साहब इसमें दोबारा धर्म याजक के रूप में वापस आ गए थे। इसी बीच राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद ने एंग्लो हिन्दू स्कूल के निकट के भवन के लिए जमीन का एक टुकड़ा दान करने का प्रस्ताव रखा।[5] भवन के निर्माण 'हरकारा' पत्रिका कार्यालय के भवन में एक कमरा किराये पर[6] लेकर 'यूनिटेरियन कमेटी' की प्रार्थना-सभाओं का संचालन आरम्भ हुआ। इस प्रार्थना-सभा का शुभारम्भ 3 अगस्त 1827 को ऐडम साहब के हाथों ही सम्पन्न हुआ। ऐडम साहब ने राममोहन के लिए लिखा था—'Rammohun is one of the warmest supporters.' लेकिन राममोहन ने देखा कि एडम साहब सीधे-सीधे एकेश्वरवाद का नहीं बल्कि ईसाई धर्म के ढांचे में रहते हुए एकेश्वर-वाद के ईसाई संस्करण का ही प्रचार कर रहे थे। राममोहन का विश्वास था

कि उनका एकेश्वरवाद धर्म विशेष के साथ चिह्नित नहीं होगा। यह सम्पूर्ण रूप से धर्म निरपेक्ष और तर्कसंगत ब्रह्म ज्ञान पर आधारित होगा। धीरे-धीरे राममोहन ऐडम साहब के चर्च से अलग हटने लगे। उन्हें हिन्दू धर्म के अवतार-वाद और ईसाई धर्म के देवत्ववाद में कोई विशेष अन्तर नहीं दीख पड़ा[7] जबकि शुद्ध एकेश्वरवाद के लिए दोनों ही अग्रहणीय थे।

राममोहन अब समझ गये थे कि प्रत्येक राष्ट्र का अपनी-अपनी भाषा और धर्मग्रंथों के माध्यम से साधना का अपना-अपना पथ निर्माण करना पड़ता है। हरेक राष्ट्र अपने इतिहास से सम्बद्ध है।[8]

एक दिन राममोहन अपने मित्रों के साथ यूनिटेरियन एसोसिएशन की प्रार्थना-सभा से लौट रहे थे। रास्ते में उनके सहयोगी ताराचाँद चक्रवर्ती और चन्द्रशेखर देव ने सुझाया "दीवान जी, हम लोग विदेशियों के प्रार्थना भवन में क्यों जाते हैं? हमें अपना भवन का निर्माण करना चाहिए।" बात राममोहन के मन में बैठ गयी।[9] प्रस्ताव वस्तुतः 'ब्रह्म समाज' की स्थापना का मूल सूत्र था। यह घटना 1828 के आरम्भिक दिनों में कभी हुई होगी। राममोहन ने तुरन्त अपने निकट सहयोगियों जिनमें द्वारकानाथ ठाकुर, राय कालीनाथ मुंशी, प्रसन्नकुमार ठाकुर, मथुरानाथ मल्लिक आदि के साथ परामर्श किया।[10] अपने ही घर पर एक सभा में इस विषय पर अन्तिम निर्णय लिया गया। कई प्रस्तावों पर विचार करने के बाद तय किया कि जोड़ा साँको क्षेत्र के फिरंगी कमल बसु का मकान किराये पर लेकर प्रार्थना-भवन का शुभारम्भ किया जाय। 'आत्मीय सभा' की स्थापना के कोई तेरह वर्ष बाद 22 अगस्त 1828 को वही सभा, इसी किराये के नये मकान में नये नामकरण के साथ आरम्भ हुआ। नया नाम-करण किया गया—'ब्रह्म सभा'। यही बाद में 'ब्रह्म समाज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सभा के सदस्यों के लिए एक छोटी-सी पुस्तिका 'ब्रह्मोपासना' प्रकाशित की गई।[11] आरम्भिक प्रयासों से स्पष्ट है कि राममोहन का पूरा व्यक्तित्व धार्मिक भावना से अनुप्राणित रहा। इसी धार्मिक भावना के आवेश में उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जी-जान से कार्य किया। 'आत्मीय सभा, से शुरू होकर 'ब्रह्म समाज' तक सफर उसी धार्मिक भावना का विकसित रूप था। इस प्रकार एक नये धर्म विश्वास की नींव पड़ी।

हिन्दुओं के इस अलग प्रार्थना-भवन या संस्था की स्थापना के बारे में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि ऐडम साहब युनिटेरियन संस्था को, जिसमें भारतीय और अंगरेज दोनों शामिल थे, सफलतापूर्वक चलाने में असमर्थ थे। हिन्दुओं को लग रहा था कि सारे कार्यक्रम और संस्कार ईसाई धर्म पर आधारित है और उनके अपने वैदिक एकेश्वरवाद का सही प्रयोग या प्रचार नहीं हो रहा है। नतीजा यह था कि उपस्थिति दिन पर दिन कम होती जा रही थी। इस स्थिति

से ऐडम साहब और राममोहन दोनों ही चिन्तित थे। ऐडम साहब के एक पत्र जो उन्होंने जोन बोवरिंग साहब को लन्दन में फरवरी 1828 को लिखा था कुछ अंश प्रासंगिक है :

> "पत्र समाप्त करने से पहले मैं बताना चाहता हूँ कि कलकत्ता के हिन्दू एकेश्वरवादियों को संगठित करने के उद्देश्य से एक संस्था की स्थापना करने की कोशिश कर रहा हूँ जो ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसिएशन की ही सम्पूरक संस्था होगी। हिन्दू जनता में एकेश्वरवाद का प्रचार, पुस्तक-पुस्तिकाओं का प्रकाशन और धार्मिक प्रचार ही संस्था का उद्देश्य होगा। ईसाई धर्म के विरुद्ध प्रतिकूल प्रभाव को रोकने के लिए आवश्यक है कि इस समय ईसाई धर्म को दूर ही रखा जाय।"[12]

राममोहन और उनके सहयोगी मित्रों के बीच समाज की स्थापना के बारे में जो फैसला लिया गया, उसका विवरण भी ऐडम साहब के एक पत्र में है जो उन्होंने जनवरी 1829 को डॉ० टकरमैन को लिखा था :

> "इसके अनुरूप एक हिन्दू एकेश्वरवादी संस्था की स्थापना हुई है, जिसका उद्देश्य सुनिश्चित रूप से हिन्दू धर्म से सम्बद्ध है, ईसाई धर्म से नहीं। अर्थात् वेदों के ईश्वरीय सिद्धान्तों पर एकेश्वरवाद की शिक्षा और आचरण, ईसाई धर्मशास्त्रों पर आधारित नहीं। मैंने राममोहन तथा दूसरे देशी मित्रों को स्पष्ट कह दिया है कि मैं इस आधार का अनुमोदन नहीं कर सकता।"[13]

यद्यपि इस प्रकार के पृथक हिन्दू एकेश्वरवादियों की संस्था बनाने के पक्ष में ऐडम साहब नहीं थे फिर भी उन्होंने इसको ईसाई धर्म की ओर पहला कदम समझकर इसका अनुमोदन किया। यहाँ तक कि अपनी 'युनिटेरियन कमेटी' को नयी संस्था के लिए पाँच सौ रुपये अनुदान देने की सिफारिश की। कभी-कभी स्वयं भी इस संस्था की सभाओं में शामिल होते थे।[14] इस प्रकार ऐडम साहब ने नये हिन्दू एकेश्वरवादियों के समाज की स्थापना का श्रेय अपने ऊपर लेने की कोशिश की। लेकिन मिस कोलेट के अनुसार ब्रह्म समाज के अलावा ऐडम साहब द्वारा संस्थापित सारी संस्थाओं की स्थापना का वास्तविक श्रेय राम-मोहन को ही जाता है। कोई यह कैसे भूल सकता है कि 'आत्मीय सभा' की स्थापना राममोहन ने 1815 में ही की थी, और ऐडम साहब को एकेश्वरवादी बनाने का श्रेय भी राममोहन को ही था।[15] इसी धारा की अन्तिम कड़ी थी, ब्रह्म समाज की स्थापना, जिसका सम्पूर्ण श्रेय सर्वप्रथम राममोहन को और फिर उनके सहयोगियों को, जिनमें ऐडम साहब भी थे—जाता है। उनके धार्मिक सुधारवाद का यह सफल प्रयास था। यह स्वाभाविक ही था कि 'ब्रह्म समाज' की स्थापना के बाद ऐडम साहब और दूसरे यूरोपीय मिशनरी बन्धुओं का पूरी

तरह से मोह भंग हो गया—वस्तुतः उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन ईसाई बन्धुओं ने धर्म प्रचार के जोश में राममोहन को अकसर गलत समझा।[16]

कमल बसु के किराये के मकान में 20 अगस्त 1828 को बड़े धूमधाम के साथ 'ब्रह्म समाज' का उद्‌घाटन-समारोह मनाया गया। मिस कोलेट के अनुसार आरम्भ में इस संस्था का नामकरण 'ब्रह्म सभा' हुआ था लेकिन बाद के शोध कार्यों के आधार पर प्रमाणित हो चुका है कि इस धर्म सभा का नामकरण 'ब्राह्मण समाज' ही किया गया था। कई लोगों ने और तत्कालीन कई पत्र-पत्रिकाओं में इसका उल्लेख ब्रह्म सभा के नाम से अवश्य ही किया था। प्रमाण-स्वरूप पहले दिन के प्रार्थना उपदेश की मुद्रित प्रति में स्पष्टतः 'ब्राह्म समाज' लिखा है। इसके अतिरिक्त ब्राह्म समाज के भवन के लिए खरीदे गये जमीन के विक्रयपत्र में भी 'ब्राह्म समाज' ही लिखा है।[17] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्था का आधिकारिक नाम 'ब्रह्म' या 'ब्राह्म समाज' ही था अर्थात् ब्रह्म के उपासकों का समाज।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं पर इस समाज की स्थापना पर भारी प्रतिक्रिया हुई। 'जान बुल', 'इण्डिया गजट', 'बंगल क्रानिकल' जैसी पत्रिकाओं में आलोचना, लेख और पत्र आदि छपते रहे।[18] देशी भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में भी संस्था की स्थापना पर लेख आदि लिखे गए।

समाज के प्रथम उपदेशक थे रामचन्द्र विद्यावागीश, जो राममोहन के गुरू और सहयोगी हरिहरानन्द तीर्थ स्वामी के छोटे भाई थे। पहले प्रवचन का विषय था—निराकार ईश्वर की आध्यात्मिक साधना का स्वरूप। वेद, उपनिषद और दूसरे हिन्दू धर्मशास्त्रों से उदाहरण और उद्धृतियाँ देकर प्रवचन सम्पन्न किया गया। सभा का अन्त ब्रह्म संगीत के साथ हुआ। इस पहले दिन के प्रवचन का अंग्रेजी रूपान्तर ताराचन्द चक्रवर्ती ने किया, जो बाद में प्रकाशित हुआ। ताराचन्द चक्रवर्ती ही समाज के पहले सचिव नियुक्त किये गए थे। ऐडम साहब ने अपने एक पत्र में इन प्रार्थना-सभाओं का विवरण दिया है जो प्रत्येक शनिवार शाम को 7 से 9 बजे तक चलता रहता।[19] सभा के प्रारम्भ में वेद और उपनिषदों से मंत्रों का उच्चारण किया जाता। इसके पश्चात रामचन्द्र विद्यावागीश महोदय प्रवचन और श्लोकों की व्याख्या आदि करते और 'ब्रह्म संगीत' के साथ सभा समाप्त होती। कार्यक्रम मुख्यतः बंगला और संस्कृत में सम्पन्न होता। बीच-बीच में वाद्य संगीत भी सम्मिलित किया जाता। वेद-पाठ के लिए दो तेलगु ब्राह्मण नियुक्त थे।

कलकत्ता के 'जान बुल' अखबार में 13 अगस्त को इस संस्था की स्थापना का समाचार प्रकाशित हुआ। 'जान बुल' ने निराशापूर्ण लहजे में टिप्पणी की

उदारपंथी हिन्दू युनिटेरियन एकेश्वरवाद से खिसककर शुद्ध देवतावाद की ओर चले गए हैं।[20] भारत को ईसाई बनाने में राममोहन के सहयोग की आशा टूट चुकी।[21] ऐडम साहब को भी घोर निराशा हुई होगी, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

युरोपियनों के लिए यह घटना कितनी ही निराशाजनक क्यों न रही हो लेकिन उदारपंथी प्रगतिशील शिक्षित हिन्दुओं के लिए यह एक उत्साहबर्द्धक और महत्वपूर्ण घटना थी। समाज के सदस्यों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। चंदे के द्वारा पर्याप्त धनराशि एकत्रित होना आरम्भ हो गया। इस प्रकार एक ओर जहाँ 'युनिटेरियन एसोसिएशन' दिन पर दिन अवनति के पथ पर जा रहा था, वहाँ 'ब्रह्म समाज' उत्तरोतर उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा था। धीरे-धीरे इस 'समाज' को धार्मिक और सामाजिक मान्यता प्राप्त होने लगी।

समाज की स्थापना के कुछ ही दिनों में काफी धन एकत्रित हो गया तो राममोहन ने एक जमीन का टुकड़ा ढूँढ़ना शुरू किया जिस पर सभा के प्रार्थना-भवन का निर्माण किया जा सके। आखिरकार चितपुर रोड पर एक जमीन का टुकड़ा मिल गया और जून 1829 को उक्त जमीन खरीद ली गई।[22] जमीन के पट्टे के अनुसार यह जमीन द्वारकानाथ ठाकुर, बाबू कालीनाथ राय, प्रसन्न कुमार ठाकुर, रामचन्द्र विद्यावागीश और दीवान राममोहन राय के नाम पर संयुक्तरूप से खरीदी गई थी।

भवन निर्माण का काम भी तत्काल ही शुरू हो गया था क्योंकि 23 जनवरी 1830 को नए भवन का उद्घाटन हुआ। इस घटना के ठीक एक सप्ताह पहले 16 जनवरी को 'समाचार दर्पण' में यह समाचार प्रकाशित हुआ—

"चितपुर की सड़क पर एक नई धर्मशाला बनी है। पिछले सोमवार के **इण्डिया गजट** ने लिखा कि कुछ थोड़े से गुणवान और धनी हिन्दुओं ने एकत्रित होकर चितपुर की सड़क पर जमीन खरीदी है और उस पर धर्मार्थ एक भवन का निर्माण करा रहे हैं।...." इसके अतिरिक्त विभिन्न अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की अलग-अलग प्रतिक्रिया प्रकाशित हुई। **जान बुल** के अलावा **इण्डिया गजट, हरकारा** और **क्रानिकल** में भी लेख और पत्र प्रकाशित हुए। केवल अंग्रेजी समाचारपत्र ही नहीं बल्कि बंगला समाचारपत्रों विशेषकर राममोहन के विपक्षी गुट, 'धर्म सभा' की पत्रिका **'समाचार चन्द्रिका'** में भी ब्रह्म समाज की स्थापना की तीव्र समालोचना प्रकाशित हुई। स्वाभाविक ही था कि राममोहन की **संवाद कौमुदी** में ब्रह्म समाज के पक्ष में लेख प्रकाशित होते।

भवन के उद्घाटन-समारोह के दिन एकमात्र अंगरेज सज्जन मन्टगुमरी

मार्टिन उपस्थित थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ ब्रिटिश कॉलोनिज' में ब्रह्म समाज के संस्थापना-समारोह का विवरण दिया है :

"1830 में यह समाज राममोहन राय द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक उस समय उनके साथ थे। समारोह में वे ही एकमात्र यूरोपीय थे जो उपस्थित थे। इस अवसर पर कोई पाँच सौ हिन्दू समारोह में उपस्थित थे। सभी ब्राह्मणों को काफी धन बाँटा गया था।"[23]

अब प्रश्न उठता है कि इस नये धर्म-समाज की स्थापना के पीछे उनका क्या उद्देश्य था ? ब्रह्म समाज के उद्देश्यों की बहुत ही सुन्दर व्याख्या 'समाज' के नये भवन के न्यास-संलेख (ट्रस्ट डीड) में उपलब्ध है। इस न्यास-संलेख के मूल अंगरेजी से कुछ अंश उद्धृत करना उपयुक्त होगा :

'For the worship and adoration of the eternal, unsearchable and immutable. Being who is the Author and preserver of the universe, but not under or by any other name, designation or title, used, for and applied to any particular being or beings by any man or set of men whatsoever..."

अर्थात उपासना का देवता कौन है ? वह ब्रह्माण्ड का स्रष्टा, अनादि, अनन्त, अगम्य और अपरिवर्तनीय परमेश्वर ही पूज्य है। किसी प्रकार के साम्प्रदायिक नाम से यह उपासना नहीं की जाएगी। आगे बताया गया है :

जाति, धर्म, सम्प्रदाय या सामाजिक पद का कोई भेदभाव नहीं बरता जायगा। प्रत्येक व्यक्ति को यहाँ उपासना का समान अधिकार होगा। केवल भद्र तरीके से श्रद्धा आर भक्ति के साथ प्रार्थना में शामिल होना है। आगे और लिखा है—

...."For a place of public meeting of all sorts and description of people without distinction, as shall behave and conduct themselves in an orderly, sober, religious and devout manner...."

उपासना का स्वरूप क्या होगा इस विषय में 'संलेख' में स्पष्ट लिखा है। यहाँ कोई चित्र, मूर्ति या स्थापत्य का उपयोग नहीं किया जायगा। कोई प्रसाद नहीं चढ़ेगा, किसी प्रकार बलि-कर्म नहीं होगा। यहाँ प्राणी हिंसा का कोई स्थान नहीं। किसी प्रकार का खान-पान यहाँ वर्जित है। प्रार्थना-गृह के अन्दर ऐसा कुछ नहीं किया जायगा। प्रार्थना-प्रणाली में ये सारी चीजें निषिद्ध मानी जाएँगी। किसी भी सम्प्रदाय विशेष के उपास्य किसी जीव, पदार्थ या मानव के बारे में यहाँ किसी भाषण या संगीत मे कोई आक्षेप, अनादर या घृणा का भाव नहीं

जताया जायगा । यहाँ केवल जगत के स्रष्टा, पालनहार, निराकार परमेश्वर की उपासना की जायगी । ऐसे भाषण, प्रार्थना और संगीत होंगे जो प्रेम, भक्ति, दया और विभिन्न धर्मों के बीच सद्भाव और एकता को बढ़ावा दें ।

"That no graven image, statue or sculpture, carving painting, picture portrait or the likeness of anything shall be admitted with in the said massuages, building, land, tenements, hereditaments and premises and that no sacrifice, offering or oblation of any kind or of anything shall ever be permitted therein, and that no animal or living creature shall within or on the said messuage ....be deprived of life, either for religious purposes or for food and that no eating or drinking.... that no sermon, preaching, discourse, drayer or hymns, be delivered, made, or used in such worship, but such as have a tendency to the promotion of the contemplation of the author and Preserver of universe, to the promotion of Charity, morality, piety, benevolence, virtue and strengthening of the bonds of union between men of all religious persuasions, and creeds...."[24]

कहा जाता है कि इस न्यास-संलेख और आचार संहिता के लेखक स्वयं राममोहन थे । ब्रह्म समाज के उद्देश्य और उपासना और प्रार्थना के स्वरूप के बारे में इस 'संलेख' में बहुत ही स्पष्ट उल्लेख है । संदेह की कहीं भी गुंजाइश नहीं ।

किन्हीं-किन्ही पुस्तकों में 'ब्रह्म-समाज' के सही नामकरण के बारे में कुछ मत-विरोध है । कुछ लोगों का मत है कि यह 'आत्मीय सभा' ही कालान्तर में 'ब्रह्म सभा' के नाम से प्रचलित हुआ । वस्तुतः 20 अगस्त, 1828 को समाज के पहले दिन के मुद्रित उपदेश पुटी में 'ब्रह्म समाज' लिखा है । लेकिन नए भवन के न्यास-संलेख में 'ब्रह्म समाज' नाम दिया गया है । 'ब्रह्म सभा' का उल्लेख कहीं नहीं मिलता । वैसे राममोहन कभी-कभी अपने पत्रों में 'ब्रह्म सभा' लिखना पसन्द करते थे । अधिकृत नाम 'ब्रह्म समाज' हा था । जनता में अकसर इस संस्था को 'ब्रह्म सभा' के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा और कुछ समय तक दोनों ही नाम साथ-साथ प्रचलित रहे ।

'समाज' के उद्देश्य के बारे में भी आलोचना हम पहले कर चुके हैं । राममोहन इस निराकार सत्य को ढूंढ़ने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ घूमते फिरे,

कैसे-कैसे तर्क-वितर्क में फँसे, विश्व के सारे प्रमुख धर्म-ग्रंथों और सम्बन्धित धर्म-दर्शनों का अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उन्हें पूरी तरह आत्मसात किया और अन्त में आकर उनका स्वप्न इस रूप में साकार हुआ। एक नए धर्म-समाज की स्थापना हुई। इस नए समाज का प्रचार और प्रसार तेजी से होने लगा। प्रगतिशील युवक वर्ग भी इस ओर खिचने लगा। फलस्वरूप सारा समाज उदार-पंथी और अनुदारपंथी गुटों में बँटने लगा। हालत यहाँ तक पहुँची कि परिवारों में मतभेद दिखाई पड़ने लगे, पिता-पुत्र में मतभेद होने लगे। राममोहन ने **'संवाद कौमुदी'** निकाला तो रूढ़िवादी विरोधियों ने **'संवाद चंद्रिका'** का प्रका-शन आरम्भ कर दिया। 'ब्रह्म समाज' के विरोध में 'धर्म सभा' की स्थापना की गई। धर्म सभा का एकमात्र उद्देश्य था—राममोहन और उनके ब्रह्म समाज का विरोध। धर्म सभा के सभापति थे—राजा राधाकांत देव और कुछ धनी व्यापारी वर्ग। इन लोगों ने जरा सी देर में लाखों रुपया जुटा लिया। कलकत्ता शहर में धर्म सभा और ब्रह्म समाज के चलते भारी विवाद खड़ा हो गया। कभी-कभी ऐसा लगता था कि धर्म सभा वाले राममोहन और उनके ब्रह्म समाज को खत्म करके ही दम लेंगे। लोगों के घर जा-जाकर विरोधी प्रचार चल रहा थ। लोगों को धर्मच्युत करने की धमकी दी जा रही थी। इन बातों के बावजूद भी 'ब्रह्म समाज' की जनप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। जोड़ासाँको का ठाकुर-परिवार राममोहन का साथ बराबर देता रहा।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि राममोहन और ऐडम साहब जो वर्षों घनिष्ठ मित्र, सहयोगी और सार्वजनिक जीवन में साथ-साथ कार्य करते रहे, एक ऐसी स्थिति में कैसे पहुँच गये कि दोनों को अलग-अलग रास्ते चुनने पड़े ?[25] वस्तुतः उन दिनों की चारित्रिक और उद्देश्यों की भिन्नता के कारण यह कभी न कभी होना ही था। ऐडम साहब सबसे पहले एक ईसाई धर्म याजक और कट्टर ईसाई थे। त्रित्ववाद से एकेश्वरवाद की ओर उनका परिवर्तन भी ईसाई धर्म के भीतर रहकर ही था, वहाँ अपने धर्म से बाहर निकलने का या ईसाई के मूल तत्वों को नकारने का प्रश्न ही नहीं था। युनिटेरियन संस्था स्थापित करने की आड़ में उनका उद्देश्य भी एकेश्वरवादी ईसाई धर्म का प्रचार ही था। उनके लिए ईसा मसीह से श्रेष्ठ और कोई नहीं था और बाईबिल के समकक्ष और कोई धर्मग्रन्थ नहीं था। प्रश्न उठता है कि राममोहन ने, जो शुद्ध वेद और उपनिषदों पर आधारित एकेश्वरवाद के समर्थक थे, युनिटेरियन कमेटी की स्थापना के लिए इतने प्रयत्नशील क्यों रहे ?

वस्तुतः वेदान्त दर्शन ने राममोहन को बहुत ही प्रभावित किया था। उन्हें धर्म और ईश्वर के सार्वभौमिक सत्ता की एकता पर पूर्ण विश्वास था। इसी कारण उन्होंने इस्लाम धर्म-दर्शन का अध्ययन किया और बाद में बाईबिल और

ईसाई धर्म के मूल तत्वों का भी गहरा अध्ययन किया। उन्हें सभी धर्मों में एकेश्वरवाद के तत्व दिखाई दिए। इसी से युनिटेरियन की स्थापना में उनका भरपूर सहयोग स्वाभाविक था। एक जगह उन्होंने लिखा भी था : "We should feel no reluctance to co-operate with them in religious matters, merely because they consider Jesus Christ as the Massenger of God and their Spiritual Teacher, for oneness in the object of worship and sameness in religious practice should produce attachment between the worshippers."[26]

वे युनिटेरियन संस्था को दिये जा रहे सहयोग के बारे में उन्होंने कहा है— कि युनिटेरियनवादी ईश्वर के एकत्व पर विश्वास रखते हैं और बहुदेवता का खण्डन करते हैं और मैं भी इसी में विश्वास रखता हूँ।

वस्तुतः ऐडम साहब ने राममोहन को समझने में गलती की। ऐडम साहब आखिर तक अपने मन में आशा सँजोए रहे कि राममोहन एक न एक दिन ईसाई धर्म की निहित सच्चाई से प्रभावित होकर अपने को पूर्ण रूप से धर्मान्तरित कर लेंगे। यहीं उन्होंने गलती की। ब्रह्म समाज की स्थापना वस्तुतः राममोहन के सर्व धर्म समन्वय और धार्मिक सुधारवाद का मूर्त अभिव्यक्ति थी। इसके द्वारा उन्होंने धार्मिक संकीर्णता म उठकर एक सार्वभौमिक धार्मिक संस्था को जन्म दिया।

नतीजा यह हुआ कि धार्मिक स्तर पर राममोहन और ऐडम साहब का परस्पर सहयोग यहाँ पर आकर समाप्त हो गया। फिर भी यह दोनों में मित्रता और एक-दूसरे के प्रति आदर का भाव हमेशा बना रहा। हम पहले ही बता चुके हैं कि राममोहन ने अपने वसीयत में ऐडम साहब और उनके परिवार के लिए आर्थिक व्यवस्था कर रखी थी।[27] ऐडम साहब ने राममोहन की मृत्यु के लगभग बारह वर्ष बाद बोस्टन (अमरीका) में राममोहन के बारे में एक भाषण में श्रद्धांजलि देते हुए उनकी भारी प्रशंसा की थी।

यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि राममोहन 1830 मे इंगलैण्ड के लिए रवाना हो गए जबकि ऐडम साहब 1838 तक भारत में रहे। लार्ड बेन्टिक ने 1835 में उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा का वर्नाकुलर शिक्षा आयुक्त नियुक्त किया था। उन्होंने 1835 और 1838 में शिक्षा विषयक दो महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत किए थे।[28]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collet : राजाराम मोहनराय : पृ० 216.
2. वही : पृ० 217.
3. वही : पृ० 210. मिस कोलेट की पुस्तक में पृ० 210-212. तक

ऐडम साहब के कई पत्र उद्धृत किए गए हैं। इन पत्रों से स्पष्ट है कि ईसाई मिशनरियों की कोशिशों के बावजूद, वे राममोहन को ईसाई धर्म में दीक्षित करने में पूरी तरह असफल रहे।

4. वही : पृ० 215.

5. वही : पृ० 215.

6. वही : पृ० 215.

7. मुखोपाध्याय, राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगला) पृ० 437.

8. वही : पृ० 437.

9. Collet : पृ० 220. पाद टिप्पणी में लिखा है 'The following is taken from Little stories about Rammohun Roy (second part) from the Tattvabodhini No. 445....The recounter, Babu Rajnarayan Bose, whose father was a deciple and coadjutor of Rommohun Roy states....“these aneedotes and others taken from the lips of my father.”

10. चट्टोपाध्याय, महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित : पृ० 160.

11. मुखोपाध्याय : पृ० 287.

12. Collet, पृ० 221-222.

13. वही : पृ० 222.

14. वही : पृ० 223.

15. वही : पृ० 223. पुस्तक के सम्पादकीय टिप्पणी में (पृ० 242-248) राममोहन और ऐडम साहब के विचारों की भिन्नता पर विस्तार से आलोचना की गई है।

16. वही : पृ० 212. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

17. चट्टोपाध्याय : पृ० 161 में विक्रयपत्र की पूरी प्रतिलिपि उद्धृत है।

18. मजूमदार : राजा राममोहन राय एण्ड प्रोग्रेसिव मूवमेंटस इन इंडिया : पृ० 82-86 में कई अंगरेजी पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों और पत्रों का संकलन किया है।

19. Collet, पृ० 225-226.

20. वही : पृ० 226.

21. मजूमदार : पृ० 85-86. जान बुल में छपे लेख को देखें।

22. चट्टोपाध्याय, पृ० 161.

23. वही : पृ० 163.

24. कोलेट : पृ० 468-477. परिशिष्ट में ट्रस्ट डीड की पूरी प्रतिलिपि देखें।

25. वही : पृ० 242. सम्पादकीय टिप्पणी में कारणों पर विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

26. वही : पृ० 243. सम्पादकीय टिप्पणी में राममोहन की रचनावली से उद्धृत किया गया है।

27. वही : पृ० 215.

28. वही : पृ० 218. सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

अध्याय—11

कलकत्ता काल—अन्तिम चरण

अब हम राममोहन के जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल के अन्तिम चरण में पहुँच चुके हैं जब वह कलकत्ता में विद्यमान थे। 1818 में ब्रह्म समाज की स्थापना हुई। 1830 के अन्तिम महीनों में वे इंगलैण्ड की ओर रवाना हो गए थे। इन दो वर्षों में राममोहन और भी विभिन्न सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यों में व्यस्त रहे।

पहले ही उनके सतीदाह विरोधी आन्दोलन का विवरण देते हुए यह बताया जा चुका है कि 'ब्रह्म सभा' और 'धर्म सभा' के बीच विवाद का मुख्य विषय था—सतीप्रथा। लार्ड आमहर्स्ट का कार्यकाल 11 मार्च, 1818 को समाप्त हुआ है। सतीप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन और कई एक उच्चस्तरीय सरकारी सिफारिशों के बावजूद लार्ड आमहर्स्ट इस प्रथा पर रोक लगाने को राजी नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट ही इस प्रकार के किसी कानून बनाने के विरुद्ध अपना मत प्रकट किया था। सौभाग्य से जुलाई 1818 को लार्ड विलियम बेन्टिक ने शासन और कार्य-भार सम्हाला। ब्रिटिश सरकार इस नृशंस प्रथा का उन्मूलन तो चाहती थी लेकिन उसे हमेशा डर बना रहता कि कहीं इसे धर्म में सीधा हस्तक्षेप न समझा जाय। यह आवश्यक था कि हिन्दुओं के बीच कुछ प्रतिष्ठित शिक्षित व्यक्ति इस प्रथा के विरुद्ध खड़े हों। राममोहन के अंगरेजी और बंगला लेखों, भाषणों और पत्रकारिता के द्वारा प्रचारित आन्दोलन का नतीजा यह हुआ कि काफी बड़ी संख्या में शिक्षित और प्रतिष्ठित लोग इस प्रथा के उन्मूलन के पक्ष में तैयार हो गए। लार्ड बेन्टिक दृढ़ विचारों वाले व्यक्ति थे। उनके सामने सती प्रथा के उन्मूलन का सवाल मुँह बाए खड़ा था। बेन्टिक के सामने सिर्फ एक ही प्रश्न था—इस कार्य में सेना का सहयोग मिलेगा या नहीं? उन्हें इस मुद्दे पर विश्वास हो गया। दूसरी ओर न्यायालय से सम्बन्धित सरकारी अधिकारी भी इस घृणित प्रथा के उन्मूलन के पक्ष मे थे। अब वे जनता और प्रतिष्ठित वर्ग के विचारों को जानना चाहते थे। रूढ़िवादी वर्ग के विचारों को वे पहले ही जानते थे। इसी से अब उनके पास राममोहन के सिवा और कोई मोहरा न था। राममोहन के साथ इस विषय पर लार्ड बेन्टिक की मुलाकात के बारे में एक रोचक विवरण प्रसिद्ध है।

लार्ड बेन्टिक ने राममोहन से परामर्श करने के लिए बुलाने अपने निजी सचिव (एडिकाँग) को भेजा। एडिकाँग (निजी सचिव) ने राममोहन के घर

जाकर बताया कि आपको गवर्नर जनरल साहब याद फरमाते हैं। राममोहन ने जवाब दिया कि—मैं अभी शास्त्र अध्ययन और धर्मचर्चा में व्यस्त हूँ। इसलिए कृपया लाटसाहब को सूचित करें कि मुझे उनके दरबार में जाने की फुरसत नहीं है। आशा है वे मुझे क्षमा करेंगे। एडिकाँग ने लौटकर बेन्टिक साहब को ठीक वैसा ही बता दिया। उन्होंने सब कुछ सुनकर एडिकाँग को दोबारा भेजा कि जाकर कहो—मिस्टर बेन्टिक के साथ अनुग्रहपूर्वक साक्षात्कार कर सकें तो बड़ी कृपा होगी। गवर्नर जनरल के शिष्टाचार और इस आग्रह को राममोहन ठुकरा नहीं सके। इस साक्षात्कार का विवरण 17 जुलाई, 1819 के 'इंडिया गजट' में छपी थी।[2]

'इंडिया गजट' के इसी अंक में आगे लिखा था कि इस समय सरकार के सामने तीन रास्ते खुले हैं—पहला रास्ता केवल वर्तमान कानूनों का कड़ाई से पालन, दूसरा बंगाल और बिहार के प्रदेश में जहाँ, सतीप्रथा का प्रचलन अधिक है, इस प्रथा पर निषेधाज्ञा जारी करना और तीसरे पूरे ब्रिटिश अधिकृत भारत में सतीप्रथा पर कानूनी रोक लगाना।[3] यद्यपि राममोहन पूरी तरह रोक लगाने के पक्ष में थे लेकिन वस्तुस्थिति का ध्यान रखते हुए वे इस प्रथा को धीरे-धीरे चुपचाप समाप्त करवाना चाहते थे। क्योंकि उन्हें भी भय था कि कहीं प्रतिक्रियावादी तत्वों के बहकावे में आकर अशिक्षित जनता विद्रोह न कर बैठे। लार्ड बेन्टिक ने अपने कार्य-विवरणी में इस ओर संकेत किया था। उस काल की पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर जोर-शोर से समाचार और वाद-विवाद छपते रहते। अंगरेजी पत्रिका 'बंगाल हरकारू' में 26 नवम्बर 1829 को फांसिस कीथ मार्टिन नामक एक अंगरेज का पत्र प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध सफल आन्दोलन का सारा श्रेय राममोहन को दिया था। लेकिन इसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में 28 नवम्बर, 1829 को राममोहन और लार्ड बेन्टिक दोनों को ही समान रूप से इस उद्देश्य की सफलता के लिए सम्मानित करते हुए लिखा कि राममोहन को लार्ड बेन्टिक की सहायता के बिना अपने उद्देश्यों मे सफलता मिलने मे कठिनाई का सामना करना पड़ता और बेन्टिक को इस ऐतिहासिक कदम में, राममोहन के सहयोग के बिना सफलता मिलना कठिन होता।[4]

बेन्टिक और राममोहन की मुलाकात और विचार-विनिमय का फल यह हुआ कि 4 दिसम्बर 1829 को सतीप्रथा पर रोक लगा दिया गया।[5] राममोहन की एक मनोकामना पूरी हुई और देश के माथे का कलंक दूर हुआ। उसी दिन लार्ड बेन्टिक ने लंदन में कम्पनी के डायरेक्टर्स को अपने फैसले के बारे में पत्र लिख भेजा।

सती दाह पर कानूनी रोक लगने पर रूढ़िवादी हिन्दुओं में भारी रोष फैल

गया। बंगाल ही नहीं, सारे देश में इसकी गूँज फैली। लगा कि घोर कलियुग आ गया है। राममोहन पर चारों ओर से गालियाँ बरसने लगीं। उनको और उनके साथियों को समाज से बहिष्कार कर दिया गया। यहाँ तक कि हत्या की बातें होने लगीं। मित्रों ने उन्हें सावधान किया। लेकिन वे निडर होकर अपने स्वाभाविक कार्यकलाप में लगे रहे। वैसे बाहर आते-जाते वे कभी-कभी सशस्त्र अंगरक्षक भी अपने साथ रखते थे।

सतीप्रथा पर यह निषेधाज्ञा, राममोहन और उनके प्रगतिवादी सहयोगियों के लिए भारी विजय थी। रूढ़िवादी समाज के नेता लोग तिलमिला उठे। 14 जनवरी, 1830 को लगभग आठ सौ हस्ताक्षरों के साथ इस नये अध्यादेश के विरुद्ध एक आवेदनपत्र विचारार्थ भेजा गया।[6] इसके अतिरिक्त एक दूसरा आवेदन 120 पण्डितों की ओर से पेश किया गया, जिसमें स्मृति और शास्त्रों से उद्धरण देकर प्रमाणित करने की कोशिश की गई कि सतीप्रथा शास्त्रसम्मत है।[7] आवेदनपत्र का मुख्य उद्देश्य राममोहन के प्रयासों का विरोध था। सरकार की ओर से स्पष्ट उत्तर दिया गया कि इस अध्यादेश से हिन्दू धर्म पर कोई आघात नहीं किया गया है फिर भी यदि चाहें तो ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में अपील भेजने की छूट है। लार्ड बेन्टिक का उत्तर का कुछ अंश इस प्रकार है :

"....The Coverner General has given an attentive consideration to all that has been urged by the numerous and respectable body of petitioners; and has thought fit to make this further statement, in addition to what had been before expressed, as the reason which, in his mind, have made it an urgent duty of the British Government to prevent the usage in support of which the petition has been preferred; but if the petitioners should still be of opinion that the late regulation is not in conformity with the enactments of the Imperial Parliament, they have an appeal to the King in Council which the Coverner General shall be most happy to forward."[8]

राममोहन और उनके सहयोगियों के अलावा और भी बहुत से लोग कानून के पक्ष में आगे आने लगे। कलकत्ते के ईसाइयों ने भी अपना समर्थनपत्र दिया।

16 जनवरी, 1830 को कलकत्ता के टाउन हाल में लार्ड बेन्टिक को एक अभिनन्दनपत्र प्रस्तुत किया गया। इस अभिनन्दनपत्र में सतीप्रथा के उन्मूलन के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। यह अभिनन्दनपत्र बंगला और

अंगरेजी में लिखा गया था। इस अभिनन्दनपत्र के लेखक थे स्वयं राममोहन और इस पर जिन लोगों के हस्ताक्षर थे उनमें राममोहन के अलावा द्वारकानाथ ठाकुर, सुप्रसिद्ध जमींदार बाबू कालीनाथ राय और अन्नदाप्रसाद बंद्योपाध्याय जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। राममोहन और उनके सहयोगी प्रतिष्ठित नागरिकों के एक दल ने 19 जनवरी को अभिनन्दनपत्र की प्रति राजनिवास में आयोजित समारोह में जाकर गवर्नर जनरल लार्ड बेन्टिक को पेश की। इस घटना का विवरण 'बंगाल क्रानिकल' में प्रकाशित हुआ था। इस समारोह में बेन्टिक साहब के साथ उनकी पत्नी भी उपस्थित थीं। अभिनन्दनपत्र पहले बंगला भाषा में पढ़कर सुनाया गया फिर अंगरेजी पाठ पढ़ा गया। इसके बाद उसी दिन कलकत्ता के ईसाई नागरिकों की ओर से भी एक अभिनन्दनपत्र पेश किया गया।[9] राममोहन द्वारा पेश किए गए अभिनन्दनपत्र से एक अंश यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा :

> "....हमारी आन्तरिक भावनाओं के बावजूद आपके ऊँचे पद का ख्याल रखते हुए हम कोई मूल्यवान भेंट नहीं लाये जैसा कि ऐसे मौकों पर दिया जाता है। इस अवसर पर हम लोगों की चुप्पी हमारी अकृतज्ञता और कुटिलता का ही परिचायक होती। क्योंकि आपने सम्पूर्ण हिन्दी जाति पर ऐसी कृपा की है कि हमें सार्वजनिक रूप से कृतज्ञता जाहिर करने का मौका मिला है। हमारी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त शब्दों का अभाव अनुभव कर रहे हैं। इसी से आवेदनपत्र को इन्हीं शब्दों के साथ समाप्त करना चाहेंगे कि आपके इस महान परोपकार के लिए महामहिम, हमारी हार्दिक कृतज्ञता और आभार स्वीकार करेंगे। हम लोगों में जो थोड़े से लोग चुप हैं वे लोग भी इस आशीर्वाद को अपने माथे से लगायेंगे, यद्यपि इस समय अपनी अज्ञानता और पूर्वाग्रह के कारण इस सार्वजनिक लक्ष्यपूर्ति में हमारे साथ नहीं है...."[10]

इधर 'धर्मसभा' भी चुप नहीं बैठी। प्रतिक्रियावादी पुराणपंथी हिन्दुओं ने 17 जनवरी को संस्कृत कॉलेज के प्रांगण में एक सभा बुलायी। सभा में गर्वनर जनरल से प्राप्त उत्तर पढ़कर सुनाया गया और बताया गया कि सरकार उनका आवेदनपत्र विलायत भेजने को राजी है। 'धर्म सभा' की ओर से सती प्रथा निरोधक अधिनियम के विरोध में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में अपील दायर कर दिया गया। इसी सभा में यह प्रस्ताव भी पास किया कि जो लोग हिन्दू धर्म का और शास्त्रीय नियमों का विरोध कर रहे हैं उनका सामाजिक बहिष्कार किया जाय।[11] उनका इशारा स्पष्टतः राममोहन और उनके सहयोगियों की ओर था। तत्कालीन समाचारपत्रों में भी इस अध्यादेश के विरोध में भारी वाद-विवाद आरम्भ हो गया। लेकिन राममोहन भला कहाँ घबराने वाले थे।

1830 में उन्होंने इन आरोपों का उत्तर प्रकाशित किया—"Abstract of the Arguments regarding the burning of the widows considered as religious rites.' जो इस विषय पर उनका अन्तिम लेख था। धर्मसभा के घोषणा-पत्र का यह करारा उत्तर था। इसी बीच 'ब्रह्म समाज' या सभा के अनुकरण पर 'धर्म सभा' की स्थापना के लिए रूढ़िवादी हिन्दुओं की ओर से 6 फरवरी 1830 को एक अपील प्रचारित की गई। इसके लिए एक भवन बनाने का भी प्रस्ताव रखा गया और निर्णय लिया गया कि बीस हजार रुपये जमा हो जाने पर किसी उपयुक्त स्थान पर जमीन खरीद कर भवन निर्माण कार्य आरम्भ किया जायगा।[12]

यह हम बता चुके हैं कि राममोहन को ही हिन्दू धर्म का प्रधान शत्रु ठहराया गया था और उनके हत्या तक की साज़िश चल रही थी। पुराण-पंथियों ने राममोहन को देशद्रोही और धर्मद्रोही करार दिया। नतीजा यह हुआ कि राममोहन को अपनी सुरक्षा के लिए व्यवस्था करनी पड़ी। उन्होंने मार्टिन नामक एक अंगरेज अंगरक्षक नियुक्त किया था जो उनके घर पर ही रहता था। 27 फरवरी के 'जान बुल' में इस सुरक्षा-व्यवस्था का समाचार प्रकाशित हुआ था। इसमें प्रकाशित विवरण के अनुसार बन्दूक, गोला-बारूद और पिस्तौल एकत्रित किये गये थे, साथ ही कई बरकन्दाज भी नियुक्त थे। राममोहन जब भी इन दिनों शहर जाते तो उनके साथ मार्टिन साहब अंगरक्षक के रूप में हाजिर होते थे।[13] महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा था कि राममोहन पर एक बार हमला भी हुआ था। मिस कोलेट की पुस्तक में उन पर दो बार घात लगाकर हमला किये जाने की बात लिखी है।[14]

प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संगठित आक्रमण और सामाजिक स्तर पर खुले-आम दो प्रतिद्वन्द्वी दल की स्थापना और स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में आन्दोलन और चलते विवाद का सजीव और सुन्दर विवरण शिवनाथ शास्त्री ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक हिस्ट्री आफ द ब्राह्मो समाज में दिया है :[15]

> "....The common people became participator in the great conflict, for the tracts of the reformers; mostly written in the simplest Bengali, appealed to them as much as to the enlightened classes. In the bathingghats of the river side, in market places and public squares, in the drawing rooms of influential citizens everywhere the rivalry between the two associations became the subject of talk...."

इसमें आगे बताया गया है कि तब व्यंगात्मक कविताएँ भी प्रकाशित होते

लगी थीं जो लोगों की जुबान पर चढ़ने लगी थी। गली-कूचों में हँसी और मज़ाक के फव्वारे छूटा करते थे। आन्दोलन कलकत्ता शहर से निकलकर गाँवों और कस्बों में भी फैल गया जहाँ लोग प्रतिद्वंद्वी दलों में बँटकर बहसों में हिस्सा लिया करते। कई ब्राह्मणों का जो राममोहन के 'ब्रह्मसमाज' में सम्मिलित हुए थे, समाज से बहिष्कार कर दिया गया। इसी भयंकर तनाव के बीच ब्रह्मसमाज के नये भवन का 23 जनवरी, 1830 को उद्घाटन हुआ।

सती-प्रथा उन्मूलन के सफल प्रयास ने हिन्दू नारी समाज को सदियों से चले आये अत्याचार से मुक्त किया था। इन्हीं दिनों राममोहन नारी जाति से संबंधित अन्यान्य कुछ और सामाजिक दुराचारों के विरुद्ध भी आवाज उठा रहे थे। नारी समाज के प्रति राममोहन के मन में कितनी करुणा और ममता और दया थी उसका परिचय उनके सती-प्रथा संबंधी लेखों में अच्छी तरह मिलता है। इन लेखों में उन्होंने बहुविवाह के विरोध में भी आवाज उठाई। इसके अतिरिक्त कन्या-विक्रय या कुलीन प्रथा का भी विरोध किया था। बहुविवाह के बारे में उनका विचार था कि सरकारी अनुमति के बिना किसी को एक पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी का इज़ाजत न दी जाय। इस विषय में उन्होंने मनु संहिता और याज्ञवल्क्य संहिता से उद्धृत करके अपने तर्क की पुष्टि करते हुए दिखाया था कि बहु विवाह का रिवाज हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध है। क्योंकि शास्त्रों में स्पष्टतः दुश्चरित्र, बीमार या निःसंतान होने पर ही दूसरे विवाह की अनुमति दी गई है। इसी से राममोहन का सुझाव था कि मजिस्ट्रेट या सरकारी अफसर को कानूनी अधिकार दिया जाय कि वह आवेदन-पत्र के आधार पर केवल प्रमाणित होने पर दूसरे विवाह की अनुमति दे। इस प्रकार नारी जाति को दुर्गति से राहत मिलेगी और आत्महत्या की संख्या में भी कमी होगी।[16]

इसी प्रकार उन्होंने नीचे स्तर के ब्राह्मणों और कुछ कायस्थों में प्रचलित कुलीन-प्रथा और कन्या-विक्रय जैसे प्रचलित सामाजिक कलंक के बारे में भी आन्दोलन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति के अधिकार के प्रश्न पर भी सरकार के समक्ष एक आवेदन पेश किया था।

हिन्दू जाति-व्यवस्था या जातिभेद के बुरे परिणामों के बारे में राममोहन हमेशा सजग और चिन्तित रहे। मृत्युंजयाचार्य नाम के एक शास्त्री द्वारा लिखित एक संस्कृत ग्रंथ 'व्रजसूची' के कुछ अंश का बंगला अनुवाद उन्होंने 1827 में प्रकाशित किया।[17] इस ग्रंथ में जाति व्यवस्था का सम्पूर्ण रूप से खण्डन किया गया है। इसमें वर्णाश्रम धर्म के स्वरूप और तात्विक अर्थ के बारे में विचार किया गया है। ब्राह्मण शब्द के अर्थ की व्याख्या की गई है। आत्मा, देह, जाति और यहाँ तक कि रंग भेद के बारे में विशद आलोचना के पश्चात् कहा गया :

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारादुच्यते द्विजः ।
वेदाभ्यासाद्भवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः ।।

सारांश यह है कि जन्म से सभी शूद्र होते हैं और ब्रह्म का ज्ञान होने पर ही ब्राह्मण बनता है । ज्ञान का अभाव ही शूद्र बनाता है । इसी ज्ञान के भेद से क्षत्रिय और वैश्य भी बनते हैं । संस्कृत साहित्य 'बज्रसूची' के दो संदर्भ आते हैं । पहला 'वज्रसूचिका' उपनिषदों में परिगणित है । दूसरे 'वज्रसूची' के लेखक बौद्ध कवि अश्वघोष माने जाते हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि अश्वघोष उपनिषदों से भी प्रभावित थे । राममोहन ने सम्भवतः उपनिषदों के ही कुछ अंश का अनुवाद किया था । ये मृत्युंजयाचार्य कौन थे, यह अभी शोध का विषय है ।[18] राममोहन यह अच्छी तरह जानते थे कि जाति-व्यवस्था हमारी अवनति का एक प्रमुख कारण है । एक व्यक्तिगत पत्र मे (18 जनवरी, 1820) राममोहन ने लिखा था :

> "....मुझे कहते हुए दुःख होता है कि हिन्दुओं द्वारा अनुसरण किया गया धर्म उनके राजनैतिक हित के लिए उपयोगी नही है । जात-पाँत के भेदभाव और छोटे-छोटे असंख्य श्रेणियों में बँटे होने के कारण वे लोग देशभक्ति की चेतन से पूरी तरह वंचित हैं । धार्मिक रीति-रिवाजों के आधिक्य और शुद्धिकरण के नियमों के कारण कोई भी कठिन उद्योग हाथ में लेने के अयोग्य हो गये है । इसलिए मेरा विचार है कि राजनैतिक सुविधा और सामाजिक सुख-साधन के लिए इनके धर्म मे कुछ परिवर्तन लाया जाना चाहिए ...।"[19]

इसी अवधि में राममोहन एक और राजनैतिक मामले में आन्दोलन कर रहे थे । 18 अगस्त, 1828 को उन्होंने नये जूरी कानून के विरुद्ध, दो सौ से अधिक हिन्दू और मुसलमानों के हस्ताक्षर के साथ, एक अपील लन्दन के जे० क्राफोर्ड को पार्लियामेंट में पेश करने के लिए भिजवाई थी । यह जूरी कानून 1826 में पारित हुआ और 1827 में लागू हुआ था ।[20] इस कानून के द्वारा मि० वाइन ने न्यायिक विभागों में धार्मिक आधार पर भेद-भाव आरम्भ कर दिया । इस कानून के अंतर्गत यह व्यवस्था की गई कि हिन्दू और मुसलमानों के न्यायिक मामलों पर विचार करने का अधिकार ईसाई विदेशी या देशी जूरी को होगा लेकिन इसके विपरीत ईसाइयों के मुकदमों में किसी हिन्दू या मुसलमान जूरी को न्याय देने का अधिकार नहीं होगा । इस साम्प्रदायिक अध्यादेश से सारे देश में काफी रोष फैल गया था । आयरलैण्ड और भारत की तुलना करते हुए राममोहन ने सावधान किया कि भारत में भी आयरलैण्ड की तरह असंतोष फैल जायगा ।[21] श्री क्राफोर्ड को लिखे पत्र में राममोहन ने स्पष्ट

संकेत दिया था कि एक समय आ सकता है जब यह देश ब्रिटिश सरकार का प्रधान शत्रु बन जाय—

> "इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारत की स्थिति आयरलैण्ड से बहुत ही भिन्न है, जिसके किसी भी हिस्से पर ब्रिटिश बेड़ा किसी भी समय भारी संख्या में सेना उतार सकती है और अपनी इच्छानुसार किसी भी विद्रोह को सफलतापूर्वक कुचल सकती है। यदि भारत के पास उस देश की चौथाई शक्ति और ज्ञान हो तो इतनी दूरी में अवस्थित होने के कारण, इसकी समृद्धि और भारी जनसंख्या के कारण यह देश या तो ब्रिटिश साम्राज्य का लाभकारी और आज्ञाकारी प्रदेश बन सकता है अन्यथा एक दुःखदायी, उपद्रवी दृढ़संकल्प शत्रु...."
>
> "....मुझे अकसर यह देखकर दुःख होता है कि बिना परामर्श के और भारतीय प्रजा के भावनाओं को अनदेखी करके सरकार द्वारा नए-नए अधिनियम और कानून पास किए जाते हैं...."[22]

पत्र के उद्धरण में हमें 'राष्ट्रीय चेतना' और 'स्वायत्त शासन' के बीज दिखाई देते हैं। राममोहन तत्कालीन परिस्थितियों के बावजूद अपने राजनैतिक अधिकारों के बारे में और सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के प्रति सचेत थे। आधुनिक भारत के पुरोगामी नेता के लिए यह संचेतना स्वाभाविक थी। देश के उद्योग और कृषि सम्बन्धी मामलों में भी राममोहन पूरी तरह जागरूक थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इसी काल में नील काश्तकारों के अधिकारों को छीनने की कोशिश की तो राममोहन ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। जबकि प्रायः सभी नील खेतिहर अंग्रेज थे। इसके अलावा स्वाधीन-व्यापार और आयात-निर्यात के लिए व्यापारियों ने जो सभा 15 दिसम्बर 1829 में कलकत्ता के टाउन हाल में बुलाई थी, उसमें राममोहन अपने मित्र द्वारकानाथ ठाकुर के साथ मौजूद थे।[23] यहाँ चीन के साथ खुले व्यापार की छूट और यूरोपीय लोगों को भारत में बसने की छूट की माँग उठाई गई थी। राममोहन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनके विचार से यूरोपीय सज्जनों के संसर्ग में आने से हम लोगों के साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में अधिकाधिक उन्नति होगी। राममोहन और उनके प्रगतिशील मित्रों का वर्ग जिनमें द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार ठाकुर आदि थे, स्वाधीन उन्मुख व्यापार के पक्ष में थे और यूरोपीय पूंजीनिवेश और बुद्धि-विवेक को आयात करने के पक्ष में थे।[24] उनका विचार था कि इस आदान-प्रदान से एक राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का उदय होगा, जो राष्ट्र की उन्नति में सक्रिय भाग ले सकेगा। द्वारकानाथ ठाकुर ने इस विषय में सभा के सामने प्रस्ताव रखते हुए कहा—"नील की खेती और यूरोपीय लोगों के बस जाने से देश और देश के सभी श्रेणियों के लोगों को भारी लाभ पहुँचा

है। जमींदार धनी बने हैं, देश ने तरक्की की है साथ ही किसानों की हालत भी सुधरी है। जिन इलाकों में नील की खेती नहीं है, कारखाने नहीं हैं उन इलाकों की अपेक्षा इन लोगों की हालत कहीं बेहतर है।''....प्रस्ताव का समर्थन करते हुए राममोहन ने कहा था—जो प्रस्ताव अभी पढ़ा गया उसके उद्देश्यों के बारे में द्वारकानाथ ठाकुर ने जो कुछ कहा उसके साथ मैं पूरी तरह सहमत हूँ.... वैसे नीलकरों ने कहीं-कहीं आंशिक रूप से थोड़ा नुकसान पहुँचाया भी होगा लेकिन पूरी तरह विचार करने पर कहा जा सकता है कि सरकारी और गैर-सरकारी दूसरे यूरोपीय प्रवासियों की अपेक्षा इन नीलकरों ने इस देश की जनता का अधिक उपकार किया है....!''[25]

इसी दौरान राममोहन ने हिन्दुओं के पैतृक सम्पत्ति के अधिकार के सम्बन्ध में एक विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित किया। बात यह हुई थी कि सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस ने इस विषय पर प्रचलित उत्तराधिकार नियमों के विरोध में एक फैसला दिया था; फलतः हिन्दुओं में काफी रोष फैल गया। राममोहन ने 1830 में "The Right of Hindoos over Ancestral property according to the law of Bengal" प्रकाशित किया। लेख में राममोहन ने हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों पर आधारित उत्तराधिकार सम्बन्धी 'मिताक्षरा' और 'दायभाग' पद्धति पर विशद आलोचना की थी। 'दायभाय' बंगाल के क्षेत्र में प्रचलित पद्धति थी। राममोहन ने इस पद्धति की विद्वतापूर्ण पैरवी की। वे केवल लेख लिखकर ही चुप नहीं बैठे, उन्होंने विलायत के प्रिवी काउंसिल में अपने मित्रों के साथ मिलकर अपील भिजवाई थी। अपील स्वीकृत होने पर सुप्रीम कोर्ट को फैसला वापस लेना पड़ा था।[26] लेख तत्कालीन सम्पत्ति सम्बन्धी कानून के बारे में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। उन्होंने 'हरकारा' पत्रिका में भी इस विषय में कई पत्र लिखे थे।

1828 में राममोहन भूमि सम्बन्धी एक और महत्वपूर्ण आन्दोलन के अगुआ बने। अंगरेज कम्पनी द्वारा भूमि की स्थायी बन्दोबस्त के अट्ठाइस वर्ष बाद लगान मुक्त 'लाखेराज' भूमि के बन्दोबस्त के लिए नया कानून बना। लगान मुक्त जमीन के स्वामियों और छोटे-बड़े सभी जमीदारों को इस नये नियम के अंतर्गत आर्थिक नुकसान उठाने की आशंका थी। नये अध्यादेश के विरोध में कोई तीन सौ से अधिक जमींदारों ने अपील भेजी। राममोहन के विचार में सरकार की सफलता का रहस्य उसकी उदार और न्यायपूर्ण नीतियों पर निर्भर है। उनके विचार से 1828 का अध्यादेश एक प्रकार से विश्वास भंग था और जमीदारों के निहित अधिकारों का हनन भी राममोहन ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के जमींदारों के साथ मिलकर लार्ड विलियम बेन्टिक के पास आवेदन-पत्र भेजा।[27] लेकिन यह आवेदनपत्र नामंजूर हो गया। राममोहन इस बात

से बहुत ही दुखी थे क्योंकि उनके विचार में ऐसे कानून से देश और सरकार दोनों का ही नुकसान होता है। इंगलैण्ड पहुँचकर भी वे इस मुद्दे पर आवेदन-पत्र देते रहे और अपना संघर्ष जारी रखा। इंगलैण्ड में प्रवास के दौरान आवेदन-पत्र उन्होंने अपने नौकर रामरतन मुखर्जी के नाम से दायर किया था। इस विषय पर भारत की पत्र-पत्रिकाओं में रोचक और उत्तेजक वाद-विवाद चल निकला था।[28] वस्तुतः राममोहन एक आधारभूत सिद्धान्त के लिए ही इस आन्दोलन में फँसे और वे आन्दोलन को अपने साथ इंगलैण्ड की भूमि पर भी ले गए थे।

इन राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक कार्यव्यस्तता के होते हुए वे अपने जीवन के प्रमुख लक्ष्य को न भूले। इधर वे अपने विदेश यात्रा की तैयारी में लगे थे। उन्हीं दिनों अर्थात 1829-30 में राममोहन कुछ समय के लिए अस्वस्थ भी रहे। इन सभी असुविधाओं के बावजूद राममोहन का धर्म सम्बन्धी खोज जारी था। 1829 में उन्होंने एक नया शोधपूर्ण लेख 'द यूनिवर्सल रिलिजन' प्रकाशित किया।[29] इस मुख्यतः वैदिक धर्मग्रंथों और उपनिषदों पर आधारित इस लेख के द्वारा उन्होंने एकेश्वरवाद के बारे में अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। पहले ही लिखा जा चुका है कि इसी काल में ब्रह्म समाज के नये भवन का उद्घाटन हुआ। इस भवन के न्यासपत्र में धर्म और ब्रह्म समाज के तार्किक मुद्दों पर पेश किए गए दस्तावेज के बारे में पहले ही विचार किया जा चुका है। इसी वर्ष एलेक्जेण्डर डफ जो भारत में शिक्षा-विस्तार का उद्देश्य लेकर आये थे, राममोहन की शरण मे आए। राममोहन ने उनके स्कूल के लिए भवन की व्यवस्था के साथ ही और दूसरी असुविधाओं के हटाने में पूरी मदद की। इस विषय में भी विस्तार से लिखा जा चुका है।

राममोहन के कलकत्ता जीवन के हम अन्तिम चरण पर पहुँच चुके हैं। अगले अध्याय में उनके विदेश यात्रा के तैयारियों का विस्तृत विवरण पेश किया जायगा। इसके पहले कि उनके कलकत्ता जीवन के व्यस्त कार्य-कलापों पर पटाक्षेप किया जाय; उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों को संक्षिप्त में प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा। वस्तुतः इस महान नायक के व्यक्तिगत जीवन, विशेष रूप से उनके जीवन के प्रारम्भिक काल और कलकत्ता काल के बारे में अधिक विवरण उपलब्ध नहीं है। केवल इंगलैण्ड प्रवासकाल का कुछ विवरण विदेशी मित्रों के लेखों, पत्रों और पुस्तकों से उपलब्ध है। प्रचलित दन्तकथाओं और संस्मरणों के आधार पर कुछ रोचक कथाएँ नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय की पुस्तक में ही दी गई। उन्होंने नन्दमोहन चट्टोपाध्याय की पुस्तक से छोटी-छोटी कहानियाँ उद्धृत की हैं।[30] उन्हीं में कुछ कहानियाँ संक्षेप में उद्धृत करना उपयुक्त होगा—

राममोहन का अपने सहयोगियों और शिष्यों के साथ बहुत ही मधुर और सुखद सम्पर्क रहा है। वे अपने शिष्यों से हमेशा बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया करते थे। अकसर फ़ारसी भाषा के अनुरूप 'बरादर' कहकर सम्बोधित करते थे। उनके सहयोगी भी उनको अकसर 'दीवानजी' कहते। अकसर अपने शिष्यों को पारिवारिक और दूसरे मामलों में सलाह दिया करते थे। बाबू राजनारायण बसु ने **'तत्वबोधिनी पत्रिका'** के एक अंक में राममोहन विषयक छोटे-छोटे किस्से प्रकाशित किये थे। राजनारायण के पिता नन्दकिशोर बसु राममोहन के शिष्यों में थे। एक बार ऐसा हुआ कि नन्दकिशोर विवाह के पश्चात् कुछ दुखी नजर आये। जब राममोहन को पता चला कि नन्दकिशोर अपनी पत्नी के साँवले रंग से दुखी हैं तो राममोहन ने शिष्य को बुला भेजा और कहा—"जो वृक्ष सुन्दर फल देता है वही वृक्ष सुन्दर है। यदि तुम्हारी पत्नी एक सुन्दर सन्तान को जन्म देती है तो वह अवश्य ही सुन्दर कही जाएगी।" उनकी भविष्यवाणी सच निकली। नन्दकिशोर के पुत्र प्रतिभावन और विद्वान निकले जिन्होंने आगे चलकर विधवा विवाह और ब्रह्म समाज के कार्य को आगे बढ़ाया।[31]

राममोहन अपने शिष्यों को शायद ही कभी डाँटते-फटकारते हों, जबकि अपनी स्वयं किसी गलती पर साथियों की डाँट सुनने के लिए तैयार रहते थे।

राममोहन की स्मरण शक्ति के बारे में एक कहानी मशहूर है। एक बार किसी पण्डित ने उनके पास आकर तंत्र शास्त्र के किसी विशेष ग्रंथ पर विचार-विमर्श करने का आग्रह किया। राममोहन ने यह तंत्र ग्रंथ कभी पढ़ा ही नहीं था। उन्होने पण्डितजी से निवेदन किया कि अगले दिन ठीक इसी समय पधारें तभी वे ग्रंथ पर शास्त्रार्थ करेंगे। पण्डितजी चल गये। राममोहन के अपने संग्रह मे वह पुस्तक नहीं थी। इसलिए उन्होंने तुरंत शोभा बाजार के राजभवन से पुस्तक मँगवाकर अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। एक बार के अध्ययन से ही सारा ग्रंथ उन्होंने आत्मसात कर लिया। दूसरे दिन पण्डित जी आये। भारी शास्त्रार्थ के बाद पण्डित जी राममोहन की विद्वता और तर्क के प्रशंसक होकर चले गये।[32]

राममोहन बहुभाषाविद् पण्डित थे, यह सभी को मालूम है। लेकिन भाषा सीखने की कला में उनकी निपुणता के बारे में एक कहानी प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत से किसी व्यक्ति ने दक्षिण भारतीय भाषा में उन्हें एक पत्र लिखा। राम-मोहन भाषा नहीं जानते थे तो किसी दक्षिण भारतीय कलकत्ता निवासी को बुलाकर पत्र पढ़वा लिया। पढ़वाने के बाद उन्होंने उसी व्यक्ति की सहायता से भाषा सीखना आरम्भ कर दिया और तीन महीने के अन्दर भाषा सीखकर दक्षिण भारतीय भाषा में ही उक्त पत्र का उत्तर लिख भेजा।[33]

गरीब और दुखीजनों के प्रति राममोहन के मन में हमेशा सहानुभूति और दया की भावना रहती थी। उन्हें अपनी साज, पोशाक या प्रतिष्ठा की कतई परवाह नहीं थी। एक बार वे अपने भारी-भरकम चोगा पहने बहू बाजार से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक सब्जीवाला अपनी टोकरी उठा नहीं पा रहा था तो सीधे आगे बढ़कर उन्होंने टोकरी में हाथ लगाकर उठवा दिया। कभी-कभी उन्हें मजदूरों के साथ बैठकर गप्पे मारते भी लोगों ने देखा था। पूछने पर पता चला कि वे उनकी आर्थिक अवस्था के बारे में जानकारी ले रहे थे।[34] उनके दिनचर्या के बारे में मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में किसी जी० एन० ठाकुर[35] के पत्र का हवाला दिया है :

"राममोहन प्रातःकाल चार बजे उठने के आदी थे, और काफी पीकर सुबह सैर के लिए निकल जाते थे। अकसर खूब तेल मालिश के बाद नहाया करते थे। दो नौकर उनकी मालिश किया करते। इस कार्यक्रम के समय वे अकसर संस्कृत श्लोकों का पाठ करते। स्नान के पश्चात् वे भारतीय तरीके से पलथी मारकर बैठकर भोजन ग्रहण करते। यही उनका मुख्य भोजन होता। शाम तक व और कुछ नहीं लेते थे। दोपहर के दो बजे तक वे अपने काम में लगे रहते। दोपहर बाद अकसर अपने अंगरेज और दूसरे मित्रों से मिलने जाते थे। रात का भोजन सात और आठ बजे के बीच पूरा कर लेते थे। रात को भोजन अकसर, अंगरेजी कायदे से बना मुगलई खाना होता जिनमें पुलाव, कोफ्ते और कोरमा वगैरा होता था।"[36]

उनके पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में मणि बागची की पुस्तक 'राम-मोहन' में दिये गये कुछ और विवरण का सारांश इस प्रकार है—1822 में जब राममोहन की माता की मृत्यु पुरी तीर्थ में हुई तो उन्होंने अपनी पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** में यह समाचार प्रकाशित किया था। तारिणी देवी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद राममोहन की मंझली पत्नी 'श्रीमती' की भी मृत्यु हो गई। उनके छोटे पुत्र रमाप्रसाद की आयु उस समय केवल पाँच वर्ष की थी। राममोहन ने अपनी पत्नी की चिता पर एक स्मृति-स्तम्भ बनवाया था। राम-मोहन राय के बड़े बेटे राधाप्रसाद की दो कन्यायें थीं—चन्द्रज्योति और मैत्रेयी। अपनी बड़ी पोती का विवाह राममोहन ने अपनी देखरेख में सम्पन्न करवा दिया था। राजा की छोटी पत्नी उमादेवी निःसंतान थी और राममोहन के विदेश यात्रा के समय जीवित थी।[37]

राममोहन अपनी पोशाक के बारे में हमेशा सचेत रहते थे। बिना शाल और पगड़ी के वे बाहर जाते ही न थे। घर में अकसर मुस्लिम ढंग की पोशाक पहना करते थे। सभा-समितियों के अलावा ब्रह्म-समाज के मन्दिर में भी सजधज कर जाते। उनका विचार था कि भगवान के दरबार में सुन्दर वस्त्रों में जाना

चाहिए। हाँ, यहाँ एक बात का उल्लेख आवश्यक है कि उन्होंने कभी भी अपने ब्राह्मणत्व की निशानी जनेऊ का परित्याग नहीं किया।

मिस कोलेट ने राममोहन के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का विवरण देते हुए एक और पत्र का हवाला दिया है। यह पत्र कर्नल यंग ने 30 सितम्बर, 1828 को लन्दन में जेरेमी बेन्थम को लिखा था।[38] पत्र का सारांश था—पिछले दो वर्षों से वे राममोहन अपने को और अपने बेटे को प्रतिशोधात्मक उत्पीड़न या अत्याचार से बचाने की कोशिश में लगे हैं। इनके पीछे केवल देशी लोग ही नहीं हमारे कुछ प्रभावशाली सरकारी अफसर भी हैं।.... उनकी बराबरी करने वाला देशी और विदेशी लोगों में भी कोई नहीं है।.... आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति यूरोपीय धर्म, सभ्यता और राजनीति का इतना सम्मान करता है उसके विरुद्ध ही हम अंगरेज लोग साजिश करें।....

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि 1815 से 1830 तक का काल राममोहन के जीवन में भारी संघर्ष का काल था। उन्हें पारिवारिक एवं सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों में एक के बाद एक कई विरोधों का सामना करना पड़ा।

उनके कलकत्ता जीवन के बारे में एक प्रामाणिक दस्तावेज है, उस काल के सुप्रसिद्ध पत्रकार जेम्स सिल्क बकिंघम का राममोहन के बारे में बयान। बकिंघम 1818 में कलकत्ता आये थे और उन्हें राममोहन के कर्मव्यस्त जीवन को देखने का मौका मिला था। उन्होंने लिखा था—"राममोहन यदि सरकार की आलोचना न कर निरपेक्ष रहते तो उनको सरकारी नौकरी और पद के रूप में सरकार की ओर से पुरस्कार पाने के अनेक अवसर मिल सकते थे। लेकिन अपनी विद्वता के अनुरूप और सच्चाई के लक्ष्य को सामने रखते हुए उन्होंने राष्ट्रीय उन्नति, अंध संस्कार के विनाश और स्वदेश में धर्म और शासन प्रणाली में सुधार करने के लिए भारी परिश्रम किया। इसका पुरस्कार यह मिला कि बड़े-बड़े सरकारी अफसरों और ऐंग्लिकन ईसाई गिर्जाओं के बड़े-बड़े पादरियों के शत्रु और ईर्षा के पात्र बने। वे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति और धन-दौलत से एकेश्वरवादी मन्दिर का संचालन करते हैं और छापाखाना चलाते है। अपनी किताबें छापते और बाँटते हैं। साथ ही बहुत से परोपकारी और धार्मिक कार्य करते हैं। इसमें उनकी आय का कोई एक-तिहाई भाग इन कार्यों में व्यय होता है।[39]

यह स्पष्ट है कि राममोहन को इस काल में भारी मानसिक तनाव और परिश्रम का सामना करना पड़ा। उनके जैसे स्वस्थ व्यक्ति पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। फलस्वरूप 1827-28 के दौरान वे दो-तीन बार गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। इन बीमारियों का हवाला उस काल के पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध है।[40] इसी दौरान उनका बेटा साजिशों का शिकार बना और उनकी पत्नी का देहान्त भी हुआ। उनकी हत्या की साजिश के बारे में बताया

जा चुका है। लेकिन ऐसी परिस्थिति में भी वे अपने उद्देश्यों पर दृढ़ रहे। राममोहन का जीवन आगे एक नये मोड़ को पार करता हुआ विदेशी भूमि पर अपना झंडा गाड़ने की तैयारी में था जिसकी चर्चा अगले अध्याय में होगी।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collet Raja Rammohan Roy : पृ० 155-156. यह घटना रेवरेण्ड मैकडोनाल्ड के एक व्याख्यान से उद्धृत है जो बाद में हेराल्ड प्रेस से 1879 में प्रकाशित हुई थी। लगभग ऐसी ही घटना का जिक्र राममोहन के सबसे पुराने शिष्य आनन्दचन्द्र वसु ने किया था। इसके अतिरिक्त तत्वबोधिनी पत्रिका में भी यह घटना प्रकाशित हुई थी।

1. वही : पृ० 156.

3. वही : पृ० 156.

4. Majumdar Rammohan Roy and Progressive Movements in India : पृ० 150-153. में बंगाल हरकारा में 16 नवम्बर से 30 नवम्बर 1819 तक प्रकाशित मिसेज मार्टिन के पत्र और सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

5. Collet : पृ० 159.

6. Majumdar : पृ० 156-159. में पुराणपंथी हिन्दुओं द्वारा अध्यादेश के विरोध में पेश किए गए आठ सौ हस्ताक्षरयुक्त आवेदनपत्र देखें।

7. वही : पृ० 159-161.

8. वही : पृ० 161-163. लार्ड बेन्टिक द्वारा हिन्दू पुराणपंथियों के आवेदन के उत्तर में लिखे पत्र की प्रतिलिपि एशियाटिक जर्नल के जुलाई 1830 से उद्धृत।

9. वही : पृ० 165-167.

10. Collet : पृ० 463-466. पूरे अभिनन्दनपत्र की प्रतिलिपि के लिए देखें।

अभिनन्दनपत्र का बंगला पाठ पृ० 461-463. में दिया गया है। गवर्नर जनरल बेन्टिक साहब के उत्तर की प्रतिलिपि पृ० 466-467 में प्रकाशित है।

11. मुखोपाध्याय, राममोहन राय ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगाल) : पृ० 311-313.

11. Majumdar : पृ० 163-165. अपील की पूरी प्रतिलिपि के लिए देखें।

13. Collet : पृ० 186-187. में सम्पादकीय टिप्पणी देखें।

14. वही : पृ० 187.

15. वही : पृ० 288. राजनारायण बसु ने अपने आत्मचरित में इस वाद-विवाद का विवरण दिया है।

16. English Works of Raja Rammohun Roy, ad. by Jogendra Chandra Ghose 1900, Vol. 1.

पृ० 380; उस काल में भारतीय नारी की दयनीय स्थिति पर राममोहन ने 1811 में Brief remarks regarding modern encroachments of the ancient rights of the females. प्रकाशित किया था। इसी लेख में उन्होंने बहुविवाह और घृणित कुलीन प्रथा के विरोध में यह शायद भारतीय इतिहास में पहला आन्दोलन था।

17. Collet : पृ० 238-239. इस पुस्तिका पर यह महत्वपूर्ण सम्पादकीय टिप्पणी दी गई है। सम्पादक के अनुसार 'वज्रसूची' के बंगला अनुवाद के आधार पर कहा जा सकता है कि राममोहन ने बौद्ध धर्मशास्त्रों का भी अध्ययन किया था।

18. मुखोपाध्याय : पृ० 290.

19. वही : पृ० 290-291 से उद्धृत।

20. Dasgupta, B. N. Life and times of Raja Rammohun Roy, Vol. I., p. 310. अपील के पूरे पाठ के लिए देखें Raja Rammohun Roy and Progressive Movements in India by Majumdar, पृ० 360-370। यह अपील 1828 में बंगाल हरकारा में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त कुछ और दस्तावेज भी यहाँ संकलित हैं।

21. Collet : पृ० 267.

22. वही : पृ० 267-268.

23. ठाकुर, भारतेर शिल्प विप्लव ओ राममोहन (बंगला), पृ० 77.

24. वही : पृ० 77-78.

25. वही : पृ० 77-78.

26. Collet : पृ० 273.

27. चट्टोपाध्याय : पृ० 224.

28. Sen, Amiya Kumar. Raja Rammohun Roy : The representative man, pg. 274-307 में इस आन्दोलन के बारे में विस्तृत विवरण देखें।

29. Collet : पृ० 273-274. पुस्तिका का पूरा शीर्षक था "The Universal Religion, Religious Instruction founded on Sacred Authorities."

30. चट्टोपाध्याय : पृ० 371.

31. वही : पृ० 273.

32. वही : 268.

33. वही : पृ० 269.

34. वही : 274.

35. Collet : पृ० 231-232. पृ० 417-418 पर सम्पादकीय संशुद्धि और टिप्पणी देखें।

36. वही : पृ० 232.

37. मणि बागची; राममोहन : पृ० 136-139 में कुछ विस्तृत विवरण दिये गये हैं।

38. Collet : पृ० 236.

39. मणि बागची; राममोहन : पृ० 136-137.

40. Collet : पृ० 237. सम्पादकीय पाद-टिप्पणी में मजूमदार की पुस्तक का हवाला देते हुए राममोहन की बीमारी से सम्बद्ध विवरण प्रस्तुत किये गये हैं।

अध्याय—12

विदेश-यात्रा

डिगबी साहब ने लन्दन में राममोहन के केन उपनिषद और वेदान्त के अंगरेजी अनुवाद के प्रकाशन (1817) के समय जो भूमिका लिखी थी उसमें राममोहन के एक पत्र का हवाला दिया था। पत्र के अन्तिम अंश के कुछ वाक्य महत्वपूर्ण हैं : "इन उलझनों के कारण मैं इच्छानुसार यूरोप की यात्रा नहीं कर सका। लेकिन विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि शीघ्र ही इंगलैण्ड के लिए रवाना होऊंगा।" यह पत्र 1816 के अन्तिम दिनों में या 1817 के शुरू में लिखा गया था।[1] लेकिन उनके सपने के पूरा होने में दस वर्ष से अधिक समय लग गया।

दूसरी तरफ धार्मिक वाद-विवाद का तूफान ठण्डा पड़ गया था और ब्रह्म-समाज की स्थापना हो चुकी थी। सतीप्रथा के विरुद्ध कानून बन चुका था तथा शिक्षा, पत्रकारिता और कई एक दूसरे कानूनी और राजनैतिक मसलों पर राममोहन अपनी छाप छोड़ चुके थे। साथ ही वे अपने पारिवारिक और जायदाद सम्बन्धी मुकदमों में निश्चित रूप से अपने को और अपने बेटे को सारे आरोपों से मुक्त कराने में सफल हुए। अब राममोहन के लिए अपने पुराने सपने को साकार करने का अवसर था। यह सपना कोई नया सपना नहीं था। लेकिन रूढ़िवाद और अंध-संस्कारों के उस युग में किसी प्रतिष्ठित ब्राह्मण के लिए सात समुद्र पार कर तथाकथित म्लेच्छों के देश में जाना भी वर्जित था। राममोहन को भला इन नियमों की क्या परवाह थी ? उनकी विदेश-यात्रा के पीछे स्पष्ट और व्यापक उद्देश्य था। यह कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं बल्कि देश और राष्ट्र-हित के लिए उन्हें विदेश-यात्रा का बीड़ा उठाना पड़ा। राजनैतिक आन्दोलन के लिए उन दिनों इंगलैण्ड की भूमि पर हाजिर होना आवश्यक हो गया था। कम्पनी के खिलाफ सारे आवेदन आखिरकार ब्रिटिश पार्लियामेंट में ही पेश होते थे। यूरोप जाकर व्यक्तिगततौर पर पार्लियामेंट के सामने हाजिर होने पर कई एक राष्ट्रीय मसलों पर अधिकार प्राप्त करने में सुविधा होगी, ऐसी राममोहन की धारणा बन गयी थी। उन्होंने विलायत-यात्रा की तैयारी शुरू कर दी।

इसी बीच कई एक संयोगपूर्ण घटनाएं घटीं जिनके कारण उनकी विलायत-यात्रा अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण बन गई। जो घटनाएँ उनकी विदेश-यात्रा में तात्कालिक निमित्त बनीं, उनका सिलसिलेवार विवरण इस प्रकार है :

1. 1803 के द्वितीय मराठा युद्ध में अंगरेजों की विजय के बाद मुगल साम्राज्य अंगरेजों अर्थात ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संरक्षण में आ गया था। इसी वर्ष बादशाह् शाह् आलम द्वितीय और लार्ड वेलेजली के बीच एक समझौता हुआ, इसके अनुसार मुगल बादशाह् को राजस्व के हिस्से के रूप में प्रतिवर्ष कोई दस लाख रुपये कम्पनी से मिलता था। कुछ वर्ष बीत गये तो अदायगी भी बढ़ने लगी। तत्कालीन बादशाह् अकबर द्वितीय ने जैसा कि उचित था अधिक भत्ते की माँग पेश की। भत्ते की रकम को आठ लाख रुपये और बढ़ाने की माँग लार्ड मिंटो के सामने पेश की थी। उन्होंने सारा भत्ता केवल दो लाख बढ़ाकर बारह् लाख कर दिया। लेकिन कम्पनी सरकार मुगल बादशाह् के मामले की अनदेखी कर रही थी। यहाँ तक कि लार्ड आमहर्स्ट के जमाने में भी इस भत्ते के मामले का फैसला नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में दिल्ली के बादशाह् कम्पनी के ब्रिटिश डाइरेक्टरों के पास या इंगलैण्ड के राजा के पास इस अन्याय के विरुद्ध एक आवेदन किसी राजदूत को भेजकर पेश करना चाहते थे। शायद बादशाह् को राममोहन के प्रस्तावित यात्रा के बारे में मालूम हो गया होगा। उन्होंने अपना आदमी भेजकर राममोहन से मुगल बादशाह् का 'एलची' या दूत बनकर विलायत जाने का प्रस्ताव रखा। इस सिलसिले में राममोहन के रंगपुर-प्रवास के दौरान भूटान मिशन का विवरण यथास्थान दिया जा चुका है। एक सफल राजनयिक के रूप में उनकी ख्याति अवश्य ही दिल्ली के बादशाह् के निकट भी पहुँची होगी।[2] बादशाह् के नाम से याचिका का प्रारूप भी राममोहन ने ही बनाया था। राममोहन राजी हो गये तो बादशाह् की ओर से सत्तर हजार रुपये दिये गये और साथ ही उन्हें 'राजा' की उपाधि से भूषित किया।[3] यह घटना सम्भवतः अगस्त, 1829 की थी। राममोहन ने इस सम्मान को स्वीकार करते हुए कुछ दिनों बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइ-रेक्टरों के पास इस आशय का एक पत्र लिखा कि उन्हें मुगल बादशाह् के 'राजदूत' के रूप में नियुक्त किया गया है और वे इस हैसियत से विलायत की यात्रा करना चाहते हैं। लेकिन इस प्रस्ताव को भारत की ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया। 8 जनवरी, 1830 को राममोहन ने एक पत्र इस आशय का लार्ड बेन्टिक को लिखा था, जिसमें उन्होंने जो कुछ निवेदन किया उसका सारांश था कि—उन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह् ने ग्रेट-ब्रिटेन के राज-दरबार में पेश होने के लिए एलची या राजदूत नियुक्त किया है। उन्हें 'राजा' की उपाधि से भूषित भी किया गया है, लेकिन इस खिताब का उन्होंने आज तक इस्तेमाल नहीं किया था। अब बादशाह् सलामत ने इस मान-मर्यादा के अनुरूप उनके राजदूत के रूप में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ उक्त मामले पर विचार के लिए जाते समय साथ ले जाने के लिए उन्होंने अपनी सील-मोहर के

साथ सनद भेजा है । आशा है कि उन्हें इस उपाधि के व्यवहार की अनुमति होगी....[4]

15 जनवरी 1830 को इसका सरकारी उत्तर आया जिसमें स्पष्ट शब्दों में ऐसे किसी प्रस्ताव को मानने से इनकार कर दिया गया—न तो सरकार उनके 'राजदूत' के पद को स्वीकार करने को तैयार थी और न ही 'राजा' की उपाधि स्वीकार करना चाहती थी ।[5]

यहाँ पर एक बात स्पष्ट करना आवश्यक जान पड़ता है कि सरकार की ओर से दोटूक जवाब मिलने के दूसरे ही दिन राममोहन सती-प्रथा उन्मूलन के पक्ष में गवर्नर जनरल के स्वागत-सभा में खुले हृदय से शामिल हुए थे । राममोहन इस मामले पर झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे । उनका उद्देश्य तो विलायत जाना था, इसी से उन्होंने लाट साहब को लिख भेजा कि वे अपने व्यक्तिगत हैसियत से ही वहाँ जायेंगे । इस पर कोई आपत्ति नहीं उठायी गयी और जब वे रवाना हुए तो अपने साथ मुगल बादशाह का अनुरोध-पत्र भी ब्रिटेन के राजा के नाम लेते गये । इस पत्र का मसौदा राममोहन ने ही बनाया था जो अपने आप में एक बहुत ही सुन्दर दस्तावेज़ माना जाता है ।

2. राममोहन की यूरोप-यात्रा का एक और मुख्य कारण यह भी था कि इंगलैण्ड के 'हाउस आफ कॉमन्स' में भारत शासन सुधार का नया चार्टर पेश होने वाला था । राममोहन चाहते थे कि इस अवसर पर वे स्वयं वहाँ उपस्थित रहें जिससे प्रगतिशील सुधारों के लिए कोशिश की जा सके ।

3. तीसरा अत्यावश्यक कारण यह था कि सती-प्रथा-निरोध कानून के विरुद्ध कुछ रूढ़िवादी हिन्दुओं ने एक अपील इंगलैण्ड के पार्लियामेन्ट में भेजी थी, जिसकी सुनवाई होने का समय नज़दीक ही था । राममोहन चाहते थे कि वहाँ उपस्थित होकर अपने पूरे प्रभाव का प्रयोग करके इस अपील को खारिज करवा दें ।

4. इस यात्रा का चौथा और अन्तिम उद्देश्य था यूरोप के देशों में प्रचलित धर्म, संस्कृति और आर्थिक और सामाजिक प्रगति के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना और भारतीय धर्म दर्शन का सही स्वरूप विदेश में पेश करना ।

विलायत जाने से पहले ये सारे कारण संयोगवश एक के बाद दूसरा सामने आ खड़े हुए । उन्होंने स्वयं एक पत्र में लिखा था :

'इस समय मेरे मन में यूरोप जाने की इच्छा बलवती होती गयी । वहाँ के आचार-व्यवहार, धर्म और राजनैतिक अवस्था के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने की ओर अपनी आंखों से सब कुछ देखने की इच्छा हुई ।'

हमें ज्ञात है कि इसी काल में जब सरकार ने सती-प्रथा पर रोक लगाया तो रूढ़िवादी हिन्दुओं का सारा आक्रोश राममोहन पर आकर एकत्रित हो

गया। उन्हीं को हिन्दू धर्म पर आक्रमण करने वाला विधर्मी और म्लेच्छ ठहराया गया। चारों ओर से उन पर गालियों की बौछार पड़ रही थी। घृणा और धिक्कार ढाये जा रहे थे। ऐसी स्थिति में उनके लिए देश से बाहर जा पाना उनके लिए किसी सीमा तक तात्कालिक झमेलों से भारमुक्त होना था। उन्होंने बेंटिक साहब को एक पत्र में लिखा था—'सेक्रेटरी स्टर्लिग के 15 जनवरी के पत्र के अनुरूप मैंने तय किया है कि मैं अकबर बादशाह द्वितीय के 'एलची' के रूप में नहीं, बल्कि अपने व्यक्तिगत हैसियत से इंगलैण्ड की यात्रा पर जाऊँगा....।'[6]

राममोहन शायद कुछ अरसे पहले ही रवाना हो जाते लेकिन आर्थिक कठिनाइयाँ उनके रास्ते में थीं। दिल्ली के बादशाह के आर्थिक अनुदान ने उनका यह मसला किसी सीमा तक हल कर दिया। राममोहन ने मुगल बादशाह के भत्ते-सम्बन्धी कागजात और मामले का कार्यभार सम्हालने के लिए एक अंगरेज मोन्टगेमरी मार्टिन को सहायक नियुक्त किया। ये महोदय **'बंगाल हेराल्ड'**[7] नामक अंगरेजी अखबार के सम्पादक थे। इस अखबार के मालिकों में राममोहन के अलावा द्वारकानाथ ठाकुर, नीलरतन हालदार, प्रसन्नकुमार ठाकुर और राजकिशन सिंह थे। यह अखबार कोई खास चल नहीं पाया। एक बार राममोहन को मालिक की हैसियत से एक मानहानि के मामले में सुप्रीम कोर्ट के सामने दोष स्वीकार करना पड़ा और इसके कुछ ही दिनों बाद अखबार बन्द हो गया। मार्टिन साहब सम्पादक का पद छोड़कर राममोहन के अधीन बादशाह की नौकरी में आ गये। 'जॉन बुल' अखबार ने 27 फरवरी, 1829 के अंक में लिखा था कि 'राजदूत' और भूतपूर्व सम्पादक ने 1829 में तय किया कि वे सितम्बर के महीने में कटक और मद्रास होते हुए बम्बई से यूरोप के लिए रवाना हो जाएँगे।[8] बाद में तय किया गया कि इलाहाबाद के रास्ते स्थल-पथ से यूरोप रवाना होंगे। लेकिन फिर यह विचार भी छोड़ दिया गया। बेचारे मार्टिन साहब अपना सामान बाँधे हर रोज इंतजार करते रहे और इसी बीच सतीप्रथा सम्बन्धी कानून लागू हो गया तो राममोहन उसमें व्यस्त हो गए। इन्हीं झंझटों में तीन महीने बीत गये। इधर सरकारी अनुमति भी आवश्यक थी।

राममोहन सोमवार 15 नवम्बर[9], 1830 को कलकत्ता बन्दरगाह से अपनी यात्रा के लिए रवाना हुए। उनके साथ उनका दत्तक पुत्र राजाराम और दो या तीन नौकर थे। वस्तुतः हिन्दू नौकरों को साथ ले जाना उनकी हैसियत और धार्मिक आचार संहिता के अनुरूप था। उनके साथ शेख बख्शू नामक एक मुसल-मान नौकर भी था। यहाँ उनके दत्तक पुत्र राजाराम के बारे में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। राममोहन की मृत्यु के बहुत दिनों बाद उनके विरोधियों में से

कुछ ने यह अफवाह और बदनामी फैलाने की कोशिश की थी कि राजाराम वस्तुतः राममोहन की किसी मुस्लिम रखैल से उनका अपना ही पुत्र था।[10] मिस कोलेट के अनुसार राममोहन के एक शिष्य चन्द्रशेखर देब ने राममोहन की मृत्यु के अनेक दिनों बाद 1863 में अपने किसी मित्र को बातचीत के दौरान कहा था कि यह अफवाह मात्र थी कि राममोहन के कभी कोई रखैल थी। देब महोदय अपने इस अनुमान के पक्ष में कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाये और न ही आज तक और कोई तथ्य सामने आया। वस्तुतः राममोहन के ऐसे किसी चारित्रिक कमजोरी के बारे में उनके जीवन-काल में किसी ने भी कोई आरोप नहीं लगाया था। यहाँ तक कि उनके घोर शत्रु, जिनमें 'धर्म सभा' के कई महारथी शामिल थे और ईसाई मिशन के विरोधी भी ऐसा कोई आरोप नहीं लगा पाये थे। अगर ऐसी कोई बात होती तो समसामयिक लोगों से बात भला कैसे छिपती? यह कहानी उनके कुछ विरोधियों द्वारा उनका चरित्र-हनन करने के लिए गढ़ी गयी थी। राजाराम के बारे में मेरी कारपेन्टर ने अपनी पुस्तक[11] में डॉ० कारपेन्टर को 1835 में लिखे गये एक पत्र का हवाला देते हुए लिखा है कि राममोहन जिस लड़के को अपने साथ इंगलैण्ड ले गये थे, वह उनका अपना लड़का नहीं था। वह सही अर्थों में उनका दत्तक पुत्र भी नहीं, बल्कि एक अनाथ लड़का था, जिसे राममोहन ने अपने संरक्षण में पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया था।

यह लड़का उनके पास कैसे आया, इसकी भी एक मनोरंजक कहानी है। ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अफसर मि० डिक को यह खोया हुआ लड़का हरिद्वार के एक मेले में मिला था। वे लड़के को अपने साथ कलकत्ता लेते आए और पाल-पोसकर बड़ा किया। लेकिन जब विलायत लौटने लगे तो समस्या खड़ी हुई कि इस लड़के का क्या किया जाय? उन्होंने इस बारे में राममोहन से सलाह ली। राममोहन ने कहा था कि जब मैंने देखा कि एक विदेशी और ईसाई एक गरीब अनाथ बालक की परवाह कर सकता है तो भला मैं एक भारतीय होकर इस बालक का भार ग्रहण करने में या संरक्षण देने से कैसे इनकार कर सकता हूँ। वह बालक राममोहन के पास ही रह गया। मि० डिक कभी वापस नहीं लौटे। कहा जाता है कि इंगलैण्ड की वापसी यात्रा के समय रास्ते में उनकी मृत्यु हो गयी थी। इस बालक का राममोहन के घर पर ही लालन-पालन हुआ।

राममोहन ने जब विलायत जाने की ठानी उन दिनों समुद्र पार करना हिन्दुओं के लिए, विशेषतः ब्राह्मणों के लिए, कतई धर्मविरुद्ध कार्य था। वे शायद पहले प्रतिष्ठित ब्राह्मण थे जो देश-भूमि छोड़कर, सात समुद्र पार विदेश-यात्रा पर जा रहे थे। उनके विलायत जाने की योजना के बारे में जब लोगों को पता

चला तो चारों ओर से उन पर गालियाँ पड़ने लगीं। लोगों ने उन्हें समझाने की भी कोशिश की। लेकिन देशवासियों की निन्दा, अपवाद और गाली-गलौज की परवाह न करते हुए उन्होंने अपनी मनोकामना को पूरा करने की ठानी। क्योंकि उनके सामने देशहित का महान उद्देश्य था।

राममोहन की ख्याति उनके यूरोप रवाना होने से पहले केवल इंगलैण्ड में ही नहीं, यूरोप के कई देशों में फैल चुकी थी। कई यात्रियों ने, जिन्होंने उस काल में भारत की यात्रा की थी, राममोहन के बारे में लिखा था। उनके अंगरेजी प्रकाशनों का इंगलैण्ड में भी प्रचार हो चुका था। इस पृष्ठभूमि के साथ राममोहन ने अपनी विदेश-यात्रा आरम्भ की। राममोहन के बारे में मि० जे० यंग ने एक परिचय-पत्र जेरमी बेन्थम को 14 नवम्बर, 1830 को लिखा था; उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

> "....उनकी यह विदेश-यात्रा, वह भी किसी दूर देश की यात्रा, हिन्दुओं के बीच विशेषतः ब्राह्मणों के बीच बिल्कुल ही अनहोनी घटना है....इस अनोखे व्यक्ति ने अपने लेखों और कार्य-कलाप से जो नमूना पेश किया है उसका विवरण देना कठिन है। यह उन्हीं के साहस का फल था कि आज सतीप्रथा पर पाबन्दी लगी है।....यह कोई कम सम्मान की बात नहीं कि गवर्नर जनरल ने स्वयं अपने विशिष्ट मित्रों और ऊँचे राजनयिक बन्धुओं के नाम राममोहन के लिए परिचयपत्र लिखकर दिया है।"[12]
>
> लार्ड बेन्टिक के साथ राममोहन की मित्रता के बारे में पहले लिखा गया है कि वे अंततः राममोहन के प्रशंसक ही बने रहे।

राजा राममोहन सोमवार 15 नवम्बर, 1830 को अपने दत्तक पुत्र राजाराम, दो नौकर, रामरतन मुखोपाध्याय और राम हरिदास और मुस्लिम नौकर बख्शू के साथ 'एल्बिओन' नामक जहाज पर सवार होकर इंगलैण्ड के लिए रवाना हुए। रवाना होने वाले दिन का रोचक विवरण महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने, जो उस समय बालक ही थे, अपनी 'जीवन स्मृति' में सँजोया है। राममोहन जब ठाकुर-परिवार के लोगों से मिलने गये तो वहाँ उनके दर्शनार्थियों की भीड़ जमा हो गई थी। देवेन्द्रनाथ के अनुसार—"इंगलैण्ड जाते समय राजा मेरे पिता (द्वारका नाथ ठाकुर) से विदाई माँगने आये। हमारे घर के प्रायः सारे लोग और बड़ी संख्या में पड़ोसी, राजा के दर्शन के लिए एकत्रित हुए। मैं उस समय वहाँ उपस्थित नहीं था। उन दिनों मैं एक छोटा-सा बालक था। लेकिन राजा ने मुझसे मिलने का आग्रह प्रकट किया। उन्होंने मेरे पिता से कहा कि वे मुझसे हाथ मिलाये बिना देश से विदा नहीं हो सकते। पिता ने मुझे बुला भेजा। तब कहीं मुझसे हाथ मिलाकर वे रवाना हो सके। राजा ने बड़े ही स्नेह से मेरा हाथ पकड़ा था। इसका प्रभाव और अर्थ उस समय मेरी समझ में

नहीं आया। लेकिन बाद में उम्र बढ़ने पर मैं इसका अर्थ समझ पाया।"[13] कहना न होगा, राममोहन के बाद ब्रह्मसमाज के वास्तविक उत्तराधिकारी महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ही बने।

जहाज कलकत्ता बन्दरगाह छोड़कर चल दिया। उन दिनों स्वेज नहर नहीं बना था और न ही आधुनिक तेज रफ्तार वाले जहाज ही थे। यूरोप जाने के लिए अफ्रीका महाद्वीप के दक्षिण छोर उत्तमाशा अन्तरीप से होकर गुजरना पड़ता था और विलायत पहुँचने में कोई पाँच-छः महीने लग जाते थे।

जहाज पर राममोहन की दिनचर्या का बड़ा ही सुन्दर विवरण उसी जहाज पर यात्रा करते हुए उनके मित्र जेम्स सदरलैण्ड ने (बाद में हुगली कालेज के प्राध्यापक) अपने संस्मरणों में, जो 1834 में 'इंडिया गजट' में छपा;[14] वे बताते हैं :

> "जहाज पर राममोहन अपने केबिन में ही भोजन करते थे और शुरू-शुरू में अलग रसोई न होने के कारण उनको काफी कष्ट उठाना पड़ा।....उनके नौकर भी समुद्री-पीड़ा से बुरी तरह पीड़ित हो गये और उनके केबिन में ही पड़े रहते थे।....कठिनाई के बावजूद भी वे अपने नौकरों को केबिन से बाहर भेजने को राजी नहीं थे। सारे दिन वे स्वयं संस्कृत और हिब्रू ग्रंथों का अध्ययन करते। दोपहर से पहले और शाम को अक्सर जहाज के डेक पर टहलते हुए दूसरे यात्रियों से रोचक वार्तालाप करते रहते। शाम को भोजन के बाद....अकसर वे भी अपने केबिन से निकलकर भोजन की मेज पर लोगों के साथ गपशप में शामिल होते। वे हमेशा प्रसन्नचित्त रहते। जहाज के सभी यात्री उनकी बड़ी कद्र करते। अक्सर लोगों में उनको अपनी ओर आकृष्ट करने की होड़-सी बनी होती। जहाज के खलासी और नाविक भी उनकी खिदमत करने को सदैव तत्पर रहते। ....अकसर वे आश्चर्यजनक धैर्य का परिचय देते। समुद्र की तूफानी लहरों से कभी-कभी उनका सारा सामान भीग जाने पर भी उनकी प्रशान्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती। कभी-कभी जब-जब प्रतिकूल हवाएँ चलती तो उन्हें इसलिए चिन्तित पाया जाता कि कहीं पार्लियामेन्ट में कम्पनी के चार्टर के पेश किये जाने तक वे इंगलैण्ड पहुँच ही न पाएँ।"

राममोहन के जहाज ने जनवरी, 1831 को उत्तमाशा अंतरीप के कोने पर केपटाउन बन्दरगाह पर लंगर डाला। राममोहन थोड़े समय के लिए शहर गये थे। जब जहाज पर वापस लौट रहे थे तो एक दुर्घटना हो गयी। जहाज पर चढ़ने वाली सीढ़ी ठीक से बँधी न थी। वह खिसक गयी तो राममोहन का पैर फिसल गया। उनके पैरों में काफी चोट आई। इस चोट के कारण वे अगले कई महीने लँगड़ाते रहे। शारीरिक कष्ट उनकी मानसिक भावनाओं को दबा

नहीं सकता था। जहाज पर उनसे मिलने के लिए केपटाउन शहर के कई विशिष्ट नागरिक आते रहते थे। सदरलैण्ड के संस्मरण से ही आगे पता चलता है कि इन्हीं दिनों जब दो फ्रांसीसी जहाज फ्रांस के नये तिरंगे झंडे को फहराते हुए केपटाउन पहुँचे, तो राममोहन उन जहाजों पर जाने के लिए उत्सुक हो उठे।[15] अपने शारीरिक कष्ट की उन्होंने कोई परवाह नहीं की। उत्साह और जोश के कारण उन्हें कोई तकलीफ महसूस हो ही नहीं रही थी। उन्हें फ्रांसीसी जहाज पर ले जाया गया। जहाज के फ्रांसीसी अधिकारियों ने उनका यथायोग्य स्वागत किया। स्वाधीन फ्रांस के नये क्रान्ति के झंडे के नीचे खड़े होकर राममोहन को बेहद प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यह झंडा दानवी शक्ति के ऊपर न्याय की विजय का प्रतीक है। अपने जहाज पर लौटते समय उन्होंने फ्रांस के झंडे को सलाम करते हुए बार-बार कहा "Glory, glory, glory to France."[16]

इस सिलसिले में यह विचारणीय है कि राममोहन अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं में दिलचस्पी रखते थे। जिन दिनों वे डिगबी साहब के साथ नौकरी कर रहे थे तब भी यूरोप की पत्र-पत्रिकाएँ बराबर पढ़ते रहते थे और पाश्चात्य जगत की राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्य-कलाप और प्रगति से अपने को अवगत रखते थे। जिन दिनों राममोहन अपने विदेश-यात्रा की तैयारी कर रहे थे उन दिनों उनके चिन्तन और भावनाओं में अंतर्राष्ट्रीयता का समावेश होता जा रहा था। इन दिनों दूसरी अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं के अलावा फ्रांस की राज्य क्रान्ति (फ्रेंच रिवोल्यूशन) की ओर उनका ध्यान पूरी तरह लगा हुआ था। वे एक-एक घटनाओं के बारे में पूरी तरह सचेत थे। 1830 की जुलाई 27 से 29 के उन तीन महान दिनों में राममोहन का उत्साह इतना प्रबल था कि वे दिन-रात इस क्रान्ति के बारे में ही सोचते और बातचीत करते थे। जब उस सफल क्रान्ति का समाचार कलकत्ता पहुँचा तब राममोहन ने इस सफलता की खुशी में एक बड़ी पार्टी दी थी।

सदरलैण्ड साहब ने संस्मरण में आगे लिखा है—ज्यों-ज्यों हमारा जहाज इंगलैण्ड के तट की ओर बढ़ रहा था राममोहन का मन, यह जानने के लिये बहुत ही उतावला हो रहा था कि वहाँ क्या कुछ हो रहा है। वे अकसर किसी आते हुए जहाज को देखते तो अपने जहाज के कप्तान से अनुरोध करते कि पता करें कि इंगलैण्ड के पार्लियामेन्ट में क्या कुछ हो रहा है। जब हमारा जहाज भूमध्यरेखा के नजदीक था तब एक जहाज दिखाई दिया। उस जहाज के यात्रियों ने कुछ अखबार हम लोगों को दिये, जिनसे मालूम हुआ कि इंगलैण्ड के मंत्रिमंडल में परिवर्तन हो गया है। राममोहन बड़े प्रसन्न थे कि मंत्रित्व का परिवर्तन भारत के हित में होगा। सारे दिन इसी बात की चर्चा चलती रही।

राममोहन को केवल इसी बात की चिन्ता थी कि इन घटनाओं का भारत के भाग्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा। और आगे बढ़े तो किसी अन्य जहाज के यात्रियों से मालूम पड़ा कि पार्लियामेन्ट में रिफार्म बिल का दूसरा वाचन समाप्त हो गया है और टोरी पार्टी को केवल एक वोट अधिक मिला है। राममोहन को फिर आशा बँधी कि रिफार्म बिल अवश्य ही पास होकर रहेगा। कुछ ही दिनों में, इंगलैण्ड के इतिहास के इस संकटपूर्ण परिस्थिति के समय, जब सारी इंगलैण्ड की जनता रिफार्म बिल पर उत्तेजित थी, राममोहन ब्रिटिश साम्राज्य की मुख्य भूमि पर आकर उतरे। राममोहन के मन में भी स्वाभाविक रूप से उत्तेजना रही होगी। सदरलैण्ड साहब ने लिखा है कि उन्हें आशंका थी कि राममोहन के लिए यह उत्तेजना कहीं महँगी न पड़े।

पूरे चार महीने और 23 दिन बाद राममोहन ने इंगलैण्ड की धरती पर पाँव रखा। 8 अप्रैल, 1831 को राममोहन लिवरपूल बन्दरगाह पर उतरे।[17]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collet. Raja Rammohun Roy : pg. 71-72 में पत्र का सारांश उद्धृत किया गया है।

2. वही : पृ० 282 द्र० सम्पादकीय पाद-टिप्पणी।

3. Dasgupta. Raja Rammohun Roy the last phase : पृ० 76। पृ० 80 के टिप्पणी के अनुसार भत्ते की रकम बढ़ने पर वार्षिक बढ़े हुए रकम का आधा हिस्सा और पाँच हजार रुपये महीने देना तय हुआ था।

4. Collet : pg. 284-285. पत्र के कुछ प्रासंगिक अंश इस प्रकार हैं—

"...I beg leave to submit to your Lordship that some months ego, was informed by His Majesty Uboonnussur Moeenoodeen Ukbur badshah, that his Majesty had apprised your Lordship of my appointment as his Elchee (Envoy) to the court of Great Britain and if his having being pleased to invest me as his Majesty's servant with the title of Rajah, in consideration of the respectability attached to that situation and c. Not being anxious of titular distinction, I have hither to refrained from availing myself of the honour conferred on me by His Majesty.

His Majesty, however, being of opinion thaf it is essentially necessary for the dignity of His Royal House that I, as the representative there of to the most powerful Monarch

in Europe, and Agent for the settlement of His Majesty's affairs with the Honourable East India Company should be invested with the title above mentioned, has graciously forwarded to me a seal engraved for the purpose at Delhi.... This measure will, I believe, be found consistent with former usage as established by a Resolution of Government on the subject in 1827 when,....His Majesty's power of conferring honorary titles on his own sarvents was fully recognised. ..."

5. वही : पृ० 285. इस विषय में अधिक जानकारी के लिए J. K. Majumdar कृत Raja Rammohun Roy and the Last Maghuls पुस्तक देखें, जिसमें इस मिशन के बारे में विस्तृत विवरण उपलब्ध है ।

6 Collet : पृ० 289-290 पर पूरे पत्र की प्रतिलिपि उद्धृत है । कुछ प्रासंगिक अंश इस प्रकार है :

"....Having at Length surmounted all obstacles of a domestic nature that have hither to opposed by long Cherished intention of visiting England, I am now resolved to proceed to that land of liberty by one of the vessels that will sail in November, and from a due regard for the purport of the late Mr. Secretary Sterling's letter of 15th January last, and other considerations, I have determined not to appear as the Envoy of His Majesty Akbar the Second but as a private individual...."

7. चट्टोपाध्याय : महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित्र : पृ० 229. यह पत्रिका अंगरेजी के अलावा बंगला, हिन्दुस्तानी और फारसी भाषा में भी प्रकाशित होता था । बंगला संस्करण का नाम था—बंगदूत ।

8. Collet : पृ० 291. सम्पादकीय टिप्पणी में Asiatic Journal, Vol. II New Series से John Bull पत्रिका के 27 फरवरी, 1830 से उद्धृत करते हुए लिखा है कि राममोहन ने इंगलैण्ड-यात्रा पहले-पहल अगस्त-सितम्बर, 1829 में कटक, मद्रास और बम्बई के रास्ते जाना तय किया था । बाद में यह योजना रद्द कर दी गयी । इसके बाद इलाहाबाद और पंजाब के रास्ते स्थल-पथ से जाना तय हुआ लेकिन यह योजना भी उनको व्यक्तिगत हत्या की धमकी के कारण त्यागनी पड़ी ।

9. चट्टोपाध्याय : पृ० 235. रवाना होने की तारीख के बारे में कुछ मतभेद पाया जाता है । मिस कोलेट ने 19 नवम्बर का दिन दिया है (देखें

पृ० 291) । दासगुप्ता की पुस्तक पृ० 82 में 15 नवम्बर, 1830 के सरकारी गजट का हवाला उद्धृत किया है । सरकारी आदेश इस प्रकार है :—"The officiating Secretary reports that orders for the reception of Ramrutton Mookherjee, Harichurn Dass and Sheikh Buxoo, 15th November, proceeding to England in attendance on Rammohun Roy on the Albion have been issued on applications duly made for the purpose (Public Body sheet, dated 16th November, 1830) ।

एक और जीवनीकार ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय ने रवाना होने का दिन 19 नवम्बर दिया है ।

10. Collet, पृ० 291 ।

11. Mary Carpenter. Last days in England of Raja Rammohun Roy (Calcutta. Ed.) 1915, पृ० 222 (कोलेट की पुस्तक, सम्पादकीय टिप्पणी, पृ० 297)

12. Collet, पृ० 293-294 में पूरे पत्र की प्रतिलिपि उद्धृत है ।

13. चट्टोपाध्याय : पृ० 390-391 ।

14. Collet, पृ० 307. जेम्स सदरलैण्ड के संस्मरणों का प्रकाशन इंडिया गजट 18 फरवरी, 1834 में हुआ था जो बाद में कैलकटा रिव्यू में प्रकाशित हुआ ।

15. इसका सम्बन्ध 1830 की फ्रांसीसी क्रान्ति से था ।

16. Collet, पृ० 308 में जेम्स सदरलैण्ड के संस्मरण का अंश देखें ।

17. Mary Carpenter, Last days in England of Raja Rammohun Roy, pg 78.

अध्याय—13

भारत का राजदूत इंगलैण्ड की भूमि पर

पूरे चार महीने तेइस दिन बाद राममोहन 8 अप्रैल, 1831 को लिवरपूल के बन्दरगाह पर उतरे। सदरलैण्ड साहब के संस्मरणों में उनके इंगलैण्ड की भूमि पर पहले दिनों का रोचक विवरण मिलता है। जब वे लिवरपूल में उतरे तो मि० विलियम राधबोन ने उन्हें अपने 'ग्रीन बैंक' भवन में ठहरने के लिए आमंत्रित किया। लेकिन राममोहन शायद स्वतंत्र रूप से रहना चाहते थे; इसलिए उन्होंने राड्लेस होटल में ठहरना उचित समझा।[1]

ज्यों ही राममोहन के आगमन का समाचार लोगों को मालूम हुआ, नगर के प्रतिष्ठित लोग एक के बाद दूसरे उनके दर्शनों को आने लगे। राममोहन से मिलने वालों में साधारण लोग भी थे। कुछ ऐसे लोग जो कभी कलकत्ता आवास पर गये थे, वे भी उनसे मिलने आये। राममोहन भी उनसे बड़े आग्रह से प्रेमपूर्वक मिले। विशेष रूप से जो लोग उनके धार्मिक विचारों और सुधारवादी आन्दोलनों से परिचित थे, उन्होंने उनका भारी स्वागत किया।[2] मिलने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि राममोहन के लिए अच्छी खासी मुसीबत खड़ी हो गई। किसी-किसी शाम को आधे दर्जन लोगों से मिलना पड़ता। सुबह, दोपहर, शाम कहीं न कहीं उन्हें निमंत्रण पर जाना पड़ता। सुबह-शाम उनके होटल पर मिलने वाले लोगों का ताँता लगा रहता। सारा समय धार्मिक, राजनैतिक और दूसरी बहसों में बीतता।[3]

राममोहन सबसे पहले जिस सार्वजनिक स्थान पर गये वह एक युनिटेरियन चर्च था।[4] आरम्भ में मि० ग्रण्डी ने धार्मिक प्रवचन दिया, जो कठिन और गूढ़ तात्विक विषय पर था; लेकिन राममोहन ने इस प्रवचन की भारी प्रशंसा की। साधारणतया लोग प्रवचन के बाद लौट जाया करते थे लेकिन इस दिन ऐसा नहीं हुआ। लोग राममोहन को घेरकर खड़े हो गये। सभी उन्हें पास से देखना चाह रहे थे। उनसे परिचित होना चाहते थे। एक काले भारतीय आदमी के मुँह से उनकी अपनी भाषा अँगरेजी में सुन्दर प्रभावी बातचीत सुनकर लोगों को आश्चर्य हो रहा था। सभी उनसे हाथ मिलाने को उत्सुक थे। इसी चर्च में उन्होंने अपने एक पुराने मित्र मि० टेट, जिनसे वे कलकत्ता प्रवास के दौरान परिचित थे, का स्मारक चित्र देखकर खड़े हो गये। यह जान कर उनको बड़ा दुःख हुआ कि श्री टेट अब जीवित नहीं हैं।[5]

उसी दिन रात को एक एंग्लिकन चर्च की उपासना-सभा में भी राममोहन

शामिल हुए। यहाँ पर वे लिवरपूल के कुछ धनी क्वेकर-परिवारों से भी परिचित हुए। इनमें क्रॉपर और बेनसन-परिवार के लोग विशेष रूप से उनके निकट आये। इन लोगों के द्वारा राममोहन का इंग्लैण्ड के प्रायः सभी धार्मिक सम्प्रदाय के विशिष्ट लोगों से परिचय हो गया। इन क्वेकर समावेशों में अक्सर सभी सम्प्रदाय के लोग सहनशीलता और सदाशयता के साथ एक-दूसरे से विचारों का आदान-प्रदान कर लाभान्वित होते। मि० राथबोन के घर पर राममोहन का परिचय प्रसिद्ध कपाल-विज्ञानशास्त्री मि० स्पूरज़ीम से हुआ था। यद्यपि इस शास्त्र पर राममोहन को कोई विश्वास नहीं था फिर भी दोनों अच्छे मित्र बने।[6]

राममोहन को अकसर लोग अपने घर में आमंत्रित करते। जहाँ भी जाते राममोहन अपनी विद्वत्ता, सहानुभूति, ईमानदारी, समझदारी और अपनी मर्यादा की छाप छोड़ते थे। लोग जब एक विदेशी ब्राह्मण के मुँह से 'रिफार्म' के बारे में और धार्मिक तथा राजनैतिक स्वाधीनता के बारे में विचार सुनते तो उन्हें आश्चर्य होता। यहाँ तक कि उन्होंने पाया कि यह व्यक्ति उनके धर्मशास्त्र के बारे में पूरा ज्ञान रखता है और इस विषय पर सहज ही अपने मौलिक विचार प्रकट कर सकता है। लिवरपूल के विद्वन् और धार्मिक समाज की इन बैठकों में विचार के मुख्य विषय थे—धर्म और राजनीति। लिवरपूल में उन्हें प्रसिद्ध इतिहासकार और विद्वान विलियम रॉस्को ने अपने घर पर आमंत्रित किया। राममोहन की कृतियों के माध्यम से रॉस्को साहब का राममोहन के साथ आत्मिक परिचय पहले से ही था। वे राममोहन के 'प्रीसेप्टस आफ जीसस' को पढ़ने के बाद और उनके दूसरे धार्मिक सुधारों से बहुत ही प्रभावित हुए थे। इस असाधारण व्यक्ति के चरित्र और कार्य-कलापों के बूढ़े रास्को साहब बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने राममोहन से पत्र-व्यवहार करने की ठानी। इस अप्रत्याशित मुलाकात के कोई चार-पाँच महीने पहले रॉस्को साहब के एक मित्र श्री फ्लेचर व्यापार के सिलसिले में भारत जा रहे थे तो रॉस्को साहब ने उनके हाथ कुछ पुस्तकें और एक लम्बा पत्र[7] राममोहन के लिए भिजवाया था। यह पत्र राममोहन के प्रति रॉस्को साहब के आदर और प्रशंसा का परिचायक था। इसमें उन्होंने आशा प्रकट की थी कि यद्यपि वे अपने देश में राममोहन के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं तथापि उन्हें डर है कि कहीं भाग्य उनका साथ न दे। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि फ्लेचर साहब के कलकत्ता पहुँचने से पहले ही राममोहन का जहाज विलायत की ओर रवाना हो चुका था। पत्र और पुस्तकें राममोहन तक नहीं पहुँचीं। राममोहन के लिवरपूल पहुँचने के अप्रत्याशित समाचार से रॉस्को साहब को कितना संतोष मिला होगा, यह अनुमान लगाया जा सकता है। बूढ़े रॉस्को साहब लम्बी बीमारी और लकवे से पीड़ित

करीब-करीब बिस्तर पर पड़े थे।[8] मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में रॉस्को के जीवनी से उद्धृत करते हुए राममोहन की चिरप्रतीक्षित इस मुलाकात का बड़ा ही मर्मस्पर्शी विवरण दिया है। रॉस्को साहब से राममोहन की मुलाकात का दृश्य जिन लोगों ने देखा था कभी भूल नहीं पाये होंगे।

भारतीय पद्धति से प्रणाम और यथायोग्य सम्मान प्रदर्शन करने के बाद राममोहन के कहा, 'मुझे प्रसन्नता है और अपने को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मैं एक ऐसे महान व्यक्ति के समक्ष खड़ा हूँ जिसकी ख्याति यूरोप में ही नहीं सारे संसार में फैल चुकी है।' रॉस्को साहब ने उत्तर दिया—'मैं भगवान के प्रति कृतज्ञ हूँ कि इस सुखद दिन को देख पाने का सुअवसर प्रदान किया।' यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि इस साक्षात्कार के कुछ ही दिनों के भीतर 30 जून, 1831 को ही रॉस्को का देहान्त हो गया।[9] राममोहन के साथ रॉस्को साहब की बातचीत मुख्यतः राजनीति, व्यापार और धार्मिक विषयों पर होती रही। रॉस्को को आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि एक विधर्मी एशियाई उनके ईसाई धर्म के बारे मे और ईसा मसीह के बारे में इतना गहरा ज्ञान रखता है। बाद में रॉस्को साहब ने राममोहन को लार्ड ब्रोथम के नाम, जो हाउस ऑफ कामन्स में 'रिफार्म बिल' पेश करने वाले थे, एक परिचय-पत्र दिया था।[10] इस पत्र में रॉस्को साहब ने राममोहन का परिचय देते हुए उन्हें 'यशस्वी और विद्वान' कहा था और सिफारिश की थी कि इस विशिष्ट व्यक्ति के लिए रिफार्म-बिल के वाचन के दौरान 'हाउस आफ कॉमन्स' की दर्शक-दीर्घा में आसन की व्यवस्था की जाय।

लिवरपूल में निवास के दौरान राममोहन का रॉस्को-परिवार के अलावा और भी कई विशिष्ट लोगों से परिचय हुआ था। डॉ० कार्पेन्टर के अनुसार लिवरपूल की सामाजिक मण्डली में राममोहन ने अपना गहरा प्रभाव डाला। उनको अकसर एक 'महान व्यक्तित्व' की मान्यता प्राप्त थी।[11] राममोहन लिवरपूल में कुछ ही दिन ठहरे। उन्हें ब्रिटिश साम्राज्व की राजधानी लन्दन पहुँचने की जल्दी थी। वे 'रिफार्म बिल' की बहस के समय वे वहाँ हाजिर रहना चाहते थे, इसीलिए अप्रैल के अन्त में वे लिवरपूल से मैनचेस्टर के रास्ते लन्दन के लिए रवाना हुए। वे नये बने रेल-मार्ग द्वारा मैनचेस्टर गये। रास्ते में जगह-जगह उनका स्वागत हुआ। अकसर उनको देखने के लिए लोग गाड़ी के डिब्बे तक चले आते। मैनचेस्टर के कई कल-कारखानों का भी उन्होंने परि-दर्शन किया। मजदूर, औरतें, बच्चे सभी उनको अकसर उत्सुकता से घेर लेते कि 'किंग आफ इंगी' (भारत का राजा) आया है। सदरलैण्ड साहब ने अपने संस्मरण में यह भी लिखा है कि 'भीड़ को हटाने के लिए कभी-कभी पुलिस की सहायता लेनी पड़ती थी।'....उनको सैकड़ों की संख्या में लोगों से हाथ मिलाना

पड़ता था। यहाँ तक कि उन्होंने कभी-कभी लोगों से बातचीत करते हुए कहा कि आप सभी 'रिफार्म' के पक्ष में अपनी राय दें।[12]

आगे लंदन की यात्रा में भी वे जहाँ कहीं रुके, लोगों ने उत्सुकता के कारण उनको घेर लिया और प्रश्न पूछे।

लन्दन पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी थी। एक छोटे से सराय में उनके लिए कुछ कमरे तय किये गये थे। लेकिन राममोहन को ये छोटे कमरे पसन्द नहीं आये। वे तत्काल एक बड़े होटल 'एडल्फी' में चले आये। तब तक रात के दस बज चुके थे। इसी परली रात को राममोहन को एक बहुमूल्य सम्मान प्राप्त हुआ। राममोहन सोने के लिए बिस्तर पर जा चुके थे कि उसी समय विश्व-विख्यात दर्शनशास्त्री जेरमी बेन्थम, जिन्होंने शायद पिछले कई वर्षों अपने घर से बाहर पै नहीं रखा था, इतनी रात गये राममोहन से मिलने उनके होटल में उपस्थित हो गये [13] बेन्थम काफी बूढ़े हो चुके थे और एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। ऐसी अवस्था में किसी वृद्ध और अभिजात अँगरेज महोदय के लिए देर रात को किसी से मिलने जाना कल्पनातीत लगता है। लेकिन यह वास्त-विकता थी कि बेन्थम अपनी आंतरित प्रेरणा के कारण ही इनसे तुरन्त मिलने चले आये थे। इस हाजरी के बदले दूसरे ही दिन, राममोहन बेन्थम साहब के घर पर उनसे मिलने गये। बड़े ही सद्भावपूर्ण वातावरण में दोनों महापुरुष एक-दूसरे से मिले। राममोहन के लिए यह बहुत ही उत्साहवर्द्धक घटना थी। इस मुलाकात से बेन्थम इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने राममोहन को "अपना प्रिय सहयोगी" कहा था। इस मुलाकात के बाद दोनों में गहरी मित्रता हो गयी थी। दोनों एक-दूसरे के प्रशंसक बने। इंगलैण्ड में रहते हुए दोनों में पत्र-व्यवहार चलता रहा। कुछ पत्र अब भी ब्रिटिश म्यूजियम में रक्षित हैं। अब तक कुल तीन पत्र प्रकाश में आये है। संभवतः कुछ और पत्रों का पता अभी न चला हो।

कुछ महीनों के लिए राममोहन ने लन्दन के प्रसिद्ध रीजेन्ट स्ट्रीट पर किराये का मकान ले लिया, जहाँ उनसे मिलनेवाले विशिष्ट नागरिकों का ताँता लगा रहता। मिस कोलेट के अनुसार ऐसा लगता था मानो किसी विदेशी राजदूत के यहाँ अनौपचारिक दरबार लगा हो। सदरलैण्ड साहब के विवरण का कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

"ज्यों ही लंदन में लोगों को पता चल गया कि यहाँ एक बड़े ब्राह्मण दार्श-निक पधारे हैं तो शहर के विशिष्ट नागरिक उनके दर्शन करने के लिए आने लगे। उनके दरवाजे के सामने सुबह ग्यारह बजे से शाम के चार बजे तक गाड़ियों की भीड़ लगी रहती। सारे दिन राजनीति विषयक उत्तेजनापूर्ण आलो-चना से वस्तुतः राममोहन बुरी तरह थक जाते—यहाँ तक कि बीमार पड़ जाते। फिर डाक्टरों की सलाह पर लोगों का आना रोक दिया जाता।" [14]

इस प्रकार राममोहन महीनों धार्मिक, राजनैतिक और दूसरी बहस में लगातार जमे रहे। इन्हीं दिनों उनका परिचय बहुत से विशिष्ट धार्मिक और राजनैतिक नागरिकों से हो गया था। कई लोगों से घनिष्ठ मित्रता भी हो गई। इन्हीं में एक थे डा० लान्ट कारपेन्टर, जो युनिटेरियन चर्च के प्रमुख अनुयायी थे। चूंकि राममोहन स्वयं इसी धार्मिक भावना और मत के पोषक थे इसी से स्वभावतः इनके साथ राममोहन की गहरी मित्रता भी हो गई थी। राममोहन ने कलकत्ता में युनिटेरियन-वाद के प्रचार के लिए जो कुछ किया था उसका प्रचार लन्दन में हो चुका था। डा० कारपेन्टर ने अपनी पुस्तक में राममोहन के साथ अपने परिचय का विवरण दिया है जिससे स्पष्ट है कि कलकत्ता-काल में भी डा० कारपेन्टर के साथ राममोहन का पत्र-व्यवहार चलता रहा होगा।[15] इसी से जब राममोहन इंगलैण्ड की भूमि पर उतरे तो स्वाभाविक रूप से उन्हें डा० कारपेन्टर की याद आयी। उन्होंने डा० कारपेन्टर को पत्र लिखकर सूचित किया कि वे यथाशीघ्र उनसे मिलने के इच्छुक हैं। लन्दन के युनिटेरियन चर्च के स्वागत समारोह में डा० कारपेन्टर राममोहन का स्वागत करने वालों में प्रमुख थे। वे ही राममोहन की अगुवानी करने के बाद भीड़ को चीरते हुए, उन्हें सभाकक्ष तक ले गये।[16] इसी से युनिटेरियन चर्च के लोग राममोहन को अपना सहयोगी समझने लगे थे। शीघ्र ही राममोहन के स्वागत के लिए एक दिन तय कर दिया गया।

यह स्वागत समारोह सम्भवतः 1831 के मई के महीने में सम्पन्न हुआ था क्योंकि जून की "मन्थली रिपोजिटरी" में इस समारोह का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ था। मिस कारपेन्टर ने अपनी पुस्तक में इन भाषणों का पूरा विवरण दिया है।

डा० कारपेन्टर ने लिखा है कि भाषणों में राममोहन को एक सहयोगी के रूप में आदर और सम्मान दिया गया। रेवरैण्ड एसप्लैन्ड डा० बोवरिंग और हारवार्ड-विश्वविद्यालय के डा० कर्कलैण्ड ने अपने स्वागत भाषणों में इस प्रबुद्ध ब्राह्मण के विचारों का और कार्यकलापों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।[17] इन स्वागत भाषणों के अन्त में राममोहन ने कहा,—"मैं अस्वस्थ और थका हुआ हूँ इसी से इस सभा में सक्रिय रूप से भाग लेने में असमर्थ हूँ। फिर भी मैं डा० बोवरिंग और डा० कर्कलेण्ड का आभारी हूँ कि आप लोगों ने मुझे अपना सहयोगी मानकर मेरा इतना सम्मान किया और मुझे अपनी सभा का सदस्य बनने का गौरव प्रदान किया। मेरे विचार से मैंने इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसा कुछ नहीं किया कि मुझे इसका प्रवर्तक माना जाय....यदि मैंने कुछ किया भी है तो वह बहुत ही गौण माना जायेगा....। मैं प्रायः उन सभी धार्मिक सिद्धान्तों को मानता हूँ जैसा कि आप लोग मानते हैं। मैं यह सब अपनी मुक्ति के लिए और आत्मा की

शान्ति के लिए मानता हूँ....। मुझे भारी कठिनाइयों के बीच काम करना पड़ा। ....सबसे पहले वे हिन्दू लोग और ब्राह्मण, जिनसे मेरा सम्बन्ध है, इस आन्दोलन के प्रबल विरोधी हैं यहाँ तक कि कुछ ईसाई भी हमारे इस संकल्प में हिन्दुओं और ब्राह्मणों से बढ़कर, बाधक बने हुए हैं....लेकिन विवेक, धर्मशास्त्र और सहजबुद्धि के साथ धन, क्षमता और पूर्वाग्रह की लड़ाई अब भी जारी है। ....मुझे विश्वास है कि सफलता देर-सबेर आपको अवश्य मिलेगी....आप लोगों ने मुझे जो सम्मान दिया है, मैं जीवन भर नहीं भूल पाऊँगा।"[18]

राममोहन इन दिनों इन मुलाकातों में विशिष्ट नागरिकों से निरंतर मिलते रहे या छोटी-छोटी बैठकों में शामिल होते रहे। इससे उनका सामाजिक महत्व दिन पर दिन बढ़ने लगा। इनमें से कई एक प्रसिद्ध युनिटेरियन परिवारों के साथ वे अपना व्यक्तिगत निकट सम्बन्ध बनाये रहे। इनमें ऐस्लीन, कारपेन्टर और फाक्स परिवार प्रमुख थे। डा० कारपेन्टर ने लिखा है कि राममोहन अक्सर लन्दन स्थित युनिटेरियन उपासना मन्दिरों में सम्मिलित होते और प्रार्थना सभाओं में भाग लेते थे। उन्होंने दो बार उनके वार्षिक उत्सवों में भी योगदान किया। लेकिन वे अपने को किसी धार्मिक गुटबाजी से सदैव अलग रखने का भी प्रयास करते। डा० कारपेन्टर के अनुसार, राममोहन सम्भवतः रेवरेण्ड डा० केनी के चर्च में सबसे अधिक बार गये क्योंकि डा० केनी के ईसाई धर्म सम्बन्धी प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुए थे।[19] उनके लन्दन जीवन की व्यस्तता के बारे में मिस कोलेट ने रेवरेण्ड फाक्स को लिखे राममोहन के एक पत्र का हवाला दिया है जिसमें उन्होंने यह बताया था कि अगले पन्द्रह दिनों तक हर रोज शाम को उन्हें दावत पर जाना है अतः वे किसी दिन प्रातःकाल मिलना ही पसन्द करेंगे। इस पत्र से उनके लन्दन जीवन की व्यस्तता का आभास मिलता है। युनिटेरियन चर्च के अलावा वे कभी-कभी एंग्लिकन चर्च में जाया करते थे। इस प्रकार उनका व्यवहार धार्मिक संकीर्णता से ऊपर ही रहा।[20]

राममोहन शीघ्र ही लन्दन उच्चस्तरीय सामाजिक जीवन का एक अंग बन गये। अक्सर इन सामाजिक बैठकों में राममोहन मुख्य अतिथि के रूप में हिस्सा लेते। साथ ही सारी घटनाएँ इतनी तेजी से बढ़ने लगीं कि राममोहन के लिए सम्हाल पाना किसी हद तक कठिन हो रहा था।

राममोहन का राजनैतिक और सामाजिक महत्व कितनी तेजी से बढ़ रहा था इसका पता इस बात से लगता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी, जिसने कलकत्ते से रवाना होते समय इन घटनाओं को कोई महत्व देने से इन्कार कर दिया था, उसी कम्पनी का विरोधी और प्रतिकूल रुख पलट गया। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने 6 जुलाई, 1831 को राममोहन के सम्मान में एक सांध्य-भोज्य का आयोजन किया, जिसकी अध्यक्षता बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स के चेयरमैन ने की।

अस्सी के करीब गण-मान्य नागरिक उपस्थित थे जिनमें भारत के कई भूतपूर्व गवर्नर-जनरल भी शामिल थे। चेयरमैन ने राममोहन की प्रशंसा करते हुए आशा व्यक्ति की कि भविष्य में और भी प्रतिभाशाली भारतीय इंगलैण्ड आयेंगे।[21]

राममोहन ने अपने उत्तर में कहा कि वे भी उस भविष्य की ओर उम्मीदें बांधे देखते रहेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें उन महानुभावों के बीच बैठकर आनन्द का अनुभव हो रहा है, जिन्होंने बड़ी कुशलता से भारत सरकार का राज-संचालन किया था...." इत्यादि।[22] एक संवाददाता के अनुसार यह एक अनोखा दृश्य था कि, उन अँगरेजों के बीच जहाँ मांस और मदिरा का दौर चल रहा था, एक ब्राह्मण भी भोजन कर रहा था, लेकिन उन्होंने चावल और ठण्डे जल के सिवा कुछ नहीं छुआ।[23]

लन्दन के राजनैतिक चक्रवात में

राममोहन की यह धारणा कि उनका इंगलैण्ड की भूमि में रहना और व्यक्तिगत रूप से सरकार को प्रभावित करना देश के हित में होगा, ठीक ही थी। क्योंकि परवर्ती घटनाएँ इस बात की साक्षी थीं, कहा जाता है कि चाहे सरकारी तौर पर इसकी घोषणा नहीं की गयी, फिर भी वास्तविकता यह थी कि ब्रिटिश सरकार ने व्यावहारिक रूप में उनके "राजा" की उपाधि और "राजदूत" पद को मान लिया था।[24] दूसरी मुख्य बात यह थी कि लन्दन और इंगलैण्ड के लोगों ने राममोहन को भारत का अनौपचारिक "राजदूत" मान लिया था। इसी से ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए राममोहन की उपेक्षा करना कुछ मुश्किल हो गया था और कलकत्ते की तरह उपेक्षित-सा व्यवहार करना भी सम्भव नहीं था। कम्पनी के वे ही अफसर जो उन्हें कलकत्ते में उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे, यहाँ उनसे मिलने और परिचित होने के लिए होड़ लगा रहे थे।[25]

इसी समय 'हाउस आफ कॉमन्स' ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीकरण के लिए जून 1831 में एक 'सिलेक्ट कमेटी' बनाई थी। इसमें हिन्दुस्तान के शासन के बारे में नयी व्यवस्था पारित करना था। राममोहन की प्रतिष्ठा को देखते हुए यह स्वाभाविक था कि उनको 'सिलेक्ट कमेटी' के सामने अपनी राय देने के लिए निमंत्रित किया जाता। राममोहन ने औपचारिक तौर पर इस निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया लेकिन अपने कई एक पत्र-व्यवहार और लेखों के द्वारा भारत के मसलों पर अपने विस्तृत विचार और दृष्टिकोण प्रस्तुत किये।[26] ये सभी पत्र और लेख अधिकृत सरकारी दस्तावेजों में शामिल किये गये थे। बाद में राममोहन ने इन पत्रों और लेखों को अलग से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया।

उनका पहला पत्र भारत के राजस्व से सम्बन्धित था, जो उन्होंने 19

अगस्त, 1831 को लिखा था। इसमें 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' के 54 प्रश्नों के उत्तर संलग्न थे। इसके अलावा और भी 78 प्रश्नों के उत्तर राममोहन ने दिये थे। यह सारा पत्र व्यवहार दो हिस्सों में है। एक में विषय वस्तु से सम्बन्धित प्रस्ताव भाग है और दूसरे भाग में सम्बन्धित समस्याओं का समाधान पेश किया गया है। इसमें राममोहन रैयत या काश्तकार का पक्ष लेते हुए दिखायी देते हैं क्योंकि उन्होंने दिखाया है कि भारी लगान के कारण किसान की कमर टूट रही है। जबकि जमींदार 1793 के स्थायी बन्दोबस्त से भारी फायदा उठा रहे हैं। एक ओर जमींदार वर्ग के धन-दौलत में लगातार वृद्धि होती जा रही थी और किसान दिन पर दिन गरीब होता जा रहा था। उन्होंने यह बताया कि किसानों की करुण अवस्था का जिक्र करते हुए भी मुझे भारी दुख होता है। इसका एकमात्र समाधान लगान को बढ़ाने से रोकना है और लगान की अत्यधिक दर को कम करना है। राजस्व की यदि कोई कमी हो तो सरकारी प्रशासन-व्यय में कमी करके या भोग-विलास की वस्तुओं पर अधिक कर लगाकर पूरा किया जा सकता है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि उच्च वेतन भोगी विदेशी अधिकारियों के बदले में कम वेतन पर देशी प्रशासक नियुक्त किये जायँ।[27] वक्तव्य के अन्त में राममोहन ने कहा था कि वे अधिकारी वर्ग से निवेदन करना चाहते हैं कि किसानों की दयनीय दशा को सुधारने के लिए कोई न कोई कदम उठायें अवश्य जायें। उन्होंने परिशिष्ट में यह कहा कि इससे सरकार को लम्बी अवधि में लाभ ही होगा, क्योंकि किसानों की आर्थिक हालत सुधारने से राजस्व की अदायगी भी अधिक होगी। अन्त में उन्होंने प्रसिद्ध फारसी सूफी कवि शेख सादी की एक मसनवी उद्धृत की थी जिसका सारांश था—'अपनी प्रजा के साथ मित्रता का व्यवहार करें तो शत्रुओं से हमले का भय नहीं रहेगा, क्योंकि एक न्यायी राजा के लिये उसकी सारी प्रजा ही उसकी सेना है।'[28]

राममोहन के आर्थिक और राजनैतिक विचारों के व्यावहारिक पक्ष का आभास इन प्रश्नोत्तरों से स्पष्ट झलकता है। दो प्रश्नोत्तर यहाँ नमूने के तौर पर उद्धृत किये जा रहे हैं—

प्रश्न : आजकल बंगाल क्षेत्र में प्रचलित जमींदारी प्रथा और मद्रास प्रेसीडेन्सी के रैयतवारी प्रणालियों के अंतर्गत किसानों की दशा कैसी है?

उत्तर : दोनों ही प्रणालियों में किसानों की हालत दयनीय है। एक में वे जमींदारों की धनलोलुपता और उच्चाकांक्षाओं का शिकार होते हैं तो दूसरे में वे सरकारी निरीक्षकों और राजस्व अधिकारियों के लूट-खसोट और कुचक्र के शिकार। मुझे दोनों के प्रति सहानुभूति है। बंगाल क्षेत्र के खेतिहरों की अवस्था में इतनी भिन्नता अवश्य है कि यहाँ राजस्व निर्धारण में जमींदारों के प्रति अक्सर पक्षपात और आसक्ति दिखाई

देती है। जबकि गरीब किसानों के प्रति कोई भी दयाभाव नहीं दर्शाया जाता। बहुतायत के मौसम में जब अनाज की कीमतें गिर जाती हैं तो पूरी फसल बेचकर भी किसान जमींदार की माँग पूरी नहीं कर पाता, उसके पास बीज के लिए या अपने ओर अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए भी कुछ नही बचता।

प्रश्न : क्या आप किसानों और जनता की दशा सुधारने के लिए कोई योजना पेश कर सकते हैं ?

उत्तर : पिछले चालीस वर्षों से चले आ रहे इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदार वर्ग ने अपनी सुविधानुसार जमीन की हदबन्दी और नपाई पूरी कर ली है और निरंतर किसानों पर लगान बढ़ाते हुए अधिकतम सीमा तक ले गये हैं। इसीलिए मैं केवल इतना प्रस्तावित कर सकता हूँ कि सरकार किसानों की दशा सुधारने के लिए कम से कम इतना तो कर सकती है कि लगान की दर में किसी प्रकार की अतिरिक्त वृद्धि, चाहे वह किसी भी बहाने क्यों न हो, पर प्रतिबन्ध लगा दे।'[29]

किसानों की दुर्दशा और राजस्व के बारे में राममोहन के उक्त विचार जो उन्होंने ब्रिटिश सरकार के सामने रखे, उनके गहन अनुभव और मानवीय करुणा के निदर्शन हैं। ब्रिटिश सरकारी दस्तावेजों में राममोहन से एक अन्य प्रश्नोत्तर का हवाला भारत की न्यायिक व्यवस्था के बारे में मिलता है।[30] इस दस्तावेज पर 19 सितम्बर 1831 की तारीख पड़ी है। इसमें सरकार की ओर से प्रस्तुत 78 प्रश्न पूछे गये थे। राममोहन का उत्तर एक निबन्ध के रूप में है। इसमें विभिन्न सुधारों और नयी व्यवस्थाओं का सुझाव पेश किया गया है। न्यायालयों में फारसी के स्थान पर अँगरेजी के व्यवहार का प्रस्ताव भी उन्होंने रखा था। पूरी व्यवस्था के भारतीय प्रारूप के बारे में भी उन्होंने सुझाव दिया। प्रशासन और न्यायालय के पृथक्करण के बारे में और भी महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये थे। इस प्रश्नोत्तर के अंत में राममोहन ने लिखा था :

"उपसंहार के तौर पर मैं यह बताना उचित समझता हूँ कि इन प्रश्नों का उत्तर तैयार करने में मैं किसी भी व्यक्तिगत मतवाद से प्रभावित नहीं हुआ, न मैंने किसी भी व्यक्ति से परामर्श ही किया और न ही भारत विषयक किसी पुस्तक की सहायता ली। मैंने विषय वस्तु के संकलन के लिए सिर्फ अपनी स्मृति को आधार माना और व्यक्त मतों के लिए मैंने अपने विवेक, अपने लम्बे अनुभव और चिन्तन का सहारा लिया है। जिन सुधारों का सुझाव मैंने पेश किया है, उनमें मैंने आर्थिक पहलू पर पूरा ध्यान रखते हुए, शासक और शासित दोनों के हित को ध्यान में रखा है।

मेरा ध्येय केवल इतना रहा है कि भारत में न्याय व्यवस्था सुदृढ़ और स्थायी नींव पर खड़ी हो।"[81]

इसके अलावा उन्होंने 'सिलेक्ट कमेटी' के भारत सम्बन्धी कुछ और प्रश्नों के उत्तर 28 सितम्बर 1831 को दिये थे। इसमें उन्होंने जो मुख्य बात कही वह थी कि भारतीयों में सुधार की क्षमता उतनी ही है जितनी किसी भी और सभ्य देश के लोगों में है। 'हाउस आफ कामन्स' की प्रवर समिति के सामने पेश किये गये राममोहन के लेखों और गवाही का विस्तृत विवरण 1931 से 1933 के बीच प्रकाशित 'हाउस आफ कामन्स' की रिपोर्टों में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है, जिसका ब्योरा इस प्रकार है :

1831 के पाँचवें खण्ड के पृ० 716-23 में राममोहन और 'बोर्ड आफ कंट्रोल' का राजस्व और न्यायपालिका सम्बन्धित पत्र व्यवहार प्रकाशित है। इसी खण्ड में पृ० 723-26 पर राममोहन का भारत में राजस्व प्रणाली पर लेख प्रकाशित है। इसकी प्रकाशन तिथि 19 अगस्त 1831 है। इसी खण्ड के पृ० 726-39 पर 78 प्रश्न और उनका उत्तर दिया है। इस दस्तावेज की तिथि 19, सितम्बर 1831 है। साथ ही के पृ० 739-41 पर मुख्यतः भारत विषयक 13 अतिरिक्त प्रश्नों के उत्तर छपे हैं। 1831-32 के रिपोर्ट के पाँचवें खण्ड के (पृ० 341-43) में भारत में यूरोपीय नागरिकों के बसने के बारे में राममोहन के विचार हैं। 1833 की रिपोर्ट के परिशिष्ट में भारत में किसानों (रैयत) की आर्थिक अवस्था के बारे में राममोहन की टिप्पणी छपी है।[82]

सितम्बर के महीने में राममोहन को एक और बड़ा सम्मान मिला। ब्रिटिश राजा विलियम-चतुर्थ से मिलने के लिए स्वयं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टर चार्ल्स ग्रांट राममोहन को लिवा ले गये। राममोहन उस समय बहुत ही सुन्दर वेश-भूषा में सज्जित थे।

राममोहन को लन्दन-ब्रिज के उद्‌घाटन के अवसर पर भी भोज के लिए निमंत्रित किया गया। राजाभिषेक समारोह में भी राममोहन आमंत्रित किये गये थे और उनको यूरोप के दूसरे राजदूतों के बीच बैठने का स्थान दिया गया। इस प्रकार इंगलैण्ड के प्रतिष्ठित समाज में राममोहन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण बन चुका था।

राममोहन जब लन्दन के उच्चतम प्रतिष्ठित समाज के सदस्य बन गये थे। अपनी पुराने रईसी चाल के अतिरिक्त वे हिन्दुस्तान के मुगल बादशाह द्वारा नियुक्त 'राजदूत' की भूमिका भी निभा रहे थे। इसी से अपने पद और मर्यादा के अनुरूप उनका रहन-सहन, खान-पान सभी रईसी ठाठ से चल रहा था। कुछ लोगों की सलाह से वे शहर के रीजेन्ट पार्क जैसे भव्य इलाके में एक शानदार कोठी में रहने लगे थे। इस प्रकार के रहन-सहन में भारी खर्च उठाना होता

था। लेकिन आय के जरिये धीरे-धीरे बन्द होने आरम्भ हो गये थे। मुगल बादशाह ने मासिक वेतन भेज देने का जो वायदा किया था वह भी आना बन्द हो गया। उधर राममोहन ने दूसरे जरिये ढूंढ़ने शुरू किये। उन्होंने कलकत्ता में अपने बेटों और मित्रों को धन के लिए लिखना आरम्भ किया।

मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में नगेन्द्र नाथ चटर्जी के एक पत्र का हवाला देते हुए लिखा कि राममोहन के पुत्रों ने भी बाद में रुपये-पैसे भेजने बन्द कर दिये थे जबकि राममोहन ने अपने परिवार के लिए दिल्ली के बादशाह से काफी पेंशन की व्यवस्था कर रखी थी।[33] ऐसी स्थिति में राममोहन को धन के लिए कष्ट उठाना बहुत ही करुण एवं कष्टप्रद स्थिति थी। लेकिन ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय के अनुसार इस आर्थिक संकट के लिए राममोहन के पुत्रों से भी अधिक जिम्मेवार कलकत्ते की मैकिनटोश कम्पनी और लन्दन की रिचर्ड मैकिन-टोन कम्पनी थी, जिन पर राममोहन की आर्थिक व्यवस्था का दायित्व था। इस कम्पनी ने आर्थिक व्यवस्था के मामले में ज़बरदस्त घोटाला कर दिया। अंत में राममोहन ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के पास भी कर्जे के लिए प्रार्थनापत्र भेजा वह भी नामंजूर कर दिया गया।

इसी बीच राममोहन के निजी सचिव सनफोर्ड आर्नट, जिसे उन्होंने अपने कलकत्ते के परिचय के आधार पर अपना निजी सचिव नियुक्त किया था, उसने भी उनकी इस आर्थिक कठिनाई का फायदा उठाया। उसने राममोहन को धमकी देना आरम्भ कर दिया कि उनका बकाया वेतन और दूसरे भुगतान एकदम चुकता कर दिये जायँ अन्यथा वह लोगों से कहना शुरू कर देगा कि राममोहन के अँगरेजी लेखों का वास्तविक लेखक राममोहन नहीं बल्कि स्वयं वह है। मिस कोलेट ने लिखा है कि यह व्यक्ति, जिसने राममोहन की उदारता और दया का हमेशा फायदा उठाया एक बड़ा धूर्त, नीच और पराश्रयी जीव था।[34] उसने अपने कमीनेपन का परिचय उस समय दिया जब राममोहन आर्थिक कठि-नाई में थे। वह व्यक्ति इतना नीच था कि उसने उनकी मृत्यु के तुरन्त बाद लन्दन की **'टाइम्स'** पत्रिका में 23 नवम्बर 1833 को एक पत्र लिखा जिसका तात्पर्य था कि राममोहन के अँगरेजी लेखों, पत्रों का मूल लेखक वस्तुतः वही था....क्योंकि वह उनका निजी सचिव रहा है। **एशियाटिक जर्नल** के 1835 के अंक में भी एक दूसरे लेख में भी आर्नट साहब ने यही कुछ बताने की कोशिश की थी। इस प्रकार राममोहन के कृतित्व को हड़पने की इस कुचेष्टा का पर्दा-फाश उसी काल में राममोहन के मित्रों और प्रशंसकों में से एक डेविड हेयर के भाई जोन हेयर ने **टाइम्स** पत्रिका में ही एक पत्र लिख कर दिया। इस नीच उद्देश्य की भर्त्सना करते हुए उन्होंने लिखा कि, अपने व्यक्तिगत अनुभव से राजा के साहित्यिक या दूसरे लेखों की प्रामाणिकता के बारे में उन्हें कोई संदेह नहीं है।

उन्हें यह भी मालूम है कि मि० आर्नट ने किस प्रकार धन के लोभ में राममोहन को धमकी देने की कोशिश की थी और अब जब कि उनकी मृत्यु के बाद उनके यश को मिटाने की कोशिश की तो मेरा वह कर्तव्य हो जाता है कि वास्तविकता को सामने रखा जाय।

इसी प्रश्न का और भी अधिक तथ्यों के साथ डा० कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक "A Review of the Labours, Opinions and Character of Rammohun Roy" में बहुत ही विस्तृत और मुँहतोड़ जवाब दिया है। इसमें राममोहन की विद्वत्ता और सर्जनात्मक गुणों के बारे में, उनके संस्कृत, फारसी, बंगला और अँगरेजी भाषाओं में गहरी पकड़ के बारे में कई एक उदाहरण पेश किये। उनकी अँगरेजी भाषा के ज्ञान के बारे में पर्याप्त उदाहरणों के साथ अन्तिम रूप से प्रमाणित कर दिया गया कि राममोहन के सारे लेख और पत्र बिल्कुल राममोहन के ही थे और आर्नट साहब और कुछ नहीं केवल 'सेक्रेटरी' मात्र थे। जोन हेयर और एच० एच० विलसन को पूरा विश्वास था कि आर्नट ने यह सब ब्लैकमेल करके रुपया ऐंठने में असफल होने पर, उनकी मृत्यु के बाद उनका सार्वजनिक चरित्रहनन की ही कोशिश थी। यही नहीं भारत में यह बात आ पहुँची तो कई तथाकथित विद्वानों ने आर्नट के वक्तव्य को सही ठहराने की घिनौनी कोशिश की।

इस वाद-विवाद का सबसे दिलचस्प पहलू यह रहा कि श्री हेयर और डा० कार्पेन्टर ने आर्नट के सारे दलीलों को पूरी तरह से तोड़कर रख दिया था। आर्नट साहब के अपने परस्पर विरोधी वक्तव्यों का हवाला भी दिलचस्प था। आखिरकार बुरी तरह असफल होकर आर्नट साहब ने **'एशियाटिक जर्नल'** में प्रकाशित उत्तर में मान लिया था कि उनकी भूमिका केवल 'निजी सचिव' की थी।[35]

राममोहन ने परिस्थिति वश शाही ठाट-बाट त्यागने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। उन्होंने अपनी शानदार कोठी छोड़ दी, और कलकत्ता के अपने पुराने मित्र डेविड हेयर साहब के भाइयों के अनुरोध पर उनके बेडफोर्ड स्कायर स्थित मकान में चले आये। उनके लन्दन प्रवास के बाकी दिन हेयर बन्धुओं के मकान पर ही बीते।[36]

यहाँ यह स्मरण कराना आवश्यक है कि महान शिक्षाविद डेविड हेयर जिन्होंने राममोहन के साथ अंगरेजी शिक्षा के लिए भारत में स्मरणीय कार्य किया था, राममोहन के परम मित्रों में थे। राममोहन जब इंगलैण्ड के लिए चलने लगे तो हेयर साहब ने अपने भाइयों को लिखा था कि वे राममोहन की हर प्रकार से मदद करें। हेयर बन्धुओं ने राममोहन से कई बार इस बारे

में अनुरोध भी किया, लेकिन राममोहन स्वतंत्र रूप से रहना चाहते थे। बाद में जब आर्थिक कठिनाई सामने आई तो वे हेयर बन्धुओं के अनुरोध पर उनके मकान में ठहरने को राजी हो गये। उन्होंने केवल एक बग्गी, सईस और एक दो नौकरों को साथ रखा। राममोहन जब फ्रांस की यात्रा पर गये थे तो उस समय हेयर भ्राताओं में से एक भाई उनके साथ थे।

राममोहन के सामाजिक जीवन और उनके यूरोप यात्रा का विवरण मिस मेरी कार्पेन्टर की पुस्तक में उल्लेखित है।[37] इसके अलावा मिसेस फैनी केम्बल ने अपने संस्मरणों में राजा राममोहन के बारे में कई एक प्रशंसात्मक बातें लिखी थीं। उनकी डायरी में राममोहन का उल्लेख कई जगह आया है। इसमें राममोहन को 'इसाबेला' नाटक देखते हुए एक थियेटर मे पाते हैं। जाहिर है कि अपने व्यस्त कार्यक्रम के होते हुए भी राममोहन नाटक और नृत्य के समारोहों में अक्सर हाजिर होते थे। इसके अलावा अपने मधुर व्यवहार के कारण राममोहन महिलाओं में भी बहुत ही लोकप्रिय थे। कई एक विशिष्ट महिलाओं ने अपने निजी संस्मरणों में राममोहन के मिलनसार चरित्र और आदरपूर्ण व्यवहार का विवरण दिया है।[38] कुमारी लूसी एकिन के कुछ पत्रों मे राममोहन की विद्वत्ता, व्यवहार कुशलता और विनम्रता का बार-बार जिक्र आया है। एक पत्र में उन्होंने लिखा था—राममोहन राय को सभी एक असाधारण योग्य और गुणी व्यक्ति समझते हैं। उनकी योग्यता और बुद्धिमानी के साथ उनकी विनम्रता ने सभी का हृदय जीत लिया है। अँगरेजी भाषा पर उनका अच्छा अधिकार है और वे यूरोप की राजनीति से बखूबी परिचित हैं। वे सर्वत्र स्वाधीनता और सामाजिक उन्नति के प्रवक्ता है।[39] इन सामाजिक मुलाकातों, भोज सभाओं में जाते हुए भी राममोहन को अपने देश में इन कार्यक्रमों की क्या प्रतिक्रिया होगी इसकी चिन्ता बनी रहती थी। आखिरकार वे अपने देश का प्रतिनिधित्व करने आये थे, सैर-सपाटे के लिए नहीं। यह चेतना उन पर हमेशा अंकुश रखती थी। भोज सभाओं में जाने से अब वे बहुधा कतराने लगे थे क्योंकि इन सभाओं और बैठकों का प्रचार अखबारों द्वारा हो ही जाता था।[40]

इस अवधि में राममोहन का प्रमुख कार्यक्रम राजनैतिक था। इंगलैण्ड की भूमि पर कदम रखते ही वे पार्लियामेन्ट में पेश किये गये 'रिफॉर्म बिल' से सम्बद्ध मामलों में पूरी दिलचस्पी ले रहे थे। इंगलैण्ड की सारी जनता 'रिफॉर्म बिल' के पारित होने के विषय को लेकर उत्तेजित थी। एक बार तो ऐसी स्थिति आ गयी थी कि लगता था इस बिल पर सारे देश में गृह-युद्ध छिड़ जायगा।[41] राममोहन भी भारी मानसिक यंत्रणा भोग रहे थे। आखिरकार मार्च 1832 में पार्लियामेन्ट ने यह बिल पास कर दिया। प्रगतिवादी राममोहन के लिये यह उनकी व्यक्तिगत विजय थी, क्योंकि उनका विचार था कि इस

कानून का संबंध इंगलैण्ड वासियों से ही नहीं बल्कि पूरे मानव जाति से है, और विशेषरूप से भारत की जनता से है।

उन्होंने 31 मार्च को मिस किडल को पत्र में लिखा था कि इस 'रिफॉर्म' की सफलता पर इंगलैण्ड की ही नहीं पूरे विश्व का कल्याण निर्भर है और वे इस कानून के पारित होने की बड़ी ही उत्सुकता से इंतजार कर रहे हैं। इसी से उनकी ब्रिस्टल यात्रा में विलम्ब हो रहा है। जब 'रिफॉर्म बिल' पास हो गया तो राममोहन ने प्रसन्नता और आवेश में अपने मित्र मि० विलियम राथबोन को 31 जुलाई 1832 को एक पत्र लिखा था जिसके कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। उन्होंने लिखा—

> "....मैं बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि मैं अपने को, लिवरपूल के सभी मित्रों और आपको, रिफॉर्म बिल की पूरी सफलता पर बधाई दे सकता हूँ। यह कानून, अमीर वर्ग के विरोध और राजनैतिक सिद्धान्तों के अभाव के बावजूद पारित हो गया। वे थोड़े से धनी लोग, जो दूसरों के विनाश पर अपनी जेबें पिछले पचास वर्ष से भर रहे थे। लेकिन कोई अब उनका शिकार नहीं बनेगा। मंत्रियों ने सच्चाई और दृढ़ता से अपना कर्त्तव्य निभाया और जनता को अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सहायता दी। मैं आशा करता हूँ कि इंगलैण्ड की महान जनता अब इसी तरह अपने उदार सामाजिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए सार्वजनिक जीवन से घूसखोरी, भ्रष्टाचार और निजी स्वार्थ को उखाड़ फेंकेगी।...."
>
> "मैंने सार्वजनिक रूप से प्रतिज्ञा की थी कि यदि रिफॉर्म बिल पारित न हुआ तो मैं इस देश से सारे संबंध तोड़ लूंगा। जब तक मुझे इसका नतीजा मालूम न हुआ मैंने आपको या लिवरपूल के दूसरे मित्रों को पत्र नहीं लिखा। भगवान का धन्यवाद है कि मैं अपने को एक सह-नागरिक कहलाने में गर्व अनुभव कर रहा हूँ। मुझे एक राष्ट्र की मुक्ति ही नहीं पूरे विश्व की मुक्ति की सम्भावना से अपार हर्ष हो रहा है।"[42]

इन्हीं दिनों रिफॉर्म के मसले पर ब्रिटिश जनता के साथ राममोहन भी बड़े उद्विग्न रहा करते थे साथ ही वे भारत के प्रशासन सम्बन्धी 'सिलेक्ट कमेटी' के कार्यक्रमों में बड़े व्यस्त रहते थे। 14 जुलाई 1832 को उन्होंने एक महत्वपूर्ण दस्तावेज सिलेक्ट कमेटी के सामने रखा।[43] यह भारत में यूरोपीय समुदाय के स्वतंत्र रूप से बसने से सम्बन्धित था। यह दस्तावेज 'हाउस आफ कामन्स' की 'सिलेक्ट कमेटी' की रिपोर्ट के परिशिष्ट में संलग्न है। इस लेख की तिथि 14 जुलाई 1832 है। इस परिशिष्ट के आधार पर ऐसा लगता है कि यह राममोहन के 'हाउस आफ कामन्स' के सिलेक्ट कमेटी के सामने इस विषय पर दिये गये भाषण की प्रतिलिपि थी। मिस कोलेट के अनुसार यह लेख राममोहन

के विचारों और राष्ट्रीय महत्व का संलेख था।[44] राममोहन का विचार था कि यूरोपीय समुदाय को खुले रूप से भारत में बसने का अधिकार दिया जाय। अपने तर्क में उन्होंने इनके नौ प्रकार के लाभ बताये, और साथ ही इसकी कुछ खामियाँ भी दिखाईं। उनका विचार था कि इस प्रकार अलग-अलग जातियों के समन्वय और मेल मिलाप से भारत औद्योगिक और कृषि के क्षेत्र में उन्नति कर सकेगा। उन्होंने अपने इस लेख में यह भी इशारा दिया था कि यदि सुदूर भविष्य में दोनों देश एक-दूसरे से अलग हो गये तो भी आपस में अच्छे संबंध कायम रह सकेंगे। उनका विश्वास था कि पश्चिमी जगत की उन्नतिशील सभ्यता के संपर्क में आने पर भारत भी अपनी सांस्कृतिक और चारित्रिक उन्नति कर सकेगा। इस लेख में की गयी भविष्यवाणियों मे उनका यह सोचना महत्वपूर्ण था कि इस मेल मिलाप के जरिये भविष्य में दोनों स्वतंत्र देशों के बीच अर्थात् भारत और यूरोपीय देशों के बीच अच्छे संबंध बने रहेंगे। (पूरे पाठ के लिए परिशिष्ट देखें)।

लन्दन प्रवास के दौरान अपनी सामाजिक व्यस्तता और राजनैतिक कार्यकलापों के बीच भी राममोहन का लेखन और प्रकाशन कार्य चलता रहा। 1832 के '**क्रिश्चियन रिफार्मर**' के फरवरी अंक की एक घोषणा के अनुसार इसी समय हिन्दुओं के उत्तराधिकार की समस्या पर एक पुस्तिका प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त भारत की न्यायिक व्यवस्था और राजस्व व्यवस्था के बारे में 'हाउस आफ कामन्स' में दी गयी गवाही और देश के प्रशासनिक सुधार के बारे में सुझावों के साथ एक दूसरी पुस्तिका 'रिमार्क्स ऑन ईस्ट इंडिया अफेयर्स' भी प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त और भी कई पुस्तिकाएँ और उनके कई एक महत्वपूर्ण पुस्तकों के अँगरेजी रूपान्तर भी लन्दन से प्रकाशित हुए।[45] सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी प्राच्यविद गर्सां-द-तासी की प्रसिद्ध पुस्तक 'Appendice aux Rudimensde la langue Hindoustanic' में राममोहन का तासी को लिखा एक पत्र प्रकाशित है। यह पत्र उन्होंने इंगलैण्ड पहुँचने के कुछ ही दिनों के अन्दर ही लिखा था, जिसमें उन्होंने अपनी फ्रांस जाने की इच्छा व्यक्त की थी। मूल पत्र उर्दू में है। इसका आंशिक भावानुवाद कुछ इस प्रकार है :

"....प्रायः तीन महीने से अधिक काल से आपका सेवक इंगलैण्ड में रह रहा है। यदि भगवान की इच्छा हुई तो शीघ्र ही पेरिस में उपस्थित होकर आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा और आपके माध्यम से श्रीयुत् शेजी महाशय से भी भेंट कर सकूँगा....."[46]

पत्र 1 अगस्त 1831 को लिखा गया था और इस पत्र के वाहक थे स्वनामधन्य प्राच्य विद्या विशारद् अध्यापक डनकन फर्बस्। यद्यपि पत्र अगस्त 1831 को लिखा गया था, लेकिन राममोहन 1832 के सितम्बर-अक्तूबर से

पहले फ्रांस की यात्रा पर न जा सके। फ्रांस के सुप्रसिद्ध संस्कृत-भाषा और साहित्य शास्त्री लेयोनार-द-शेजी से उनकी मुलाकात हुई थी या नहीं, इसका विवरण उपलब्ध नहीं है।[47] शेजी की मृत्यु भी 1832 में ही हुई।

फ्रांस यात्रा

1832 के सितम्बर-अक्तूबर के महीनों में जब राममोहन फ्रांस की यात्रा पर गये तो उनके साथ डेविड हेयर साहब के भाई उनके अनुगामी थे। यहाँ पर यह बताना उपयुक्त होगा कि राममोहन की प्रसिद्धि फ्रांस में उनके यूरोप यात्रा से बहुत पहले पहुँच चुकी थी। 1819 के आसपास कलकत्ता के **'द टाइम्स'** पत्रिका के सम्पादक द कोस्टा ने राममोहन के कुछ ग्रंथ और उनके बारे में कुछ जानकारी फ्रांसीसी बिशप एवं ग्रेगोयर को भिजवा दी थी। इसी सामग्री के आधार पर ग्रेगोयर ने राममोहन विषयक एक लम्बा लेख फ्रांसीसी भाषा की पत्रिका La Chronique Raligieuse में 1819 में प्रकाशित की। इस लेख का अनुवाद इंगलैण्ड में अंगरेजी पत्रिका The monthly Repository of theology and General Literature में 1820 में छपा।[48] 1820 के **'रेवू एनसाइक्लोपिडिया'** के सातवें खण्ड में राममोहन की आठ पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। 1823 में फ्रांस की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका **'जुरनाल एशियाटिक'** में भी कुछ और प्रकाशनों का जिक्र है। 'सोसियेते एसियाटिक' की पत्रिका में राममोहन और उनकी रचनाओं के बारे में विस्तृत आलोचना के प्रकाशन होने पर फ्रांस के विद्वत समाज में राममोहन के बारे में कुतूहल पैदा होना स्वाभाविक था। बाद में फ्रांस की एशियाटिक सोसाइटी ने एक तीन सदस्यों की कमेटी राममोहन की विद्वत्ता के बारे में जानने के लिये नियुक्त की, जिससे उन्हें सोसाइटी की सदस्यता से भूषित किया जा सके। समिति की सर्वसम्मत राय से राममोहन को 5 जुलाई 1824 को सोसाइटी का मानव-सदस्य चुन लिया गया था। इसके अतिरिक्त समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में भी राममोहन के बारे में लेखादि प्रकाशित होते रहे। 1832 के **'रेभ्यू एन-साइक्लोपिडिक'** के दिसम्बर अंक में 1832 में ही, लन्दन से प्रकाशित राममोहन की रचनाओं के अंग्रेजी संग्रह की एक लम्बी समालोचना प्रकाशित हुई थी। इसके समालोचक थे सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान मंशिये पतिये।[49] इसी से 1832 में जब वे थोड़े दिनों के लिए फ्रांस पहुँचे तो उनका यथायोग्य भव्य स्वागत हुआ। फ्रांस के सम्राट लुई फिलिप ने उन्हें मिलने के लिए आमंत्रित किया। राममोहन उनके साथ भोज सभा में शामिल हुए। पेरिस में उनके निवासकाल में उन्होंने कई एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वानों से मुलाकात की थी। इन विद्वानों में प्रसिद्ध प्राच्यविद गर्साँ द-तासी से उनकी मुलाकात हुई थी। ऐसा लगता है तासी से उनका पत्र-व्यवहार चलता रहा होगा क्योंकि तासी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[50]

में कुछ मूल हिन्दुस्तानी पत्रों को उद्धृत किया है और साथ ही स्वीकार किया था कि उन्हें राममोहन से कई पत्र हिन्दुस्तानी और अँगरेजी में प्राप्त हुए थे। पेरिस में राममोहन की लोकप्रियता का निदर्शन इस बात से मिलता है कि विक्टर जैकामों[51] ने, और प्रसिद्ध विद्वान सिसमोन्डी[52] ने राममोहन के बारे में प्रशंसात्मक लेख प्रकाशित किये थे—उनके फ्रांस यात्रा के वर्षों पहले, फ्रांस यात्रा के लिए पार-पत्र के लिए अनुमति माँगते हुए राममोहन ने फ्रांस के विदेश मंत्री को जो पत्र लिखा था वह अपने में एक प्रसिद्ध राजनैतिक दस्तावेज है। इस पत्र में उन्होंने घोषणा की थी कि 'सारी मानव जाति एक ही परिवार है विभिन्न जातियाँ इसकी शाखाएँ मात्र हैं।' यह उन्होंने उस समय कहा था जब 'राष्ट्रसंघ' की स्थापना जैसी विचारधारा का प्रवर्तन नहीं हुआ था।

पेरिस के किसी प्रसिद्ध होटल में राममोहन ने एक और प्रसिद्ध कवि सर टॉमस मूर से मुलाकात की थी, जहाँ उन्हें भोज पर निमंत्रित किया गया था।[53] सर टॉमस मूर ने अपनी डायरी में इस मुलाकात का बहुत ही रोचक वर्णन दिया है। इसमें ब्रह्म समाज की भी चर्चा है। यहाँ यह भी उल्लेख है कि फ्रांस में रहते हुए उन थोड़े से दिनों में उन्होंने फ्रांसीसी भाषा सीखने का भरसक प्रयत्न किया था।

31 जनवरी 1833 को मि० वुडफोर्ड को लिखे पत्र से, जो उन्होंने इंगलैण्ड लौटने के बाद लिखा था, मालूम होता है कि इन्हें इटली और आस्ट्रिया जाने की भी अभिलाषा थी लेकिन वे फ्रांस प्रवास में ही कुछ अधिक दिनों तक रह गये। उन्होंने स्वीकार किया कि फ्रांसीसी भाषा-ज्ञान के बिना उस देश में लोगों से बातचीत करने में कठिनाई होती थी। इसीलिए उन्होंने फ्रांसीसी भाषा सीखना आरम्भ कर दिया और अपने साथ वे एक फ्रेंच शिक्षक को लन्दन लेते आये थे।[54]

तासी के अनुसार, राममोहन 1833 के आरम्भ में कोई तीन महीने फ्रांस में रहने के बाद लन्दन लौट आये। ऐसा लगता है फ्रांस से लौटते समय वे कुछ दिनों के लिए डोवर रुक गये थे। 7 जनवरी 1833 के लिखे गये एक पत्र से, जो उन्होंने मिस किडल को ब्रिस्टल में लिखा था, इस घटना का प्रमाण मिलता है।[55] इसी पत्र में उन्होंने ब्रिस्टल जाने की इच्छा व्यक्त की थी और यह भी लिखा था कि अब उनका स्वास्थ्य ठीक-ठाक है। उन्होंने यह भी लिखा था कि वे एक महीने के अन्दर ब्रिस्टल पहुँचना चाहते हैं।

इंगलैण्ड के अपने निवासकाल में राममोहन थोड़े ही समय में लन्दन के वृहत्तर समाज जीवन से घुल-मिल गये थे। उस काल और समाज की प्रथानुसार उन्हें आमोद-प्रमोद में भी अवकाश अनुसार भाग लेते हुए पाते हैं। उनके पत्रों

के आधार पर ज्ञात होता है कि वे ऐस्लेस् थियेटर में कभी-कभी नाटक देखने गये। बेसिल मोन्टेगू के घर पर राममोहन का परिचय उस समय की सुप्रसिद्ध अभिनेत्री फैनी केम्बल से हुआ। फैनी केम्बल ने अपने संस्मरणों में राममोहन के बारे में लिखा था कि राममोहन एक बार उनके थियेटर में नाटक देखने आये थे। 'इसाबेला' नाटक चल रहा था। नाटक देखकर राममोहन इतने प्रभावित हुए कि उनका दिल भर आया था। राममोहन ने फैनी को विलियम जोन्स द्वारा अनूदित शकुन्तला की प्रति भेंट की थी। उस अभिनेत्री के अनुसार लन्दन के नाचघरों में राममोहन अपने रंग-बिरंगी पोषाक और आकर्षण व्यक्तित्व के कारण आकर्षण का केन्द्र बन जाते थे। फैनी की डायरी में लिखा था "A charming letter and some Indian books from that most amiable of all the wisemen of the East." हम जब राममोहन के बहुमुखी जीवन के अलग-अलग पहलुओं को देखते हैं तो आश्चर्य होता है। एक ओर धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनकारी तो दूसरी ओर साहित्य, नृत्य और अभिनय में रुचि रखने वाला सुसंस्कृत व्यक्तित्व। राममोहन के चरित्र में हम एक अनोखा समन्वय पाते हैं। इसी काल में राममोहन की एक स्मरणीय और प्रसिद्ध मुलाकात प्रसिद्ध ब्रिटिश समाजशास्त्री राबर्ट ओवन से हुई थी। यह मुलाकात डा० आर्नट के घर पर एक भोजसभा में हुई थी। मेरी कार्पेन्टर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में इस मुलाकात का विवरण दिया है।[56] काफी देर तक दोनों में धर्म-राजनीतिक विषयों पर बहस चलती रही। ओवन साहब ने राममोहन को उनके समाजवादी सिद्धान्तों के पक्ष लाने की भरसक कोशिश की। यहां तक कि ओवन साहब अपनी असफलता पर कुछ विक्षुब्ध भी हो उठे थे। लेकिन राममोहन ने अपना संतुलन नहीं खोया और न ही ओवन के प्रति उनके आदर में कोई कमी आई। लगता है राममोहन ओवन के समाजवादी सिद्धान्तों से काफी प्रभावित हुए होंगे, क्योंकि इस मुलाकात से दूसरे ही दिन राममोहन ने ओवन के सुपुत्र राबर्ट डेल ओवन को एक पत्र में ओवन के समाजवादी सिद्धान्तों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त की थी। इसी पत्र से दोनों मनीषियों के बीच रहे मतभेद का मूल कारण भी मालूम हो जाता है। ओवन सामाजिक, पारिवारिक और राजनैतिक उन्नति के लिए धर्म का पूरी तरह से बहिष्कार चाहते थे। लेकिन राममोहन मूलतः एक धार्मिक व्यक्ति थे। धर्म का पूरी तरह बहिष्कार करना भला वे कैसे मान लेते ? फिर भी राममोहन के पत्र के अन्त में ओवन साहब के सिद्धान्तों का पूरी तरह समर्थन करते हुए लिखा था—"मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि आपके पिता को अपने उद्देश्यों में पूरी सफलता मिले...."[57] यह राममोहन के राजनैतिक विचारों के विकास की एक प्रमुख कड़ी थी। राममोहन शुरू से ही साधारण जनता के कल्याण की बात

सोचते रहे हैं । 'सिलेक्ट कमेटी' के सामने जो विचार उन्होंने रखे थे, उनमें भी उनके इन्हीं विचारों का प्रतिबिम्ब मिलता है ।

इन्हीं दिनों उन्होंने पार्लियामेन्ट की 'सिलेक्ट कमेटी' के सामने भारत की राजनैतिक और आर्थिक परिस्थिति के बारे में जो तथ्य पेश किये और गवाही दी गयी, वह भारत के राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक भविष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण थे । फ्रांस से लौटने के बाद उन्होंने बहुत थोड़े से दिन लन्दन में बिताये, उन दिनों उनका अधिकांश समय पार्लियामेन्ट भवन में ही बीतता था । इन दिनों उनको भारी परिश्रम करना पड़ता था । आर्थिक कठिनाइयों के बारे में पहले ही कहा जा चुका है कलकत्ता और दिल्ली के मुगल बादशाह की ओर से धन और अनुदान का आना रुक गया था । मेरी कार्पेन्टर के अनुसार वे अक्सर थके हुए और चिंतित रहा करते थे । इन दिनों उन्होंने मिस कैसल को लिखे गये एक पत्र से उनकी मानसिक स्थिति का पता चलता है । लन्दन प्रवास के दौरान राममोहन ने अपने पुत्र राजाराम को रेवरेण्ड डेविसन के संरक्षण में रखा था और उनसे अपने लड़के के बारे में अक्सर पत्र-व्यवहार करते रहते थे । इस परिवार से उनका बहुत ही सौहार्द्रपूर्ण सम्पर्क बन गया था ।

मिस कार्पेन्टर की पुस्तक में राममोहन के बहुत सारे पत्र उद्धृत किये हैं जो उन्होंने ब्रिस्टल में मिस किडल, मिथ कैसल को लिखे थे । इन पत्रों से राममोहन के इन महिलाओं के साथ स्नेहपूर्ण सम्बन्ध का परिचय मिलता है । इन पत्रों से जान पड़ता है कि बाद में राममोहन ने अपने पुत्र को इन महिलाओं के संरक्षण में ब्रिस्टल भेज दिया था । और वे स्वयं भी वहीं जाकर रहना चाहते थे । अप्रैल-मई से लेकर जुलाई-अगस्त 1833 तक उनके सभी पत्रों में उनके लन्दन के व्यस्त जीवन को छोड़कर ब्रिस्टल के शान्त परिवेश में जाकर विश्राम लेने की तीव्र इच्छा स्पष्ट झलकती है ।

मुगल बादशाह का आर्थिक मामला

इधर उनके विदश यात्रा के प्रायः सारे उद्देश्य धीरे-धीरे किसी सीमा तक सफल हो रहे थे । इनमें से एक मुख्य उद्देश्य था दिल्ली के मुगल बादशाह के राजदूत के रूप में उनके आर्थिक मामलों पर ब्रिटिश सरकार से पैरवी करना भी था । इंगलैण्ड की भूमि पर हाजिर होने के बाद से ही राममोहन इस विषय पर ब्रिटिश सरकार से बातचीत चला रहे थे । दो वर्ष की लगातार बातचीत के बाद इस मामले में आंशिक सफलता मिली । 'एशियाटिक जर्नल' के दिसम्बर 1833 के अंक में मि० आर्नट के लेख के अनुसार राममोहन की मृत्यु के कुछ ही दिन पहले राममोहन को ब्रिटिश सरकार और दिल्ली के बादशाह के बीच चल रही बातचीत में सफलता मिली ।[58] एक समझौते के अनुसार मुगल बाद-

शाह का अनुदान वार्षिक तीस हजार पौंड बढ़ा दिया। यद्यपि इस घटना के बारे में भी कुछ मतभेद पाया जाता है। फिर भी यह तय था कि राममोहन की कोशिशों के फलस्वरूप दिल्ली के बादशाह के अनुदान में यह वृद्धि हुई। लेकिन राममोहन स्वयं इस सफलता से संतुष्ट नहीं थे और उन्होंने स्वयं बादशाह को लिखा था कि वे इस राशि को तब तक स्वीकार न करें जब तक उनके सारे दावे मान नहीं लिये जाते।

राममोहन की अकाल मृत्यु से उनका यह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाया। 11 जुलाई, 1833 को जब प्रिवी काउंसिल में सती प्रथा निरोधक कानून के विरुद्ध प्रतिक्रियावादी हिन्दुओं की अपील खारिज हुई, उस समय राममोहन वहाँ उपस्थित थे। निश्चय ही उन्हें इस घटना से भारी शान्ति मिली होगी। इस विषय पर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और रोचक पत्र ब्रिटिश म्युजियम में रखा है। पत्र राममोहन ने मारक्विस आफ लैन्सडाउन को लिखा था। मूल अंगरेजी में उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :[59]

"Rajah Rammohun Roy presents his compliments to the Marquis of Lansdown and feels very much obliged by his lordship's informing him of the day (Saturday next) on which the arguments on the Suttee question is to be heard before the Privy Council.

RR. will not fail to be present at 11 O'clock to witness personally the scene in which an English Gentleman (or Gentlemen) of highly liberal education professing Christianity is to pray for the re-establishment of suicide, and in many instances actual murder—48 Bedford Street, June the 20th 1832.

इसी बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नये चार्टर के बारे में बहस और विचार-विमर्श के अन्त में नये कानून का रूप ले रहा था। 1833 के मार्च अप्रैल के महीनों में इसके सिफारिशों पर सहमति हो गई थी। अब सिर्फ 'हाउस आफ कामन्स' में कानून के लिए बिल पेश होना था। आशा थी, जून के महीने में बिल पेश हो जायगा। ईस्ट इण्डिया बिल को 20 अगस्त, 1833 में ब्रिटिश सम्राट का अनुमोदन प्राप्त हो गया। इस चार्टर के अंतर्गत कम्पनी को व्यावारिक अधिकारों के अतिरिक्त राजनैतिक और प्रशासनिक अधिकार मिल गये थे। लेकिन राममोहन नये पार्लियामेन्ट, जिसने रिफार्म बिल पास किया था, के कार्य-कलाप से प्रसन्न नहीं थे। ईस्ट इण्डिया बिल जिस रूप में पास हुआ उससे राममोहन को घोर निराशा हुई। 22 अगस्त, 1833 को श्री वुडफोर्ड को लिखे

एक पत्र में उनकी यह निराशा स्पष्ट झलकती है।[60] अब हम राममोहन के राजनैतिक जीवन के अन्तिम दौर पर पहुँच चुके हैं। इसके बाद के थोड़े से दिन, राममोहन ने साम्राज्य की राजधानी की गहमा-गहमी से दूर, ब्रिस्टल के बाहरी छोर पर ग्रामीण वातावरण में अवस्थित एक सुन्दर बंगले में बिताये। यहीं उनके जीवन का अन्तिम पड़ाव था।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Mary Carpenter. The Last days in England of the Rajah Rammohun Roy (Ed. by S. Majumdar) 1976 ed. : pg. 48.

2. वही, pg. 49.

3. Collet : Raja Rammohun Roy : pg. 309.

4. वही, pg. 309-310.

5. वही, pg. 310.

6. वही, pg. 311.

7. Carpenter, M : pg. 50-51 फ्लेचर साहब के हाथों जो पत्र रॉस्को साहब ने राममोहन को भेजा था उसकी अन्तिम कुछ पंक्तियाँ रॉस्को साहब के आग्रह और राममोहन के प्रति आदर का परिचायक है :

"....We have, for sometime past, being flattered with hopes of seeing you in this kingdom, but I fear I am not destined to have that pleasure. At all events, it will be a great gratification to me if I should survive, the attacks of the paralytics complaint, under which I have now laboured for some years, till I hear that you have received this very sincere mark of the deep respect and attachment which I have so long entertained for you and which I hope to renew in a happier state of being...."

8. बागची, राममोहन : पृ० 145.

9. Carpenter, M. pg. 53. पृष्ठ के नीचे टिप्पणी देखें। तब रास्को साहब की उम्र 78 वर्ष की थी।

10. वही, पृ० 52-32. पत्र की प्रतिलिपि।

11. वही, पृ० 53.

12. Collet, पृ० 312. श्री सदरलैण्ड के संस्मरणों में कुछ प्रासंसिक अंश इस प्रकार हैं, "The scene at Manchester, when he visited the great factories was very amusing. All the workmen I believe, struck work, and men, women, and children rushed

in crowds to see 'the king of Ingee'....After shaking hands with hundreds of them he turned round and addressed them ....On the road to London, wherever he stopped, the inn was surrounded."

13. Collet, पृ० 313.

14. वही, पृ० 313.

15. कारपेन्टर एम०, पृ० 56.

16. वही, पृ० 56-57 में डॉ० कार्पेन्टर का राममोहन संबंधी विवरण उद्धृत है : "....When he arrived in Britain, the first letter which I received from him assured me that I possessed his friendly regard....I was his companion in his first attendance on unitarian warship in London, and in the evening I conducted him to the crowded meeting of our association, at which the father of my colleague Rev. Robert Esplaned presided...1"

17. वही, पृ० 57-60 इस भाग के कार्यवाही की पूरा विवरण Monthly Repository के जून 1831 के अंक में प्रकाशित हुई थी।

18. वही, पृ० 60-61 राममोहन के भाषण की पूरी प्रतिलिपि उद्धृत है।

19. वही, पृ० 62।

20. Collet, पृ० 315. राममोहन ने फाक्स साहब को लिखा था—"....it will give me more real gratification to visit you in your cottage, as you call it then to visit a palace. But as I happen to be engaged for dinner every day till the 19th, I would prefer seeing you at breakfast...."

21. वही, पृ० 317.

22. वही, पृ० 317 के पाद-टिप्पणी में सांध्य-भोज का विवरण। Asiatic Journal Vol. V New Series (May to Aug. 1831), पृ० 236-237 में छपा था।

23. वही, पृ० 318. "it was rather curious to see the Brahman surrounded by hearty feeders upon turtle and venis on and champagne, and touching nothing himself but rice and cold water."

24. वही, पृ० 316-317 में Asiatic Journal Vol. Xii (New Series) से उद्धृत करते हुए लिखा था "It is said that Ministers of

the crown "recognised his embassy and his title" as the ennobled representative of the Emperor of Delhi."

25. वही, पृ० 317 "....the same men who treated him with scorn in India now eagerly courted his acquaintance...."

26. वही, पृ० 318-319 "....this request Rammohun declined, but tendered his evidence in the form of successive Communications to the Board of Control...."

27. वही, पृ० 319-320.

28. वही, पृ० 320.

29. चट्टोपाध्याय : पृ० 246-247 पर उद्धृत।

30. Collet, पृ० 320.

31. English works.

32. Collet, पृ० 382-383 में सम्पादकीय टिप्पणी।

33. वही, पृ० 356. इसी संदर्भ में पृ० 420 पर सम्पादकीय टिप्पणी में 1929 के माडर्न रिव्यू से उद्धृत किया गया है।

34. वही, पृ० 323.

35. वही, पृ० 401-411 में इस विषय पर लम्बी सम्पादकीय टिप्पणी में इस विवाद पर रोशनी डाली गई है।

36. वही, पृ० 324 में सदरलैण्ड साहब के संस्मरणों को उद्धृत किया है "....his good sense soon prevailed over this folly of an extravagant establishment. He abandoned this splendid mansion and went to live with Mr. Hare the brother of David Hare of Calcutta, in Bedford Square where he continued while he was in London...."

37. Mary Carpenter, पृ० 75-90 में राममोहन के लन्दन निवास-काल के सामाजिक जीवन के बारे में विवरण के अलावा विशिष्ट लोगों के जिनमें महिलाएँ भी थी के पत्र उद्धृत हैं। इसके अतिरिक्त राममोहन के कुछ पत्र भी उद्धृत हैं।

38. Collet, पृ० 326-28.

39. चट्टोपाध्याय, पृ० 251-252 पर Lucy Ackin के Memoirs Miscellanies and Letters, of Late Lucy Ackin से पत्रों के उद्धृत अंश। उनके एक पत्र का कुछ अंश इस प्रकार है :

"....He is indeed a glorious being—a true sage, as it appears, with the genuine humility of the character, and

with more fervour, more sensibility, a more engaging tenderness of heart than any class of character can justify claim."

मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में मिस एकिन के पत्र उद्धृत किए हैं।

40. Collet, पृ० 330-331 में राममोहन का एक पत्र उद्धृत है, जो उनके देश के बारे में सदैव चौकन्ना रहने की भावना को स्पष्ट करता है— "But I have before explained to you how much attending public dinners might be injurious to my interest in India and disagreeable to the feeling of my friends there...."

41. वही, पृ० 332.

42. Carpenter, Mary, पृ० 54, पत्र के पूरे अंगरेजी पाठ के लिए देखें।

43. वही, पृ० 73 "In Vol. VIII 1831-2 in the General, Appendix to the report from the select committee of the House of Commons on the affairs of East India Company Section V, Pp. 341-443—Remarks by Rammohun Roy are given on the settlement of Europeans in India, dated 14th July, 1832."

44. Collet, पृ० 336.

45. Carpenter, M. : पृ० 74.

46. विश्वास, पृ० 539-540, मूल उर्दू पत्र का फारसी रूपान्तर और बंगला अनुवाद प्रस्तुत है। इस पत्र के अतिरिक्त तासी को लिखे दूसरे हिन्दुस्तानी पत्र आज भी उपलब्ध नहीं हो सके।

47. लेयोनार-द शेज़ी यूरोप के अन्यतम संस्कृत भाषा और साहित्य ज्ञाता थे। उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का फ्रेंच अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त अमरूशतक और रामायण के कुछ अंशों का अनुवाद किया था। वे College Royal de France में संस्कृत भाषा और साहित्य के पहले अध्यापक नियुक्त हुए थे। शेज़ी के पाण्डित्य और प्रतिभा से आकृष्ट होना राममोहन के लिए स्वाभाविक था।

48. विश्वास, पृ० 500, लेखक के अनुसार यूरोप में राममोहन को परिचित कराने का यह पहला प्रयास था।

49. वही, पृ० 520-521, इसी पुस्तक के पृ० 522-536 में मंशिये पतिये के समालोचना का मूल फ्रेंच से बंगला अनुवाद उद्धृत है। इस लेख से फ्रांस के विद्वत समाज में राममोहन के प्रभाव को आँकने और समझने की सुविधा होती है।

50. Gacim de Tassy : Appendice aux Rudimens dela langue Hindoustanic (1833 में पेरिस से प्रकाशित)।

51. Victor Jacquemont वैज्ञानिक और पर्यटक थे, जिनका परिचय राममोहन के साथ कलकत्ता में 1829 में हुआ था। उन्होंने अपनी यात्रा पुस्तक Voyage dans l'Inde में राममोहन के बारे में विस्तार से लिखा था।

52. Collet, पृ० 392, प्रसिद्ध विद्वान Sismondi ने Revue Encyclopedique (1824) के अंक में एक लेख लिखकर राममोहन के कार्य-कलाप और विद्वत्ता की भारी प्रशंसा की थी।

53. चट्टोपाध्याय, पृ० 250. इस पुस्तक के अलावा इस मुलाकात का विवरण मिस कोलेट या दूसरी जीवनियों में नहीं है।

54. Collet, पृ० 343. पूरे पत्र की प्रतिलिपि के लिए देखें।

55. वही, पृ० 343.

56. Carpenter, M., pg. 80. इस घटना पर श्री आर० हिल का संस्मरण उद्धृत किया है।

57. पत्र के पूरे पाठ के लिए परिशिष्ट देखें। ऐसा लगता है कि इस मुलाकात से पहले भी राममोहन के साथ राबर्ट ओवन का पत्राचार चलता रहा होगा। विश्वास : 'राममोहन प्रसंग' के पृ० 621 में 13 फरवरी 1832 के एक पत्र की प्रतिलिपि दी गई है।

48. Collet, पृ० 344.

59. वही, पृ० 346 की पाद टिप्पणी।

60. Collet, pg. 352...."The reformed Parliament has disappointed the people of England, the Ministers may perhaps redeem their pledge during next session....."

अध्याय—14

ब्रिस्टल : यात्रा का अन्तिम पड़ाव

बेडफोर्ड स्कायर से ब्रिस्टल के मिस किडल को राममोहन ने 24 जुलाई, 1833 को एक पत्र में लिखा था,....'ब्रिस्टल पहुँचने की उत्सुकता में मुझे भारी कार्य भी हलके महसूस हो रहे हैं और कठिन कार्य भी आसानी से हो जायेंगे ऐसा लगता था। लेकिन मुझे बार-बार निराशा ही हाथ लगती है और मुझे अत्यन्त दुख होता है। आज निचले सदन (कामन्स) में इण्डिया बिल का तीसरा वाचन होगा। कमेटियों में परेशान और देर करने वाले बहसों से काम में रुकावटें डालने की कोशिशें चलती रहीं। निचले सदन में बिल के पास होने पर प्रवर सभा (लार्ड्स) में 'बिल' की क्या दशा होगी इसका शीघ्र ही अनुमान लगा सकूँगा, और अन्तिम निर्णय की प्रतीक्षा किये बिना ही मैं लन्दन से चल दूँगा। अगले हफ्ते मैं सीधे ब्रिस्टल के लिए रवाना हो जाऊँगा....।'

हम पहले ही बता चुके हैं कि 11 जुलाई, 1833 को प्रिवी काउंसिल ने सती प्रथा उन्मूलन के पक्ष में पुराणपंथी हिन्दुओं की अपील को खारिज कर दिया। राममोहन उस समय पार्लियामेंट भवन में उपस्थित थे। दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया बिल का, जिसके द्वारा भारत में प्रशासनिक परिवर्तन आने थे, का वाचन पार्लियामेन्ट में चल रहा था। ईस्ट इण्डिया बिल को 20 अगस्त, 1833 को राजकीय अनुमोदन मिल गया था। इस चार्टर के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी अब एक व्यापारिक संस्था से एक प्रशासनिक और राजनैतिक संस्था में बदल गयी। राममोहन काफी समय से ब्रिस्टल जाकर कुछ दिनों के लिए आराम करना चाह रहे थे। लेकिन कुछ राजनैतिक और पार्लियामेन्ट के मामलों में इतने व्यस्त रहे कि किसी तरह निकल ही नहीं पा रहे थे। ब्रिस्टल में ही उनके दत्तक पुत्र राजाराम के ठहरने और शिक्षा की व्यवस्था डॉ० कार्पेन्टर के सौजन्य से मिस किडल और मिस कैसल के परिवार में कर दिया गया था। वस्तुतः राममोहन जब इंगलैण्ड पहुँचे थे उसी समय डॉ० कार्पेन्टर के माध्यम से यह तय हो गया था कि जब कभी उन्हें ब्रिस्टल जाने का मौका मिलेगा, वे स्टेपलटन ग्रोव में ही ठहरेंगे।

कुमारी कार्पेन्टर ने लिखा है कि उनके पिता डॉ० कार्पेन्टर को अपने आदरणीय मित्र को अपने घर पर ठहराने में भारी खुशी होती, लेकिन उनकी कार्यसम्बन्धी जिम्मेवारियों और निवास-स्थान की सीमित सुविधा और राजा

की प्रतिष्ठा और जीवन-स्तर के अनुरूप एक बड़ी कोठी में ठहराने की व्यवस्था की गयी थी।

डॉ० कार्पेन्टर के ही माध्यम से राममोहन का परिचय मिस किडल और मिस कैसल से हुआ था। मिस कैथरीन कैसल एक संभ्रान्त, धनी परिवार की कन्या थीं। माता-पिता की मृत्यु के बाद से डॉ० कार्पेन्टर मिस कैसल के अभिभावक के रूप में थे। मिस किडल मिस कैथरीन कैसल की संरक्षिका थीं। मिस कैसल और मिस किडल ने राममोहन को अतिथि के रूप में रखना स्वीकार कर लिया था। यह भी तय हुआ कि ब्रिस्टल में राममोहन उनकी आलीशान कोठी 'स्टेपलटन ग्रोव' में उन दोनों महिलाओं के अतिथि होंगे।

अंततः राममोहन लन्दन के व्यस्त जीवन से निकलने में सफल हुए। सम्भवतः सितम्बर, 1833 के पहले हफ्ते में वे लन्दन से ब्रिस्टल पहुँचे।[2] 'स्टेपलटन ग्रोव' शहर के बाहरी छोर पर बहुत ही सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों के बीच अवस्थित था, राममोहन को यह स्थान बहुत ही अच्छा लगा। मिस कैसल और मिस किडल ने उनका हार्दिक स्वागत किया। राममोहन के साथ लन्दन से उनके दो नौकरों के अलावा डेविड हेयर की भतीजी मिस हेयर भी आई थी।[3] उनके मित्र डॉ० कार्पेन्टर उन दिनों ब्रिस्टल में ही थे। मि० एस्लिन राममोहन के चिकित्सा-सलाहकार नियुक्त किये गये।

राममोहन को यहाँ आकर बड़ा सन्तोष मिला। लन्दन के भीड़-भाड़ और हलचल भरी दौड़-धूप की अपेक्षा ब्रिस्टल का शान्त वातावरण बहुत ही सुखद था। इधर कुछ दिनों से उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं चल रही थी। उनके इस शारीरिक अस्वस्थता का संकेत उस काल के कई पत्रों में मिलता है जो उन्होंने अपने मित्रों को लिखे थे। इसके अलावा वे अपने निजी सचिव मि० आर्नट के शरारतपूर्ण व्यवहार से वे दुखी और चिन्तित थे। राममोहन की मृत्यु के लगभग एक महीना पहले प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् एच० एच० विलसन ने 21 अगस्त, 1833 को एक व्यक्तिगत पत्र कलकत्ते के बाबू रामकमल सेन को लिखा था।[4] बाद में पत्र **'इण्डियन मिरर'** के 15 जुलाई, 1872 के अंक में प्रकाशित हुआ था। पत्र मूल अँगरेजी में दिया जा रहा है। इस पत्र में राममोहन की शारीरिक और आर्थिक अवस्था का बहुत ही स्पष्ट विवरण है :

> "Ram mohun had grown very stout and looked full and flushed when I saw him. It appears also that mental anxiety contributed to aggravate his complaint. He had become embarrassed for money, and was obliged to borrow of his friends here; in doing which he must have been exposed to much annoyance, as people in

England would as soon part with their lives as their money. Then Mr. Sandford Arnot, whom he had employed as his secretary, importuned him for the payment of large sums which he called arrears of salary and threatened Rammohun, if not paid, to do what he has done since his death-ciaim as his own writing all that Rammohun published in England. In short Rammohun had got amongst a low, needy, unprincipled set of people, and found out his mistake; I suspect, when too late, which prayed upon his spirits and injured his health.[5]

राममोहन को अपने जीवन में कभी भी ऐसी आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा था। लेकिन जीवन के इन अन्तिम दिनों में आर्थिक कठिनाई ने उन्हें बुरी तरह घेर लिया। केवल अपने कुछ निकटतम मित्रों, जिनमें हेयर-बंधु और डॉ० कार्पेन्टर भी थे, की सहृदयता के सहारे ही वे जीवन के अन्तिम दिनों का सफर पूरा कर रहे थे।

जो भी हो, ब्रिस्टल का 'स्टेपलवन ग्रोव'[6] उनके लिये स्वर्गोपम सुखद आवास था। वे वहाँ सभ्य, सुसंस्कृत और समान धार्मिक विचार वाले लोगों के बीच रह रहे थे। ब्रिस्टल आने के बाद प्राय: प्रतिदिन राममोहन और डॉ० कार्पेन्टर एक-दूसरे से मिलते थे। सुबह-शाम धार्मिक तथा अन्य विषयों पर लम्बी बातचीत चलती। इन थोड़े से दिनों की घनिष्ट मुलाकात से डॉ० कार्पेन्टर का सौहार्द्र और बढ़ गया। राममोहन अकसर डॉ० कार्पेन्टर के चर्च में उपासना के लिए जाया करते थे। इधर मिस कैसल और मिस हेयर उनके स्वास्थ्य का पूरा ख्याल रखती थीं। लेकिन उनके भाग्य में यह आराम और सुख लिखा नहीं था। उनके संघर्षमय जीवन का अंत इतने नजदीक आ पहुँचा था कि कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। इस प्राय: एक महीने के संक्षिप्त निवास काल में राममोहन बीमार पड़ने से पहले लगातार दो रविवार, डॉ० कार्पेन्टर के चर्च में उपासना के लिए जाते रहे। यहाँ चर्च लेविनस मीड चैपल में लोगों ने राममोहन का हार्दिक स्वागत किया। हमें स्मरण है कि कई वर्ष पहले राममोहन केरी साहब के परिवार के साथ ईसाई उपासना में शामिल हुए थे। डॉ० वाट की भजनावली की एक प्रति उनके साथ हमेशा रहती थी और अकसर वे सार्वजनिक उपासना के स्थान पर बच्चों के लिए, उनका प्रिय भजन सुनाया करते थे।[7] डॉ० कार्पेन्टर ने लिखा था कि मैनचेस्टर के किसी विद्यालय के लिए जब धन की अपील की गई तो उन्होंने मुझे श्री एस्लिन के द्वारा कहला भेजा कि वे विद्यालय के लिए दान करना चाहते हैं, दुर्भाग्य से वे इसके लिए जीवित नहीं रहे।

उनका छोटा-सा ब्रिस्टल का जीवन काल भी बिल्कुल घटना विहीन नहीं था। वहाँ भी संभ्रान्त और विशिष्ट नागरिक और धार्मिक नेता उनसे अकसर मिलने आते थे। घंटों बातचीत में समय बीत जाता। प्रसिद्ध साहित्यकार जोन फ़ास्टर स्टेपलटन ग्रोव के पास ही एक मकान में रहते थे। वे अकसर राममोहन से बातचीत करने चले आते थे। श्री फॉस्टर के 'जीवन चरित्र' में उनके किसी मित्र को 8 अक्तूबर, 1833 को लिखे एक पत्र का हवाला मिलता है, जिसमें उन्होंने राममोहन से उनके भेंट का बहुत ही दिलचस्प विवरण दिया है। मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में इस पत्र को उद्धृत किया है।....'शुरू-शुरू में मेरे मन में राममोहन के बारे में दुराग्रह था। यहाँ तक कि उनसे मिलने की भी इच्छा नहीं होती थी। लेकिन जब वे मिस कैसल के घर पर आकर ठहरे तो, मिले बगैर न रह सका। उनसे मिलने के बाद मेरा दुराग्रह आधे घंटे भी नहीं रहा.... वे एक विद्वान और विदग्ध सज्जन हैं इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है।....मैंने उनके साथ दो दिन शाम को देर तक बातचीत की है। अन्तिम बार उन्होंने मेरे साथ भारत के दार्शनिकों के कुछ सिद्धान्तों और हिन्दुओं के राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक अवस्था के बारे में काफी विस्तार से बातचीत की।'[8]

ब्रिस्टल में ही राममोहन का परिचय डॉ० कार्पेन्टर की सुपुत्री कुमारी मेरी कार्पेन्टर से हुआ था। कुमारी कार्पेन्टर ने राममोहन के अन्तिम दिनों का बहुत ही सुन्दर और विशद विवरण अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में दिया है। मिस कार्पेन्टर राममोहन के जीवन और कृतित्व से इतनी प्रभावित थीं कि उन्होंने अपने जीवनकाल में तीन-चार बार भारत की यात्रा की थी। 11 सितम्बर को एक बड़ी गोष्ठी का आयोजना किया गया जिसमें ब्रिस्टल के विशिष्ट नागरिक राममोहन से मिलने के लिए एकत्रित हुए। डॉ० कार्पेन्टर के अनुसार एकत्रित विद्वत समाज ने राममोहन के प्रतिभा और विचारों की स्पष्टता की बड़ी सराहना की, इस बातचीत के दौरान जहाँ श्री फास्टर जैसे विद्वान उपस्थित थे राममोहन लगातार तीन घन्टे तक खड़े होकर चारों ओर से घेरकर बैठे मेहमानों के प्रश्नों का उत्तर देते रहे। बातचीत मुख्यतः भारत के धर्म, दर्शन और राजनैतिक विषयों पर चलती रही। उपस्थित लोग राममोहन की प्रशंसा करने लगे।[9] राममोहन की विद्वता और पाण्डित्य ने सभी को प्रभावित किया था। दुर्भाग्य से यही उनके जीवन का अन्तिम सार्वजनिक कार्य था।

वर्षों के कठिन परिश्रम और विदेश में आकर आर्थिक कठिनाइयों की चिन्ता ने उनके स्वस्थ शरीर पर अपना प्रभाव लन्दन से ही दिखाना आरम्भ कर दिया था। लन्दन में भी वे अकसर थकान महसूस करने लगे थे और कई बार अस्वस्थ भी हुए। इसी से लन्दन से बाहर किसी शान्त वातावरण में रहकर आराम करने के लिए इतने उत्सुक थे। लेकिन होनी को कौन टाल सकता है भला।

11 सितम्बर की सफल गोष्ठी के केवल एक हफ्ते बाद ही घातक बीमारी के लक्षण दिखाई देने लगे थे। डॉ० कार्पेन्टर के अनुसार जब वे 17 सितम्बर को राममोहन से मिलने गये तो उन्हें लगा कि राममोहन बहुत ही थके हुए हैं। उन्होंने राममोहन को पूरी तरह विश्राम करने की सलाह दी। उस दिन भी शाम को राममोहन कुछ मित्रों के साथ और श्री एस्लिन की विदुषी माता के साथ देर तक लम्बी बातचीत करते रहे। डॉ० कार्पेन्टर ने आगे लिखा था यही उनकी राममोहन से अंतिम भेंट थी, क्योंकि वे स्वयं उन दिनों अस्वस्थ हो गये थे और स्टेपलटन ग्रोव न जा सके।[10] घटनाएँ इतनी तेजी से घटीं कि उनके परम मित्र और सहयोगी भी उनकी मृत्यु-शय्या के निकट उपस्थित नहीं हो सके।

19 सितम्बर को उन्हें ज्वर का आक्रमण हुआ। विलसन का हवाला देते हुए मिस कोलेट ने लिखा है कि पहले सन्देह किया गया कि बीमारी गुर्दे से सम्बन्धित है और इसी का इलाज चला। लेकिन बाद में एस्लिन साहब शिर पीड़ा और ज्वर से पीड़ित राममोहन के लिए अधिक चिन्तित हो उठे। क्रमशः ज्वर और सिर दर्द का प्रकोप लगातार बढ़ता चला गया। मिस हेयर, मिस कैसल और मिस किडल के अलावा उनका दत्तक पुत्र राजाराम और उनके दोनों नौकर उनकी सेवा में उपस्थित थे। लेकिन जब रोग बढ़ने लगा तो शहर के कुछ बड़े-बड़े डॉक्टरों को बुलाया गया। उन्होंने सलाह दी कि उन्हें किसी योग्य नर्स की आवश्यकता है। मिस हेयर ने उनकी सेवा करने की अनुमति माँगी। भारतीय संस्कारों के कारण राममोहन एक विदेशी कन्या से सेवा करवाने में झिझक रहे थे। लेकिन एस्लिन के अनुरोध पर राजी हो गये।[11] इस प्रकार मिस हेयर, प्रसिद्ध डेविड हेयर के प्रसिद्ध मित्र की रोग-शैया पर नर्स की भूमिका निभा रही थीं। मिस हेयर की सतर्कता और सेवापरायणता से राममोहन बहुत प्रभावित हुए। एस्लिन साहब ने लिखा था कि राममोहन मिस हेयर को बेटी के समान मानते थे और मिस हेयर भी राममोहन का पिता समान आदर करती थी।[12] मिस हेयर दिन-रात सेवा में लगी रहीं। लेकिन रोग दिन पर दिन बढ़ता ही चला गया। 23 सितम्बर को यह स्पष्ट हो गया कि सिर ही मुख्य रूप से पीड़ित है। वे सिर दर्द से बेहाल पड़े थे। बाद में पीड़ा ने विकार का रूप ले लिया। होश भी जाता रहा। कभी-कभी होश में आते तो पास खड़े लोगों से बोलने की कोशिश करते और अकसर बहुत ही विनीत भाव से सबको धन्यवाद देते। उनके मन में इस संकट की घड़ी में क्या विचार उठे होंगे जानना सम्भव नहीं। केवल वे कभी-कभी 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण करते थे। धीरे-धीरे उनकी चेतना और वाक्-शक्ति का भी लोप होता चला गया।

शुक्रवार 27 सितम्बर चरम संकट की घड़ी आ खड़ी हुई। यह राम-मोहन के जीवन का अन्तिम दिन था। मि० एस्लिन ने अपनी उस दिन की डायरी में लिखा है—प्रति क्षण उनकी हालत बिगड़ती जा रही है। साँस भी जोर-जोर से रुक-रुक कर चल रही है। नाड़ी पकड़ पाना मुश्किल है। उनका दाहिना हाथ बराबर हिल रहा था और बायाँ हाथ मृत्यु से केवल एक घंटे पहले हिल कर शान्त हो गया था....। रात के ढाई बजे मि० हेयर मेरे कमरे में आये और बताया कि सब कुछ समाप्त हो गया है। उन्होंने रात के 2 बजकर 25 मिनट पर अन्तिम साँस ली थी।

राममोहन के चिकित्सक श्री एस्लिन ने इन बीमारी के दिनों का विवरण अपनी व्यक्तिगत डायरी में लिखा था। मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक से राम-मोहन के जीवन के उन अन्तिम और महत्वपूर्ण दिनों का विवरण श्री एस्लिन की डायरी से उद्धृत करके इतिहासकारों के लिए भारी सुविधा प्रदान की है। यहाँ पर डायरी के अंशों का अनुवाद तिथि-अनुसार दिया जा रहा है :[18]

"**ब्रिस्टल, सोमवार 9 सितम्बर** 1833 : स्टेपलटन ग्रोव भवन में मैं राममोहन राय को देखने गया। उनके साथ बहुत ही दिलचस्प और हृदयग्राही बातचीत हुई। उन्होंने स्पष्ट तौर पर बताया कि वे ईसा मसीह के जीवन के ईश्वरीय उद्देश्यों पर विश्वास करते हैं। उनके विचार से ईसाई धर्म के अन्तःसाक्ष्य, न्यू टेस्टामेन्ट के ऐतिहासिक प्रमाणों से अधिक सशक्त हैं। हिन्दुस्तानी भाषा से अनूदित एक पुस्तक उन्होंने मुझे भेंट की। मैंने उनसे कहा कि अध्यापक ली का कहना है कि वे (राममोहन राय) ईसाई धर्म के ईश्वरीय उत्पत्ति को स्वीकार नहीं करते है। उन्होंने कहा कि उन्होंने ईसा मसीह के ईश्वरत्व को अस्वीकार किया था लेकिन ईसा मसीह के जीवन के ईश्वरीय उद्देश्य को कभी अस्वीकार नहीं किया।

"**बुधवार, 11 सितम्बर** : डॉक्टर कार्पेन्टर के साथ स्टेपलटन ग्रोव भवन में भोजन के लिये गया। वहाँ डॉ० जेरार्ड, सिमन्स और श्री फॉस्टर, ब्रूस, वार्सलि एस्पेण्ड, आदि लोगों से भेंट हुई। भोजन के समय भी अत्यन्त रोचक बातचीत हुई। जिस मननशील और आध्यात्मिक प्रक्रिया के द्वारा राजा अपने धर्म सम्बन्धी मीमांसा पर पहुँचे हैं। उसका विशद विवरण दिया। क्राइस्ट के पुनर्जन्म और अपने धार्मिक विश्वास में पुनर्जन्म के विवरण को स्पष्टरूप से कहा।

"**12 सितम्बर, बृहस्पतिवार** : मैं रात यहीं सो गया था। सुबह के भोजन के समय दिलचस्प बातचीत चली। मैंने राममोहन राय को वेस्ट इण्डियन नीग्रो लोगों के बारे में कुछ बताया। उस जाति के बारे में उन्होंने क्रिश्चियन मिशनरियों से सुन रखा था, इसी से मेरा विवरण सुनने

का वैसा आग्रह नहीं था। मिस किडल, मिस कैसल, राजा और मैं, उनकी गाड़ी में ब्रिस्टल शहर आये। मधुमक्खियों का छत्ता देखने के लिए वे मेरे 47 नम्बर पार्क स्ट्रीट के मकान में उतरे। मधुमक्खियों का छत्ता देखकर उन्हें भारी प्रसन्नता हुई।

"13 **सितम्बर, शुक्रवार** : दो बजे रोगियों को देखा !....चार बजे ....भोजन का निमन्त्रण था। राजा, मिस किडल, मिस कैसल, डॉक्टर जेरार्ड....इत्यादि सभी वहाँ उपस्थित थे। राजनीति पर बातचीत चली, रिफार्म बिल पास होते समय विग दल ने जिस नीति को अपनाया था उस पर राममोहन राय ने तीव्र आलोचना की।

"14 **सितम्बर, शनिवार** : मैं स्टेपलटन ग्रोव गया। वहाँ डॉ० कार्पेन्टर के साथ मुलाकात हुई। राजा के साथ बड़ी रोचक बातचीत हुई और वहीं भोजन किया।

"15 **सितम्बर, रविवार** : मिस किडल की गाड़ी में राजा जा रहे थे। मुझे और मेरी को उसी गाड़ी में चर्च ले गये। मैंने उनको डॉ० पिचर्ड की 'फिजिकल हिस्टरी ऑफ मैन' की एक प्रति भेंट की। मैं वह राममोहन राय के लिए डॉक्टर साहब से माँग कर लाया था।

"17 **सितम्बर, मंगलवार** : मेरी माता आज की शाम राममोहन राय को देखने और स्टेपलटन ग्रोव में दो-एक दिन रहने के लिए चली गयीं।

"19 **सितम्बर, बृहस्पतिवार** : मैं अपनी माँ से मिलने घोड़े पर सवार होकर स्टेपलटन ग्रोव पहुँचा....। देखा, राजा को ज्वर है। मुझे देखकर वे प्रसन्न हुए। मैंने उनके लिए दवाई की व्यवस्था की।....आठ बजे के करीब राजा की गाड़ी मुझे लिवाने आयी। मैंने पाया कि वे पहले से कुछ अच्छे हैं, लेकिन अब भी थोड़ा बुखार चल रहा था। मि० जॉन हेयर जिनके साथ राममोहन ठहरे थे, वहाँ उपस्थित थे। रात को वहीं सोया।

"20 **सितम्बर, शुक्रवार** : राजा में कोई विशेष सुधार नहीं था। मैं कोई दो बजे राजा की गाड़ी पर घर लौटा फिर रात को भोजन के लिए गया। राजा के सिर में जोरों का दर्द हो रहा था। लेकिन दवाई से कुछ कम हो गया। वे शाम को सोते रहे लेकिन आँखें कुछ खुली हालत में थीं। कोई ग्यारह बजे वे जगे। मैंने पाया कि उनके हाथ-पैरों के किनारे बहुत ठंडे हैं। उनकी नाड़ी की गति 130 थी और कमजोर चल रही थी और क्रमशः क्षीण होती जा रही थी। गरम जल आदि के साथ थोड़ी-सी शराब देने पर उन्होंने कुछ आराम महसूस किया। लेकिन बेचैनी के कारण

वे कभी जमीन पर और कभी सोफे पर बार-बार बैठ जाते। मैंने उनसे विनती की कि वे मिस हेयर को निरंतर अपनी देख-रेख करने की अनुमति दें। उन्होंने कहा कि यह उचित न होगा। मैंने उनको बताया कि इस देश की प्रचलित प्रथा के अनुसार इसमें कोई अशोभनीयता की बात नहीं होगी, तो वे राजी हो गये। मैंने मिस हेयर जो अब तक सोने चली गई थीं मैंने उन्हें जगाकर राजा के पास ठहरने को कहा। वे मेरी सेवाओं से काफी कृतज्ञ लगे और मेरे वहीं सोने पर प्रसन्न हुए। आज रात मुझे उनके लिए भारी चिन्ता हुई। मैंने अपनी माँ से कहा कि यदि कल तक हालात नहीं सुधरती है तो मुझे पिचर्ड साहब को बुलाने का मशवरा देना पड़ेगा।

"शनिवार, 21 सितम्बर : मिस हेयर राजा के पास बैठी रहीं, और वे रात भर कैसे रहे इसका विवरण मुझे दिया। मैंने सुबह उनकी जाँच की। उनकी नब्ज पहले से अच्छी थी, पहले से कुछ अच्छे लगे। लेकिन जबान ठीक नहीं थी। मिस किडल ने प्रस्ताव रखा कि डॉ० पिचर्ड को बुलाकर दिखाया जाय। मैं खुशी से राजी हो गया। ब्रिस्टल गया और दो बजे कुछ रोगियों को देखा और फिर मैं पिचर्ड के साथ स्टेपलटन पाँच बजे भोजन के लिए पहुँचा। मैंने राजा को पिचर्ड के आगमन के बारे में तब तक नहीं बताया जब तक वे भवन में पहुँच नहीं गये। राजा ने पिचर्ड के आने पर संतोष प्रकट किया। पिचर्ड के मुख-मण्डल पर बुद्धि का कैसा तेज है, यह मुझे राजा ने बाद में बताया। मि० हेयर के साथ यहाँ मुलाकात हुई। वे पिचर्ड को बुलाये जाने से पूरी तरह से सहमत थे, मैं रात को ग्यारह बजे सोने के लिए गया। मिस हेयर फिर राजा के पास बैठी रहीं।

"22 सितम्बर, रविवार : सुबह तक राजा बहुत बेचैन रहे और जब सोये तो भी उनकी आँखें खुली हुई थीं। पिचर्ड कोई साढ़े ग्यारह बजे आये। मैं उनके साथ अन्दर गया....मि० हेयर भी हमारे साथ बाहर आये। शाम को राजा पहले से कुछ अच्छे थे और मुझे उनके बारे में कुछ अधिक उम्मीद बँधी। जब मैं, पिचर्ड और हेयर उनके पास ही थे तो उन्होंने कहा कि यदि उन्हें मरना भी पड़े तो भी उन्हें संतोष रहेगा कि ब्रिस्टल में वे सर्वोत्तम चिकित्सा-व्यवस्था के अधीन रहे। मेरी और अपनी माँ, मिस कैसल के गाड़ी में प्रार्थना सभा में गयीं और लौट आयीं। मिस हेयर राजा की सतत देख-रेख और सेवा में लगी थीं। उनका राजा पर अच्छा-खासा प्रभाव है। वे मुझसे भी अधिक आसानी से राजा को दवाई आदि पिलातीं। उनका मिस हेयर से काफी लगाव मालूम होता है और उनका राजा के प्रति पितातुल्य आदर भाव है।

"23 **सितम्बर, सोमवार** : मैं सुबह पाँच से कुछ पहले उठा। राजा ने सारी रात बेचैनी में बितायी, बस कभी-कभी खुली आँखों से थोड़ा सो लेते। सारे दिन काफी कष्ट पाया। आसपास लोगों के उपस्थित रहने का उन्हें कोई ज्ञान नहीं, लेकिन जगाने पर वे पूरी तरह सचेत हो जाते। क्या कुछ हो सकता है, इसकी मुझे गहरी आशंका थी। उनके स्वास्थ्य-लाभ या मृत्यु दोनों ही की संभावना मेरे मन में थी। मिस हेयर ने सुबह दूसरे डाक्टरों को बुलाकर परामर्श लेने की बात कही, मैंने भी ऐसा ही सुझाव दिया। श्री हेयर ने राय दी कि यद्यपि उनके विचार से आवश्यक नहीं है फिर भी एक ऐसे ख्यातिसम्पन्न व्यक्ति के लिए कोई विशिष्ट चिकित्सक बुलाना चाहिए। उन्हीं की राय पर डॉ० कैरिक को बुलाया गया। वे पिचर्ड के साथ शाम को आये। शरीर के सभी अंगों में सिर ही सबसे पीड़ित अंग लगा तो उसमें जोंक लगाये गये। रात को राजा कुछ ठीक-ठाक रहे, उन्होंने मुझसे मेरी सेवा के लिए कृतज्ञता प्रकट की। मेरी ओर बहुत ही प्रेम से देखा और मेरा हाथ पकड़े रहे, मैंने सुबह गरम पानी से नहाने में उनकी सहायता की। रात को उन्होने कुछ आराम महसूस किया।

"24 **सितम्बर, मंगलवार** : हेयर साहब, कुमारी हेयर और बालक राजाराम पिछली रात राजा की सेवा में थे। रात ग्यारह बजे मैं चला गया था और फिर सुबह पाँच बजे रोगी के कमरे में आया। राजा की नब्ज पिछली रात से कुछ बेहतर थी और मोटे तौर पर इसकी गति बहुत बुरी नहीं कही जा सकती। कैरिक और पिचर्ड कोई बारह बजे पधारे। दिन में कुछ शांत थे और उन्हें नींद भी आयी। लेकिन आँखें खुली रही थीं। शाम को और रात में वे अक्सर बेचैन रहे।

"25 **सितम्बर, बुधवार** : राजा काफी सोये और पिछली रात की अपेक्षा शांत रहे। नाड़ी 102 पर टिकी थी, लेकिन कमजोर। श्री हेयर राजा के पास बैठे रहे। उन्होंने सुबह तीन और चार के बीच रोगी की हालत के बारे में खतरनाक खबर दी। नाड़ी कमजोर थी और अंग-प्रत्यंग बहुत ठंडे थे। ढँक देने पर उनका शरीर आसानी से गरम हो गया। वे धीरे-धीरे फुसफुसाये। जगाने पर चेतना लौट आती थी। मैं कोई बारह बजे ब्रिस्टल गया। शाम को भोजन के समय स्टेपलटन ग्रोव गया। राजा की हालत खराब और कमजोर थी। उनके लिए फर्श पर एक गद्दा बिछा दिया गया है जिस पर वे चुपचाप पड़े हैं। बहुत ही कम बोलते हैं।

"26 **सितम्बर, बृहस्पतिवार** : पिछली रात श्री हेयर ने भी जागकर काटी। सुबह तीन और चार बजे के बीच मुझे बताया कि राजा की नाड़ी

कमजोर पड़ गई थी और रह-रह कर फफक उठती थी। इसी से सारी रात बेचैनी रही। राजा रात को ठीक से सोये नहीं। अक्सर उनकी आँखें खुली रहीं। डॉ० कैरिक कोई ग्यारह बजे आये। पिचर्ड के आने से पहले ही हमको मिस हेयर रोगी के कमरे में बुला ले गयीं। वहाँ हमने देखा कि उन्हें ऐंठन का दौरा पड़ा हुआ है और चेहरा एक ओर लटक गया है। यह कोई एक-दो घंटे चलता रहा। हमारी उपस्थिति के बारे में उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। यद्यपि सुबह जब मैं उनसे मिलने आया था उस समय उन्होंने बड़े प्यार से मुस्कराकर मेरा हाथ दबाया था। हमने उनके सिर के बाल कटवा दिये थे और सिर पर ठंडे पानी का उपचार किया था। दौरे के उतर जाने के बाद लगा कि वे सो रहे हैं, यद्यपि आँखें खुली थी। आँखों की पुतलियाँ छोटी पड़ गयी थीं। बायीं बाँह और पैर को लकवा सा मार गया था। हम लोगों ने तय किया कि शाम को डॉ० बर्नार्ड को बुलाया जाय। मैं सारे दिन यहीं रहा। आने वाली घटना के बारे में सशंकित ही रहा। दोपहर बाद उनका शरीर कुछ गरम महसूस हुआ और नाड़ी भी कुछ मजबूत लगी। लेकिन दोबारा ऐंठन का दौरा कोई साढ़े छः बजे पड़ा। काफी देर में उन्होंने मुश्किल से कोई पौष्टिक पथ्य निगला होगा। सुबह से, आखिरी बार जब उन्होंने मुझे पहचानने की चेष्टा भरी दृष्टि से देखा। वे बेहोश पड़े थे। डॉ० बर्नार्ड आ नहीं सके। ····आना शायद व्यर्थ था। पिचर्ड और कैरिक राजा को मरणासन्न हालत में छोड़कर चले गये। रात के बारह बजे से पहले कोई सोने नहीं गया। मिस किडल काफी समय तक राजा के पास रहीं। मिस कैसल भी कभी-कभी रहतीं। श्री जान हेयर, मिस हेयर और राजाराम कमरे से बहुत कम निकलते। मेरी माता कभी-कभी भीतर झाँक लेतीं।

"27 **सितम्बर, शुक्रवार** : हर घड़ी राजा की हालत बिगड़ती जा रही है। साँस तेज और रुकावट के साथ चल रही है। नब्ज बहुत ही कमजोर। उनका दाहिना बाजू बराबर हिल रहा है। बायाँ मृत्यु से कुछ पहले हिला था। नाड़ी पकड़ पाना मुश्किल हो रहा था। आज की रात चारों ओर सुन्दर चाँदनी छिटकी है। श्री हेयर, मिस किडन और मैं खिड़की से बाहर आधी रात में डूबे गाँव का सन्नाटा भरा शांत दृश्य देखते रहे, दूसरी ओर एक असाधारण व्यक्ति की मृत्यु हो रही थी, इस क्षण को मैं कभी भूल न पाऊँगा। मिस हेयर इस समय हताश और अविभूत थीं। वे इतने दिनों राजा के पास रहकर उनकी सेवा करती रहीं लेकिन इस समय पास ठहरने की हिम्मत भी जुटा नहीं पा रही थीं। पूरी तरह निराश हो कुर्सी पर, पास ही बैठी सुबकती रहीं। राजा के सुपुत्र राजा

का हाथ पकड़े बैठे थे। कल सुबह से पहले वे शायद ही स्थिति को कुछ समझ पाये होंगे। रात के डेढ़ बजे थे। हमारे श्रद्धेय मित्र का जीवनदीप बुझता जा रहा था। हम सब बस अन्तिम साँस निकलने की प्रतीक्षा में बैठे थे। मिस किडल के अनुरोध पर पहने हुए कपड़ों में ही अपने बिस्तर पर जा लेटा। कोई ढाई बजे थे, श्री हेयर मेरे कमरे में आये। बताया कि सब कुछ समाप्त हो चुका है। रामरतन राजा की ठोड़ी पकड़े बैठे थे। मिस हेयर, पुत्र राजाराम, मिस किडल, श्री हेयर, मेरी माता, मिस कैसल, रामहरि और दो-एक नौकर-चाकर वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने दो बजकर पच्चीस मिनट पर अपनी अंतिम साँस छोड़ी। अन्तिम क्षणों में रामरतन से, जो ब्राह्मण है, श्री हेयर ने आग्रह किया कि प्रथानुसार धार्मिक अनुष्ठान यदि हो तो कर लें। उन्होंने हिन्दुस्तानी (संस्कृत) में कुछ मंत्र आदि पढ़े। जब स्त्रियाँ कमरे से चली गयीं तो हमने उनको गद्दे पर सीधे लिटा दिया। हिन्दू नौकरों से कुछ देर तक बातचीत की। कोई साढ़े-तीन या चार बजे हम सब कमरे से चले आये। कुछ नौकर बगल के कमरे में बैठे रहे। मैं बिस्तर पर लेट गया लेकिन नींद नहीं आई, रात की घटनाएँ बहुत ही दुखद रहीं। सुबह की चाय पर सभी सतप्त बैठे रहे। मिस हेयर बिस्तर पर ही रहीं। संगमरमर का मिस्त्री, पुघ एक इतालवी कारीगर के साथ आकर राजा के सिर और चेहरे का ढाँचा बना ले गया। मैं और मि० हेयर ब्रिस्टल जाकर उनके शारीरिक जाँच का इंतजाम करा दिया। डॉ० कार्पेन्टर सुबह हमारे यहाँ पहुँचे। हम सब शव के पास बैठे रहे। उनका शरीर इस अवस्था में भी भव्य लग रहा था। घटना ने हमको अभिभूत कर दिया था।"

इस प्रकार शुक्रवार 27 सितम्बर 1833 को आधी रात के बाद लगभग 2 बजकर 25 मिनट पर एक महान भारतीय आत्मा की जन्म-भूमि से बहुत दूर विदेश के एक नगर की आलीशान कोठी के एक कमरे मे, विदेशी बन्धुओं के सामने मृत्यु हो गयी। उनके स्वदेशी लोगों में उनके दो नौकर, उनका दत्तक पुत्र राजाराम उपस्थित थे।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि राममोहन बीमारी के दिनों में अपने इर्द-गिर्द उपस्थित सहयोगी और मित्रों के प्रति प्रायः अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते। अधिक पीड़ा की घड़ी में वे चुपचाप पड़े रहते। अक्सर मन ही मन मंत्रोच्चारण किया करते। 'ओ३म्' शब्द अक्सर उनके मुँह से सुनाई पड़ता था।

मिस कोलेट के शब्दों में—"इस प्रकार एक महान हिन्दू की आत्मा अनन्त में विलीन हो गई। उनका जीवन सतत् परिवर्तन का जीवन था। बचपन में

धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध लड़ते हुए घर छोड़ दिया। यौवन काल में सर्वदा संघर्षों की आँधी से जूझते रहे और अब उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संधिकाल आ गया था। अथक परिश्रमी, साहसी और सत्याश्रयी पथिक आज अपनी मंजिल पर पहुँच गया था। इस महाप्रस्थान का काव्यमय दुखद दृश्य भारत के कल्पनाशील लोगों के मन में सदा ही बना रहेगा। एक ओर सुदूर पश्चिम प्रदेश, सुरम्य ग्रामीण परिवेश में शरदकालीन स्निग्ध चाँदनी में लिपटा यह शांत-एकान्त उद्यान-भवन, और चारों ओर फैली नीरवता ही नीरवता। बाहर प्रकृति और रात्रि की अनन्त नीरवता अपनी उपस्थिति जता रही थी, और अन्दर एक महान मुक्तिदाता की आत्मा मृत्यु की जंजीर को तोड़ने का जी-तोड़ प्रयत्न कर रही थी।....भविष्य के....राममोहन के बौद्धिक वंशधर इस करुण और अद्भुत दृश्य को स्थायी स्मृति के रूप में अपने हृदय में सँजोये रखेंगे।[14]

दूसरे दिन मि० एस्लिन और उनके दूसरे डाक्टर मित्रों ने शव की पूरी जाँच-पड़ताल की। मृत्यु का कारण तेज बुखार और मस्तिष्क का प्रदाह बताया गया। इनका कारण सम्भवतः राममोहन की आर्थिक कठिनाइयाँ रही हों।

मि० एस्लिन की डायरी में आगे कहा गया है कि मृत्यु के समय और कॉफिन में शव को रखते समय भी उनके कंधे पर ब्राह्मणोचित जनेऊ लटक रहा था, उसे हटाया नहीं गया। राममोहन के नौकर को इन घटनाओं के साक्षी के रूप में रखा गया।

राममोहन की बीमारी और आकस्मिक मृत्यु ने राममोहन के अंग्रेज मित्रों के लिए समस्या खड़ी कर दी। मृत्यु इतनी आकस्मिक थी कि मृत्यु के समय वे अपनी अभिलाषा या कोई भी निर्देश देने की स्थिति में नहीं थे। यह सर्वविदित था कि राममोहन सभी हिन्दू-संस्कारों का पूरी तरह अनुसरण करते थे; क्योंकि वे अपने देशवासियों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचाना चाहते थे। इसी से दोनों ब्राह्मण सेवक हमेशा उनकी व्यक्तिगत सेवा में लगे रहते थे। हेयर-परिवार के लोगों के विचार से और विशेष रूप से मिस हेयर के कहने पर यह तय पाया गया कि उनके पार्थिव शरीर को किसी साधारण ईसाई समाधि-स्थल में समाधित न किया जाय। क्योंकि उन्हें डर था कि इस बात से उनके बेटों को सम्पत्ति पाने में कोई कानूनी रुकावट न पैदा हो जाय। वे कानून के अनुसार अपने ब्राह्मण हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अंत तक सतर्क रहे। इस बात की पुष्टि डॉ० कार्पेन्टर की पुस्तक में परिशिष्ट के रूप में जुड़े विवरण से स्पष्ट होता है।[15]

कहीं उनको ईसाई समाधि क्षेत्र में दफनाने से उनके धर्मान्तरित होने का

संदेह पैदा हो जाय और उनके पुत्रों को जायदाद के मामले में किसी प्रकार की कानूनी परेशानी का सामना करना पड़े, इस बारे में वे सदैव चिन्तित रहे। इसी से राममोहन ने अपने विदेशी मित्रों से बार-बार यही इच्छा प्रकट की थी कि यदि उनकी मृत्यु इंगलैण्ड में होती है तो उनके लिए किसी अलग जमीन का टुकड़ा खरीदकर उसमें दफनाया जाय। वहाँ एक छोटी-सी कुटिया बनाकर समाधि की देख-भाल के लिए किसी गरीब आदमी को नियुक्त किया जा सकता है। सारी कठिनाइयाँ आसानी से सुलझ गयीं, क्योंकि मिस कैसल ने मित्रों की सहानुभूतिपूर्ण सम्मति के साथ, अपने बगीचे का एक कोना इस कार्य के लिए सहर्ष प्रदान कर दिया। यह टुकड़ा एलम वृक्षों की स्निग्ध छाया तले था। लेकिन तैयारियों और औपचारिकताओं ने काफी समय ले लिया। क्योंकि यह एक महत्त्वपूर्ण और पेचीदा मसला था। इस यशस्वी व्यक्ति के ब्रिस्टल शहर में आकर ठहरने की घटना ने शहर की विशिष्ट जनों को एक सीमा तक बहुत उत्साहित कर दिया था। वे लोग अब उनके इस आकस्मिक निधन पर मर्माहत थे। डॉ० कार्पेन्टर ने तत्काल ही राममोहन की स्मृति में अपने चर्च में उनके मरणोपरान्त प्रार्थना और प्रवचन की व्यवस्था की। रविवार 6 अक्तूबर को चर्च में उपासना आयोजित की गयी। मिस कार्पेन्टर ने लिखा है कि चर्च खचाखच भरा था, इतनी भीड़ उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी। डा० कार्पेन्टर ने बहुत ही मार्मिक प्रवचन दिया।[16]

आखिरकार सारी तैयारियाँ पूरी हो गई। लन्दन से हेयर-बन्धु आ गये। स्टेपलटन ग्रोव में केवल उन लोगों को बुलाया गया जो राममोहन को निकट से जानते थे। 18 अक्तूबर को कोई दो बजे उस महान श्रद्धेय व्यक्ति को समाधित कर दिया गया। ताबूत को लोग कंधे पर उठाकर ले गये....कोई धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न नहीं किया गया, केवल शांत भाव से समाधि में उतार दिया गया। यह अंतिम संस्कार शांत, सौम्य और गम्भीर था। इस शवयात्रा में उनमें उनका पुत्र, उनके दो सेवक स्टेपलटन ग्रोव और लन्दन के बेडफोर्ड स्कायर के परिवार के लोग, मिस कैसल के अभिभावक, उनके दो निकट सम्बन्धी, एस्लिन, उनकी माताजी, श्री फॉस्टर और डॉ० जेरार्ड के अलावा कई एक स्त्रियाँ और नौकर-चाकर उपस्थित थे।[17] चूँकि इस असाधारण समाधि का विवरण सरकारी खाते में दर्ज नहीं हो सकता था, इसी से एक अलग दस्तावेज पर सभी लोगों के हस्ताक्षर लिये गये। इसकी कई प्रतियाँ भी बनाई गईं ताकि आवश्यकता पड़ने पर काम आ सके। यह सारा कार्य गम्भीर, निस्तब्धतापूर्ण परिवेश में सम्पन्न हुआ। सभी के हृदय शोक से बोझिल रहे होंगे। जोन फॉस्टर ने बाद में कहा था—"भला ऐसी समाधि पर कोई क्या कहता ?"[18]

बाद में सभी एक कमरे में एकत्रित हुए। डॉ० कार्पेन्टर ने इस अवसर के लिए विशेष रूप से मेरी कार्पेन्टर द्वारा रचित कविताएँ पढ़कर सुनाईं।[19] इसके बाद सभी अपने-अपने घरों को चले गये।

राममोहन की मृत्यु स्टेपलटन ग्रोव भवन के बीच हाउस के पहली मंजिल के किनारे वाले कमरे में हुआ था। कॉफिन को एलम वृक्षों की छाया के नीचे जहाँ दफनाया गया, वह इस कमरे से साफ दिखता है। मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में इस करुण दृश्य का मार्मिक विवरण दिया है :

"हम लोगों ने गम्भीर नीरवता में माननीय राजा के पवित्र अवशेषों को एक शांत और सुरम्य स्थान पर, जो हम लोगों ने तय किया था, 18 अक्टूबर 1833 को समाधिस्थ किया।

केवल कुछ ही हफ्तों पहले हम लोग उनके बहु-प्रतीक्षित आगमन के लिए कितने प्रसन्न थे! हम लोग कई वर्षों से पूर्वी आकाश में एक सितारे को चढ़ते और चमकते देख रहे थे, और हम अंधकारमय भारत के लिए उज्ज्वल भोर के प्रकाश की आशा किये थे। हम लोगों ने उन्हें पूरे दृढ़-निश्चय के साथ अंधकार के बादलों को चीरते हुए, अत्याचार और उत्पीड़न के मध्य से निकल कर आगे बढ़ते हुए देखा था।"[20]

जोन हेयर ने उपस्थित नौकरों में रामरतन मुखोपाध्याय के माध्यम से भारत में उनके परिवार के लोगों और मित्रों को सूचित किया कि राममोहन के इच्छानुसार, उनको एक अलग जमीन के टुकड़े में समाधिस्थ किया गया और इस मौके पर कोई भी धार्मिक अनुष्ठान नहीं किया गया। राममोहन के आकस्मिक मृत्यु के समाचार ने उस काल के पत्र-पत्रिकाओं के समाचार और स्तंभों में प्रमुख स्थान पाया। उनके जीवन और कृतित्व पर लेखादि प्रकाशित हुए। मिस कार्पेन्टर की पुस्तक में श्रद्धांजलि के कई फूल, जो कविताओं के रूप में प्रकाशित हुए थे, उद्धृत हैं।[21] इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड और आयरलैण्ड के अनेक चर्चों के उपासना-मंच से राममोहन को श्रद्धांजलि पेश की गयी। इनमें कुछ प्रमुख श्रद्धांजलियों का विवरण मिस कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में विस्तार से दिया है। साउथवार्क के रेवरेण्ड डॉ० केनी ने अपने इलाके के लोगों के अनुरोध पर अपने चर्च में श्रद्धांजलि-सभा का आयोजन किया। उन्होंने श्री जोन हेयर को एक पत्र लिखकर राममोहन के कृतित्व की भूरिशः प्रशंसा की थी। ब्रिस्टल के मीड चैपल में डॉ० कार्पेन्टर की श्रद्धांजलि-सभा का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। रेवरेण्ड एसप्लाण्ड ने हैकनी के न्यू ग्रेवल पिट चर्च में श्रद्धांजलि-सभा का आयोजन किया। यहाँ उनके जीवन और कृतित्व पर काफी प्रकाश डाला गया। यद्यपि राममोहन आयरलैण्ड की यात्रा नहीं कर सके थे फिर भी डबलिन के प्रेबिस्टेरियन चर्च में 28 अक्टूबर को श्रद्धांजलि-सभा को

रेवरेण्ड ड्रमोण्ड ने ही सम्बोधित किया। उन्होंने यह भी कहा कि…"डबलिन के अलावा बेलफास्ट, कॉर्क से भी राममोहन के स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। वे शायद आयरलैण्ड की यात्रा करते क्योंकि उन्हें आयरलैण्ड की समस्याओं में भारी दिलचस्पी थी…इत्यादि।" इसके अतिरिक्त बेलफास्ट में भी श्रद्धांजलि-सभा का आयोजन किया गया। अंतिम श्रद्धांजलि प्रवचन लन्दन के फिनस्बरी चैपल में रेवरेण्ड फॉक्स ने पेश किया। अपने सारगर्भित प्रवचन में उन्होंने कहा था—"यद्यपि वे जीवित नहीं, फिर भी उनका स्वर विद्यमान है। वह एक ऐसी आवाज है जिसे भारत ही नहीं बल्कि यूरोप और अमेरिका के लोग आने वाली पीढ़ियों तक सुनते रहेंगे।"[22]

लन्दन और दूसरे शहरों की पत्र-पत्रिकाओं में उनका मृत्यु-संवाद प्रकाशित हुआ। राममोहन के मित्रों और ऐसे हजारों लोगों ने, जिन्होंने उन्हें जाना-पहचाना था, इंगलैण्ड और भारत में जब इस समाचार को सुना तो वे स्तब्ध रह गये। भारत में पुराणपंथी हिन्दुओं ने इस घटना से भारी संतोष प्राप्त किया होगा। लेकिन उस युग के सभी प्रगतिशील लोगों को भारी धक्का पहुँचा। उनकी मृत्यु के लगभग सात महीने के बाद 5 अप्रैल, 1834 को कलकत्ता के टाउन हाल में एक विशाल शोकसभा का आयोजन किया गया था। इस सभा का सभापतित्व सर जान पीटर ग्रांट ने किया। इस सभा में राममोहन के प्रसंशक भारतीय और यूरोपीय नागरिक उपस्थित थे।[23] एक और श्रद्धांजलि उन्हें प्राप्त होनी थी। उनके मित्रों की इच्छा थी कि उनकी समाधि पर एक उपयुक्त स्मारक बने। लेकिन यह स्टेपलटन ग्रोव के बगीचे में सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त यह भी विदित हो गया था कि इस स्थान पर समाधि बनाये रखना स्थानीय कानून के विरुद्ध है। प्रायः दस वर्ष बाद जब उनके मित्र द्वारकानाथ ठाकुर इंगलैण्ड आये तो उन्हीं के अनुसार 29 मई 1843 को राममोहन के पवित्र अवशेषों से युक्त ताबूत स्टेपलटन ग्रोव के उद्यान से हटाकर ब्रिस्टल के निकट आर्नस वेल के समाधि-क्षेत्र में एक अलग स्थान पर समाधिस्थ किया गया। अगले ही वर्ष उनके मित्र ने ही उस स्थान पर एक सुन्दर स्मारक बनवा दिया।[24] यह स्थान आज भी भारतीयों के लिए एक तीर्थ-स्थान बना हुआ है। वर्षों बाद उस पर एक प्रस्तर-फलक लगवाया गया जिस पर अँगरेजी में यह भाव अंकित है :

Beneath this stone rest the remains of
RAJA RAMMOHUN ROY BAHADUR
A Conscientious and steadfast believer in the
Unity of the Godhead.
He Consecrated his life with entire devotion to

the Divine Spirit alone.
To great natural talents a thorough
mastery of many languages,
And early distinguished himself as one of the
Greatest scholars of the day.

His unwearied labours to promote the social, moral and physical condition of the people of India, his earnest endeavours to supress idolatory and the rites of Sutee and his constant zealous advocacy of whatever tended to advance the glory of God and the welfare of man, live in grateful remembrance of his countrymen.

The Tablet

Records the sorrow and pride with which his memory is cherished by his descendants. He was born in Radhanagar, in Bengal 1774, and died at Bristol, September 27, 1833.[25]
स्टेपलटन ग्रोव के बगीचे में जहाँ उनको अस्थायी तौर पर समाधिस्थ किया गया था वहाँ भी एक छोटा-सा प्रस्तर-फलक है, जिस पर लिखा है :

"इस स्थान पर 1833 में राजा राममोहन राय को समाधिस्थ किया गया था जो 1843 में आर्नोस वेल के समाधिस्थल पर हटा दिया गया।"[26]

इसके अतिरिक्त ब्रह्म समाज के पहले शतवार्षिक उत्सव के अवसर पर स्टेपलटन ग्रोव के 'बीच हाउस' की निचली मंजिल की दीवार पर एक प्रस्तर-फलक लगाया गया, जिसमें लिखा है :

"In memory of Raja Rammohun Roy, founder of the Brahmo Samaj and pioneer of many sided reforms in India, a man of deep religious experience, a friend of all the religion of the spirit, a great linguist who cast a permanent light on the chief religions of the world, born in Radhanagar, Bengal in 1774, visited England in 1831-1833, to advance the social and political interests of the country. He lived in this house in the summer of 1833 and died here on September 27th in the same year. This tablet is erected as token of their deepest reverence by his fellow countrymen on the

occassion of the first centenary of the Brahmo Samaj."[27]

इसी प्रसंग में एक और श्रद्धांजलि का जिक्र करना प्रासंगिक होगा। संयोग की बात थी कि राममोहन की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद प्रसिद्ध चित्रकार ब्रिग्स द्वारा बनाया हुआ राममोहन का एक आदमकद रंगीन चित्र ब्रिस्टल में प्रदर्शन के लिए आया था। मिस कैसल ने अपने सामान्य अतिथि के प्रति श्रद्धांजलिस्वरूप इस सुन्दर और सजीव चित्र को खरीदकर ब्रिस्टल फिलासफिकल इंस्टीच्यूशन को दे दी।[28] यह चित्र आज भी ब्रिस्टल म्यूजियम की शोभा बढ़ा रहा है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. कार्पेन्टर एम०, पृ० 88-89. पूरे पत्र की प्रतिलिपि।

2. ठीक तिथि किसी भी जीवनीकार ने नहीं दी है। लेकिन यह तय है कि वे सितम्बर के पहले हफ्ते में ब्रिस्टल पहुँच गये थे। 9 सितम्बर से श्री एस्लिन की डायरी में राममोहन का जिक्र आना आरम्भ हो गया था। कुमारी कार्पेन्टर के संस्मरणों के अनुसार "It was on the 17th September, after the Rajah had about ten days in Bristol...." (M. Carpentar, pp. 109.)

3. मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में भ्रमवश मिस जेनेट हेयर को डेविड की कन्या कहा है। मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में भी यही बात दुहरायी है। लेकिन बाद के शोधों से स्पष्ट होता है कि डेविड हेयर अविवाहित थे और मिस हेयर उनकी भतीजी थीं (देखें विश्वास : राममोहन प्रसंग '1983', पृ० 318.) श्री विश्वास ने जब कोलेट की जीवनी का सम्पादित संस्करण 1962 में प्रकाशित किया था उस समय उनकी धारणा बनी थी कि मिस हेयर डेविड हेयर की बहन थी (कोलेट, पृ० 361 में सम्पादकीय टिप्पणी देखें)

4. दासगुप्ता (राजा राममोहन राय, अंतिम दृश्य, पृ० 165. इस पत्र की तिथि के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। मिस कोलेट के अनुसार उक्त पत्र राममोहन की मृत्यु के तीन महीने बाद 21 दिसम्बर, 1833 को लिखा गया था (देखें पृ० 355.)

5. Collet, पृ० 355-356.

6. 'स्टेपलन ग्रोव' ब्रिस्टल के बाहरी छोर पर एक धनी व्यापारी माइकेल कैसल की आलीशान कोठी थी। ये, डॉ० कार्पेन्टर के धार्मिक संस्था के अनुयायी थे। श्री कैसल, मृत्यु के समय अपनी पुत्री कैथरीन का भार डॉ० कार्पेन्टर पर छोड़ गये थे। मिस एन० किडल इस लड़की की संरक्षिका थीं। इन दोनों से राममोहन का परिचय डॉ० कार्पेन्टर ने लन्दन में ही करवा दिया था।

7. 'Dr. Watt's Hymns for Childer' से राममोहन की प्रिय पंक्तियाँ थीं :

"Lord ! how delightful'tis to see
A whole assembly worship thee :
At once they sing, at once they pray;
They hear of heaven and learn the way."
(see Carpentor M. pg. 93.)

8. कार्पेन्टर एम०, पृ० 94.

9. वही, पृ० 94.

10. कार्पेन्टर एम०, पृ० 98.

11. Collet, पृ० 360-361.

12. कार्पेन्टर एम० : पृ० 101. श्री एस्लिन ने अपनी डायरी में 22 सितम्बर को में लिखा था "He is evidently much attached to her, and her regard for him is quite filial."

13. वही, पृ० 99-104. डायरी का यह अंश मि० कार्पेन्टर ने श्री एस्लिन के व्यक्तिगत कागजातों से उद्धृत किया था ।

14. संगृहीत, पृ० 362-363 के अंगरेजी पाठ का अनुवाद ।

15. वही, पृ० 364.

16. एम० कार्पेन्टर, पृ० 111.

17. वही, पृ० 112.

18. वही, पृ० 112.

19. वही, पृ० 112. पुस्तक में मेरी कार्पेन्टर की लिखी पाँच सुन्दर सोनेट के लिए पृ० 113-115 देखें ।

20. वही, पृ० 108.

21. वही, पृ० 127-128 में कुछ कविताएँ जो राममोहन की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थीं, उद्धृत हैं ।

22. वही, 135.

23. मणि बागची, राममोहन (बंगला), पृ० 162-165 में इस शोक सभा का विवरण देखें । इस सभा में तीन प्रस्ताव पास किया गया था और तय हुआ था कि कलकत्ता और सारे देश से चंदा इकट्ठा करके उपयुक्त स्मारक बनाया जायगा । सभा में ही छः हजार रुपये जमा हो गये थे । लार्ड बेन्टिक ने भी इस उद्देश्य के लिए पाँच सौ रुपये दिये थे ।

24. एम० कार्पेन्टर, पृ० 130-131, बी० एन० दासगुप्ता की पुस्तक में पृ० 176. 24-8-1845 Bengal Spectator में प्रकाशित एक समाचार को

उद्धृत किया है "The remains of Rammohun Roy who died at Stapelton-Grove, Bristol, the residence of M. H. Castle Esq. several years since and was buried in the ground adjoining the house, have been removed to the cemetry at Arno's Vale, and interred in that portion appropriated to dissenters. A sum has been forwarded from India for the purpose of erecting a stately monument on the spot. It will be in the Hindu style of architecture and upwards of 30 feet in height." श्री दासगुप्त ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा है कि इसका कोई प्रमाण नहीं कि श्री द्वारकानाथ ठाकुर, जो 1842 में इंगलैण्ड प्रवास पर थे, के साथ राममोहन के पवित्र अवशेषों के आर्नोस-वेल में स्थानान्तरण का कोई सम्बन्ध रहा होगा। लेकिन मिस कार्पेन्टर और मिस कोलेट दोनों ने स्पष्ट लिखा था कि द्वारकानाथ ठाकुर इस मामले से सम्बद्ध थे, और यही स्वाभाविक भी लगता है।

25. संगृहीत, पृ० 365-366.
26. दासगुप्ता, पृ० 175.
27. वही, पृ० 175.
28. Carpenter, M., पृ० 120.

दर्शन-दिग्दर्शन

अध्याय—15

धार्मिक समन्वय की भूमिका

1827 के अगस्त महीने में मद्रास प्रेसिडेन्सी के गंजाम जिले के बहरामपुर से सूर्यनारायण नामक एक आंध्रप्रदेशीय सज्जन, बड़ी मुसीबत झेलकर समुद्र के रास्ते कलकत्ता आये थे। आने का एकमात्र उद्देश्य राममोहन से साक्षात्कार करना था। राममोहन के धर्म के बारे में उन्होंने बहुत कुछ सुन रखा था। मुलाकात के बाद मद्रास लौटकर मद्रास के अंग्रेज गवर्नर को उन्होंने बताया था कि राममोहन का धर्म कोई धर्म ही नहीं है—'is no religion and his laws are no laws, but a conglomeration of all stitched into singular one.... He is neither a Christian, a Mohammedan or a Hindu, but a free-thinking man, abandoned by all religions."

वस्तुत: राममोहन के धर्म का मूल उद्देश्य सभी धर्मों के शाश्वत मूल्यों और निहित तत्त्वों को समझकर एक सार्वभौमिक, सार्वजनिक धार्मिक सहिष्णुता का परिवेश बनाना था। इस उद्देश्य में उन्हें तात्कालिक सफलता मिली या नहीं, यह विषय उतना विचारणीय नहीं जितना कि यह तथ्य कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति में वे किस प्रक्रिया से गुजरे और वह प्रक्रिया तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में कितनी प्रगतिशील थी। इतिहास के इस संक्रान्ति काल में राममोहन के योगदान का बिल्कुल ही परस्पर विरोधी मूल्यांकन मिलता है। एक ओर पुराणपंथी हिन्दू उन्हें हिन्दू मानने से अस्वीकार करने लगे, तो ईसाइयों ने केवल मात्र 'इनफिडल' या काफिर कहा। राममोहन को वस्तुत: उस काल और परिवेश का पैदावार कहा जा सकता है। इसी से राममोहन के धार्मिक विचारों का विकास और हिन्दू धर्म को रूढ़िवादी संकीर्णता से उबारने में उनकी भूमिका पर, हमें विचार करना होगा।

यद्यपि राममोहन विश्व के तीन प्रधान धर्मों के अध्ययन और विवेचन के बाद अपने सिद्धान्तों पर पहुँचे थे फिर भी उन्हें मुख्य रूप से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज के सुधारक और संस्कारक के रूप में ही मुख्यतः जाना जाता रहा है। हमें मालूम है कि भारतीय मानस में धर्म का क्या स्थान रहा है। इस देश के सामाजिक ढाँचे की नींव धर्म पर खड़ी है। राममोहन इस वस्तुस्थिति से पूरी तरह अवगत थे। जूरी एक्ट के विरुद्ध उन्होंने अपनी प्रसिद्ध अपील में लिखा था 'Religious opinions exercise a great influence over their (the people's) general and daily conduct. It is not

merely a system of theories and opinions but is interwoven with the laws, the manners, the daily necessities and daily actions of every condition of human life.'

धार्मिक सिद्धान्त लोगों के साधारण और रोजमर्रा के आचार-व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये केवल सिद्धान्त और विचार मात्र नहीं, बल्कि ये देश के कानून, व्यवहार, दैनिक आवश्यकता, कार्यकलाप और मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू के साथ गुँथे हैं। राममोहन देश और समाज के विभिन्न पहलुओं के बारे में पूरी तरह सचेत थे और उनके जीवन-चरित्र से स्पष्ट है कि यह चेतना उनमें बचपन से ही जागने लगी थी। राममोहन के प्रारम्भिक जीवन की यह घटना बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी कि उनका, अपने पिता और माता से प्रचलित धार्मिक रीति-रिवाजों और मूर्तिपूजा के प्रश्नों को लेकर मतभेद पैदा हो गया। इन्हीं कारणों से बहुत ही छोटी उम्र में घर छोड़ कर निकल पड़े। वस्तुतः यहीं से सत्य की खोज का आरम्भ समझना चाहिए। इन्हीं यात्राओं के दौरान उन्होंने हिन्दू-बौद्ध धर्मों का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त हम देख चुके हैं कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के अध्ययन के लिए उन्होंने बनारस में कई वर्ष लगाये। पटना प्रवास के दौरान जहाँ वे फारसी और अरबी के अध्ययन के लिए गये थे, उनका परिचय इस्लाम की बुद्धिवादी विचारधारा और सूफी-वादी उदारता से हुआ था। इसका प्रभाव उन पर जीवन भर रहा। आगे चलकर पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क में आये और ईसाई धर्म का भी गहराई से अध्ययन किया। बाइबिल को समझने के लिए उन्होंने ग्रीक और हिब्रू भाषाओं की शिक्षा प्राप्त की। राममोहन ने इस प्रकार हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीनों के धर्मशास्त्रों एवं मान्य ग्रन्थों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया। बौद्ध और जैन शास्त्रों का भी उन्हें ज्ञान था। इन धर्मशास्त्रों के ज्ञान के साथ पश्चिमी बुद्धिवाद और वैज्ञानिक प्रयोगवाद के संपर्क में आये। यद्यपि राममोहन से पहले भी गुरु नानक और कबीर जैसे संतों ने धार्मिक समन्वय एकेश्वरवाद और धर्म की सार्वभौमिकता का प्रचार किया था। लेकिन आधुनिक काल के परिपेक्ष में राममोहन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने यूरोप और एशिया के प्रमुख धर्मों का उनके मूल भाषा में अध्ययन करके तुलनात्मक बौद्धिक विवेचन के माध्यम से सभी धर्मों के आधारभूत सिद्धान्तों पर पहुँचने की कोशिश की।

राममोहन का धार्मिक दृष्टिकोण और विवेचन दार्शनिक स्तर पर उनके बौद्धिक अनुसंधान का परिणाम था, किसी धर्म गुरु या साम्प्रदायिक विश्वास पर आधारित नहीं था। उन्होंने धर्म को चाहे हिन्दू धर्म हो या ईसाई, विवेक और बुद्धि के द्वारा तर्कसंगत या युक्तिपूर्ण दृष्टि से समझने की चेष्टा की। इसी से उनका मुख्य संघर्ष अंधविश्वास, धार्मिक ढकोसलों और रूढ़िवाद के विरुद्ध था।

उन्होंने धर्म के मूल तत्वों और सिद्धान्तों के साथ प्रचलित धार्मिक आचार-विचारों के भेद को समझने और समझाने की कोशिश की। अठाहरवीं और उन्नीसवीं सदी में अंधविश्वासों, रीति-रिवाजों पर आधारित हिन्दू धर्म को उसके मूल सिद्धान्तों पर वापस लाने की यह पहली चेष्टा थी। राममोहन का विचार था कि यदि नींव पक्की नहीं तो इमारत कभी भी ढह सकती है। राममोहन ने केवल समयोचित चेतावनी दी थी, और धर्मसुधारक के रूप में यही उनकी सबसे बड़ी देन थी। उनके सामने परस्पर-विरोधी धार्मिक विचारधाराओं की भिन्नता के बीच सामंजस्य और समन्वय का रास्ता ढूंढ़ने का प्रश्न था। राममोहन के धार्मिक विचार प्रक्रिया और हिन्दू धर्म सुधारक के रूप में उनकी भूमिका को समझने के लिए उनके द्वारा हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धर्म सम्बन्धी अनुशीलन, शास्त्रार्थ और एक नयी धार्मिक-प्रयोगवाद का सिलसिलेवार विश्लेषण करना ही उपयुक्त होगा।

धार्मिक अखाड़े में—एकेश्वरवाद का उपहार

राममोहन की पहली प्रकाशित पुस्तक थी—'तुहफात्-उल-मुवाह् हिदिन।' यह पुस्तक फारसी भाषा में है और भूमिका अरबी में लिखी गई है। पुस्तक के शीर्षक का अर्थ है—एकेश्वरवादी के लिए तोहफ़ा। इस पुस्तक का प्रकाशन कोई 1803-04 में जब राममोहन मुर्शिदाबाद में थे, हुआ था। इस पुस्तक के समय राममोहन की उम्र कोई तीस-बत्तीस वर्ष की रही होगी। इसके अलावा अरबी भाषा में एक और पुस्तक 'मनजारन-उल-आदियान्' का जिक्र भी 'तुहफात' की भूमिका में है। दुर्भाग्य से यह पुस्तक कभी उपलब्ध नहीं हुई।

'तुहफात्' में राममोहन पूरी तरह बुद्धिवादी और एकेश्वरवादी के रूप मे उभरे। यद्यपि पुस्तिका बहुत ही छोटी थी फिर भी इससे राममोहन के धार्मिक विषयों पर खासी जानकारी और विकसित विचारधारा का आभास मिलता है। 'तुहफात' में किसी धर्म विशेष पर आक्रमण नहीं किया गया बल्कि धर्मों की आड़ में फैली विकृतियों और भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाई गई। कुछ विद्वानों का विचार है कि राममोहन शायद फारसी की प्रसिद्ध पुस्तक 'दबिस्तान मज़ाहिब' से प्रभावित थे। उन दिनों बौद्धिक जगत में इस पुस्तक की बड़ी धूम थी। क्योंकि 'मनज़ारात' जो कि शायद एक बड़ी रचना रही होगी, उपलब्ध नहीं है इसी से 'तुहफात्' के सहारे हमें उनके प्रारम्भिक धार्मिक विचारों का विश्लेषण करना होगा। इस पुस्तक का सौभाग्य से प्रकाशन के कोई अस्सी वर्ष बाद मौलाना उबैदुल्लाह ने अँगरेजी अनुवाद किया था। यह अनुवाद राममोहन की ग्रन्थावली में संकलित है।[2]

'तुहफात' के विश्लेषण से राममोहन के उस काल के धार्मिक और

आध्यात्मिक विचारधारा के बारे में जिन सिद्धान्तों का आभास मिलता है, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

सभी प्रमुख धर्मों में विश्व के रचयिता या स्रष्टा के रूप में एक ही परमेश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। यह विश्वास विश्वव्यापक है। स्वाभाविक रूप से मनुष्य ईश्वर के अनादि-अनन्त रूप को विश्वास करता है। यही स्वाभाविक है ।

आत्मा और परलोक में विश्वास सभी धर्मों के मूलतत्त्वों में है । इसी से मनुष्य पाप और पुण्य के लिए पुरस्कार और दण्ड की कल्पना करता है । यद्यपि आत्मा या परलोक का अस्तित्व मानव बुद्धि के परे है फिर भी इसका एक सामाजिक मूल्य है । क्योंकि परलौकिक दण्ड के भय से मनुष्य इस जीवन में पाप कार्यों से डरता है ।

विशेष देवताओं, पैगम्बरों, आचार अनुष्ठानों, उपासना या प्रार्थना-पद्धति में मानव का स्वाभाविक विश्वास नहीं हो सकता। यह वातावरण, शिक्षा और अभ्यास पर निर्भर है। देश, काल और साम्प्रदायिक भेद के कारण धार्मिक भेद-भाव मौलिक रूप से नजर आते हैं :

> 'For instance, some of them believe in a just God possessing human attributes such as anger, mercy, hatred and love; and others believe in a Being compre-handing and extending all over nature; a few are inclind to atheism (or thinking the Dahr (time) or nature as the creative principle of the universe), and of them give Divine attributes to large created beings and make them objects of worship."[8]

राममोहन ने मानव के स्वाभाविक और अभ्यासवश विश्वासों के बारे में स्पष्ट भेद को दर्शाया है ।

ईश्वर और परलोक में विश्वास, मनुष्य की इन दो मूल वृत्तियों को छोड़कर आदतों के अनुरूप संस्कार और धार्मिक अनुष्ठानों में भारी मतभेद पाये जाते है। सभी एक-दूसरे के मतवाद का खण्डन या विरोध करते है। एक धर्म के अनुष्ठान दूसरे धर्म में निषिद्ध माने जाते हैं। इसी से धर्मों में आपसी विरोध चलता रहता है। एक धर्म के लोग दूसरे धर्म को झूठा प्रचार करने की चेष्टा में सदियों से लगे रहे। सभी सोचते हैं उनका धर्म ही एक मात्र सच्चा धर्म है।

धर्म-गुरुओं और पण्डों-पुरोहितों पर पूर्ण विश्वास करना युक्तिसंगत या बुद्धिसंगत नहीं कहा जा सकता। ईश्वर ही को सृष्टि का मूल कारण समझना

चाहिए। ईश्वर को अपना संदेश भेजने के लिए किसी मध्यस्थ या दूत या गुरु की आवश्यकता नहीं होती। किसी मध्यस्थ को स्वीकार करने से एक विशेष परम्परा को स्वीकार करना पड़ता है और इसकी कोई सीमा नहीं है। साम्प्रदायिक भेद-भाव का मूल कारण संस्कार और विश्वासों के आधार पर परस्पर विरोधी परम्पराओं का प्रचार और प्रसार है।

"Hence advent of prophets and revelation like other external things have no reference to God but depend upon the invention of an inventor."[4]

हमें अलौकिक चमत्कार और अति-प्राकृतिक विश्वासों को पूरी तरह त्याग देना चाहिए। राममोहन ने अपने इस सिद्धान्त के पक्ष में कहा है कि इनके सहारे साधारण लोगों को मोक्ष का लोभ दिखाकर गुमराह किया जाता है। अलौकिक चमत्कार का मोह मनुष्य की साधारण विचार शक्ति और विवेक को नष्ट कर देता है। वह अन्धे व्यक्ति की तरह गुरु का अनुसरण करने लगता है। यहाँ तक कि विशेष सम्प्रदायों में झूठ, चोरी, विश्वासघात, व्यभिचार तक को धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में माना जाता है जो समाज के लिए हानिकारक है। अपने देश में फैले धार्मिक पाखण्ड की आलोचना करते हुए 'तुहफात' में लिखा था "आजकल भारत में अति-प्राकृतिक और अलौकिक या चमत्कारिक विषयों पर लोगों का विश्वास इतना बढ़ गया है कि कोई भी अनोखी चीज देखते ही उसको प्राचीन काल के किसी वीर या आधुनिक काल के किसी महापुरुष या सन्त का कारनामा समझने लगते हैं और इनका कोई बुद्धिवादी समाधान मानने को तैयार नहीं होते। लेकिन जिन लोगों की बुद्धि संयत है और विवेकवान है उनसे सच्चाई छिप नहीं सकती।....सांसारिक या लौकिक मामलों में एक वस्तु के साथ दूसरे का कार्य-कारण सम्बन्ध न मालूम हो तो मनुष्य एक को कारण और दूसरे को उसका फल मानने को तैयार नहीं होता लेकिन जब इसी में धर्म या धार्मिक विश्वास का प्रभाव पड़ता है तब वहाँ कार्य-कारण सम्बन्ध न होने पर भी एक को कारण और दूसरे को कार्य समझने में जरा भी झिझक नहीं होती। एक उदाहरण दिया जा सकता है—बिना कोई युद्ध किये या संकट को दूर करने के उपाय किये बगैर, प्रार्थना के जोर पर या जादू-टोना, धागा-तावीज के गुण से मुसीबत टली है या बीमारी छूटी है इन सबमें कोई कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है।

"धर्म गुरु अपने शिष्यों के संतोष के लिए व्याख्या देते हैं कि धर्म और विश्वास के मामले में युक्ति या तर्क का कोई स्थान नहीं, धर्म के मामले केवल मात्र विश्वास और ईश्वर की कृपा ही एकमात्र सहारा है। जिस विषय का कोई प्रमाण नहीं उसे भला युक्तिवादी कैसे ग्रहण या स्वीकार कर सकता है?"[5]

धर्मशास्त्र या ग्रन्थों में कहे गये वाक्यों को अचूक, अमोघ मानना भी ठीक नहीं, क्योंकि अलग-अलग धर्मशास्त्रों में परस्पर विरोधी निर्देश दिये गये हैं। हिन्दू शास्त्रों के धार्मिक कृत्यों और अनुष्ठानों को अंधविश्वास में परिणत करने का नतीजा यह है कि हिन्दू जाति भारी दुर्दशा और पतन का शिकार बनी। दूसरी ओर मुस्लिम धर्मशास्त्र में विधर्मियों पर अत्याचार या हत्या करने तक का निर्देश है। "Now are these contradictory precepts or orders consistent with wisdom and mercy of the great, generous and disinterested creator or are these the fabrications of the followers of religion ? I think a sound mind will not hesitate to prefer the latter alternative."[6]

लेख में राममोहन ने हिन्दू धर्म के अलावा इस्लाम जैसे एकेश्वरवादी धर्म में भी अंधविश्वास और सम्प्रदायवाद का प्रसार दिखाते हुए हाफिज को उद्धृत करते हुए लिखा था कि—प्रचलित (इस्लाम में) बहत्तर फिरकों या सम्प्रदायों को क्षमा कर दिया जाय क्योंकि वे सच्चाई से दूर हैं और केवल किंवदन्तियों और मूर्खता पर आधारित विश्वास के पीछे दौड़ रहे हैं।[7] स्वतन्त्र विचार शक्ति ही ईश्वर की सबसे बड़ी देन है। इसी शक्ति के प्रयोग से, शास्त्रों पर पूरी आस्था न रखते हुए धर्मनिरपेक्ष मानव समाज को एकता और प्रेम में बाँधना और आध्यात्मिक जीवन ही मूल उद्देश्य हो सकता है। राममोहन ने 'तुहफात' में स्पष्ट कहा है :

"Besides the fact of Gods endowing each individual of mankind with intellectual faculties and senses, implies that he should not, like other animals follow the examples of his fellows, but should exercise his own intellectual power, with the help of acquired knowledge, to decern good from bad, so that this valuable divine gift should not be left useless."[8]

'तुहफात' में प्रतिपादित सिद्धान्तों की आलोचना से स्पष्ट मालूम होता है कि राममोहन अवतारवाद, गुरुवाद, परम्परावाद रूढ़िवाद, शास्त्रों के वेदवाक्य मानना जैसे प्रचलित अन्धविश्वासों और अलौकिक या चामत्कारिक जादू-टोने में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते थे। उनके विचार से केवल दो विश्वास पर्याप्त है—पहला आदि अनन्त ईश्वर और दूसरा आत्मा और परलोक में विश्वास। इनमें दूसरा सामाजिक पवित्रता कायम रखने में सहायक सिद्ध होता है।[9] उन्होंने इसके तात्त्विक मूल्य की अपेक्षा सामाजिक मूल्य पर अधिक जोर दिया है। 'तुहफात' में राममोहन ने विशुद्ध बुद्धिवादी धर्म को स्थापित करने की कोशिश की थी। इसमें उन्होंने जो विचार पेश किये थे, वे ही अन्त तक उनके

जीवन दर्शन के आधारभूत प्रेरक रहे थे। हम पहले ही बता चुके हैं कि इसका फारसी से अंग्रेजी अनुवाद कोई अस्सी वर्ष बाद मौलवी उबैदुल्ला साहब ने किया और बँगला अनुवाद गिरीशचन्द्र सेन ने लगभग पन्द्रह वर्ष बाद किया था। 'तुहफात' में से कुछ अंश का सार तत्त्व ऊपर दिया जा चुका है। 'तुहफात' के अंत में राममोहन ने हाफिज के दो बयात उद्धृत किये हैं :—

"शेख के ढोंगी कारनामों का एक छदाम मूल्य भी नहीं है। मानव आत्मा को शान्ति पहुँचाओ, यही पारमार्थिक उपदेश है।"[10]

आखिरी बयात का अर्थ इस प्रकार है :

"किसी जीव को हानि मत पहुँचाओ, इसके अलावा चाहे जो भी कर सकते हो, क्योंकि दूसरे को हानि पहुँचाने के अलावा और कोई पाप हमारे रास्ते में नहीं है।"[11] प्रायः इसी के समसामयिक काल में यूरोप में बुद्धिवादी दर्शन का जन्म हो चुका था। वस्तुतः सोलहवीं से अठारहवीं शती तक इस धारा को विकसित करने में जिन प्रमुख दार्शनिकों और चिन्तकों का हाथ था उनमें बेकन और लाक जैसे समाजशास्त्री; कालिन्स, टिण्डल, मारगन जैसे एकेश्वरवादी (डीइस्ट), वालतेयर, दिदेरो, रूसो, वोलनी जैसे फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति का दार्शनिक होता, तथा टामस पेइन और डेविड ह्यूम जैसे दार्शनिकों का हाथ था। लेकिन राममोहन ने जब 'तुहफात' लिखा था उस समय तक वे इस पाश्चात्य दर्शन के संस्पर्श में कहाँ तक आये थे बताना कठिन है। तुहफात की आनुमानिक प्रकाशन तिथि 1803 या 1804 ई० मानी गई है। यद्यपि उन्होंने इस समय अंग्रेजी का अध्ययन आरम्भ कर दिया था लेकिन पाश्चात्य दर्शन से राममोहन का वास्तविक परिचय कुछ वर्ष बाद रंगपुर प्रवास के दौरान उनके अँगरेज मित्र डिगबी साहब के माध्यम से हुआ था। उनके इस काल के बाद की रचनाओं में पाश्चात्य बुद्धिवाद का स्पष्ट प्रभाव है। 'तुहफात' में इस्लाम के युक्तिवाद के अतिरिक्त पाश्चात्य बुद्धिवाद का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। इस पुस्तक के उपसंहार में राममोहन ने वालतेयर और वोलनी की तरह मानव जाति को चार हिस्सों में बाँटा है :

(1) जो प्रतारक हैं, अर्थात् जो जानबूझकर चामत्कारिक कहानियाँ रचकर लोगों को ठगते हैं।

(2) जो प्रतारित हैं, अर्थात् जो बिना विचार किये इन व्यक्तियों द्वारा साभिप्राय रचित कहानियों में विश्वास करके ठगे जाते हैं।

(3) जो एक साथ ही प्रतारक और प्रतारित हैं, अर्थात् जो स्वयं अलौकिक कहानियों में विश्वास करते है और दूसरों को भी विश्वास करने के लिए उत्साहित करते हैं।

(4) जो ईश्वर की दया से धोखा नहीं देते और न ही धोखा खाते हैं।[12]

'तुहफात' में यद्यपि इस्लाम के आधार पर सार्वजनिक धर्म की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है फिर भी इस्लाम के रूढ़िवादी या कट्टर रूप का स्पष्ट विरोध है। इस्लाम में जो उदारवादी विचारधारा रही है यह इसी पर आधारित थी। इस उदारवाद पर आधारित दो अन्य सम्प्रदाय इस्लाम से निकले थे पहला था— 'मोताजिला' और दूसरा था 'सूफीवाद'। इनमें से पहला युक्तिवादी या बुद्धि-वादी और दूसरा भक्तिवादी विचारधारा थी। राममोहन के शिक्षा की बुनियाद इस्लाम धर्म के कठोर बुद्धिवाद और व्यावहारिकता पर खड़ी थी। क़ुरान का उन्होंने अच्छी तरह अध्ययन किया था। 'तुहफात' के लेखक के रूप में जो विशेषता परिलक्षित है, वह है उनका इस्लामी धर्मशास्त्र और तर्कशास्त्र का गहरा ज्ञान। उन्होंने तर्क पेश करते हुए जो दलीलें दी हैं वे सभी इस्लामी शास्त्र से संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त राममोहन रूमी, सादी, हाफिज़ जैसे मुक्त उदारवादी सूफी कवियों से बहुत ही प्रभावित थे। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि 'तुहफात' में पेश किये गये तर्क और सिद्धान्त प्रौढ़, गम्भीर और सुव्यवस्थित थे, जिन्होंने उनके धार्मिक सिद्धान्तों और विचारों को जीवन भर प्रभावित किया। फारसी भाषा की यह छोटी-सी पुस्तक उन्होंने अपने तीस वर्ष की आयु में लिखी थी। लेकिन इसके मूल विचारों को वे जीवन भर प्रचारित करते रहे। आगे चलकर राममोहन की धार्मिक विचारधारा में परिवर्तन आया था। वे तुहफात के विशुद्ध बुद्धिवाद से आगे बढ़कर हिन्दू धर्म-शास्त्रों और ईसाई धर्म ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर आधारित बुद्धिवाद के पोषक बने। इसके बारे में अगले पृष्ठों पर विचार किया जायगा। बाद में हिन्दू, इस्लाम और ईसाई धर्म से जिन विचारों का आकलन किया गया था, वह तीनों धर्मों की श्रेष्ठ विचारों का समन्वय ही था।

'तुहफात' के अलावा एक और पुस्तक 'मनाजारात् उल आदियान' फारसी में लिखा था जिसका ज़िक्र 'तुहफात' की भूमिका में है; लेकिन यह पुस्तक शायद ही कभी प्रकाशित हुई हो। शीर्षक से ज़ाहिर है कि इस पुस्तक मे विभिन्न धर्मों पर आलोचनात्मक लेख रहे होंगे।[13] इसके अतिरिक्त एक और पुस्तक है 'जवाब इ तुहफात-उल-मवाह्-हिदीन।' इस पुस्तक की एक खण्डित प्रति लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। यह पुस्तक राममोहन द्वारा लिखी गई थी या उनके सहयोग से किसी मुस्लिम मित्र ने उनके सहयोग से लिखी थी। इस जवाब की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि 'तुहफात' के प्रकाशन के बाद कई साम्प्रदायिक तत्त्वों ने उनके विरुद्ध लेखादि लिखे। सबसे प्रमुख विरोध पारसी-सम्प्रदाय की ओर से आया। इसके उत्तर में राममोहन की ओर सम्भवतः किसी मुस्लिम मित्र के सहयोग से उन्होंने 'जवाब' पेश किया, जो सम्भवतः 1820 में प्रकाशित हुआ।[14]

राममोहन ने एक बार हजरत मुहम्मद की जीवनी लिखने की भी योजना बनाई थी लेकिन दुर्भाग्य से वे इस योजना को कार्यान्वित न कर सके। इस प्रसंग में उन्होंने अपने मित्र एडम साहब से कहा था कि इस महापुरुष का किसी ने भी सही मूल्यांकन नहीं किया।[15]

वेदान्त, उपनिषद और तंत्र

हिन्दू धर्म के घिसे-पिटे रीति-रिवाजों और मूर्तिपूजा के विरुद्ध उनका अपने माता-पिता से विरोध बचपन में ही आरम्भ हो गया था। हिन्दू धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिए उन्होंने कुछ वर्ष बनारस में व्यतीत किये। लेकिन उनकी बहुमुखी प्रतिभा और नये जीवन का आरम्भ शायद उनके रंगपुर के जीवनकाल में हुआ था। एक ओर वे अपने अंतरंग मित्र और अफ़सर डिगबी साहब के संपर्क में आने से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और दर्शन से परिचय हो रहा था तो दूसरी ओर हरिहरानन्द तीर्थस्वामी के संस्पर्श में आने से उन्होंने वेद-वेदान्त और विशेष रूप से तंत्रशास्त्र का गहरा ज्ञान प्राप्त किया। विचार-विमर्श और अध्ययन के आधार पर राममोहन को विश्वास हो गया कि हिन्दू धर्म के सुधार या हिन्दुओं के रूढ़िवादी संस्कारों और सड़े-गले समाज से उभारने का रास्ता धर्म के बीच में ही ढूंढ़ना पड़ेगा। विशुद्ध तर्कवाद या बुद्धिवाद को कोई नहीं सुनेगा। हिन्दुओं को धार्मिक संकीर्णता से मुक्त करने के लिए धर्मशास्त्रों का सहारा लेना होगा। यह ज्ञान उन्हें हरिहरानन्द तीर्थस्वामी से ही प्राप्त हुआ था। हरिहरानन्द, पहले ही लिखा जा चुका है, न केवल तांत्रिक साधु थे बल्कि उद्भट विद्वान भी थे। उन्हे मालूम था कि हिन्दुओं को धर्म के बारे में कोई भी नयी बात बतानी हो तो 'प्रस्थान त्रयी' (उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र) का सहारा लेना होगा। भारत के मानव इतिहास के साथ धर्म और दर्शन का इतिहास भी चलता रहा है। शताब्दियों के प्रवाह ने संकीर्णता और जर्जरता को स्थान दिया। वैदिक और बौद्ध युग की प्रतिक्रिया के रूप में ही शायद पुराण, उपपुराण, तंत्र, देवी-देवताओं और पूजा-पाठ और असंख्य रीति-रिवाजों ने हिन्दू धर्म को पूरी तरह घेर लिया था; फलतः भेद-भाव और साम्प्रदायिकता बढ़ती चली गयी थी। छुआ-छूत, जाति-उपजाति, उच्चवर्ण, निम्न-वर्ण यहाँ तक कि आर्य-अनार्य का भेद बढ़ता चला गया। इसके अतिरिक्त धनी-निर्धन का श्रेणी-भेद भी चल पड़ा। इसी बीच इस्लाम धर्म देश में एक नयी संस्कृति, पद्धति और दर्शन को ले आया। इतिहास ने एक दौर में आकर हिन्दू-मुस्लिम समन्वय की धारा को जन्म दिया, सन्त रामानन्द, कबीर, दादू, नाभादास और रैदास, नानक, चैतन्य और न जाने कितने महात्मा अभिभूत हुए। गुरु नानक के शिष्यों ने अपना अलग धर्म चलाया। लेकिन इस समन्वय और धार्मिक एकता

का प्रयास कुछ थोड़े से छोटे-छोटे गुटों तक ही सीमित रह गया। समन्वय की धारा संकीर्णता की रेत में न जाने कहाँ खो गई।

राममोहन के लिए इस धार्मिक समन्वय का रास्ता था—निराकार परमेश्वर की उपासना का शास्त्रीय समर्थन प्राप्त करना। इसी से वे 'प्रस्थान त्रयी' के अध्ययन में जी-जान से लग गये। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ धर्म और सम्प्रदायों का अच्छा-खासा जंगल है वहाँ शंकराचार्य जैसे महापुरुष ने भी सबके लिए समान रूप से ग्रहण योग्य 'वेदान्त' का प्रचार इन्हीं 'प्रस्थान त्रयी' के माध्यम से किया था। प्रस्थान त्रयी में हिन्दू धर्म या दर्शन के तीन मूल ग्रन्थ आते हैं—उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता। ये तीनों किसी सम्प्रदाय विशेष के धर्म ग्रन्थ नहीं हैं और न ही इनमें किसी विशेष देवी-देवता का गुणगान ही है। इनमें केवल परब्रह्म की उपासना या साधना का सोपान है। सभी भारतीय दार्शनिक इन तीनों ग्रन्थों को भारतीय धर्म और दर्शन के मूल ग्रन्थों के रूप में व्यवहार करते रहे हैं। भारतीय दर्शन में वेदान्त का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेदान्त शास्त्र, मूल वैदिक साहित्य के उपनिषदों का ही हिस्सा है। दूसरे दो ग्रन्थ भगवद्गीता और वादरायण कृत, ब्रह्मसूत्र, वेदान्त तत्त्व के वाहक के रूप में महत्त्वपूर्ण है। राममोहन ने चन्द्रशेखर देव को एक प्रश्न के उत्तर में कहा था :

> "The Hindus seem to have made greater progress in sacred learning than the Jews, at least when the Upanishads were written...If religion consists of the blessings of self-knowledge and improved notions of God and his attributes and a system of morality holds a subordinate place, I certainly prefer the Vedas....."[16]

राममोहन ने हमेशा उपनिषदों को ही वेदों का पर्याय माना है। तुलनात्मक समीक्षा में हमेशा उपनिषदों की श्रेष्ठता को मान्यता दी है।

वेदान्त के प्रसंग में तीन 'प्रस्थानों' का उल्लेख शास्त्रों में आता है—श्रुति, स्मृति और न्याय। श्रुति प्रस्थान के अंतर्गत वेद और उपनिषद आते हैं, स्मृति प्रस्थान के अंतर्गत रामायण, महाभारत आदि और भगवद्गीता, जो महाभारत का हिस्सा है स्मृति का ही भाग माना जाता है, न्याय प्रस्थान के अंतर्गत ब्रह्मसूत्रादि जैसे विचारग्रन्थ आते है। वेदान्त के सिद्धान्त इन तीन प्रकार के प्रामाणिक ग्रन्थों पर आधारित है। शंकराचार्य ने इन तीनों ग्रन्थों को 'प्रस्थान' ग्रन्थों की संज्ञा दी थी, जिनके द्वारा परब्रह्म की उपासना की जाती है। न्याय दर्शन के अनुसार 'प्रस्थान' शब्द का तात्त्विक अर्थहैं 'असाधारण प्रतिपाद्य विषय' अर्थात् निराकार ईश्वर की साधना का विषय। शंकराचार्य का अनुसरण करते हुए भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने-अपने मत के समर्थन में

इन 'प्रस्थान त्रयी' के आधार पर भाष्य बनाये विशेष रूप से 'ब्रह्मसूत्र' के आधार पर। शंकराचार्य ने इस 'प्रस्थान त्रयी' के आधार पर अद्वैतवाद चलाया, राजानुज ने भी उसी पथ पर चलकर विशिष्टाद्वैतवाद की नींव रखी। इसके पश्चात एक-एक करके मध्वाचार्य, आनन्दतीर्थ, निम्बार्क, वल्लभाचार्य इत्यादि न जाने कितने संत आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदाय चलाये।[17] राममोहन भी धार्मिक परम्परागत इसी धारा पर चलते हुए प्रस्थान त्रयी के आधार पर वैदिक धर्म के प्रचार में लगे, जिसका उद्देश्य हिन्दू धर्म को विश्व-धर्म सार्वभौमिक धर्म के साथ एकात्मक रूप देना था।[18]

यह हमें ज्ञात है कि हिन्दू धर्मशास्त्रों और वेदान्त का अध्ययन राममोहन ने बनारस में रहते हुए आरम्भ किया था और बाद में रंगपुर में रहते हुए भी वे इस अध्ययन को चलाते रहे। जब 1815 में कलकत्ता में आकर स्थायी रूप से रहना आरम्भ किया तो उनके सार्वजनिक जीवन का आरम्भ ही वेदान्त के व्याख्याकार के रूप में आरम्भ हुआ। थोड़े ही समय में उन्होंने एक के बाद दूसरा हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुवादों और विश्लेषणों को प्रकाशित किया। पहले तीन-चार वर्षों में जो पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित कीं उनकी सूची इस प्रकार है :

बंगला : 1. वेदान्त ग्रन्थ (1815), 2. वेदान्त सार (1815 या 1816), 3. तलबकारोपनिषद् (केनोपनिषद) (मूल और बंगला अनुवाद 1816), 4. ईशोपनिषद् (मूल और बंगला अनुवाद) (1816), 5. कठोपनिषद् (मूल और बंगला अनुवाद) (1817), 6. माण्डुक्योपनिषद्, मूल और बंगला अनुवाद (1817), 7. मुण्डोपनिषद् (मूल और बंगला अनुवाद) (1819), 8. शंकराचार्य का 'आत्मानात्माविवेक' (मूल और बंगला अनुवाद सहित) (1819)।

हिन्दी या हिन्दुस्तानी, 1. वेदान्त ग्रन्थ, (हिन्दुस्तानी अनुवाद) (1815), 2. वेदान्तसार (हिन्दुस्तानी अनुवाद) (1816)

अँगरेजी : 1. Translation of an Abridgment of the Vedant (Translation of 'Vedantsar' (1816) 2. Translation of Kenopanishad (1816) 3. Translation of Ishopanishad (1816) 4. Translation of Mundukopanishad (1819) 5. Translation of Kathopanishd (1819).

इसके अतिरिक्त यह भी जान कर आश्चर्य होता है कि राममोहन के 'वेदान्तसार' का जर्मन अनुवाद 1817 में प्रकाशित हो गया था। इनमें से कुछ उनके मित्र डिगबी साहब ने लन्दन से भी, अलग से प्रकाशित किया था, जिसका विवरण पिछले खण्ड में दिया जा चुका है। उनकी मृत्यु के बाद यूरोप की कई

दूसरी भाषाओं में भी राममोहन की हिन्दू धर्म संबंधी पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित हुए।

ऊपर की सूची में भगवद्‌गीता का बंगला पद्यानुवाद सम्मिलित नहीं है, क्योंकि इस पुस्तक की प्रति उपलब्ध नहीं है। गीता राममोहन को हमेशा ही प्रिय रहा है। वेदान्त और उपनिषदों के अलावा उन्होंने ब्रह्मसूत्र का शांकर-भाष्य (1818) में प्रकाशित किया था।

इन रचनाओं में राममोहन वेदान्त के व्याख्याकार के रूप में एक विशेष विचारधारा का परिचय देते हैं और अपने विचारों के पक्ष का समर्थन करने के लिए उन्हें कई एक तत्कालीन पण्डितों और रूढ़िवादी विद्वानों से तर्क युद्ध में उतरना पड़ा। इस श्रेणी की रचनाओं में तीन-चार प्रमुख ग्रंथ हैं—1. उत्सवानन्द विद्यावागीशेर सहित विचार (1816-17), 2. भट्टाचार्यर सहित विचार (1818), 3. गोस्वामीर सहित विचार (1818), 4. कविताकारेर सहित विचार (1820)। अँगरेजी में इस प्रकार के खण्डन-मण्डन की श्रेणी में दो ग्रंथ है।

1. A defence of Hindu theism in reply to the attack of an advocate for Idolatry at Madras (1817) 2. A Second defence of the Monotheistical System of the Vedas in reply to an apology for the present State of Hindu worship (1817).

इसी वर्ग के कुछ और ग्रंथ राममोहन ने लिखे थे। विशेषत: ईसाई पादरियों के साथ तर्क युद्ध में उन्होंने ईसाई धर्म विषयक ऐसे खण्डन-मण्डन पेश किये थे, जिन पर आगे विचार किया जायगा।

राममोहन मात्र तात्त्विक या तार्किक ही नहीं थे। वैदिक धर्म और ब्रह्मवाद को जीवन में रूपायित करना उनके जीवन का ध्येय रहा है।[10] इसीलिए जब उन्होंने आगे चलकर 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की तो उन्होंने ब्रह्मोपासना और परम पिता परमेश्वर की साधना की रूपरेखा या प्रणाली भी बनाने की कोशिश की। व्यावहारिक स्वरूप का परिचय उनके निम्नलिखित ग्रन्थों में मिलता है : 1. गायत्रीर अर्थ (1818) 2. प्रार्थना पत्र (1823) 3. ब्रह्मनिष्ट गृहस्थेर लक्षण (1827) 4. गायत्र्या ब्रह्मोपासनाविधानम् (1827) 5. ब्रह्मोपासना (1828) 6. अनुष्ठान (1829), इत्यादि अँगरेजी में भी इस श्रेणी की कुछ पुस्तकें हैं। जैसे : 1. Humble suggestions to his countrymen who believe in the one true God (1823) 2. Translation of a Sanskrit tract on different mode of worship (1825) 3. Translation of a Sanskrit tract inculcating the Divine worship, esteemed to those who believe in the revelation of the Vedas as the

most appropriate to the nature of the Supreme Being (1827) 4. The Universal religion : Religious instructions founded on sacred Authorities (1829).[20]

राममोहन ने वेदान्त के अध्ययन और विवेचन में अपने पूर्वज शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के पदचिह्नों पर चले। इस धारा में शायद अन्तिम आचार्य थे, जिन्होंने वेदान्त पर संक्षेप और साधारण जनता के योग्य सरल भाष्य लिखा।[21] राममोहन विशेष रूप से शंकराचार्य के भाष्य से प्रभावित थे। इसका मुख्य कारण शायद यह रहा होगा कि शंकराचार्य ने ही वेदान्त का ब्रह्म-वादी व्याख्या पेश की थी और वही निर्गुण अद्वैत ब्रह्म के प्रचारक थे। उन्होंने परब्रह्म को किसी प्रकार के साम्प्रदायिक घेरे में नहीं बाँधा। उन्होंने ही सबसे पहले बताया कि ब्रह्मोपासना के लिए यज्ञादि, पूजा-पाठ अनावश्यक है और देवी-देवता भी परमार्थिक दृष्टि से झूठे पड़ते हैं। साम्प्रदायिक संकीर्णता और मूर्तिपूजा के विरोधी आधुनिक युग के राममोहन को ये सिद्धान्त ग्रहण योग्य और ठीक जँचे।

शंकराचार्य के प्रति राममोहन की श्रद्धा का एक और कारण था—शंकराचार्य का निर्द्वन्द्व अद्वैतवादी स्वरूप। राममोहन स्वयं शुरू से ही एकेश्वरवादी थे। अद्वैतवाद का मूल सूत्र है एकमात्र ब्रह्म के सिवा और किसी शक्ति का आध्या-त्मिक अस्तित्व नहीं है। जीव और जगत सभी मिथ्या है।

राममोहन के वेदान्त विषयक ग्रन्थों और खण्डन-मण्डन के वाद-विवादों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राममोहन भी शंकराचार्य की तरह पूर्ण रूप से अद्वैतवादी थे। लेकिन राममोहन के विचारों में कुछ मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। आधुनिकतावादी राममोहन संन्यास आश्रम को स्वीकार करते हुए भी ब्रह्मज्ञान केवलमात्र संन्यासी को ही प्राप्त हो सकता है, यह सिद्धान्त मानने को तैयार नहीं थे। आधुनिक जीवन में सांसारिक कल्याण और आध्यात्मिक मुक्ति दोनों को ही उन्होंने समान प्रधानता दी। ब्रह्मज्ञान केवल मात्र थोड़े से संन्या-सियों की सम्पत्ति रहे, ऐसा राममोहन के आधुनिक मानस को स्वीकार नहीं था। उनका कहना था "केवल संन्यासी होने पर ही मुक्ति होंगे, ऐसा नहीं है, गृहस्थ को भी मुक्ति मिल सकती है।"[22]

राममोहन की मौलिक विचारधारा का एक और परिचय मिलता है। अद्वैतवादी वेदान्त के समर्थक होने पर भी और मायावाद को सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करने पर भी राममोहन को आधुनिक युगोपयोगी समाजकल्याण का आदर्श के साथ अद्वैत का समन्वय ढूंढ़ना था। अद्वैतवाद को न छोड़ते हुए उन्होंने तांत्रिक शक्तिवाद के समन्वय से उसे बहुलांश में व्यावहारिक बनाया।[23]

तीसरी विशेषता थी—राममोहन का ब्रह्मोपासना पर विशेष जोर देना। इस

उपासना या प्रार्थना का व्यक्तिगत और सामाजिक दो अंग हैं। इन दोनों पद्धतियों के बारे में राममोहन ने कई एक ग्रंथों में स्पष्ट निर्देश दिया है।[24]

राममोहन की एक और मौलिकता थी—समाज कल्याण के आदर्श के साथ ब्रह्मवाद या एकेश्वरवाद का सामंजस्य स्थापित करना।[25] यह सामाजिक दृष्टि उन्हें पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के माध्यम से प्राप्त हुई थी। विशेष रूप से ईसाई धर्म के जनसेवा और मानव प्रेम के आदर्शों ने राममोहन को प्रभावित किया था। फारसी कवि शेखसादी की वाणी—"मानव सेवा ही ईश्वर की श्रेष्ठ उपासना है", उनको बहुत ही प्रिय थी। यह मानवीयता उनकी वेदान्त व्याख्या में प्रतिफलित है। सार्वभौम प्रेम के आदर्श के द्वारा मानव कल्याण का आदर्श ही राममोहन का मूल धार्मिक सिद्धान्त था। मानव प्रेम और सेवा धर्म को ब्रह्मवाद या एकेश्वरवाद के अंतर्गत लाकर राममोहन ने उन्नीसवीं शती के नये मानवतावाद की नीव डाली, जो प्राचीन आचार्यों के दर्शन से कुछ सीमा तक एक कदम आगे बढ़ा हुआ था।

राममोहन वस्तुतः शंकराचार्य के रास्ते पर चलकर सारे उपनिषदों का अनुवाद करना चाहते थे, लेकिन अंततः केवल पाँच का ही अनुवाद कर सके। इसी प्रकार वेदान्त सूत्र के अँगरेजी अनुवाद की भूमिका के शीर्षक में लिखा है :

"To the believers of the only true God."

यह एक प्रकार से समर्पण-पत्र सा है। भूमिका में आगे लिखा है कि "मैंने अनन्त और सच्चे ईश्वर की आराधना के लिए मूर्तिपूजा को त्याग दिया है।" अँगरेजी अनुवाद का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा था—

"...to prove to my European friends that the superstitious practices which deform the Hindu religion have nothing to do with pure spirit of its dictates."[26]

राममोहन ने उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गायत्री जैसे कई ग्रंथों का संस्कृत भाषा से साधारण जनता की भाषा बंगला और हिन्दुस्तानी में प्रकाशित किया। यह घटना अपने आप में क्रान्तिकारी घटना थी। उन्होंने ही सबसे पहले हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों को ब्राह्मणों और संस्कृत के बंधन से निकालकर जनता के लिए ज्ञान का दरवाजा खोल दिया। कई शताब्दियों पूर्व ऐसी ही घटना थी चैतन्य महाप्रभु के भक्त कवियों द्वारा वैष्णव धर्म का बंगला भाषा के माध्यम से प्रचार। वर्तमान युग में राममोहन ने ही जनता के लिए मुक्ति और ज्ञान का पथ इतना सुगम कर दिया। उन्होंने केवल अनुवाद ही नहीं किया, वेदान्त या ब्रह्मसूत्र को संक्षिप्त सरल भाषा में 'वेदान्तसार' के शीर्षक से प्रकाशित किया। इस ग्रंथ का प्रकाशन उनके 'वेदान्त ग्रंथ' के साथ ही 1815 में प्रकाशित और प्रचारित

हुआ। वादरायण के ब्रह्मसूत्र में 555 सूत्र दिये गये हैं। राममोहन ने मात्र 34 निर्वाचित सूत्रों की व्याख्या 'वेदान्तसार' पुस्तक में दी है।

इसके अतिरिक्त राममोहन ने अपने 'वेदान्त सार' का अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित किया। इसका मुख्य उद्देश्य शायद, भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म, जिसके बारे में अंगरेजों और यूरोपियों मे बहुत ही हीन धारणा थी, और ईसाई मिशनरियों को, हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता के बारे में सतर्क करना था। अंगरेजी अनुवाद की पुस्तिका में एक भूमिका भी है, जो बंगला संस्करण में नहीं है। इस अंगरेजी भूमिका से कुछ अंश का अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि राममोहन के धार्मिक विचारों की पृष्ठभूमि को समझने में यह सहायक होगी :

"एकमात्र, अद्वितीय, सत्यस्वरूप परमेश्वर में विश्वास करने वालों से निवेदन—

"ब्राह्मण सम्प्रदाय और हिन्दू समाज के दूसरे सम्प्रदायों में अधिकांश लोग, जो आज तक मूर्तिपूजा करते आये हैं, मूर्तिपूजा के पक्ष में तर्कसंगत युक्ति पेश करने में पूरी तरह असफल रहे हैं। इस विषय में उनसे पूछने पर, अपने आचरण के पक्ष में किसी तर्कसंगत विचार पेश करने की अपेक्षा प्रमाण के तौर पर पुरखों की दुहाई देना ही काफी समझते हैं, एवं मैंने एकमात्र परम सत्य अनित्य ईश्वर की पूजा के लिए मूर्तिपूजा का परित्याग करने पर कुछ लोग मेरे से बहुत अप्रसन्न हैं। इसी से मेरे अपने और मेरे पूर्व पुरुषों के धर्मविश्वास के वास्तविक प्रतिपादन के लिए कुछ दिनों से मैं अपने धर्मशास्त्रों का वास्तविक अर्थ अपने स्वदेशवासियों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न कर रहा हूँ।...."
"वेद एवं अंत—इन दो संस्कृत शब्दों से मिलकर इस ग्रन्थ का नामकरण 'वेदान्त' किया गया है। अर्थात् समग्र वेदों की मीमांसा या सन्देहयुक्त अर्थों का निराकरण। आज तक (1816 ई०) इस ग्रन्थ को समग्र हिन्दू जाति श्रद्धा करती आयी है और वेदों के अपेक्षाकृत कठिन सूत्रों के बदले इस ग्रन्थ को ही प्रामाणिक माना जाता है। लेकिन संस्कृत भाषा के अंधकारमय परदे के पीछे छिपे होने के कारण एवं ब्राह्मण लोग अपने को ही केवल इन ग्रन्थों की व्याख्या, यहाँ तक कि इन पुस्तकों के स्पर्श करने का अधिकारी बनाये रखने के कारण, यह वेदान्त ग्रन्थ, यद्यपि प्रमाणस्वरूप प्रायः उद्धृत किया जाता है फिर भी, यह जनसाधारण के बीच प्रचलित नहीं है और बहुत थोड़े से हिन्दू इसके उपदेश का अनुकरण करते हैं।

"अपने विचारों के समर्थन के लिए अब तक जनसाधारण में आज तक अपरिचित इस वेदान्त ग्रन्थ का और इसके मूल सारांश का हिन्दी और बंगला अनुवाद करके अपनी क्षमता के अनुसार छपवाकर निःशुल्क अपने स्वदेशवासियों

में जितनी दूर तक बँटवाना सम्भव था, मैंने बँटवाया। वेदान्त के संक्षिप्त सारांश के इस अँगरेजी अनुवाद के द्वारा मुझे आशा है कि मैं अपने यूरोपीय मित्रों के समक्ष प्रमाणित कर सकूँगा कि कुसंस्कारपूर्ण रीति-रिवाजों और धार्मिक अनुष्ठानों ने हिन्दू धर्म को विकृत कर दिया है इनके साथ ही इस धर्म के पवित्र उपदेशों का कोई तात्त्विक सम्बन्ध नहीं है ।....

"....जो भी हो, इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि मैं हार्दिक रूप से प्रमाणित करके दिखाना चाहता हूँ कि हमारे पूजा का प्रत्येक अनुष्ठान, एकम्, अद्वितीय, सत्य स्वरूप ईश्वर के आरोपित या लाक्षणिक पूजा, पद्धति से उत्पन्न हुआ है। लेकिन आजकल लोग इस तथ्य को भुला बैठे हैं और बहुतेरे लोग इस विषय का उल्लेख मात्र करना नास्तिकता समझते हैं ।...."

"....ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करके अपनी विवेक बुद्धि और सरलता द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलते हुए मैं, कुसंस्कारों और लौकिक सुख के लिए प्रचलित धार्मिक प्रथाओं पर आश्रित अपने नाते-रिश्तेदारों के क्रोध और अनादर का भागी बना हूँ ।...."

"लेकिन ये उलाहने, शिकायतें और तिरस्कार चाहे जितने भी एकत्रित हों, मैं इस विश्वास पर सहन कर सकता हूँ कि एक दिन अवश्य आयेगा जब मेरी इन छोटी-छोटी प्रचेष्टाओं का निरपेक्ष विवेचन होगा। जो भी हो, और लोग जो भी कहें, मैं इस बात से पूर्ण आश्वस्त हूँ कि परम पिता परमेश्वर अदृश्य रूप से सब कुछ देख रहे हैं और मेरी अंतरात्मा के अभिप्राय का अवश्य ही अनुमोदन कर रहे होंगे ।"[27]

वेदान्त या ब्रह्मसूत्र के भाषान्तर के बाद, और 'वेदान्तसार' संकलन के प्रकाशन के बाद राममोहन का ध्यान उपनिषदों के अनुवाद की ओर गया। राममोहन की अभिलाषा दशोपनिषदों का बंगला अनुवाद करने की रही थी। लेकिन अंत तक केवल पाँच उपनिषदों का अनुवाद पूरा सके। ये थे तलबकार या केन उपनिषद्, यजुर्वेदीय ईश और कठ उपनिषद् और अथर्ववेदीय माण्डूक्य और मुण्डक उपनिषद। यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है कि राममोहन ने इन ग्रन्थों का आक्षरिक अनुवाद नहीं किया। बल्कि शंकराचार्य के भाष्य पर आधारित भाषा-विवरण दिया है।[28]

केनोपनिषद् के प्रकाशन के थोड़े ही दिनों में ईशोपनिषद् का प्रकाशन (1816) हुआ। इस ग्रन्थ की भूमिका में राममोहन ने निराकार ईश्वर की उपासना ही श्रेष्ठ है, इसके समर्थन में बहुत से शास्त्रीय प्रमाण उद्धृत किये हैं। भूमिका से स्पष्ट है कि कलकत्ता में आत्मीय सभा की स्थापना काल से ही राममोहन के विचारों की सार्वजनिक रूप से प्रत्यक्ष या परोक्ष आलोचना आरम्भ हो गयी थी। उस काल (1816) में सम्भवतः राममोहन द्वारा

रचित, एक बंगला ब्रह्म संगीत, मूल, देवनागरी लिपि से उद्धृत करना प्रासंगिक होगा जो राममोहन के निराकार ईश्वर स्वरूप को मूर्तिपूजा के परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट करता है :

के भूलाल हाय
कल्पना के सत्य करे जान, एकि दाय।
आपनि गड़ह् जाके
जे तोमार बशे ताँके
केमने ईश्वर डाके कर अभिप्राय ?
कखनो भूषण देओ, कखनो आहार
क्षणेके स्थापह्, क्षणके करह् संहार
प्रभु बलि मान जारे
सम्मुखे नाचाओ तारे—
हेन भूल संसारे देखेछ कोथाय ?[29]

ईशोपनिषद की भूमिका में और 'अनुष्ठान' शीर्षक एक और आलेख में निराकार ब्रह्म की उपासना के बारे में विस्तृत विवेचन पेश किया गया है। इस लेख में उन्होंने सर्वप्रथम अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया। हिन्दू धर्मशास्त्रों से उद्धरण देकर उन्होंने अपना तर्क सिद्ध करने का प्रयास किया।

राममोहन ने कठोपनिषद् का अँगरेजी अनुवाद, बंगला पुस्तक के प्रकाशन के तीन वर्ष बाद 1819 में किया था। अनुवाद की भूमिका में जो बंगला संस्करण में नहीं थी, इस उपनिषद के अँगरेजी प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए राममोहन ने लिखा था : "The present publication is intended to assist the European community in forming their opinion respecting Hindu theology, rather from the matter found in the doctrinal scriptures, than from the Puranas, moral tales or any other modern works or from the superstitious rites, and habits daily encouraged and fostered by their self-interested leaders."[30]

कठोपनिषद् के प्रकाशन के कुछ ही दिनों के अन्दर 1817 में माण्डूक्योपनिषद का प्रकाशन हुआ। इस छोटे से ग्रन्थ की राममोहन ने लम्बी भूमिका दी है। इस बात को अच्छी तरह समझते थे सब लोगों की साधना का एक रास्ता नहीं हो सकता। उन्होंने इस तथ्य पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है, फिर भी 'प्रणव' और 'गायत्री मंत्र' और 'ध्यान' पर जोर दिया। इसमें मुख्य रूप से श्रद्धा की दृढ़ता और विचार क्षमता की आवश्यकता को दिखाने की कोशिश की।

अंत में मुण्डकोपनिषद् का बंगला संस्करण और साथ ही अँगरेजी अनुवाद 1819 में प्रकाशित हुआ।

'प्रस्थान त्रयी' की श्रेणी में अन्तिम धर्म ग्रन्थ है—भगवद्गीता। राममोहन द्वारा अनुवादित गीता आज तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। केवल उनके द्वारा रचित दूसरे पुस्तकों में इस पुस्तक का प्रासंगिक उल्लेख मिलता है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि राममोहन ने गीता का पद्यानुवाद किया था।[31] लेकिन तथ्य यह है कि राममोहन 'गीता' को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उन्होंने अपनी रचनाओं मे गीता से अनुवाद करके अनेक उद्धृतियाँ दी थीं।

मुख्यतः जिन ग्रन्थों का सहारा लेकर राममोहन ने अपने धार्मिक विचार-धारा की व्याख्या की थी उनमें उपनिषदों की भूमिका सहित अनुवाद, ब्रह्मसूत्र का वेदान्त ग्रन्थ शीर्षक भाषा, वेदान्त सार और भगवद्गीता का अनुवाद है। भगवद्गीता के बारे में पहले ही बताया जा चुका है कि यह उपलब्ध नहीं है। आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में वेदान्त की नई व्याख्या देने की आंतरिक इच्छा के होते हुए भी उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों के पथ का अनुसरण किया।[32] इनमें शंकराचार्य का प्रभाव राममोहन पर सबसे अधिक पड़ा। उन्होंने शंकरभाष्य का निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। कहीं-कहीं छोटे-मोटे भेद अवश्य हैं। शंकराचार्य के प्रति राममोहन की श्रद्धा का मुख्य कारण था—शंकराचार्य का 'अद्वैतवाद'। राममोहन ने इस एकतत्त्ववाद या एकेश्वरवाद को हृदय से लगाया था। दार्शनिक सिद्धान्त की ओर से देखें तो राममोहन पूरी तरह अद्वैतवादी थे। लेकिन वेदान्तिक होते हुए भी ब्रह्मवाद को समाज कल्याण के आदर्श का सामंजस्य स्थापित करना ही राममोहन का मुख्य उद्देश्य था। यह सामाजिक दृष्टिकोण उन्हें पाश्चात्य दर्शन और ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन से मिला। ईसाई धर्म की मानव सेवा और मानव प्रेम के आदर्श ने उन्हें प्रभावित किया था। शेख सादी की वाणी "मानव सेवा ही ईश्वर की श्रेष्ठ उपासना है" उन्हें बहुत प्रिय थी। ब्रह्मसूत्र के एक सूत्र "परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्वनुबंधः" की व्याख्या करते हुए राममोहन ने लिखा था—"परमेश्वर और उनके जनों के साथ अनुबन्ध अर्थात् प्रेम और प्रेमयुक्त व्यवहार करना ही उसकी उपासना है।" इस प्रकार राममोहन ने अद्वैतवाद के साथ लोकसंग्रह की भावना को जोड़ा और इसी को ईश्वर की उपासना का सही रूप कहा था। यह नये युग के लिए नया मंत्र था, जो राममोहन के उत्तराधिकारियों ने देश के कल्याण के काम में प्रयोग किया।

वेदान्त, उपनिषद और गीता के अतिरिक्त पुराण और तंत्र का भी राममोहन ने गहरा अध्ययन किया था। उनकी रचनाओं में सभी पुराणों का अनेकानेक उल्लेख आता है। इससे स्पष्ट है कि राममोहन ने अपने को वैदिक साहित्य

को ज्ञान मार्ग तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि विस्तृत पौराणिक साहित्य के साथ उनका गहरा परिचय था।[33] राममोहन इस वास्तविकता से अनभिज्ञ नहीं थे कि साकार की उपासना सरल और साधारण लोगों के लिए उपयुक्त है। राममोहन ने यह बात कई एक प्रसंग में स्पष्ट की है.... "वास्तव में जिन वचनों के द्वारा द्विभुज, चतुर्भुज, शतभुज और सहस्रभुज इत्यादि रूप में ब्रह्मरूप का आरोपन कहा है, उन वचनों के साथ वेदान्तसूत्र एकमत होकर सभी ऋषियों या ग्रन्थों के प्रणेताओं ने इस सिद्धान्त को माना है कि ये रूप या आकार कल्पना मात्र हैं। जब तक ब्रह्म जिज्ञासा मन में पैदा न हो, तब तक ईश्वर का उद्देश्य मानकर काल्पनिक रूप की आराधना करने से चित्त शुद्ध होकर ब्रह्म जिज्ञासा की सम्भावना बनती है लेकिन ब्रह्म जिज्ञासा होने पर काल्पनिक स्वरूप की उपासना की आवश्यकता नहीं रहती....।"[34] राममोहन ने स्पष्ट ही कहा कि पुराण, तन्त्र आदि में ईश्वर की रूप-कल्पना, कल्पना ही है, इसमें कोई तथ्य नहीं है।

तन्त्रशास्त्र से प्रभावित होने के पीछे दो कारण हो सकते हैं—पहला यह कि राममोहन के ननिहालवाले शाक्त तांत्रिक थे और दूसरा मुख्य कारण, जिसका उल्लेख उनके जीवनी खण्ड में हो चुका है, वह था तांत्रिक संन्यासी हरिहरानन्द तीर्थस्वामी कुलावधूत के साथ आजीवन निकट सम्बन्ध। कलकत्ते में राममोहन के पास रहते हुए इन्होंने 'कुलार्नव तन्त्र' और 'महानिर्वाण तन्त्र' की प्रसिद्ध टीका की रचना की थी। राममोहन ने हरिहरानन्द से तन्त्रशास्त्र का अध्ययन किया था। 'तन्त्र' भारतीय दार्शनिक चिन्तन और जीवनचर्या की एक विशिष्ट धारा है। हिन्दू धर्म में प्रचलित देवी-देवताओं की पूजा और धार्मिक अनुष्ठान तन्त्र के द्वारा व्यापक रूप से प्रभावित है। लेकिन आचार अनुष्ठानों के बाह्य रूप के नीचे एक गहन तात्त्विक या गम्भीर सैद्धान्तिक आधार है और यहाँ पहुँचकर तन्त्र, दर्शन और अद्वैत वेदान्त में कोई सैद्धान्तिक भेद नहीं रहता। इसी से शंकराचार्य के परवर्ती आचार्यों में से कई आचार्यों ने इन धाराओं में सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की थी। सामाजिक धरातल पर तन्त्र-दर्शन, अद्वैतवाद की अपेक्षा उदार और प्रगतिशील है।[35] इस वास्तविकता से राममोहन भलीभाँति परिचित थे। हमें ज्ञात है कि प्राचीन युग में जैसा भी रहा हो लेकिन परवर्तीकाल में वैदिक धर्म दर्शन एवं चिन्तन में संकीर्णता आ गई थी। यहाँ तक कि नारी और शूद्रों के लिए वेदों का अध्ययन धर्म विरुद्ध माना जाता था। ब्रह्मज्ञान और वैदिक अधिकार से नारी और शूद्र वंचित कर दिये गये। शास्त्रों में सर्वप्रथम तन्त्रशास्त्र ने ही इस भेदभाव को तोड़ने का बीड़ा उठाया। गौतमीतन्त्र के आरम्भ के एक श्लोक में ऋषि गौतम विष्णु से प्रार्थना करते हैं :

येन सर्वफलाव्याप्तिः सर्वेशां बन्धुरेव यः
सर्वंवर्णाधिकारश्च नारीनां योग्य एव च
तं ब्रुहि भगवन्मंत्रम् मम् सर्वार्थसिद्धये ।

"जो मंत्र सर्वफल प्रदान करने वाला, सबका बन्धु है, जिस मंत्र में सभी वर्णों का समानाधिकार और जो मंत्र नारी के योग्य हो, हे भगवान, सर्वार्थ सिद्धि के लिए मुझे ऐसा मन्त्र दे।"[86] महानिर्वाणतन्त्र में स्पष्टतः चाण्डाल और यवनों के लिए भी सर्वोच्च ब्रह्मज्ञान और उपासना का अधिकार स्वीकार किया गया है। धर्म साधना के क्षेत्र में यह समदर्शिता तन्त्र की विशेषता है। राममोहन के शास्त्रीय ग्रन्थों में, विशेष रूप से जहाँ उन्होंने सामाजिक कल्याण के लिए आन्दोलन किया उनमें तन्त्रों से अनेक उद्धरण और युक्तियाँ प्रस्तुत कीं। विशेष रूप से सती प्रथा के विरुद्ध अपने शास्त्रार्थ में उन्होंने तन्त्रशास्त्र से अपने तर्क रखे थे। यहाँ तक कि गायत्री मंत्र की श्रेष्ठता भी राममोहन ने महानिर्वाण तन्त्र के द्वारा ही स्थापित की। धर्म साधना या ईश्वरोपासना के क्षेत्र में अपने सार्वभौम उदार दृष्टिकोण के लिए राममोहन किसी सीमा तक तंत्रशास्त्र के ऋणी थे इसमें कोई संदेह नहीं इसी से ब्रह्म समाज के भवन, निर्माण के न्यास पत्र में देश, जाति, धर्म निर्विशेष सभी ईश्वर उपासकों के लिए उपासना-भवन के निर्माण का उद्देश्य लेकर आगे बढ़े थे।

ईसा मसीह के नीति वचन

अब तक हमने राममोहन के धार्मिक विचार प्रक्रिया को हिन्दू धर्मशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखा। हमें ज्ञात है कि राममोहन जब धर्मशास्त्र के अनुशीलन में लगे थे तो एक समय वे बड़ी तीव्रता के साथ ईसा प्रवर्तित धर्म की ओर भी आकृष्ट हुए थे। इसी कारण श्रीरामपुर बैप्टिस्ट मिशन के विलियम केरी, एडम जैसे ईसाई मिशनरियों से राममोहन की गहरी मित्रता हो गई थी। इन पादरियों की निष्ठा, विद्वत्ता, भाषा ज्ञान और धर्म में गहरी रुचि के कारण राममोहन आकृष्ट हुए। उस काल में राममोहन एक विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

बाईबिल का अध्ययन करके राममोहन इस निर्णय पर पहुँचे कि ईसाई जिस रूप में ईसा मसीह को प्रायः देवता या अवतार समझने लगे हैं या प्रचार करते है, इसकी प्रामाणिकता या समर्थन मूल ईसाई धर्मग्रन्थों में नहीं है। फिर भी ईसा के उपदेशों में उन्हे विश्वजनीनता का आभास मिला जो अन्यत्र दुर्लभ था। इसी से जिस प्रकार वेदान्त और उपनिषदों का बंगला, हिन्दी और अँगरेजी अनुवाद करके जनता तक पहुँचा दिया उसी प्रकार ईसा मसीह के मूल उपदेशों का संग्रह और अनुवाद करने की इच्छा हुई। मूल उपदेशों का संग्रह अँगरेजी में Precepts of Jesus : The guide to peace and happiness के शीर्षक

से छपवाकर उन्होंने बँटवाया। यद्यपि अँगरेजी पुस्तक में संस्कृत और बंगला अनुवाद होने का संकेत है।[87] लेकिन यह संस्कृत और बंगला अनुवाद सम्भवतः वे पूरा न कर सके। हो सकता है कि 'प्रिसेप्टस' के प्रकाशन के बाद ईसाई पादरियों ने उन्हें जिस प्रकार नीचा दिखाने या अपमानित करने की कोशिश की, इससे वे अपनी योजना को कार्यान्वित न कर सके।[88] यहीं से राममोहन ईसाई पादरियों के साथ अपने प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में जुट गये। इसका कुछ विवरण जीवनी खण्ड में दिया जा चुका है।

'प्रीसेप्टस' की भूमिका में राममोहन ने लिखा था :

"This simple code of religion and morality is so admirably calculated to elevate men's ideas to high and liberal notions of God, who has equally subjected all living creatures, without distinction of caste, rank or wealth, to change, disappointment pain and death and has equally, admitted all to be partakers of bountiful mercies...."

उन्होंने भूमिका में आगे कहा कि नैतिक उपदेशों का संकलन केवल इसलिए किया गया कि इससे विभिन्न मतावलम्बी लोगों में हमदर्दी और सहानुभूति की भावना पैदा हो—

...."improving the hearts and minds of men of different persuasions and degrees of understanding...."

इसी सिलसिले में राममोहन ने एक जगह स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक जीवन सही अर्थों में धर्म और नीति दोनों के सहयोग से सफल होता है। वेदान्तसूत्र और उपनिषदों के प्रकाशन से जैसे हिन्दू समाज के ठेकेदार उत्तेजित हो उठे थे वैसे ही 'प्रीसेप्टस' के प्रकाशन से ईसाई पादरी। ईसाई धर्म के पादरीगण अपने को एकमात्र व्याख्याता समझते थे। मार्शमैन साहब ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में राममोहन को 'इंटेलीजेंट हीदन', 'डीइस्ट' और 'इनफिडल' कहा, अर्थात इन लोगों की मुक्ति असम्भव है।[89] राममोहन भला चुप बैठने वाले कहाँ थे। एक के बाद दो और तीसरे अपील के द्वारा उन्होंने मार्शमैन के तर्कों को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। यहीं से उस लम्बे तर्कयुद्ध का आरम्भ होता है जब राममोहन ने एक के बाद दूसरे और तीसरे अपील प्रकाशित किए। इस शास्त्रार्थ का विवरण पहले दिया जा चुका है। इस वितर्क के दौरान राममोहन ने अपने को एक प्राच्यविद और विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया था। हिब्रू और ग्रीक भाषाओं के माध्यम से उन्होंने ईसाई धर्म के मूल तत्वों को खोज निकालने में उन्होंने कठिन परिश्रम किया। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्होंने ईसाई धर्म में प्रचलित त्रित्ववाद (Trinitarianism)

ईसामसीह में ईश्वरत्व का आरोप और सारे लोगों के पाप का ईसामसीह द्वारा प्रायश्चित करना (atonement) और ईसामसीह के अलौकिक एवं चमत्कार पूर्ण कियाकलापों (miracles) का आसानी से शास्त्रीय प्रमाणों के साथ खंडन किया। उन्होंने 'सेकेण्ड अपील टू द क्रिश्चियन पब्लिक' (1821) में अपने ईसाई धर्म सम्बन्धी पैठ का परिचय देते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से अपने पक्ष को बहुत ही सफलता से पेश किया। पादरी लोग समझते थे कि राममोहन 'प्रिसेप्टस आफ जीसस' लिखकर उनके ईसाई धार्मिक सत्य पर प्रहार किया है। राममोहन वस्तुत: अकेले एक संगठित धार्मिक वर्ग से मोर्चा ले रहे थे। हम जानते हैं कि जब राममोहन ने 'अन्तिम अपील' भेजी तो श्रीरामपुर के पादरियों के पैरों से जमीन निकल गयी। उन्होंने लेख छापने से इनकार कर दिया। इधर डॉ० टाइटलर ने एक पत्र लिखकर हिन्दू धर्म पर प्रहार किया तो राममोहन भी भरपूर उत्तर देते हुए 'त्रित्ववाद' पर और भी प्रहार किये। "A few quaries for the serious consideration of Trinitarions pt I and II" का प्रकाशन 1823 में हुआ। बेप्टिस्ट मिशन के साथ तर्कयुद्ध समाप्त होते-होते **'समाचार दर्पण'** में प्रकाशित हिन्दू धर्म विरोधी लेखों के लिए राममोहन को फिर लखनी उठानी पड़ी। लेकिन ईसाई मिशनरियों ने अपने पत्रिका में राममोहन के उत्तर छापने से इनकार कर दिया तो उन्होंने **ब्राह्मण सेवधि** और **ब्राह्मनिकल मैगजीन** प्रकाशित किया। यह इतिहास भी हम पहले ही पढ़ चुके हैं।

'ब्राह्मणसेवधि' के पहले अंक से कुछ अंश का भावानुवाद, राममोहन की ईसाई मिशनरियों के सम्बन्ध में विचारकों को समझने में सहायक होगी—

"अर्ध शताब्दी से अधिककाल से इस देश में अंगरेजों का अधिकार चला आ रहा है। पहले तीस वर्षों तक उनके वचन और कर्म से सर्वत्र यही प्रसिद्ध था कि ये लोग किसी के धर्म के साथ विरोधिता नहीं करते और सभी अपने-अपने धर्म का पालन करे उनकी ऐसी ही इच्छा है....लेकिन इधर पिछले बीस वर्षों से कुछ अँगरेज व्यक्ति जो मिशनरियों के नाम से विख्यात है हिन्दू और मुसलमानों को खुलेआम उनके धर्म से च्युत कराकर ईसाई बनाने की कोशिश कर रहे हैं। बंगाल में जहाँ अँगरेजों का पूर्ण अधिकार है और जहाँ लोग अँगरेजों के नाम से ही भयभीत होते हैं वहाँ ऐसे दुर्बल, दीन और डरी हुई प्रजा पर और उनके धर्म पर अत्याचार करना, धार्मिक या लौकिक किसी रूप में भी प्रशंसनीय कहा नहीं जा सकता....निन्दा और तिरस्कार के द्वारा या लोभ दिखाकर धर्म प्रचार, युक्तिपूर्ण या विचारणीय नहीं कहा जा सकता। लेकिन तर्क द्वारा हिन्दू धर्म की निकृष्टता या उनके अपने धर्म की उत्कृष्टता यदि प्रमाणित कर सकें तो लोग अपनी इच्छा से उनका धर्म स्वीकार कर लेंगे....क्योंकि सत्य और धर्म

हमेशा ऐश्वर्य, अधिकार, ऊँचे पद या महलों के आश्रय में रहेगी ऐसा कोई नियम नहीं है। हाल ही में श्रीरामपुर के मिशनरी ने हिन्दू शास्त्रों को असंगत बताकर जो विद्वेषपूर्ण लेख प्रकाशित किया है उन सभी प्रश्नों का उत्तर हमने इसमें छापा है....'' विदेशी और विधर्मी पादरियों द्वारा हिन्दू धर्म की निन्दा करते देख राममोहन हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों की रक्षा में जुट गये।

राममोहन के धर्म सम्बन्धी विचारधारा के विकास प्रक्रिया में एडम साहब का त्रित्ववाद में विश्वास खोना और राममोहन के एकेश्वरवादी खेमे में आ जाना एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी। जिसके बारे में विस्तार से पहले ही लिखा जा चुका है। इस घटना के तात्त्विक या सैद्धान्तिक प्रश्न पर थोड़ा विचार करना होगा।

एक साधारण हिन्दू के लिए उस काल में 'ब्रह्म समाज' का सदस्य बनना जितना कठिन था, किसी साधारण ईसाई के लिए त्रित्ववाद त्यागकर 'युनिटेरियन' बनना उतना ही कठिन था। यह करीब-करीब ईसाई धर्म त्यागने के समान था। फिर भी बैप्टिस्ट मिशनरी एडम ने 'युनिटेरियन' धर्म को स्वीकार किया और उसके प्रचार के लिए जी जान से लग गये। राममोहन की सहायता से काम कुछ आगे भी बढ़ा। राममोहन के ईसामसीह के प्रति प्रेम को देखकर एडम साहब को पूरी आशा बंधी थी कि एक न एक दिन राममोहन ईसाई धर्म अवश्य ग्रहण करेंगे। कम से कम युनिटेरियन ईसाई धर्म के ग्रहण के बारे में तो कोई संदेह का अवकाश था ही नहीं। बिशप मिडलटन ने भी सोचा था कि राममोहन एक दिन अवश्य ही ईसाई धर्म ग्रहण करेंगे। लेकिन इन दोनों को ही निराशा हाथ लगी। राममोहन भक्ति और श्रद्धा के साथ एडम साहब के 'युनिटेरियन चर्च' में जाते रहे लेकिन जब उन्हें लगा कि यहाँ भी ईसाई धर्म का न्यूनाधिक प्रचार हो रहा है तो वे इससे अलग हट गये। वे विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रचार चाहते थे। लेकिन 'युनिटेरियन' चर्च के द्वारा उनका स्वप्न साकार नहीं हुआ। राममोहन के लिए हिन्दू धर्म के अवतारवाद और ईसाई धर्म के अवतारवाद में कोई अन्तर नहीं था उन्होंने दोनों का समान रूप से विरोध किया।[40] वैसे युनिटेरियन मतावलम्बी के रूप में और ईसाई धर्म के व्याख्याता के रूप में उनकी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति फैल चुकी थी। राममोहन के इंगलैण्ड की भूमि पर पहुँचते ही युनिटेरियन मत के पोषक ईसाई धर्मावलम्बी सदस्यों ने राममोहन का सार्वजनिक स्वागत किया, जिसका विवरण जीवनी खण्ड में दिया जा चुका है। राममोहन अमेरिका नहीं गये थे लेकिन उनकी ख्याति अमेरिका तक फैल चुकी थी। राममोहन की मृत्यु के बाद उनके मित्र वर्ग में इस बात को लेकर वितर्क चला कि राममोहन ने धर्म के मामले में अपने अन्तिम समय में कौन-सा रुख अपनाया। उनके कुछ ईसाई मित्रों ने यह दावा किया कि राममोहन

अपने अन्तिम दिनों में पूर्ण रूप से ईसाई धर्म के पक्ष में आ गये थे। कुछ ईसाइयों ने उनके युनिटेरियन होने का दावा किया तो कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा कि वे अन्तिम दिनों में त्रित्ववादी ईसाई धर्म के अनुयायी बन गये थे। मेरी कार्पेन्टर ने अपनी पुस्तक में डॉ० कार्पेन्टर के हवाले से राममोहन के ईसाई धर्म की ओर झुकने की बात लिखी थी। वस्तुत: ऐसी ही घटना उनके जीवनकाल में कलकत्ता में भी घटी थी, जब लोगों ने विश्वास किया था कि वे 'युनिटेरियन' ईसाई धर्म के समर्थक हैं। इस विषय में एडम साहब के एक पत्र का कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक है क्योंकि इस पत्र के द्वारा राममोहन की विचार धारा का समसामयिक मूल्यांकन मिलता है। पत्र की कुछ पंक्तियों इस प्रकार हैं—

> "Rammohun Roy, I am persuaded, supports this institution (Brahma Samaj) not because he believes in the divine authority of Ved, but solely as an instrument for over throwing idolatry. To be candid, however, I must add that the conviction has gained ground in my mind that he employs Unitarian Christianity in the same way as an instrument for spreading pure and just notions of God, without believing in the divine authority of the Gospel"[41]

अर्थात् उन्होंने वेदों को अचूक या ईश्वरीय न मानते हुए भी उनका प्रयोग मूर्ति पूजा के विरोध में किया और युनिटेरियनवाद का प्रयोग भी शुद्ध एकेश्वर-वाद के प्रचार के लिए किया। राजनारायण बसु ने अपने पिता नन्दकिशोर बसु जो राममोहन के शिष्य थे से सुना था कि विलायत रवाना होते समय राममोहन ने कहा था—"मेरी मृत्यु पर अलग-अलग सम्प्रदाय के लोग मुझे अपने सम्प्रदाय के अंतर्गत होने का दावा करेंगे लेकिन मैं किसी भी सम्प्रदाय का नहीं हूँ। हम लोगों का धर्म विश्वजनीन और सार्वभौम है।"[42]

राममोहन के धार्मिक विचारों पर ध्यान से देखें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत के आधुनिक इतिहास में राममोहन ही शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस्लाम, हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा वे इस तथ्य पर पहुँचे थे कि धर्म और साधना का पथ प्रत्येक जाति और देश का अपना-अपना है और उसका सही प्रतिपादन अपनी भाषाओं और देश के अपने धर्म शास्त्रों के द्वारा ही सम्भव है। प्रत्येक जाति और देश अपनी संस्कृति और प्राचीन इतिहास से बंधा है। इन बंधनों को तोड़ना कोई सहज काम नहीं। राममोहन ने इस्लाम के एकेश्वरवादी

युक्तिवाद को समझने की कोशिश की थी। ईसाई धर्म के नैतिक उपदेशों का संग्रह करके उन्होंने सोचा था लोगों को सुख और शान्ति का रास्ता दिखा सकेंगे। लेकिन प्रत्येक पग पर उन्हें लगा कि सभी धर्म अपने-अपने सीमित और संकीर्ण घेरे में बंधे हैं। विशुद्ध युक्तिवादी विचार साधारण जनता के लिए समझना कठिन है। इसी से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस देश की हिन्दू जनता को संकीर्ण रूढ़िवाद से मुक्ति दिलाने का पथ हिन्दू शास्त्रों से ही ढूँढ़ना पड़ेगा। इसी अनुशीलन और मनन का नतीजा था कि उन्होंने एक सार्वभौम धार्मिक संस्था 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की। उद्देश्य था सभी धर्मों के मूल तत्त्वों को एकत्रित करके एक नये मानव धर्म की स्थापना करना। 'ब्रह्मसमाज' वस्तुतः राममोहन के धार्मिक विचारों और सर्वधर्म समन्वय साधना का ही स्वरूप था। इसके बारे में हम विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं। यह एक अलग इतिहास है कि 'ब्रह्मसमाज' ने आगे चलकर कैसे एक छोटे से धर्म-सम्प्रदाय का रूप ले लिया और उसकी सर्वधर्म समन्वय की भूमिका राममोहन के साथ एक ऐतिहासिक तथ्य बनकर रह गई। यहाँ पर एक बात स्पष्ट करनी आवश्यक है। राममोहन ने ब्रह्मसमाज के द्वारा कोई नये धर्म को प्रचारित करने की कोशिश नहीं की बल्कि उनका उद्देश्य था हिन्दू समाज को प्रचलित संकीर्णता, असत्य, अंधविश्वास और झूठे पाखण्डों से मुक्त करना। इसी से उन्होंने मूर्तिपूजा से लेकर सारे अनुष्ठानों और धर्म के नाम पर प्रचलित रीति-रिवाजों के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन किया।

प्राचीन धर्म शास्त्रों के मूल सिद्धान्तों को खोज निकालने और आधुनिक काल की आवश्यकताओं के अनुरूप इन सिद्धान्तों को समन्वित रूप देने में राममोहन ने ऐतिहासिक भूमिका निभायी। संसार के प्रमुख धर्मों का तुलनात्मक विवेचन, सर्वधर्म समन्वय और सार्वभौम धर्म दर्शन के प्रवर्तक के रूप में राममोहन की भूमिका एक ऐतिहासिक घटना थी। आधुनिक भारत का इतिहास-दर्शन इस घटना का साक्षी है।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ

1. मुखोपाध्याय : **राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य** (बंगला), पृ० ५ (भूमिका से)

2. 'तुह्फात उल मुवाहदीन' का अँगरेजी अनुवाद ढाका के मौलवी उबैदुल्लाह अल उबैद ने किया था, जो कलकत्ता से 1884 में प्रकाशित हुआ था। बाद में यह राममोहन अँगरेजी रचना संकलन में सम्मिलित कर लिया गया।

3. English works ed. by J. C. Ghosh, पृ० 948.

4. वही, पृ० 953.

5. वही, पृ० 950. (मुखोपाध्याय : पृ० 89-90 से बंगला अनुवाद के आधार पर)

6. वही, 955.

7. वही, 951.

8. वही, 957.

9. विश्वास, **राममोहन समीक्षा**, पृ० 55.

10. English works, पृ० 957.

11. वही, पृ० 958.

12. वही, पृ० 958.

"Firstly—A class of deceivers who in order to attract the people to themselves willfully invent doctrines, creeds and faiths and put the people to troubles and cause disunion amongst them.

2ndly—A class of deceived people who without inquiring into the fact, adhere to others.

3rdly—A class of people who are deceivers and also deceived, they are those who having themselves faith in the sayings of another, induce others to adhere to them.

4thly—Those who by the help of Almighty God are neither deceivers nor deceived."

13. विश्वास, पृ० 57-58.

14. वही, पृ० 58. उक्त पुस्तक के परिशिष्ट में (पृ० 575-598) रचना का बंगला अनुवाद और विस्तृत आलोचना दी गई है।

15. पृ० 201.

16. विश्वास, पृ० 89-90 में चन्द्रशेखर देव के Reminiscences of Rommohun Roy (तत्व बोधिनी पत्रिका) से उद्धृत।

17. मुखोपाध्याय, पृ० 197.

18. वही, पृ० 197.

19. विश्वास, पृ० 104.

20. वही, पृ० 104.

21. वही, पृ० 105.

22. वही, पृ० 128.

23. वही, पृ० 129.

24. वही, पृ० 132.

25. वही, पृ० 135.

26. मुखोपाध्याय : पृ० 222-223.

27. वही, पृ० 223-226 पर इस अँगरेजी भूमिका का पूरा बंगला अनुवाद उपलब्ध है अँगरेजी भूमिका के लिए द्र० : English works ed. by J. C. Ghosh vol. I देखें।

28. वही, पृ० 230.

29. वही, पृ० 232.

30. English works ed. by J. C. Ghosh vol. I, पृ० 43.

31. मुखोपाध्याय : पृ० 244. "यह अनुवाद राममोहन राय ने छद्मनाम से किया था या नहीं यह बताना सम्भव नहीं लेकिन भगवद्गीता का पद्यानुवाद किया था इसके प्रमाण उपलब्ध हैं।" 1845 में राजेन्द्रलाल मित्र ने 'विविधार्थ संग्रह' में लिखा था कि राममोहन ने गीता का अनुवाद बंगला पद्य में किया था। इसके अतिरिक्त राममोहन के ही 'सहमरण विषय' पुस्तक में इसका जिक्र आया है।

32. विश्वास, पृ० 118.

33. वही, पृ० 162 में राममोहन के साहित्य में 26 पुराणों से प्रयोग किये गये सैकड़ों उद्धरणों के आधार पर प्रमाणित किया गया है कि राममोहन का पुराणों के सम्बन्ध में गहरा ज्ञान था।

34. वही, पृ० 163 में राममोहन कृत 'गोस्वामीर सहित विचार' से उद्धृत।

35. वही, पृ० 177.

36. वही, पृ० 181 में आगे विस्तार में जाते हुए लिखा है कि राममोहन ने अपने शास्त्रार्थ विषयक पुस्तकों में कम से कम उन्नीस तंत्र ग्रन्थों का उल्लेख बार-बार किया है। कुल उद्धरणों की एक लम्बी सूची दी गई है।

37. इस अँगरेजी पुस्तक का पूरा शीर्षक था "The Precepts of Jesus The Guide to Peace and Happiness; extracted from the Books of the New Testament, ascribed to the Four Evangelists. With Translations into Sungscrit and Bengalee. Calcutta : 1820 Printed at the Baptist Mission Press, Circular Road Calcutta.

38. मुखोपाध्याय, पृ० 404.

39. 'प्रीसेप्टस' के प्रकाशन पर "Some remarks on that publication, which Dr. Marshman inserted in the 'Friend of

India' and to which he added some Judicious observations of his own...."

इन टिप्पणियों के बारे में डेवकर श्मिट ने एक पत्र में लिखा था : R. Roy wrote to me, after having read the article, that he found the observations of the Editor highly offensive, specially the application to him, of the term 'Heathen'....

डॉ० मार्शमैन श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन की पत्रिका Friend of India के सम्पादक थे।

39. (अ) मुखोपाध्याय, पृ० 418-419 में 'ब्राह्मण सेवधि' से उद्धृत।

40. मुखोपाध्याय, पृ० 437.

41. Collet, पृ० 227.

42. चट्टोपाध्याय, पृ० 326. यह घटना मिस कोलेट की पुस्तक में भी उद्धृत है।

अध्याय—16
भारत में आधुनिक शिक्षा की पहल

राममोहन के जन्म के समय अर्थात् जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में प्रशासनिक पैर जमाना आरम्भ कर दिया, उस अराजक राजनैतिक और सामाजिक परिस्थिति में, देश में शिक्षा की स्थिति कैसी रही होगी कल्पना करना बहुत कठिन नहीं है। उस काल में शिक्षा बहुत ही सीमित वर्ग को ही उपलब्ध थी। गाँवों में कुछ पाठशाला या टोल थे जहाँ संस्कृत शिक्षा दी जाती और कुछ मसजिदों से संलग्न मदरसों या मकतबों में अरबी-फारसी में धार्मिक शिक्षा दी जाती। संस्कृत के उच्च अध्ययन के लिए उत्तर भारत में वाराणसी, उज्जैन जैसे केन्द्र थे तो अरबी-फारसी के केन्द्र पटना, रामपुर, दिल्ली आदि नगर थे। जनशिक्षा या साक्षरता का कोई भी प्रयास इस काल में होना सम्भव नहीं था। छापेखाने की स्थापना इसी काल में भारत की भूमि पर पहले-पहल आरम्भ हुई। फारसी अभी तक राजभाषा थी। यद्यपि भारत में अँगरेजी शासन को पचास वर्ष हो रहे थे लेकिन प्रशासन और अदालत का काम मुग़लकालीन तौर तरीके से चल रहा था। इसी कारण अरबी-फ़ारसी और उर्दू शिक्षा की ओर अभिजात या सम्पन्न वर्ग का ध्यान था। हम देख चुके हैं कि फारसी शिक्षा के लिए राममोहन को बचपन में पटना भेज दिया गया था। वारन हेस्टिंग्स के जमाने में यह महसूस किया गया कि इस्लाम धर्म और शास्त्रों के पठन-पाठन के लिए और अरबी-फारसी और उर्दू के उन्नयन के लिए कलकत्ता में कोई विद्यालय नहीं है। इसी से हेस्टिंग्स ने 1780 में कलकत्ता 'मदरसा' की स्थापना की।[1]

इस प्रकार देखा जाय तो संस्कृत और अरबी-फ़ारसी की शिक्षा कई शताब्दियों से सीमित स्वार्थ के लिए सीमित वर्ग तक ही नियन्त्रित था। स्वार्थ था प्रशासकीय और धार्मिक ठेकेदारी। आज के युग में जिसे जनशिक्षा की संज्ञा दी जाती है यह विचार उस समय तक लोगों के ध्यान में आया ही न था। इस समय देश में यूरोपीय लोगों के आगमन का, चाहे जो भी अर्थ नैतिक और राजनैतिक कारण रहा हो, देश में शिक्षा के प्रचार और प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका बनी। वस्तुतः साधारण जनता की शिक्षा की ओर सबसे पहले ध्यान यूरोपीय ईसाई मिशनरियों का गया। उन्हीं लोगों ने सबसे पहले शिक्षा विस्तार के लिए स्कूल खोले, छापाखाने का प्रयोग करने और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की ओर ध्यान दिया। यह एक सर्वभारतीय घटना थी। मुख्य उद्देश्य यद्यपि ईसाई धर्म का प्रचार ही था। बंगाल क्षेत्र में विलियम केरी इस कार्य में

अगुआ थे। भारत में आते ही उन्होंने मालदह के मदनबाटी गाँव में जहाँ नील-काश्तकारों की कोठियाँ थीं, वहाँ उन्होंने गाँव के लोगों की शिक्षा से लिए पहला स्कूल खोला। विद्यालय के छात्रों के लिए उन्होंने न्यू टेस्टामेन्ट का अनुवाद भी आरम्भ किया। मदनबाटी से अपने छापेखाने के साथ केरी श्रीरामपुर रेवरेण्ड मार्शमैन के पास आ गये। सन् 1800 में उन्होंने श्रीरामपुर में पहला देशी स्कूल खोला[2] और शिक्षा का माध्यम बंगला भाषा ही बनाया। केवल इतना ही नहीं भाषा को शुद्ध और परिष्कृत करके आधुनिक रूप देने का प्रथम प्रयास भी इन ईसाई पादरियों ने ही किया। इस इतिहास से आधुनिक भारतीय भाषा और साहित्य के ज्ञाता परिचित हैं। मालदह के मदनबाटी से पूरे छापेखाने को श्रीरामपुर ले आना और बैप्टिस्ट मिशन प्रेस की स्थापना आदि का भी एक अलग इतिहास है।

इसी बीच संस्कृत साहित्य के कुछ यूरोपीय प्राच्य विदों की प्रचेष्टा से, जिनमें प्रख्यात सर विलियम जोन्स भी थे, एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना 1784 में हो चुकी थी।[3] प्राच्यविद जोनाथन डन्कन जो बनारस के रेजिडेन्ट थे, के प्रयास से 1791 में बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना हुई।[4] कलकत्ता में 'मदरसा' और बनारस के संस्कृत कालेज की स्थापना के पीछे देश शासन के लिए उपयुक्त शासक वर्ग को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षित करना था। हाँ इस प्रयासों से संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति के पुनर्मूल्यांकन की ओर ध्यान अवश्य गया। सन् 1800 में लार्ड वेलेजली द्वारा यूरोपीय प्रशासकों की शिक्षा के लिये फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना भी एक महत्त्वपूर्ण घटना थी यद्यपि यह कालेज केवल मात्र ब्रिटिश शासकों को प्रशिक्षित करने के लिये स्थापित की गई थी फिर भी इस संस्था के पंडितों और मौलवियों ने बंगला, हिन्दी ओर उर्दू भाषाओं के आधुनिकीकरण और वैज्ञानिक अध्ययन में जो भूमिका निभाई, वह भाषा और साहित्य के इतिहासकारों से छिपी नहीं है।

भारत में अँगरेजी शिक्षा की सम्भावनाओं के बारे में पहली सुचिन्तित टिप्पणी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक वरिष्ठ अधिकारी चार्ल्स ग्रान्ट 1792 में पेश की थी। इस टिप्पणी में सिफारिश की गई थी कि यूरोपीय विज्ञान और साहित्य भारत में अँगरेजी माध्यम से परिवर्तित किया जाय।[5] क्योंकि उनकी धारणा थी कि इस पद्धति से "मानसिक दासता की जंजीरें टूटेंगी।" तकनीकी ज्ञान और मशीन के प्रवर्तन से, साधारण जनता की औद्योगिक अभिरुचि बढ़ेगी और मानसिक जड़ता से मुक्त होकर वे सक्रिय हो उठेंगे। देश की शक्ल ही बदल जायेगी। उस समय ग्रान्ट साहब के विचार कम्पनी के प्रभुओं को आवश्यकता से अधिक प्रगतिशील लगे। ग्रान्ट साहब के विचारों से प्रभावित होकर

सन् 1793 में श्री विलबरफोर्स ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया कि यह ब्रिटिश सरकार का नैतिक कर्तव्य है कि विवेकपूर्ण साधनों के द्वारा भारत में ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र में लोगों की भलाई और खुशहाली के लिए कदम उठाये जायँ।[6] इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐसे उपाय किये जायँ जो उपयोगी ज्ञान विज्ञान के साथ धार्मिक और नैतिक उन्नति में सहायक हों। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए 1813 के चार्टर-एक्ट में व्यवस्था की गई और ऐसे लोगों को, जो देशी लोगों में शिक्षा धर्म और नैतिकता का प्रचार करना चाहें, भारत जाने की अनुमति दी गई।[7]

सन् 1811 में लार्ड मिन्टो के प्रशासकीय विवरण में भारत में शिक्षा की स्थिति के बारे में बहुत ही निराशाजनक छवि प्रस्तुत की थी। उन्होंने कहा था कि विज्ञान और साहित्य दोनों ही अपक्षय की स्थिति में पहुँच चुके हैं।[8] धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त और किसी प्रकार की शिक्षा या प्रशिक्षण एक प्रकार से बन्द है। अनेक उपयोगी ग्रन्थ व्यवहार न होने के कारण नष्ट हो रहे है। यदि सरकार इस ओर अपना हाथ नहीं बढ़ायेगी तो साहित्य और शिक्षा, पुस्तकों और अध्यापकों के अभाव में पूरी तरह नष्ट हो जायगी। इससे पहले राजे-महाराजे, नवाब आदि शिक्षा और विद्वत्ता को संरक्षण दिया करते थे। विद्वानों और साहित्यकारों के लिए और कोई सहारा नहीं था। अब क्योंकि इस प्रकार का संरक्षण भी नहीं रहा, इसी से ज्ञान-विज्ञान की चर्चा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। लार्ड मिन्टो के विचार से उचित शिक्षा का अभाव ही इस देश के लोगों की अवनति का मुख्य कारण था और एक अच्छे शासन के प्रवर्तन में भी बाधा है। क्योंकि नैतिक और धार्मिक शिक्षा की भी पूरी व्यवस्था नहीं है इसी से लोग दुराचारी हो गये हैं। अपराधों के लिए अज्ञानता ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है। टिप्पणी में उन्होंने आगे लिखा कि इसीलिए आवश्यक है कि कुछ धन-राशि का अतिरिक्त प्रावधान किया जाय जिससे ज्ञान विज्ञान और शिक्षा-कार्य को फिर से प्रतिष्ठित किया जा सके। उन्होंने बनारस के संस्कृत कालेज की सुधार के लिए सिफारिश की साथ ही नदिया और तिरहुत में नये विद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव रखा।[9] ऐसे ही विद्यालय भागलपुर और जौनपुर में भी स्थापित करने का सुझाव दिया। लार्ड मिन्टो के इस महत्त्वपूर्ण टिप्पणी के बावजूद इस ओर कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

सन् 1813 के ईस्ट इण्डिया एक्ट की धारा में पहले पहल शिक्षा सम्बन्धी जिम्मेवारी को स्वीकार किया गया और एक लाख रुपये की निर्धारित राशि प्रतिवर्ष साहित्य और शिक्षित वर्ग को उत्साहित करने और वैज्ञानिक शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए खर्च करने का प्रावधान किया गया।[10]

आगे चलकर सन् 1815 में लार्ड मोइरा ने कम्पनी के बोर्ड आफ डायरे-

क्टर्स के समक्ष शिक्षा सम्बन्धी एक टिप्पणी पेश की। इस टिप्पणी में नैतिक और धार्मिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया।

इधर इन शिक्षा सम्बन्धी वाद-विवाद और कागजी कार्यवाही के अलावा सरकार की ओर से कोई विशेष कदम नहीं उठाया गया। जो धनराशि शिक्षा के खाते में प्रति वर्ष रखी जाती उसका भी कोई व्यवहार नहीं किया गया। आगे चलकर 1824 में जब कलकत्ते में संस्कृत कालेज की स्थापना हुई तो इस धन का इस्तेमाल किया गया। इसका विवरण यथास्थान दिया जायगा।

इसी बीच सन् 1817 में कलकत्ता में हिन्दू कालेज; सन् 1818 में श्रीरामपुर में बैप्टिस्ट मिशन कालेज; और सन् 1820 में कलकत्ता में विशप कालेज की स्थापना गैर सरकारी क्षेत्र में आधुनिक शिक्षा के आरम्भिक केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त अँगरेजी शिक्षा के लिए कुछ स्कूलों की शुरुआत भी इसी काल में हुई। सन् 1818 में सरकारी सहायता से 'स्कूल बुक सोसाइटी' नामक संस्था की स्थापना हुई इसका मुख्य उद्देश्य था अँगरेजी और बंगला भाषा में स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकों की रचना और प्रकाशन। इधर साधारण जनता में अँगरेजी सीखने का आग्रह बढ़ता जा रहा था। विद्यालयों की भारी कमी थी। कलकत्ते में जगह-जगह नये-नये अँगरेजी स्कूलों की स्थापना होने लगी। 1818 में कैलकटा स्कूल सोसाइटी की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य था नये विद्यालयों की स्थापना में सहायता देना। ये सारे ही गैर-सरकारी प्रयास थे। इन संस्थाओं के साथ कुछ उदारपंथी, शिक्षाविद और धर्मप्रचारक भी थे। इनमें डेविड हेयर का नाम प्रमुख था। अँगरेजी माध्यम के स्कूलों की स्थापना में उनका उत्साह, सहयोग और परिश्रम सर्वविदित है। इसी काल में बंगला और हिन्दी भाषा अपने आधुनिक रूप में विकास के पथ पर बढ़ रहे थे। मिशनरी लोग केवल बाइबिल का अनुवाद करके धर्म प्रचार कर रहे थे ऐसा कहना ठीक नहीं होगा। ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकों की रचना और अँगरेजी से अनुवाद करने में इन्हीं लोगों ने पहल की। इन परिस्थितियों के बावजूद अँगरेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और प्रसार के बारे में मत विरोध चल रहा था। सरकारी अमले के अधिकारी अब भी पारम्परिक शिक्षा अर्थात संस्कृत और अरबी-फारसी शिक्षा के पक्ष में थे। वस्तुतः इस काल में दो विरोधी पक्ष आमने सामने आ गये। एक दल जिनमें प्रसिद्ध प्राच्यविद सम्मिलित थे संस्कृत और अरबी फारसी की शिक्षा के पक्ष में थे तो दूसरी ओर राममोहन राय का दल था जो अँगरेजी शिक्षा के प्रवर्तन के पक्ष में थे।

हिन्दू कॉलेज की स्थापना और राममोहन की भूमिका के बारे में जीवनी खण्ड में विस्तार से लिखा जा चुका है। इसके अलावा एंग्लो हिन्दू स्कूल, हेयर स्कूल की स्थापना का इतिहास हम पढ़ चुके हैं। यह भी देख चुके हैं कि राम-

मोहन ने विलायत रवाना होने से पूर्व डफ साहब को विलायत से बुलवाकर उन्हें पूरी तरह कलकत्ते में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। डफ साहब के स्कूल के लिये घर-घर घूम कर उन्होंने विद्यार्थी इकट्ठे किये और स्कूल के लिए मकान का इंतजाम किया।[11] राममोहन ने सोचा था अँगरेजी शिक्षा ही देश की उन्नति में सहायक होगी।

सन् 1823 में तत्कालीन सचिव श्री होल्ट मैंकेंजी ने जो शिक्षा विभाग भी सम्हालते थे, शिक्षा के बारे में एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने आदर्श शिक्षा प्रणाली के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला। शिक्षा के उद्देश्यों और सरकार की जिम्मेवारी के बारे में लिखते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा कि देश के लोगों की खुशहाली और नैतिक उन्नति की जिम्मेवारी सरकार की है। उन्होंने प्राच्य विद्या और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान दोनों प्रकार की शिक्षा देने की सिफारिश की।[12] उन्होंने आगे कहा कि शिक्षण संस्थाओं में उच्च शिक्षित व्यक्ति रखे जायँ और नई शिक्षण संस्थाओं में पूर्वी और पाश्चात्य विद्या को साथ-साथ पढ़ाया जाय। मैंकेंजी साहब ने यहाँ तक सिफारिश की कि प्रस्तावित संस्कृत कालेज में भी विज्ञान-शिक्षा की व्यवस्था की जाय। मैंकेंजी साहब की टिप्पणी में शिक्षा संबंधी कुछ नई बातें देखने मे आई। पहली बार एक आदर्श और आधुनिक शिक्षा नीति का स्वरूप सामने आया। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय की बात भी कही गयी जिससे उच्च श्रेणी से निम्न श्रेणी तक सभी को साथ लाने की बात सोची गयी। इसके अलावा प्राच्य विद्या और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा अंगरेजी के माध्यम से देने का प्रस्ताव भी आया। लेकिन इन विचारों को प्रयोग में लाने के लिए अभी दस बारह वर्ष इंतजार करना पड़ा, जब मैकाले ने 1835 में अँगरेजी शिक्षा पर अपनी प्रसिद्ध टिप्पणी प्रस्तुत की, जो भारत आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन में मील का पत्थर बनी।

जुलाई सन् 1823 को लार्ड आमहर्स्ट के जमाने में शिक्षा संबंधी एक कमेटी नियुक्त की गयी। उद्देश्य था, देश के इस भाग में शिक्षा सबंधी स्थिति का जायजा लेना और शिक्षा की उन्नति के बारे में नये सुझाव देना। साथ ही इस कमेटी को सारी सरकारी शिक्षण संस्थाओं की देखरेख करने का अधिकार दिया गया। इस कमेटी की सिफारिश पर यह तय पाया गया कि उपलब्ध धन से पहले कलकत्ते में एक कॉलेज की स्थापना की जाय जहाँ हिन्दू धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन हो। यद्यपि यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का सुझाव भी सामने आया लेकिन कुछ यूरोपीय प्राच्यविदों, जिनमें विलसन जैसे विद्वान भी थे, के आग्रह पर संस्कृत कालेज की स्थापना का प्रस्ताव पास हो गया। यह एक अजीब विडम्बना थी कि यूरोपीय सदस्यों की कमेटी ने यूरोपीय और अंगरेजी

शिक्षा के विरुद्ध राय दी और संस्कृत और हिन्दू धर्म शास्त्रों के पठन-पाठन का समर्थन किया।

राममोहन ने लार्ड आमहर्स्ट को 11 दिसम्बर 1823[13] को शिक्षा के विषय में जो प्रसिद्ध पत्र लिखा था उसकी पृष्ठभूमि का विवरण ऊपर दिया जा चुका है। इन परिस्थितियों में जहाँ राममोहन अँगरेजी और आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन के लिए जी जान से कोशिश कर रहे थे, उनके लिये सरकार की ओर से संस्कृत विद्यालय की स्थापना एक निराशाजनक घटना थी। उस काल में, भारत में तो क्या यूरोप में भी अभी तक विज्ञान-शिक्षा को वह स्थान प्राप्त नहीं था। उस समय राममोहन ने दूरदर्शिता का परिचय दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वैज्ञानिक शिक्षा के बिना देश की उन्नति असम्भव है। उन्होंने कहा कि उन्हें पूरी आशा थी कि यह धन यूरोपीय विद्वानों की नियुक्ति में खर्च किया जायगा और देश में गणित, विज्ञान, रसायन, शरीर विद्या और दूसरे उपयोगी विज्ञानों की शिक्षा दी जायगी। संस्कृत शिक्षा के बारे में उन्होंने लिखा कि यहाँ के लोग पिछले दो हजार सालों से संस्कृत ही सीखते आये है अब इस विद्या को सीखने से भला क्या लाभ हो सकता है? सरकार ने धन का प्रावधान प्रजा की भलाई के लिए किया था, युवकों के संस्कृत शिक्षा के पीछे समय नष्ट करने से देश का क्या भला हो सकता है? उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि यदि संस्कृत को बढ़ावा देना ही हो तो विद्यमान संस्कृत विद्यालयों को कुछ आर्थिक सहायता दी जा सकती है।

हम अच्छी तरह जानते हैं कि राममोहन स्वयं संस्कृत के पण्डित थे और धार्मिक भावना उनमें सर्वोपरि थी। उनके धर्म विषयक शास्त्रार्थ और लेखों से यह भी स्पष्ट है कि उन्हें संस्कृत और अपनी संस्कृति से गहरा लगाव था। लेकिन इसके साथ ही उन्हें यह भी पूरा विश्वास था कि देश की सामाजिक और आर्थिक प्रगति के लिए आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है।

राममोहन के इस पत्र में वस्तुतः दो परस्पर विरोधी शिक्षा पद्धतियों की तुलना की गयी थी। एक पक्ष था मध्ययुगीन भारतीय पद्धति का और दूसरा आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का। उन्होंने आधुनिक विद्यालयों में मध्ययुगीन शिक्षा पद्धति का विरोध किया था। इसके अतिरिक्त प्राचीन पद्धति पर चलने वाले संस्कृत और अरबी फारसी की शिक्षा देने वाले संस्थाओं की देश मे कमी नहीं थी। कमी थी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने वाली संस्थाओं की। इंगलैण्ड की शिक्षा व्यवस्था में लाये गये परिवर्तनों का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा था—

> "If it had been intended to keep the British nation in ignorance of real knowledge the Baconian philosophy

would not have been allowed to displace the system of the schoolmen, which was best calculated to perpetuate ignorance. In the same manner the Sangscrit System of Education would be best calculated to keep this country in darkness if such had been the policy of the British legislature."[14]

इन पंक्तियों में स्पष्ट ही आधुनिक काल की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा प्रणाली की ओर इशारा है। पाठ्यक्रम में किन विषयों को सम्मिलित करने से देश की भलाई होगी इस विषय पर लिखते हुए उन्होंने प्रस्तावित पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, रसायन, शरीर-विज्ञान और दूसरे उपयोगी विज्ञान को सम्मिलित करने का सुझाव दिया था। साथ ही प्रस्तावित संस्कृत विद्यालय के स्थान पर राममोहन आधुनिक विज्ञान की शिक्षा के लिए यूरोप में शिक्षा प्राप्त योग्य अध्यापक, पुस्तकालय और वैज्ञानिक प्रयोगशाला के पक्ष में थे। वस्तुतः उनका विरोध उस प्राचीन पंथी 'Sangscrit System of Education" से था संस्कृत या हिन्दू धर्म शास्त्रों से नहीं। उन्होंने पत्र में स्पष्ट लिखा था कि संस्कृत भाषा और साहित्य के संरक्षण के लिए संस्कृत कॉलेज की स्थापना आवश्यक नहीं है बल्कि इस समय देश में जो संस्कृत विद्यालय विद्यमान हैं उनको आर्थिक सहायता देने पर यह उद्देश्य पूरा हो सकता है। वस्तुतः राममोहन सरकार से शिक्षा के मामले पर दो प्रकार की सहायता चाहते थे। पहला, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के नये विद्यालयों की स्थापना; और दूसरा, प्राच्य विद्या के विद्यमान केन्द्रों को आर्थिक सहायता देना। उनका विचार था कि इस प्रकार शिक्षा प्रणाली ही देश के लिए उपयोगी हो सकती है। इसी पत्र की कुछ रोचक और विवादपूर्ण पंक्तियों के बारे में कुछ विचार करना उपयुक्त होगा जो संस्कृत और धार्मिक शिक्षा से सम्बन्धित है।

"Neither can such improvement arise from such speculations as the following, which are themes suggested by the Vedant : In what manner is the soul absorbed into the deity ? What relation does it bear to the divine essence ? Nor will youths be fitted to be better members of society by the Vedantic doctrines, which teach them to believe that all visible things have no real existence : that as father, brother etc. have no real entity, they consequently deserve no real affection, and

therefore the sooner we escape from them and leave the world the better...."[15]

राममोहन के इन प्रसिद्ध पंक्तियों के आधार पर कई विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि राममोहन को वेदान्त से वस्तुतः कोई प्रेम नहीं रहा होगा। लेकिन इन पंक्तियों को केवल इस पत्र को लिखने के उद्देश्य और उसमें पेश किये गये तर्क के संदर्भ में देखना चाहिए। इन पंक्तियों को पत्र से अलग हटाकर देखना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः पत्र में मध्ययुगीन शिक्षण प्रणाली और आधुनिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर को स्पष्ट करना ही राममोहन का मुख्य उद्देश्य था। हमें मालूम है कि संस्कृत भाषा और हिन्दू शास्त्रों के पठन-पाठन के लिए राममोहन ने स्वयं 'वेदान्त कालेज' की स्थापना की थी। यह सरकारी खर्च पर प्रतिष्ठित संस्कृत कालेज की स्थापना (1824) के कुछ दिनों बाद की घटना थी। इस "वेदान्त कालेज" के बारे में एडम साहब ने एक पत्र में 27 जुलाई 1826 को लिखा था।'

"Rammohun has lately built a small but very neat and handsome college which he calls the Vedanta College, in which a few youths are at present instructed by a very eminent Pandit, in Sanskrit literature with a view to the propogation and defence of Hindu Unitarianism. With the institution he is also willing connect instructions in European science and learning and in Christian Unitarianism, provided the instruction are in Bengali or Sanskrit language."[16]

एडम साहब का यह पत्र राममोहन के धार्मिक विचार, शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में सहायक है। यह वस्तुतः आमहर्स्ट साहब को लिखे राममोहन के पत्र का पूरक भाग है। वेदान्त विद्यालय की स्थापना उनके वेदान्त के प्रति श्रद्धा को ही प्रमाणित करता है अन्यथा वे इतना धन लगाकर संस्था की स्थापना क्यों करते। दूसरी मुख्य बात थी तुलनात्मक धर्म चर्चा। वे एक ओर हिन्दू एकेश्वरवाद तो दूसरी ओर ईसाई एकेश्वरवाद दोनों प्रकार की तुलनात्मक धर्म शिक्षा के पक्ष में थे। तीसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य जो इस पत्र से सामने आता है वह है राममोहन का बंगला या संस्कृत को शिक्षा का माध्यम बनाने की अभिलाषा। इसी से एक ओर उन्होंने सरकारी विद्यालय के लिए जहाँ अँगरेजी के लिए आन्दोलन खड़ा किया वहीं दूसरी ओर बंगला और संस्कृत के लिये अध्ययन के स्वयं ही वेदान्त कालेज की स्थापना की। जहाँ तक वेदान्त अनुशीलन और चर्चा का प्रश्न है राममोहन शायद उन्नीसवीं शताब्दी

में पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बंगला और हिन्दी भाषा में वेदान्त का अनुवाद करके स्वयं प्रकाशित और प्रचारित किया।

राममोहन का प्रसिद्ध पत्र शिक्षा विषयक कमेटी[17] के पास भेजते हुए तत्कालीन उपसचिव ने लिखा था कि पत्र शिक्षा सम्बन्धी सरकारी योजना के बारे में गलत धारणा से प्रेरित होकर लिखा गया है। वस्तुतः पार्लियामेंट के एक्ट के अनुरूप प्राच्य विद्या की शिक्षा देना सरकार का कर्तव्य है। राममोहन के विचारों को अतिशयोक्तिपूर्ण कहा गया। शिक्षा विषयक कमेटी के अध्यक्ष श्री हैरिंगटन ने प्रश्न को टालते हुए इतना कहा कि ये विचार व्यक्तिगत हैं इसकी सुनवाई का कोई प्रश्न ही नहीं। लेकिन उस काल में अँगरेजी की भारी माँग थी। हम जानते ही हैं कि हिन्दू कालेज की स्थापना 1817 में इसी माँग को ध्यान में रखकर की गई थी। इस विषय में होवेल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा था : "It is one of the most unintelligible facts in the history of English education in India, that, at the very time when the natives themselves were crying out for instruction in European literature and science and were protesting against a continuance of the prevailing Orientalism, a body of English gentlemen appointed to initiate a system of education for the country was found to insist upon the retention of Oriental learning to the practical exclusion of European learning."[18]

यद्यपि ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स अँगरेजी शिक्षा के पक्ष में थे और 1813 के अधिनियम में यूरोपीय शिक्षा के बारे में स्पष्ट निर्देश था, लेकिन यहां पर शिक्षा विषयक समिति जो विशेष रूप से प्राच्य विद्या के पक्ष में थी, ने यह तर्क दिया कि सरकार तिरहुत और नदिया में संस्कृत विद्यालय स्थापन करने के लिए वचनबद्ध है और कलकत्ते का संस्कृत कालेज उसी के बदले में स्थापित करना सरकार का दायित्व है। यद्यपि यह तर्क युक्तिसंगत नहीं था फिर भी 1824 में राममोहन के विरोध के बावजूद संस्कृत कालेज की स्थापना हुई। लेकिन 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' के कड़े रवैये के कारण शिक्षा विषयक कमेटी को आश्वासन देना पड़ा कि पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के प्रचार और प्रसार के लिए भी प्रयत्न किये जायेंगे। इस प्रकार राममोहन के विचारों को किसी सीमा तक मान्यता मिल गयी थी। इस पाश्चात्य शिक्षा के पक्ष में राममोहन के अलावा कई प्रतिष्ठित भारतीय तथा यूरोपीय विद्वान थे। बिशप हेबर जैसे कलकत्ता के ईसाई धार्मिक नेता भी कम स्पष्टवादी नहीं थे। उन्होंने सरकारी नीति का खुलेआम विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि इन संस्कृत विद्यालयों से विशेष लाभ होने वाला नहीं है....

"The actual state of Hindoo and Mussulman literature Mutatis Mutandis, very nearly resembles what the literature of Europe was before the time of Galilio, Copernicus and Bacon....The contrast was very striking between the rubbish questions which these young men are learning in a Government establishment and the rudiments of real knowledge which those whome I visited the day before, had acquired in the very same city and under circumstances far less favourable."[19]

स्पष्टतः बिशप साहब का इशारा एक ओर सरकारी मदरसा और संस्कृत कालेज की ओर था तो दूसरी ओर हिन्दू कालेज और दूसरे अँगरेजी स्कूलों की ओर था।

वस्तुत: राममोहन के पत्र ने, जो उन्होंने लार्ड अमहर्स्ट को लिखा था, अपने समसामयिक काल में बौद्धिक जगत को काफी प्रभावित किया था। नतीजा यह हुआ कि शिक्षा विषयक कमेटी के सदस्यों में एक गुट शिक्षा पाठ्य-क्रम के आधुनिकीकरण के पक्ष में हो गया। यह गुट बाद में 'इंगलिश पार्टी' के नाम से जाना गया।

इस पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक दल और प्राच्य विद्या के समर्थक दलों के बीच 1823 से अगले दस वर्ष तक यह बहस और वाद-विवाद चलता रहा। 1834 के आसपास यह विरोध और भी तीव्र हो गया। राममोहन के विचारों का मूल्यांकन इस तथ्य से होता है कि जहाँ सरकार द्वारा प्रकाशित संस्कृत, अरबी-फारसी की पुस्तकें गोदामों में पड़ी रहीं वहीं अँगरेजी पाठ्य पुस्तकें हजारों की संख्या में बिक रही थीं। इसी बीच राममोहन के परम मित्र और शिक्षा शास्त्री एलक्जेण्डर डफ राममोहन के निमंत्रण पर कलकत्ता पहुँच चुके थे। वे भी शिक्षा विषयक समिति के सदस्य नियुक्त हुए। उनकी नियुक्ति से पाश्चात्य शिक्षा के समर्थकों का दल मजबूत हो गया। इधर लार्ड बेन्टिक गवर्नर जनरल बनकर आ गये। उन्होंने शिक्षा के बारे में सिद्धान्तों की नये सिरे से समीक्षा की और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और अँगरेजी के माध्यम से शिक्षा देने के पक्ष में स्पष्ट मत दिया। विलियम बेन्टिक के विचारों को रूप देने के लिए शिक्षा विषयक कमेटी के सचिव ने एक पत्र द्वारा 22 जनवरी 1835 को दो मुख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इनमें पहला यह था कि देश की शिक्षा के बारे में शिक्षित और प्रतिष्ठित वर्ग को साथ लिया जाय, और दूसरा यह कि निर्धारित धनराशि, जो अपर्याप्त है, उसका इस्तेमाल उच्च शिक्षा की सहायता के लिए किया जाय।[20]

सारा मसला आखिरकार एक प्रभावशाली व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। 1834 में मैकाले जो उस समय काउंसिल में कानून मंत्री थे, पब्लिक इंसर्ट्रक्शन कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए। मैकाले ने 2 फरवरी 1835 को शिक्षा के सम्बन्ध में अपना प्रसिद्ध ब्योरा पेश किया। इसमें उन्होंने अँगरेजी के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा की ऐसी जोरदार पैरवी की कि संस्कृत, अरबी-फारसी का संरक्षक दल ठंडा पड़ गया। क्योंकि इस प्रभावशाली सदस्य के तर्कों के आगे किसी के ठहरने की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने सदस्यों से स्पष्ट पूछा—

> "Whether when it is in our power to teach this language (English), we shall teach languages in which by universal confession there are no books on any subject which deserves to be compared with our own; whether when we can teach European science, we shall teach systems which by universal confession whenever they differ from those of Europe differ for the worse; and whether when we patronise sound philosophy and true history, we shall countenance at the public expense medical doctrines which would disgrace an English farrier, astronomy which would move laughter in girls in a English boarding school, history abounding with kings thirty feet high and reigns 30000 year long and geography made up of seas of treacle and seas of butter...."[21]

मैकाले के तर्क में चाहे जो भी असंगतियाँ रही हों लेकिन यह तय था कि उनके आक्रमण के आगे प्राच्य विद्या के समर्थक गुट की कुछ न चली। मैकाले को बेन्टिक का पूरा समर्थन प्राप्त था। इधर मैकाले अपने निर्णय पर दृढ़ प्रतिज्ञ थे कि उन्होंने एक स्तर पर कमेटी की सदस्यता से त्याग-पत्र देने की धमकी दी।[22] सारे विरोधों के बावजूद शिक्षा विषयक कमेटी ने 7 मार्च 1835 को एक प्रस्ताव पारित कर दिया जिसमें कहा गया कि सरकार आगे से यूरोपीय विद्या के प्रचार और प्रसार को ही अपना मुख्य उद्देश्य मानेगी और सारा सरकारी उपलब्ध अनुदान अँगरेजी शिक्षा के लिये खर्च किया जायेगा। साथ ही यह भी कहा गया कि सरकार विद्यमान विद्यालयों को बन्द करने के पक्ष में नहीं है और सभी शिक्षकों को—चालू भत्ते की रकम मिलती रहेगी। लेकिन संस्कृत कालेज और कलकत्ता मदरसा को कोई नयी आर्थिक तरक्की नहीं दी जायेगी। वैसे अँगरेजी शिक्षा के पूरे हिमायती होते हुए भी मैकाले देशी भाषाओं के विकास के विरोधी नहीं थे। शिक्षा विषयक कमेटी के अध्यक्ष के

रूप में उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा था—"....We conceive the formation of a Vernacular literature to be ultimate object to which all our efforts must be directed...."[23]

उन्होंने प्रस्ताव रखा कि अँगरेजी माध्यम से शिक्षित भारतीय विद्वानों को आगे चलकर प्राप्त ज्ञान को अपनी-अपनी भाषाओं में रूपान्तरित करना ही सही रास्ता है। छात्रों को आरम्भ से ही अँगरेजी से अपनी भाषा में अनुवाद करने और अपनी भाषा से अँगरेजी में अनुवाद करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। केवल संस्कृत और अरबी-फारसी माध्यम से ही देशी जनता तक पहुँचा जा सकता है इस तर्क को मानने से, मैकाले ने बिल्कुल इन्कार कर दिया था।

इस प्रकार बेन्टिक और मैकाले के संयुक्त प्रयास से 1835 में जब पाश्चात्य शिक्षा का अँगरेजी के माध्यम से प्रवर्तन हुआ उससे दो वर्ष पहले 1833 में राममोहन का स्वर्गवास हो चुका था। राममोहन ने कोई बारह वर्ष पहले जब लार्ड आमहर्स्ट को पत्र लिखकर यह दूरदर्शी विचार रखा था उस समय चाहे लोगों ने परवाह न की हो लेकिन परवर्ती काल में राममोहन की भूमिका को सर्वत्र स्वीकृति मिली। लार्ड रिपन के जमाने में नियुक्त शिक्षा आयोग (1882) की रिपोर्ट में राममोहन की भूमिका को सराहते हुए लिखा गया था: "It took twelve years of controversy and advocacy of Macaulay and the decisive action of the new Governor General before the committee could, as a body, acquiesce in the policy urged by him."

यह राममोहन के प्रयासों के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि थी।[24]

प्रसिद्ध शिक्षाविद ए० हॉवेल ने अपनी पुस्तक में लिखा था : "That such a letter should have been written by a Native, on the subject of education than under the management of a European committee of Public Instruction, is only less remarkable than the fact that the committee left the memorial unanswered and that the Sanskrit College was founded inspite of it."[25]

साइमन कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि यद्यपि लोग भ्रमवश अँगरेजी शिक्षा के लिए मैकाले के प्रयासों की सराहना करते हैं लेकिन वास्तविकता यह थी कि राममोहन और डेविड हेयर जैसे सुधारक और एलेक्जण्डर डफ जैसे मिशनरियों के प्रयास के कारण ही इस देश में पाश्चात्य वैज्ञानिक शिक्षा और अँगरेजी भाषा का प्रयोग हुआ।[26]

इसी संदर्भ में पाठकों को एक बार फिर स्मरण करा दें कि सन् 1817 में जब अंगरेजी शिक्षा का पहला विद्यालय, "हिन्दू कालेज" की स्थापना हुई उस समय कलकत्ते के प्रतिष्ठित हिन्दू समाज के नेताओं ने राममोहन को अपने साथ कॉलेज की संचालन समिति में लेना स्वीकार नहीं किया। कारण बताया गया कि राममोहन हिन्दू धर्म विरोधी हैं। राममोहन ने शिक्षा के प्रसार के रास्ते, अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को आड़े नहीं आने दिया। वे अलग हट गये। जब कि यह सर्वविदित है कि "हिन्दू कॉलेज" की स्थापना उनके सतत प्रयत्नों का ही नतीजा था। इस तथ्य के बावजूद कि "स्कूल बुक सोसाइटी" के प्रबन्ध समिति में राधाकान्त देव जैसे कट्टर पंथी उनके प्रबल विरोधी थे, फिर भी उन्होंने सोसाइटी को सदैव उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता, और पूरा सहयोग दिया। उन्होंने न जाने कितने स्कूलों की स्थापना में सहायता दी।

एडम साहब के "एंग्लो हिन्दू स्कूल" डेविड हेयर के "हेयर स्कूल" अपने ही "वेदान्त कालेज" और एलेक्जण्डर डफ़ साहब को शिक्षा के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने में राममोहन की भूमिका आदि, सभी शिक्षा के क्षेत्र में उनकी पहल के उदाहरण हैं। इसी प्रकार लार्ड अमहर्स्ट को लिखा हुआ पत्र शिक्षा के क्षेत्र में पहल का ऐतिहासिक दस्तावेज है।

राममोहन के पाश्चात्य शिक्षा के समर्थन को अक्सर गलत समझा गया। इसी प्रसंग में टाइटलर साहब के साथ धार्मिक वाद-विवाद के सिलसिले में राममोहन के एक उत्तर में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है :

> 'If by the 'Ray of Intelligence' for which the Christian says, we are indebted to the English, he means the introduction of useful mechanical arts, I am ready to express my assent, and also my gratitude; but with respect to Science, Literature or Religion I do not acknowledge that we are placed under any obligation. For by a reference to history it may be proved that the world was indebted to our ancestors for the first dawn of knowledge which sprang up in the East and thanks to the Goddess of wisdom we have still a philosophical and copious language of our own which distinguishes us from other nations who cannot express scientific or abstract ideas without borrowing the language of foreigners.

वैज्ञानिक शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी अपनी संस्कृत

भाषा, धर्म और संस्कृति का इससे अच्छा समर्थन भला और कौन कर सकता था ? इस प्रसंग में एक बात और ध्यान देने की है कि राममोहन ने शिक्षा को समाज संस्कार के हथियार के रूप में व्यवहार किया। वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा उनके विचार से देश और समाज में परिवर्तन लाने का प्रमुख पदक्षेप था। उनकी सारी प्रचेष्टा साधारण जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए होती थी। वे युग धर्म को अच्छी तरह समझते थे। राममोहन के शिक्षा सम्बन्धी उत्साह के प्रसंग में एक रोचक संस्मरण पंडित क्षितिमोहन सेन ने **'विश्वभारती पत्रिका'** के एक लेख में दिया था। तब लेखक बनारस में राममोहन के एक शिष्य 104 वर्षीय रामचन्द्र मौलिक, से भेंट करने गये थे। मौलिक महोदय ने, राममोहन के विचारों से अनुप्राणित होकर, सारा जीवन अशिक्षित जनता के बीच शिक्षा के प्रचार और प्रसार में लगाया था। राममोहन राय ने रामचन्द्र मौलिक से कहा था कि शिक्षा ही वक्त की सबसे बड़ी आवश्यकता है और शिक्षा का आरम्भ समाज के सबसे नीचे वर्ग से करना चाहिए क्योंकि कढ़ाही जब तक नीचे से गरम न हो खाना नहीं पक सकता।[28]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. विश्वास, राममोहन समीक्षा, पृ० 214. अंगरेज प्रशासकों में हेस्टिंग्स ही पहले प्रशासक थे जो देश के प्रशासन में नियुक्त अंगरेज कर्मचारियों के लिए देशी भाषा अर्थात् संस्कृत और अरबी फारसी का ज्ञान आवश्यक समझते थे। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में फारसी भाषा के शिक्षा के लिए एक पद की स्थापना की थी। इसके अलावा प्राच्यविदों को संस्कृत और दूसरी भाषाओं से अनुवाद करने के लिए उत्साहित किया।

2. मुखोपाध्याय, राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य, पृ० 99-100.

3. विश्वास, पृ० 215.

4. वही, पृ० 215.

5. Sen, Raja Rammohun Roy, the representative man, पृ० 121-122 Shaıp के Selection from Educational records से उद्धृत।

6. वही, पृ० 125.

7. वही, पृ० 155. "Granting permission to persons desirous of going to and remaining in India for the purpose of introducing among the natives of India useful knowledge and religious and moral improvement."

8. वही, पृ० 122-123.

9. वही, पृ० 124.

10. मुखोपाध्याय, पृ० 101 "That a sum of not less than a lakh of rupees in each year shall be set apart and applied to the revival and improvement of literature, and the encouragement....and promotion of knowledge of sciences among the....British territories of India."

11. वही, पृ० 443. 27 मई सन् 1830 को पादरी अलेक्जेण्डर डफ़ अपनी पत्नी के साथ कलकत्ता पहुँचे। राममोहन की आर्थिक सहायता और आन्तरिक सहयोग से वे अपना स्कूल खोलने में सफल हुए। राममोहन ने ही कमल बसु के मकान में उनके लिए स्कूल खोलने की व्यवस्था की थी।

12. Sen, पृ० 132-133.

13. पत्र के पाठ के लिए परिशिष्ट देखें।

14. पत्र से उद्धृत।

15. पत्र से उद्धृत।

16. Collet, पृ० 189.

17. Sen, पृ० 137-138. सन् 1823 में 'जनरल कमिटी आफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन' की नियुक्ति हुई थी।

18. Howell, Education in British India से उद्धृत।

19. Sen, पृ० 124 में Heber, Journey through upper India से उद्धृत।

20. वही, पृ० 158.

21. Crewford. Rammohun Roy, पृ० 113 में उद्धृत।

22. Sen, पृ० 166.

23. वही, पृ० 161.

24. वही, पृ० 168-169.

25. वही, पृ० 169.

26. वही, पृ० 169.

27. 'इंगलिश वर्क्स' से उद्धृत

28. Collet, पृ० 296 में सम्पादकीय टिप्पणी से उद्धृत।

अध्याय—17

समाज सुधारक की भूमिका

धर्म के साथ समाज और राष्ट्र का गहरा सम्बन्ध राममोहन अच्छी तरह समझते थे। उन्हें मालूम था कि धार्मिक सुधार और सामाजिक सुधार राष्ट्रीय प्रगति और मुक्ति के साथ जुड़े हैं। उन्होंने जब धार्मिक सुधार का आन्दोलन छेड़ा तो उसके साथ उनका ध्यान उन सामाजिक कुरीतियों की ओर भी, जो मुख्यतः धर्माश्रित कुरीतियाँ थी, जाना स्वाभाविक था। राममोहन शायद उच्च ब्राह्मण वंश के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिक युग में समाज सुधार का बीड़ा उठाया।

प्रत्येक समाज में देखा गया है कि धार्मिक विकृतियाँ सामाजिक स्तर पर कुरीतियों को जन्म देती है। हिन्दू धर्म के क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। हिन्दू समाज जात-पात, छुआ-छूत, बहुविवाह, बाल विवाह आदि न जाने कितने कुरीतियों के दलदल में फँसा हुआ था। इनमें सबसे घृणित रीति जो धर्म के साथ ही जुड़ी थी वह थी "सती प्रथा" समाज सुधार के लिए राममोहन ने जो आन्दोलन छेड़ा उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण और सफल आन्दोलन जो राममोहन के नाम के साथ सदा जुड़ा रहेगा वह था "सती प्रथा" के विरुद्ध राममोहन का संघर्ष। इसके अलावा राममोहन ने बहुविवाह, बाल विवाह, जात-पात, अस्पृश्यता और स्त्रियों के सम्पत्ति पर अधिकार जैसे कई एक सामाजिक अन्यायों के विरुद्ध आन्दोलन किया।

हिन्दुओं के धर्म और दर्शन में एक सीमा तक बुद्धिवाद के होते हुए भी बात-बात पर शास्त्रों की दुहाई देना या प्रत्येक धार्मिक या सामाजिक आचार के पीछे शास्त्रीय अनुमोदन को ढूँढ़ने की आदत-सी पड गयी थी। शुद्ध साधारण बुद्धि के सहारे किसी भी समस्या का समाधान लोगों को स्वीकार नहीं था। समाज चेतना और सुधार के क्षेत्र में यही बात लागू थी। निरपराध विधवा को रस्सी से बाँधकर अपने मृत पति के साथ जिन्दा जला डालने की या उसके साथ ही समाधिस्त करने की नृशंस रीति को जब हटाने का मौका आया तो साधारण विवेक या बुद्धि का नहीं बल्कि शास्त्रों ने क्या कुछ कहा है इसी बात की खोज आरम्भ हो गई। इसी से सती प्रथा के पक्ष और विपक्ष में काफी लम्बे समय तक शास्त्रार्थ चला। यहाँ शास्त्र को मानना ही धर्म समझा गया और शास्त्रों की अवहेलना को अधर्म माना गया। प्रथा की नृशंसता या विधवा नारी के करुण क्रन्दन का उस काल के समाज पर जैसे कोई प्रभाव ही नहीं होता

था। सती दाह प्राचीन प्रथा थी, बस इतने से ही सब कुछ ठीक ठाक, स्वाभाविक और परम्परागत मान लिया गया। आश्चर्य की बात यह थी कि इस नृशंसता या नारी-हत्या की ओर सबसे पहले ध्यान ईसाई मिशनरियों का गया। अलेक्जेण्डर डो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[1] (1772) में लिखा था कि बंगाल क्षेत्र में केवल कुछ अमानवीय प्रथाओं के सिवा सभी धर्मों को बरदाश्त किया जा सकता है। हमें युवती विधवाओं को अपने मृत पति की चिता पर जलने और बीमार और बूढ़ों को जलसमाधि देने जैसे प्रथाओं के जारी रहने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए। विलियम केरी ने, 1802 में लिखा था कि चाहे जो भी धार्मिक उद्देश्य रहा हो, हमें विधवाओं के मृत पति के साथ जलाने, शिशु बलिदान जैसी प्रथाओं को बन्द करना चाहिए क्योंकि ये सभी शासन के विरुद्ध अपराध हैं।[2]

सती प्रथा

सती प्रथा अर्थात् मृत पति के साथ विधवा पत्नी को चिता पर जला डालने की प्रथा इस देश में काफी प्राचीन काल से चली आ रही थी। विशेष रूप से मध्ययुगीन अंधकार के युग में इस बर्बर प्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया। यह सारे समाज, देश के लिये कलंक का विषय बन गयी थी। सभ्य जगत के लिए यह उपहास का कारण बनी हुई थी। हत्या के इस नृशंस रूप को धार्मिक और सामाजिक मान्यता देकर चालू रखा गया था। राममोहन जीवन के प्रारम्भिक काल से ही इस प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखते आये थे। जैसा कि कहा गया है कि उन्होंने अपने बड़े भाई की पत्नी को सती होते देखा था और इस घटना से उनके मन में ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि इस घृणित प्रथा को बन्द कराकर ही दम लेंगे। उन्होंने कलकत्ते से आत्मीय सभा की स्थापना की तो इसकी बैठकों में इस सामाजिक कलंक के बारे में बहसें चलती रहीं। राममोहन अक्सर सती होने की घटना सुनते ही श्मशान भूमि पर जाते और लोगों को ऐसा करने से रोकने की कोशिश करते। 1818 के आसपास उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध पूरी तरह आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यद्यपि तत्कालीन ब्रिटिश सरकार भी इस बर्बर प्रथा के विरुद्ध थी और इसका उन्मूलन चाहती थी फिर भी धार्मिक प्रथा में हस्तक्षेप के भय से सरकार कोई कदम नहीं उठाना चाहती थी। लेकिन जब 1817 में सरकार कुछ कठोर कानून बनाने की सोचने लगी उसी समय कट्टर पंथी हिन्दू नेताओं ने एक जुट होकर सरकार के पास अपील भेजी कि यह प्रथा धर्म-सम्मत है और जो भी थोड़े बहुत नियम बाँधे गये हैं वे भी हटा लिये जायँ। इसी घटना ने शायद राममोहन और उनके सहयोगियों को इस प्रथा के विरुद्ध अपना आन्दोलन आरम्भ करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सरकार के पास प्रथा के विरुद्ध आवेदन पत्र ही नहीं भेजे, बल्कि लेखों, पुस्तिकाओं और समा-

चार पत्रों के माध्यम से अपना आक्रमण आरम्भ किया। जनता के बीच सती प्रथा के विरुद्ध लोकमत तैयार करने के लिए राममोहन ने जो तरीके अपनाए थे वे इस प्रकार थे, बंगला और अँगरेजी भाषा में पुस्तिकाएँ लिखकर प्रकाशित करना और मुफ्त बँटवाना, पत्र-पत्रिकाओं में लेखों और पत्रों के द्वारा प्रचार, श्मशान भूमि में स्वयं जाकर सती होने रोकने की चेष्टा और सरकारी हल्के में इस प्रथा के विरुद्ध अधिकारियों की पूरी मदद करना। राममोहन ने इस प्रथा के विरुद्ध सबसे पहली चर्चा सन् 1917 में प्रकाशित 'A second defence of the Monotheistical system of the Vedas' नामक ग्रन्थ में की। 1817 के बाद ही राममोहन इस आन्दोलन में पूरी तरह कूद पड़े। 1818 के अगस्त महीने में कलकत्ता के प्रगतिशील हिन्दू नागरिकों की ओर से बड़े लाट हेस्टिंग्स को इस प्रथा को बन्द करने के लिए आवेदन पत्र दिया गया। राममोहन ही इन प्रगतिशील नागरिकों के अगुआ थे। उन्होंने 1818 से लेकर 1831 तक बंगला में तीन और अँगरेजी में चार कुल मिलाकर इस विषय पर सात ग्रंथ प्रकाशित किये। उनका अंतिम अँगरेजी ग्रंथ 1831 में इंगलैण्ड में प्रकाशित हुआ था। इसके अलावा **"बंगाल गजेटि"** और अपनी पत्रिका **"संवाद कौमुदी"** के पृष्ठों को इस संवर्ष के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। कहना न होगा कि राममोहन को सामाजिक और दूसरे कई प्रकार के अत्याचार सहने पड़े। लेकिन उन्होंने इन सबकी परवाह किये बगैर, बड़ी मेहनत करके जनता को इस प्रथा के विरुद्ध जाग्रत किया पादरी मार्शमैन ने बिशप हैबर को 1824 को एक पत्र में लिखा था—

> जब पहले पहल भारत आये थे उन दिनों की अपेक्षा अब ब्राह्मणों की न ही उतनी क्षमता है और न ही पहले जैसी प्रतिष्ठा। जनसाधारण मे बहुतेरे धनी और प्रतिष्ठित लोग राममोहन के विचारों से खुले आम एकमत होकर इस नारकी प्रथा के उन्मूलन के लिए राय जाहिर कर रहे हैं। यह तथ्य भी सभी जान गये हैं कि किसी भी हिन्दू धर्म शास्त्र में इस प्रथा के लिए विधान नहीं है जबकि कुछ लोग अब भी इस बलिदान को पुण्यदायक कहते हैं।[8]

राममोहन की सती प्रथा विषयक पहली पुस्तिका बंगला और अँगरेजी (1818) के प्रकाशन का सभी ओर भारी स्वागत हुआ। यह वस्तुतः उदारपंथी प्रगतिशील लोगों और सरकार दोनों के लिये ही बड़े काम की पुस्तक थी। सरकारी पत्रिका **"कैलकटा गजट"** ने पुस्तिका के विषय में लिखा—

> "The Sanskit authorities which are said to enjoin the sacrifice of widows on the funeral pile of their deceased husbands, have lately undergone a free exami-

nation by a learned philosophical Hindoo. The question itself is of the highest importance and the true interpretation of the religious law which has stained the domestic history of India for so many ages with blood, will no doubt diminish, if not extinguish the desire for self-immolation. The safest way of coming to a right understanding on a point so interesting to humanity, is a rigid investigation of the rules of conduct laid down in the books which are considered sacred by the Hindoos. This appears to have been done with great assiduity, anxiety, and care, and the consequence has been a decision hostile to the ancient custom....these brief remarks are occasioned by the recent publication of a translation of a conference between an Advocate and an opponent of the practice, of burning widows alive from the Bengalee....[4]

इस लेख की लोकप्रियता और महत्त्व का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि लेख पूरा का पूरा कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। लेख के अन्त में लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि शास्त्रों में कहीं भी विधवा को मृत पति के साथ जलाने की शास्त्र सम्मत विधि नहीं है। इस प्रकार का कार्य सीधे स्त्री-हत्या ही कहा जाएगा। यह एक अत्यन्त साहसपूर्ण पहल थी। आज के इस युग में बैठकर इसके महत्त्व को समझ पाना आसान नहीं। पुस्तिका कलकत्ता और दूसरे स्थानों में निःशुल्क बाँटी गई। सरकारी दफ्तरों और अदालतों में भी पुस्तिका की प्रतियाँ वितरित की गईं।

राममोहन के इस ग्रन्थ से सारे हिन्दू समाज में विशेष रूप से रूढ़िवादी हिन्दुओं के बीच तूफान सा खड़ा हो गया। कहा जाता है कि धनी वर्ग ने पण्डितों को धन का लालच देकर, राममोहन की पुस्तिका का उत्तर लिखवाया। राममोहन उन उत्तरों से घबराए नहीं बल्कि वे शास्त्रार्थ के लिए कमर कसकर खड़े हो गये। मानवतावादी प्रगतिशील वर्ग इस तर्कयुद्ध को ध्यान से देख रहा था। सरकार भी इस मामले में उतनी ही रुचि ले रही थी जितनी कि जनता। केवल बात इतनी थी कि सरकार इस मामले में सीधे हस्तक्षेप करना नहीं चाहती थी।

सती प्रथा सम्बन्धी विचार पुस्तिकाओं में राममोहन ने शास्त्रों और स्मृति ग्रन्थों से उद्धृतियों का विश्लेषण करते हुए प्रमाणित किया कि सती प्रथा के

पीछे कोई शास्त्रीय या धार्मिक अनुमोदन नहीं है। उन्होंने मनु संहिता से, ऋग्वेद, गीता, स्मृति पुराण आदि से अपने पक्ष के समर्थन में उपयुक्त सन्दर्भ खोज निकाले। सती प्रथा के समर्थन में जो थोड़े बहुत सन्दर्भ मिलते हैं उनका सम्यक् खण्डन करते हुए उन्होंने प्रमाणित किया कि ये तर्क मध्ययुग में धार्मिक ग्रन्थों में जोड़े गये थे। वैदिक धर्म शास्त्रों में इस बर्बरता के लिए कहीं भी स्वीकृति नहीं है। जब सती प्रथा समर्थकों ने अपने पक्ष में मनु की साक्षी प्रस्तुत की तो राममोहन ने कहा था कि यह वचन जाली है क्योंकि विज्ञानेश्वर ने अपनी मिताक्षरा टीका में इस श्लोक का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। इसके दूसरे टीकाकार रघुनन्दन भी अपने ग्रन्थ में इस विषय में चुप थे। इसी से स्पष्ट है कि किसी मध्ययुगीन या आधुनिक पण्डित ने इस स्त्री विरोधी वचन को 'निर्णय सिन्धु' में जोड़ दिया होगा। इस प्रकार की शास्त्रीय जालसाजी कोई नयी बात नहीं थी। राममोहन के विरोधियों ने ऋग्वेद के एक मंत्र को बड़ी कुशलता से बदलकर सती प्रथा के पक्ष में पेश किया था : मंत्र था।

"इमा नारिर विधवा सुपत्नी रांजनेन सर्पिण संविशन्तु। अनश्ररोहन मोत्रा: सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे।

इस श्लोक के अन्तिम शब्द 'जनयो योनिमग्रे' को बदलकर 'जनयो योनिमग्ने' कर दिया गया तो मंत्र का अर्थ ही बदल गया।[5] इस अशुद्ध पाठ की उत्पत्ति जानबूझ कर हुई होगी, वांछित उद्देश्य की पूर्ति के लिए। सती प्रथा के समर्थकों के लिए यह अशुद्ध मंत्र बहुत दिनों तक सबसे बड़ा मोहरा था, जो मंत्र के अशुद्ध पाठ पर आधारित था। राममोहन ने अपनी पुस्तक में इस मंत्र की प्रामाणिकता के बारे में सन्देह प्रकट किया था जो बाद के शोध से स्पष्ट हो गया। वस्तुतः राममोहन की पुस्तकों के प्रकाशन के लगभग छब्बीस वर्ष बाद एच० एच० विलसन ने इस मंत्र का शुद्ध पाठ खोज निकाला था।[6] राममोहन की नजर पैनी थी। उन्होंने सामाजिक स्तर पर भारत में नारी की दयनीय दशा का कारण खोज निकालने की कोशिश की। उन्होंने पाया कि प्राचीन न्यायशास्त्री जैसे याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद, विष्णु, बृहस्पति आदि ऋषियों ने कन्या और पत्नी का सम्पत्ति में अधिकार स्वीकार किया है लेकिन बाद में टीकाकारों ने इस अधिकार से नारी को वंचित कर दिया था। इसी का नतीजा यह हुआ कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी की आर्थिक और सामाजिक स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती थी। इस आन्दोलन के सिलसिले में राममोहन ने जो शास्त्र युद्ध छेड़ा उसका कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। यह सारा तर्क-वितर्क प्राचीन शास्त्रार्थ के सिद्धान्तों पर आधारित सवाल-जवाब शैली में थे। विपक्षियों के प्रश्नों का अनुमान लगाकर उन्होंने उनका उत्तर पेश किया। इन पुस्तिकाओं में प्रभावशाली युक्ति और भाषा की तीव्रता स्पष्टतः लक्षित है

इस विषय पर पहली बंगला पुस्तक थी "सहमरण विषय प्रवर्तक ओ निवर्तकेर संवाद।" ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार होता है :

"पहले प्रवर्तक का प्रश्न—मुझे आश्चर्य होता है कि तुम लोग सहमरण और अनुमरण जो इस देश में चली आ रही है, उसकी विरोधिता करने का प्रयास कैसे कर रहे हो?

"निवर्तक का उत्तर—समग्र शास्त्रों में और सब जातियों में जिस आत्मघात को निषिद्ध माना गया है उसकी विरोधिता करने में उन्हीं लोगों को आश्चर्य होगा जिन्हें शास्त्रों के प्रति कोई श्रद्धा नहीं और जो स्त्रियों को आत्मघात के लिए उकसाते रहते हैं।

"प्रवर्तक—तुम लोगों की यह दलील बड़ी लचर है कि सहमरण या अनुमरण शास्त्रों में निषिद्ध माना गया है, इस विषय में अंगिरा आदि ऋषियों के वचन सुनो। पति की मृत्यु पर जो स्त्री पति की प्रज्वलित चिता पर चढ़ जाती है वह वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धति के समान बनकर स्वर्ग जाती है और जो स्त्री भर्ता के साथ परलोक गमन करती है वह मनुष्य शरीर में विद्यमान साढ़े तीन करोड़ रोओं के समान उतने ही वर्ष स्वर्ग में रहती है....जो स्त्री भर्ता के साथ परलोक सिधारती है वही मातृ-वंश, पितृ वंश और पति के वंश को पवित्र करती है....। पति की मृत्यु पर साध्वी स्त्रियों के लिए अग्नि प्रवेश के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं।"[7]

उस काल में यही सती प्रथा के पक्ष में प्रचलित तर्क था और हमेशा प्रचलित रीति या परम्परा की दुहाई दी जाती थी। निवर्तक ने इस तर्क को काटते हुए लिखा था, "कोई भी व्यक्ति जिसमें लोकभय या धर्मभय है वह कभी नहीं कहेगा कि परम्परा से चले आ रहे स्त्रीवध, मनुष्यवध और चोरी आदि करके भी मनुष्य निष्पाप रह सकता है और इस प्रकार की परम्परा के अनुसार वे जंगली और पहाड़ी लोग जो डकैती आदि करते आये हैं वे सभी निरपराध माने जायेंगे और उन लोगों को ऐसे कार्यों से रोकने की कोशिश करने की आवश्यकता नहीं।....इसी से अबला स्त्री को स्वर्ग का लोभ दिखाकर जबर-दस्ती हत्या करना घोर पाप का कारण है।"[8]

इसी बीच उनकी इस पुस्तिका के जवाब में कट्टरपंथी हिन्दुओं की ओर से काशीनाथ तर्कवागीश ने एक पुस्तिका बंगला और अँगरेजी में प्रकाशित की। इसमें दिये गये प्रचलित तर्कों का एक और करारा जवाब राममोहन ने 'सहमरण विषये प्रवर्तक ओ निवर्तकेर द्वितीय संवाद' के शीर्षक से 1819 में प्रकाशित किया। इसका अँगरेजी अनुवाद लार्ड हेस्टिंग्स की पत्नी को समर्पित किया गया था। यह विवरण हम पहले ही पढ़ चुके हैं। इस पुस्तिका में राममोहन

ने हिन्दू धर्मशास्त्रों से उद्धृतियाँ देकर पंडित काशीनाथ के तर्कों का खण्डन किया। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था "गीता कोई अप्राप्य ग्रन्थ नहीं और आप लोग उसका अर्थ न समझते हों ऐसी बात भी नहीं। तो फिर इन शास्त्रों के विरुद्ध अज्ञानी लोगों की तुष्टि के लिए स्वर्ग का प्रलोभन दिखाकर शास्त्रज्ञान रहित इन स्त्रियों को, इस निंदित पथ की ओर बार-बार क्यों ढकेलते हैं ?"

"दुख की बात यह है कि पूरी तरह अधीन और अनेक दुखों से पीड़ित इनको देखकर आप लोगों के दिलों में जरा भी दया उत्पन्न नहीं होती, ताकि इनका जबरदस्ती जलाया जाना रोका जा सके ?"

इसी विषय पर राममोहन ने 1829 में एक और बंगला पुस्तिका प्रकाशित की थी। **'समाचार चंद्रिका'** में 'विप्र' और 'मुग्धबोध' नाम से दो व्यक्तियों ने राममोहन पर आक्रमण किया था।[9] इसमें संस्कृत श्लोकों की सहायता से यह प्रतिपादित किया गया था कि विधवा स्त्री को सहमरण से अनन्तकाल पति के साथ स्वर्ग सुख प्राप्त होता है। राममोहन ने भी धर्मशास्त्रों से संस्कृत श्लोकों की सहायता से अपना पक्ष प्रस्तुत किया उन्होंने 'विप्र' से कहा यदि वे समझते हैं कि निष्काम भाव ने पति की चिता पर चढ़ने से स्वर्ग मिलता है तो नरसिंह पुराण के वचनानुसार लोगों को स्वर्ग प्राप्त करने का उपदेश दे सकते हैं जिसमें कहा गया है :

"जल प्रवेशी चानंदं, प्रमोदं वह्नि साहसी।
भृगु प्रपाती सौख्यन्तु रणे चैवाति निर्मलं ॥
अनशनमृतो यः स्यात् सगच्छेत्तुत्रिपिष्टपं।

"अर्थात् जो व्यक्ति जल में प्रवेश करके मरता है उसे आनन्द नामक स्वर्ग प्राप्त होता है, जो साहसपूर्वक अग्नि में प्रवेश करके मरते हैं उन्हें प्रमोद नामक स्वर्ग प्राप्त होता है। पर्वतादि ऊँचे स्थान से नीचे कूद कर मरने पर निर्मल-स्वर्ग प्राप्त होता है, अनशन करके मरने से त्रिपिष्टप-स्वर्ग की प्राप्ति होती है।"

राममोहन ने आगे कहा कि "इस प्रकार की हत्याओं में आत्महत्या को भी स्वर्ग प्राप्ति की सीढ़ी समझना कोई कठिन नहीं। विप्रजन चाहें तो 'भविष्य पुराण' के आधार पर नरबलि के औचित्य का भी पक्ष ले सकते हैं क्योंकि निष्काम भाव से करने पर आत्मशुद्धि होगी और चाहें तो 'कालिका पुराण' का यह मंत्र भी जोर-जोर से उचार सकते हैं :

नर त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणं ॥"

"विप्रजनों को विचार करना चाहिए क्या पूर्व-पूर्व युग में पण्डित नहीं थे और क्या कलिकाल में इससे पहले पण्डित नहीं हुए ? सत्यादि युगों में नरबलि

विधि प्रचलित थी। जड़भरत के उपाख्यानों में इसके प्रमाण हैं। कलिकाल में भी तंत्रानुसार नरबलि की प्रथा थी, वर्तमान काल में भी देश-विदेश में नरबलि प्रचलित है। अतएव जब शास्त्रों की सम्मति है और परम्परा ही व्यवहार सिद्ध माना जाता है तब तो नरबलि हम लोगों द्वारा सेवनीय परम कर्तव्य माना जायेगा। यदि कोई कहे कि गीता आदि शास्त्रों में कामनापूर्ण कर्म की निन्दा है तो विप्रजन कहेंगे क्यों न हम निष्काम पूर्वक नर-हत्या करें। नरबलि से आत्मा को शुद्धि और मुक्ति प्राप्त होगी। धन्य-धन्य विप्रनामा। धन्य अध्यापक।"[10]

यह था राममोहन की करारी चोट और व्यंग्य का नमूना। इसके साथ ही बहुविवाह प्रथा के जुड़ जाने से नारी जाति को भारी कष्ट और अत्याचार का सामना करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में विधवा नारियों के लिए मृत पति की चिता पर आत्माहुति देने का रास्ता ही सहज लगता था। राममोहन ने लिखा है :

> "ऐसा नहीं कि हिन्दू विधवाएँ किसी धार्मिक पूर्वग्रह या पुरानी धारणाओं से प्रभावित होकर अपने मृत पति की चिता पर अपनी आहुति देती हों बल्कि वे अकसर अपने ही बीच रहने वाली विधवाओं को उनके दैनिक जीवन में तुच्छता और घोर अपमान सहते देखती हैं। इसीलिए ये विधवाएँ अपने पति की मृत्यु के बाद अपने जीवन और अस्तित्व के प्रति बिल्कुल लापरवाह बन जाती हैं। इस असहाय अवस्था के प्रभाव में जब भविष्य में पुरस्कार (स्वर्गलोक) प्राप्त होने का लालच दिया जाता है तो स्वभावतः वे इस जघन्य आत्महत्या करने के लिए प्रेरित हो जाती हैं।[11]

राममोहन के सती प्रथा के विरुद्ध छेड़े गये आन्दोलन के पीछे उनकी हिन्दू नारी की तत्कालीन अवस्था के प्रति गहरी सहानुभूति थी। उन दिनों हिन्दू नारी पिता या पति किसी की भी सम्पत्ति की अधिकारिणी नही होती थी। इसी से राममोहन ने बहुविवाह के विरुद्ध भी अपनी कलम उठाई थी। 1822 में उन्होंने हिन्दू नारी के अधिकारों के पक्ष में लिखते हुए स्पष्ट कहा था कि प्राचीन काल में स्मृतियों और शास्त्रों द्वारा नारी को जो मर्यादा या अधिकार प्रदान किये गये थे, मध्ययुग में 'दायभाग' आदि ग्रन्थो के बहाने उन अधिकारों को छीन लिया गया था। पति के मृत्यु के बाद हिन्दू नारी की कैसी दयनीय दशा होती थी उसका ही करुण चित्र उनमें एक लेख में इस प्रकार है :

> ...."a widow....can receive nothing when her husband has no issue by her....a woman who is looked upto as the sole mistress by the rest of a family one day, in the next, becomes dependent on her sons, and subject to

slights of her daughter in law. She is not authorised to expend the most trifling sum or dispose of an article of least value without the consent of her son or daughter-in-law, who were all subject to her authority, but the day before."[12]

उन्होंने आगे यह भी लिखा कि बहुधा इस घोर अपमान और उत्पीड़न से मुक्ति पाने के लिए हिन्दू विधवा नारी आत्महत्या या 'सती' का रास्ता चुन लेती थी। इस प्रकार राममोहन ने सती प्रथा के कारणों का सामाजिक विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है नारी के सम्पत्ति संबंधी अधिकारों के अपहरण के फलस्वरूप सती प्रथा, बहुविवाह आदि कई कुरीतियों का प्रचलन हुआ। इनके साथ वैदिक धर्म और सामाजिक सिद्धान्तों का कोई संबंध नहीं है। नारी जाति के सम्पत्ति अधिकार और बहुविवाह के बारे में यथास्थान विचार किया जायगा।

सती प्रथा के विरुद्ध हिन्दू समाज में चेतना जगाने का काम राममोहन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसीलिए इस प्रथा के उन्मूलन का जब प्रश्न आया तो लार्ड बेन्टिक स्वभावतः राममोहन से सलाह लेने लगे। राममोहन ने जो परामर्श दिया उसका उल्लेख सतीदाह संबंधी बेन्टिक के प्रसिद्ध मिनट में इस प्रकार है : --

"I must acknowledge that a similar opinion as to the probable excitation of a deep distruct of our future intentions was mentioned to me in conversation by that enlightened native Ram Mohun Roy, a warm advocate for the abolition of Suttees and of all other superstitious and corruptions, engrafted on Hindu Religion, which he considers originally to have been a pure Deism. It was his opinion that the practice might be suppressed, quietly and unobservedly by increasing the difficulties and by the indirect agency of the police...."[12](अ)

इससे मालूम होता है कि राममोहन इस प्रथा को पुलिस और कठोर नियमों की सहायता से धीरे-धीरे समाप्त करने के पक्ष में थे। जबकि लार्ड बेन्टिक सीधे-सीधे कानून बनाकर प्रथा के समाप्त करना चाहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों पूरी तरह से इस प्रथा के विरोधी थे। फिर भी राममोहन इसकी प्रतिक्रिया के बारे में सम्भवतः कुछ अधिक सचेत थे। 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा के उन्मूलन का कानून पारित कर दिया गया। इस काल में लार्ड बेन्टिक राममोहन से निरंतर परामर्श लेते रहे थे। कानून के बनते ही चारों

और शोर मच गया। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने 'धर्म सभा' में एक जुट होकर कानून के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा कर दिया। बेन्टिक के पास हजारों हस्ताक्षरों से युक्त आवेदन-पत्र पेश किया गया। सरकार थोड़ा बहुत घबराई जरूर। आधुनिक शोधकार्य से प्रकट होता है कि बेन्टिक ऐसी कठिन घड़ी में राममोहन के परामर्श पर काफी निर्भर थे। राममोहन ने भी यथायोग्य परामर्श देते हुए बेन्टिक साहब को अपने निर्णय पर डटे रहने की सलाह दी। यहाँ राममोहन के बेन्टिक को लिखे एक पत्र का कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

> "I have just found the enclosed by which your lordship will perceive how your predecessors were politicians and how cautiously they acted—The design of this is merely to repeat my opinion that you may without hesitation promulgate the Regulation recommended and in virtue thereof I assume that you will settle the point against all sorts of impediments and save yourself harmless and send my friends satisfied...."[13]

इस पत्र से कुछ तथ्य स्पष्ट होते हैं। उक्त कानून के लागू होने पर कट्टरपंथी हिन्दुओं में रोष फैला था इससे सरकार भी किसी सीमा तक घबरा रही थी और राममोहन ने इस विरोध के सामने सरकार को घुटने न टेकने की सलाह दी थी। हमें मालूम है कि रूढ़िवादी हिन्दुओं ने राममोहन के विरुद्ध क्या कुछ नहीं किया ? यहाँ तक कि हत्या करवाकर रास्ते से हटा देने की साजिश भी बनाई गई। लेकिन राममोहन इन सारे आक्रमणों के विरुद्ध न केवल अकेले डटे रहे बल्कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से सभा बुलाकर बेन्टिक का अभिनन्दन किया जिसका विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

इस आन्दोलन का अन्तिम अंक इंगलेण्ड 'प्रीवी काउंसिल' में मंचित हुआ। सती प्रथा उन्मूलन विरोधी गुट के आवेदन के विरोध में, एक आवेदन पत्र लेकर राममोहन भी इंगलेण्ड पहुँचे थे। यह आन्दोलन पत्र उन्होंने 'मार्कुइस आफ लैन्सडाउन' के माध्यम से हाउस आफ लार्ड्स में पेश किया था। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड की जनता को इस घृणित प्रथा के विरुद्ध जागृत करने के लिए उन्होंने इस विषय पर अपना अन्तिम लेख "Some remarks in vindication of the resolution passed by the Government of Bengal in 1929, abolishing the practice of female sacrifices in India" पुस्तिकाकार प्रकाशित किया था। जब तक प्रीवी काउंसिल में विरोधियों का आवेदन खारिज न हो गया राममोहन लगातार पार्लियामेन्ट भवन में उपस्थित रहकर पूरी शक्ति के साथ सरकारी कानून का समर्थन करते रहे।

18

लार्ड बेन्टिक को एक पत्र में जे० जे० रेवेनशा ने लिखा था, "After three days argument before the Privy Council, the petition against you for putting down suttee was dismissed yesterday to the no small gratification....of Rammohun Roy who was present all the time...."[14]

प्रीवी काउंसिल में रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र खारिज करते हुए जो निर्णय लिया गया था उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :

"At the Court of St. James's, the 11th July 1832

Present—the King's Most Excellent Majesty in Council. Whereas, there was this day read at the Board a Report from a Committee of the Lords to his Majesty's Most Honourable Privy Council, dated 7th July instant, in the words following, viz.'

"Your Majesty having been pleased, by your order in council of the 11th of May 1831, to refer unto this committee the humble petition of certain Hindoo inhabitants of Bengal, Bihar and Orissa, setting forth that (here the petition is inserted); the Lords of the Committee, in obediance to your Majesty's said order of reference, have taken the said petition into consideration, and having heard counsel for the petitioners thereupon, and also on behalf of the East India Company, their lordships do agree humbly to report as their opinion to your Majesty, that the said petition should be dismissed."

His Majesty, having taken the said Report into consideration, was pleased, by and with the advice of his Privy Council, to approve thereof, and to order, as it is hereby ordered, that the said petition be, and the same is, hereby dismissed ,this Board."[15]

इसी समय राममोहन ने 14 जुलाई 1832 का जॉन पयेण्डर को एक पत्र में लिखा—

"Pray eccept my sincere thanks for your hearty congratulation of the protection afforded by the Privy

Council to the female community of India. Thereby they have removed the odium from our character as a people. As we can be no longer guilty of female murder, we now deserve every improvement temporal and spiritual."[16]

यहाँ इस ऐतिहासिक तथ्य को समझने के लिए जानना आवश्यक है कि 1857 के गदर के जो कारण इतिहासकारों ने दिखाये हैं उनमें सती प्रथा उन्मूलन द्वारा हिन्दू धर्म पर हस्तक्षेप को भी एक प्रमुख कारण माना गया है।

10 नवम्बर 1832 को कलकत्ता के ब्रह्म समाज ने प्रीवी काउंसिल में रूढ़िवादियों की हार पर प्रसन्नता जाहिर करने के लिए और राममोहन के महान कार्य पर उन्हें बधाई और धन्यवाद देने के लिए एक सभा बुलाई थी। तय किया गया कि समाज की ओर से ब्रिटिश सम्राट को बधाई का एक पत्र भेजा जायगा जो स्वयं राममोहन ब्रिटिश सम्राट को पेश करेंगे।

जात-पाँत की समस्या

सामाजिक सुधार के क्षेत्र में सती प्रथा उन्मूलन के अतिरिक्त राममोहन का जिस सामाजिक समस्या की ओर ध्यान गया था वह था जाति भेद या जात-पाँत की समस्या। यह ध्यान देने योग्य है कि राममोहन के बाद दो सौ वर्ष पार हो गये कितने ही समाज सुधारक आये और गये लेकिन यह समस्या आज भी कायम है। बहुत से इतिहासकारों का विचार है कि राममोहन ने जाति प्रथा के विरुद्ध उतना जोरदार आन्दोलन नहीं किया जितना सतीप्रथा के विरुद्ध। उनके खिलाफ़ यह भी आरोप लगाया गया कि वे इंगलैण्ड यात्रा के समय अपने साथ ब्राह्मण रसोइया ले गये थे और उनकी मृत्यु के समय उनके गले में ब्राह्मण धर्म का सूचक जनेऊ लटक रहा था। आलोचना करने वाले तत्कालीन समय और समाज को समझने में असमर्थ हैं। जिस विशाल समस्या का समाधान आज दो शतक बाद भी नहीं हो सका उस समस्या को राममोहन ने किस दृष्टि से देखा था, यही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जनेऊ लटक रहा था कि नहीं गौण प्रश्न है।

18 मई सन् 1819 को "आत्मीय सभा" की एक बैठक का विवरण इंडिया गजट में प्रकाशित हुआ था। पत्रिका ने लिखा था इस बैठक में "The absurdity of the prevailing rules respecting the intercourse of the several castes with each other, and of the restriction on diet etc was freely discussed and generally admitted—the necessity of an infant widow passing her life in a state of celibacy—the practice of polygamy and of suffering widows to burn with the corpse of their husbands were condemned

as well as all the superstitious ceremonies in use amongst idolaters."[17]

इसके अतिरिक्त जात-पाँत की समस्या पर, जो हिन्दुओं के धर्म से जुड़ी हुई थी, राममोहन ने आरम्भ से ही किसी न किसी रूप में अपने विचार पेश किये। उन्होंने धर्म सम्बन्धी तथा दूसरे सामाजिक-राजनैतिक लेखों में इस समस्या को उठाने की कोशिश शुरू से ही की। आज दो सौ वर्ष बाद भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य के आधार पर हम समझ सकते हैं कि राममोहन के काल में जात-पाँत की परिस्थिति कैसी भयंकर रही होगी। ऐसी परिस्थिति में सदियों से चले आ रहे इस सामाजिक नासूर के विरुद्ध लिखना बड़े ही साहस का काम था।

राममोहन अपने एक मित्र बेयर साहब को एक पत्र (फरवरी 1824) में हिन्दू धर्म के सत्तावादी और क्षतिकर चरित्र के बारे में लिखा था 'These are strongly supported by the dread of the loss of caste, the consequence of apostasy, which seperates a husband from his wife, a father from his son, and a mother from her daughter.'[18]

राममोहन वस्तुतः अपने लेखों, अनुवादों के माध्यम से इस समस्या को व्यक्तिगत स्तर से सामाजिक स्तर पर ले जाकर, इस भयंकर समस्या की ओर ध्यान खींचने में कमोवेश सफल हुए। वेदान्त और उपनिषदों के अनुवादों के सहारे उन्होंने जनसाधारण के सामने शाश्वत हिन्दू धर्म के मूल तत्त्वों का विश्लेषण किया। केन उपनिषद के अँगरेजी अनुवाद की भूमिका में जात-पाँत की मजाक उड़ाते हुए उन्होंने लिखा था "A Hindoo of Caste can only eat once between sunrise and sunset—cannot eat dressed victuals in a boat or a ship—nor in a tavern—nor any food that has been touched by a person of a different caste—not, if interrupted while eating can he resume his meal."

इसी भूमिका में उन्होंने आगे लिखा था "It will also, I hope, tend to discriminate those parts of Vedas which are to be interpreted in an allegorical sense, and consequently to correct those exceptionable practices, which not only deprive Hindoos in general of the common comforts of society, but also lead them frequently to self destruction, or to sacrifice of the lives of their friends and relations."

हिन्दू धर्म शास्त्रों के अलावा इस्लाम का प्रभाव, तन्त्र साधना या तन्त्र शास्त्र का अध्ययन, ईसाई पादरियों के साथ निकट संबंध और पश्चिमी ज्ञान-

विज्ञान के संस्पर्श में आने के कारण राममोहन के जाति व्यवस्था या जात-पाँत सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। इसीलिए शायद उन्होंने 'वज्रसूची' जैसे जात-पाँत विरोधी संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद करके छपवाकर बंटवाने का बीड़ा उठाया। 'वज्रसूची' संभवतः बौद्ध महायान के अन्तर्गत लिखित ग्रन्थ है, जो उपनिषद आख्या से प्रचलित है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष रचित एक 'वज्रसूची' ग्रन्थ भी है। लेकिन राममोहन ने जिस ग्रंथ का अनुवाद किया उसके लेखक मृत्युंजयाचार्य थे। इस ग्रन्थ के लेखक मृत्युंजय कौन थे इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। फिर भी, अश्वघोष और मृत्युंजय दोनों के ग्रन्थों का मूल वक्तव्य जाति भेद या जात-पाँत की निन्दा करना ही है। अश्वघोष ने अपनी 'वज्रसूची' में महाभारत, मनुस्मृति आदि शास्त्रों से श्लोक उद्धृत करते हुए जाति व्यवस्था की असारता को प्रमाणित किया है। ग्रन्थ के अन्त में लिखा है, हीन बुद्धि ब्राह्मणों का मोह नष्ट करने के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। एक श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया गया है :

"न जातिर्दृश्यते राजन् गुणः कल्याणकारकाः।
जीवितं यस्य धर्मार्थे परार्थे यस्य जीवितम्।
अहोरात्रं चरैतयान्ति तं देवाः ब्राह्मणं विदुः।[19]

इस 'वज्रसूची' में यथार्थ ब्राह्मण के चरित्र का वर्णन है। मृत्युंजय की 'वज्रसूची' में जिसका राममोहन ने अनुवाद किया था, आदर्श ब्राह्मण के बारे में इस प्रकार बताया गया है : शास्त्र का कहना है—"जन्म से सभी शूद्र होते हैं, उपनयनादि संस्कार होने पर द्विज कहलाते हैं। वेदाभ्यास से विप्र और ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने पर ब्राह्मण बन सकते है। अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति ही ब्राह्मण है।"[20]

राममोहन ने 18 जनवरी 1828 को इंगलैण्ड में अपने एक मित्र को जो पत्र लिखा था यहाँ उसका कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

> I regret to say that the present system of religion adhered to by the Hindus is not well calculated to promote their political interest. The distinction of castes, introducing innumerable divisions and sub-divisions among them, has entirely deprived them of patriotic feeling and the multitude of religious rites and ceremonies and the laws of purification have totally disqualified them from undertaking any difficult enterprise... It is, I think necessary that some change should take place in their reli-

gion, at least for the sake of their political advantage and social comfort...."[21]

जाति-प्रथा भारत की राजनैतिक और सामाजिक पिछड़ेपन का एक कारण आज भी है। इस तथ्य की ओर राममोहन ही ने सबसे पहले ध्यान आकर्षित किया था। उनके कहे हुए वाक्य आज भी एक सीमा तक प्रासंगिक हैं।

इसी प्रसंग में उनकी पहली पुस्तक 'तुहफ़ात-उल मुवाहहिदीन' में उन्होंने लिखा था—जात-पाँत और धर्म के भेदभाव को छोड़ सभी मानव हृदय को परस्पर प्रेम से जीतना ही परमेश्वर की एकमात्र पूजा है।

इसी भावना को राममोहन ने और आगे बढ़ाया जब उन्होंने ईसा मसीह के नीति वाक्यों का संकलन प्रकाशित किया। राममोहन ने 'प्रीसेप्ट्स आफ़ जीसस' के बारे में लिखते हुए कहा था, "This simple code of religion and morality is so admirably calculated to elevate man's ideas to high and liberal notions of God who has equally subjected all living creatures, without distinction of caste, rank or wealth to change disappointment pain and death...."

इसके अतिरिक्त सामाजिक समानता के बारे में राममोहन के विचार उनके द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज के 'ट्रस्ट डीड' में स्पष्ट झलकता है। उन्होंने ब्रह्म समाज को सम्पूर्ण मानव समाज के लिए सामुदायिक धर्म सभा का स्वरूप दिया, जहाँ "a place of public meeting of all sorts and descriptions of people without distinction."

राममोहन द्वारा स्थापित मन्दिर में जात-पाँत या धर्म के आधार पर कोई रुकावट नहीं थी, कोई भी, जो ईश्वर में विश्वास रखता है उस मन्दिर में प्रवेश पा सकता था। उस युग में इसे एक क्रान्तिकारी विचार ही कहा जायगा। उन्होंने अपनी पत्रिका **"संवाद कौमुदी"** के पृष्ठों में लिखा था कि अधिकतर हिन्दुओं को जात-पाँत सम्बन्धी प्रतिकूल प्रभाव के कारण अनेक दुर्दशा और असहनीय कष्ट सहना पड़ता है...."

इसके अतिरिक्त शिक्षा के प्रचार और प्रसार में राममोहन बैप्टिस्ट और दूसरे पादरियों को हमेशा सहायता देते रहे। यह शिक्षा किसी जात-पाँत के भेदभाव के बिना सभी वर्ग के लोगों के लिए थी।

सामाजिक स्तर पर सती-प्रथा और जाति-प्रथा के अलावा उन्होंने और भी कई प्रगतिशील सुधार के लिये आवाज उठायी थी जिनसे देश को आधुनिकता के पथ पर आगे बढ़ने में मदद मिली। राममोहन ने बहुविवाह और बंगाल क्षेत्र में प्रचलित कुलीन प्रथा तथा कन्या विक्रय आदि कुरीतियों के विरुद्ध आत्मीय सभा की बैठकों में और अपनी पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के द्वारा जनता

के विचारों और भावनाओं को मोड़ने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली थी। सती-प्रथा के उन्मूलन के साथ राममोहन भारतीय नारी की सामाजिक दुर्दशा को दूर करने का उपाय ढूंढ़ रहे थे। उन्होंने हिन्दुओं के उत्तराधिकार कानून में प्रचलित प्रथा के अन्तर्गत सुधार करने के लिए आन्दोलन किया। प्रचलित कानून के अनुसार नारी को अपने पति या पिता के सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। राममोहन ने प्राचीन स्मृति शास्त्रों की सहायता से प्रमाणित किया कि नारी को पुरुषों के समान ही संपत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त होना चाहिए। 1822 में हिन्दू नारियों के अधिकारों के हनन पर "The Encroachment on the Rights of the Hindu Females" नामक पुस्तिका का प्रकाशन किया। उनके विचार से नारी को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करना ही सामाजिक बुराइयों की जड़ थी। सती-प्रथा, बहुविवाह, कुलीन प्रथा और कन्या विक्रय आदि सभी कुरीतियों से इसका सम्बन्ध था। अपनी पुस्तिका में उन्होंने प्राचीन हिन्दू शास्त्रों और स्मृतियों की सहायता से जनता के बीच इस अन्याय के विरुद्ध जागृति फैलाने की कोशिश की।

नारी अधिकार सम्बन्धी अपनी पुस्तिका में राममोहन ने स्पष्ट ही लिखा था कि आधुनिक कानून के अनुसार विधवा माताओं और सौतेली माताओं, दोनों को ही पति की सम्पत्ति के बंटवारे में निराश्रय करार दिया गया है। विधवाओं के सम्पत्ति के अधिकार के बारे में जनता को कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसी कानून का सहारा लेकर हिन्दुओं में बहुविवाह की प्रथा चल पड़ी है, क्योंकि पुरुषों को मालूम था कि उन्हें अपनी सम्पत्ति का भाग नहीं देना होगा। विधवा विवाह के बारे में भी राममोहन के आत्मीय सभा में विचार विनिमय होता रहा। राममोहन के प्रमुख शिष्य पंडित रामचन्द्र विद्यावागीश ने विधवा विवाह की जोरदार हिमायत की थी—आगे चलकर इसी ब्रह्म समाज के सदस्य पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता दिलवाने में सफलता प्राप्त की थी।[22]

उपर्युक्त विवरण से यह सोचकर चकित रह जाना पड़ता है कि उस मध्ययुगीन अंधकार के घटाटोप में रहकर भी कैसे राममोहन ने समाज की उन समस्याओं को पहचाना, जो देश और समाज की प्रगति में बाधक बन रही थी।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. मुखोपाध्याय : राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य : पृ० 311 की पाद टिप्पणी में Alexander Dow के The History of Hindoostan Vol. 3 से उद्धृत।

2. वहीं, पृ० 311. विलियम केरी के वाक्य इस प्रकार उद्धृत हैं 'I consider that the burning of women, the burying them

alive with their husbands, as in the case of many jogees, the exposure of infants (female), and the sacrifice of children at Saugar ought not to be permitted whatever religious motives may be pretended, because they are all crimes against state.'

लार्ड वेलेजली ने अगस्त 1802 को घोषणा की थी कि सागर द्वीप में जो भी शिशु को जल समाधि देगा उसको कठोर सजा दी जायगी। मेले में पुलिस तैनात कर दी गई। कहीं से कोई विरोध नहीं हुआ।

3. विश्वास, राममोहन समीक्षा, पृ० 343 में Reginald Herber के Narrative of a journey through the Upper Provinces of India from Calcutta to Bombay 1824-25 से उद्धृत।

4. Majumdar, Raja Rammohun Roy and Progressive movements in India, पृ० 114 में कैलकटा गजट के 24 दिसम्बर 1818 से उद्धृत।

5. विश्वास, पृ० 261-262.

6. वही, पृ० 262.

7. राममोहन ग्रन्थावली (बंगला) से उद्धृत।

8. वही।

9. मुखोपाध्याय, पृ० 320.

10. चट्टोपाध्याय, राजा राममोहन रायेर जीवन चरित, पृ० 188-189 में ग्रन्थावली से उद्धृत।

11. English works : Brief remarks regarding modern encroachments of the ancient rights of Females से उद्धृत।

12. वही।

12. (अ) मजूमदार : पृ० 142. पूरे दस्तावेज के लिए, पृ० 139-148 देखें।

13. विश्वास, पृ० 345-346 में 'लार्ड बेंटिक के पत्रों से उद्धृत।

14. वही, पृ० 405। लार्ड बेंटिक के पत्रों से उद्धृत। मजूमदार की पुस्तक में पृ० 194-199 तक प्रीवी काउंसिल में सती-प्रथा सम्बन्धी सुनवाई का विवरण तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के हवाले से दिया गया है। इस विवरण से स्पष्ट है कि राममोहन इन दिनों लगातार पार्लियामेन्ट भवन में उपस्थित थे।

15. मजूमदार, पृ० 199.
16. विश्वास, पृ० 347.
17. मजूमदार, पृ० 18.
18. इंगलिश वर्क्स ।
19. मुखोपाध्याय, पृ० 290.
20. वही, पृ० 290
21. वही, पृ० 290-291 इंगलिश वर्क्स से उद्धृत ।
22. मजूमदार, पृ० 41 (भूमिका से) ।

अध्याय 18

पत्रकारिता और प्रेस की स्वाधीनता का पहला आन्दोलन

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में बंगाल के हुगली नगर में सबसे पहला बंगला छापाखाना सन् 1778 में और उसके दो वर्ष बाद 1780 में कलकत्ता में पहला अँगरेजी छापाखाना खुला।[1] मिसेज़ बार्नेस के अनुसार सन् 1674 में श्री हेनरी मिल्स को, प्रेस की मशीन, टाइप और कागज़ आदि सौंपकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने, बम्बई में छापाखाना स्थापित करने के लिए भेजा था। मद्रास में सन् 1772 में ही छापाखाना स्थापित हो चुका था। 1779 में कलकत्ते में प्रेस की स्थापना हुई। लेकिन बस्टिड के 'ईकोज़ फ्राम ओल्ड कैलकटा' के अनुसार 1780 तक कलकत्ते से किसी पत्र-पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ नहीं हुआ था।[2]

आधुनिक भारत के नवजागरण के इतिहास के साथ प्रेस की स्थापना और पत्रकारिता का गहरा सम्बन्ध रहा है। वस्तुतः आधुनिक भारत में शिक्षा, ज्ञान विज्ञान पाश्चात्य विचार और दर्शन के प्रचार और प्रसार में छापाखाना और पत्रकारिता महत्त्वपूर्ण अंग थे। जनसंचार के इन दोनों माध्यमों के महत्त्व को राममोहन अच्छी तरह समझते थे और उन्होंने अपने धार्मिक-सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों में इन माध्यमों का पूरी तरह उपयोग किया; यह हम जीवनी खण्ड में देख चुके हैं। इस अध्याय में इस विषय पर कुछ विस्तार से विचार किया जायगा। देशी पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन अगुआ थे और शायद पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रेस की स्वाधीनता के लिए अपने युग में सबसे पहला आन्दोलन आरम्भ किया था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इन घटनाओं का जायजा लेने के लिए ब्रिटिश भारत की राजधानी कलकत्ता में पत्रकारिता के विकास का इतिहास देखना होगा।

वारेन हेस्टिंग्स के शासन काल के अंत तक कलकत्ता में कुछ छापेखाने स्थापित हो चुके थे। सन् 1779 में कलकत्ता में सरकारी प्रेस की स्थापना हुई।[3] इससे पूर्ववर्ती काल में कम्पनी के दफ्तरों के कागजात विलायत से छपकर आते थे। कहना न होगा कि इन कागजातों को अफ्रीका महाद्वीप घूमकर आने में छः महीने से अधिक लग जाता था। इसी कारण राइटर्स बिल्डिंग में सैकड़ों की संख्या में राइटर या लिपिक रखे जाते जो दस्तावेजों की प्रतिलिपि तैयार करते। इन प्रतिलिपियों के सुन्दर नमूने आज भी दिल्ली के नेशनल आर्काइव्ज़ और लन्दन के इंडिया आफिस में सुरक्षित हैं।

अँगरेजों के भारत आगमन का वर्ष था सन् 1690। इसके कोई नब्बे वर्ष बाद 1780 में पहली अँगरेजी पत्रिका का प्रकाशन हुआ था। यह पत्रिका कोई सरकारी पत्रिका नहीं बल्कि निजी प्रेस से छपकर प्रकाशित होने वाली गैर सरकारी पत्रिका थी। इस प्रेस के मालिक जेम्स ऑगस्टस हिकि ने 29 जनवरी 1780 को **'बंगाल गजट'** के नाम से एक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्रिका के उद्देश्यों का ब्योरा इस प्रकार था, 'A weekly political and commercial paper open to all parties but influenced by none.,'[4]

यह एक आदर्श वाक्य था लेकिन वास्तव में इस पत्रिका ने मुख्यतः अँगरेज सरकारी अफसरों के विरुद्ध अपवाद या निन्दा फैलाने वाली सनसनीखेज पत्रकारिता का रूप ले लिया। यहाँ तक कि वारेन हेस्टिंग्स उनकी पत्नी और सहयोगी सचिवों के विरुद्ध भी लेख प्रकाशित होते थे। क्योंकि शासक श्रेणी में भी कुछ पदाधिकारी अँगरेज हेस्टिंग्स विरोधी थे। इसी से हिकि को उकसाहट मिलती रही। साल भर के भीतर ही सरकारी हुक्म जारी हुआ और जनरल पोस्ट आफिस से **'बंगाल गजट'** का वितरण बन्द कर दिया गया।

हिकि पर गवर्नर जनरल के मनोभाव का फायदा उठाते हुए पीटर रीड और मैसिन्क नामक दो महानुभवों ने **'इंडिया गजट'** नामक एक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया।[5] इस पत्रिका को डाक की सुविधाएँ प्रदान करने पर हिकि महोदय आग बबूला हो उठे। उन्होंने सरकारी अमले के विरुद्ध और भी जहर उगलना आरम्भ किया। सरकार के बरदाश्त की सीमा भी समाप्त हो चुकी थी, और हिकि को जून 1781 में गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें एक साल की कैद की सजा मिली और दो हजार रुपये जुर्माना ठोंक दिया गया। यद्यपि हिकि साहब जेल की हवा खा रहे थे फिर भी पत्रिका चलती रही। आखिरकार 1782 के मार्च में हेस्टिंग्स ने हिकि का छापाखाना जब्त कर लिया।[6] इस प्रकार भारत के पहले अँगरेजी पत्रिका की अकाल मृत्यु हो गयी।

अठारहवी शती के अंतिम चरण में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने जब पाँव जमाना आरम्भ किया था उसी काल में साम्राज्य के प्रमुख नगर कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में कई अंगरेजी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। कलकत्ता से **'कैलकटा गजट'** (1784), **'बंगाल जर्नल'** (1785), **'ओरियण्टल मैगजीन'** (1785), और **'कैलकटा क्रानिकल'** (1786) प्रमुख थे। दूसरी ओर मद्रास से **'मद्रास कुरिअर'** (1785) और **'मद्रास गजट'** (1795) में प्रकाशित हुई। बम्बई से प्रकाशित होने वाली **'बम्बई हेराल्ड'** (1789) और **'बम्बई गजट'** (1791) प्रमुख पत्रिकाएँ थीं।[7]

उन्नीसवीं शती के आरम्भ में जब राममोहन देश की धार्मिक और सामा-

जिक समस्याओं की ओर ध्यान देना आरम्भ किया उस काल में जिन अँगरेजी और देशी पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ और जिन्होंने देश की सामाजिक और राजनैतिक प्रगति में प्रमुख भाग लिया उन प्रमुख पत्रिकाओं की सूची नीचे दी जा रही है। यह सूची केवल ब्रिटिश भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता, जो राममोहन का कार्य क्षेत्र था, तक ही सीमित रखी जा रही है :

अँगरेजी पत्र-पत्रिकाएँ

कैलकटा जर्नल (1818) इसके प्रतिभाशाली सम्पादक थे जेम्स सिल्क बकिंघम।

बेंगाल हरकारु (1816) सम्पादक थे सेम्युयेल स्मिथ। यह पत्रिका 1793 में साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित हुई। 1816 से यह दैनिक पत्रिका बन गई।

फ्रेण्ड आफ इंडिया (1818) श्रीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशन की पत्रिका।

जान बुल इन द ईस्ट (1821) सम्पादक थे जार्ज प्रिचर्ड।

ब्राह्मनिकल मैगजीन (1822) राममोहन द्वारा सम्पादित। यह बंगला पत्रिका '**ब्राह्मण सेवधि**' का ही अँगरेजी संस्करण था। इसके केवल तीन या चार अंक ही निकले थे।

बेंगाल हेराल्ड (1829) राममोहन राय और द्वारकानाथ ठाकुर के सहयोग से आर० एम० मार्टिन द्वारा संचालित।

देशी पत्र-पत्रिकाएँ

बंगाल गजेटि (1818) गंगाकिशोर भट्टाचार्य द्वारा मुद्रित और हरचन्द्र राय द्वारा प्रकाशित। पत्रिका केवल एक वर्ष चली।

समाचार दर्पण (1818) श्रीरामपुर के बेप्टिस्ट मिशन प्रेस द्वारा प्रकाशित। रेवरेण्ड मार्शमैन द्वारा सम्पादित।

संवाद कौमुदी (1821) राममोहन द्वारा संस्थापित। प्रारम्भिक काल में भवानी चरण बन्द्योपाध्याय द्वारा सम्पादित। बाद में हलधर बसु द्वारा सम्पादित।

ब्राह्मण सेवधि (1822) राममोहन द्वारा सम्पादित। केवल तीन या चार अंक प्रकाशित।

मिरातुल अखबार (1822) फारसी भाषा की पत्रिका। राममोहन द्वारा संपादित।

जाम इ जहाननुमा (1822) फारसी भाषा की पत्रिका।

समाचार चंद्रिका (1823) राममोहन के विरोधियों द्वारा प्रका-

शित। संपादक बने भवानीचरण बन्द्योपाध्याय, जो 'संवाद कौमुदी' के प्रथम संपादक थे।

उदन्त मार्तण्ड (1826) पहली हिन्दी पत्रिका जिसके संपादक थे जुगल किशोर शुक्ल।

बंगदूत (1829) बेंगाल हेराल्ड का बंगाल संस्करण। यह त्रिभाषिक पत्रिका बंगला, नागरी और फारसी में निकालने की योजना थी। ऊपर की सूची में दिये गये अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में **'कैलकटा जर्नल'**, **'बंगाल हरकारा'** और **'बेंगाल हेराल्ड'** राममोहन के प्रगतिशील विचारों के समर्थक थे। 1830 के बाद धीरे-धीरे और भी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हो गया था जिसका विवरण यहाँ अनावश्यक होगा।

सन 1799 से पहले तक ब्रिटिश भारत में प्रेस सम्बन्धी कोई विशेष कानून नहीं था। 1785 में वारेन हेस्टिंग्स भारत से लौट गये। 1786 में लार्ड कॉर्नवालिस गवर्नर जनरल के पद पर पधारे। उन्होंने भी पत्र-पत्रिकाओं पर विशेष पाबन्दी की बात नहीं सोची थी, लेकिन उनके उत्तराधिकारी सर जान शोर अपने पूर्ववर्तियों की तरह आदर्शवादी और उदार नहीं थे। उनके समय में ही विलियम डॉने को, 'जो **'बेंगाल जर्नल'** नामक एक पत्रिका के सम्पादक थे, सरकारी दबाव पर एक गलत समाचार छापने के अपराध में पत्रिका छोड़नी पड़ी थी। 1794 में एक और साप्ताहिक पत्रिका **'इंडियन वर्लड एण्ड ट्रेड्समैन'** का प्रकाशन भी सरकारी दबाव के कारण रोक दिया गया। यह एक विचारणीय तथ्य है कि उस काल मे ये सारी पत्र-पत्रिकाएँ अंगरेजी भाषा में अंगरेजों या यूरोपीय नागरिकों द्वारा परिचालित थीं। लार्ड वेलेजली सन 1798 में भारत के गवर्नर जनरल बनकर आए। यह काल भारत में युद्धों और सैनिक शासन का काल था। वेलेजली का मुख्य मंत्र था कठोर शासन। अतः उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे प्रेस के स्वतंत्र विचारों को सहन करेंगे। यद्यपि उस समय प्रेस के नाम पर केवल अँगरेजी पत्र-पत्रिकाएँ थीं और उनका स्वामित्व मुख्यतः अंगरेजों अथवा यूरोपीय लोगों के हाथ में था। फिर भी कम्पनी के अधिकारी महसूस करने लगे थे कि प्रेस में ऐसे समाचार या लेख प्रकाशित न होते रहें, जो ब्रिटिश स्वार्थों के प्रतिकूल हों अथवा जो सरकारी तथा सैनिक कार्यवाहियों में बाधा उत्पन्न करे। इसी से वेलेजली ने मई 1799 में पहला कुख्यात प्रेस 'रेगुलेशन' जारी किया। इस कानून के अन्तर्गत आवश्यकता पड़ने पर अपराधी सम्पादक को भारत से निर्वासित कर देने का प्रावधान था। प्रेस रेगुलेशन एक्ट की पाँच प्रमुख धाराएँ ये थीं :

(1) प्रत्येक समाचार-पत्र पर मुद्रक का नाम व पता छपा होना अनिवार्य है।

(2) सम्पादक और पत्रिका के मालिक सरकारी सचिव के पास अपना नाम, पता आदि विवरण दाखिल करेंगे।

(3) रविवार के दिन कोई पत्रिका प्रकाशित नहीं होगी।

(4) सरकारी सचिव के निरीक्षण के बिना कोई भी समाचार-पत्र नहीं छपेगा।

(5) इस रेगुलेशन के अंतर्गत पकड़े गये अपराधियों को एकदम इस देश से निकालकर यूरोप भेज दिया जायगा।[8]

वस्तुतः वेलेजली की नाराजगी का तात्कालिक कारण था, 'एशियाटिक मिरर' नामक एक पत्रिका में टीपू के विरुद्ध यूरोपीय और हिन्दुस्तानी सेनाओं की स्थापना की खबर का प्रकाशन। वेलेजली ने अपने कमाण्डर-इन-चीफ को एक पत्र में लिखा था—मैं इन सम्पादकों को सीधा करने के लिए शीघ्र ही कुछ नियम बना रहा हूँ यदि इससे भी ठंडे नहीं हुए तो इन पत्रिकाओं को जबरदस्ती दबा दिया जायगा और सम्बन्धित महानुभावों को यूरोप भेज दिया जायगा।[9]

इसी समय सरकारी सचिव के लिए 'सेंसर' का काम करने के लिए भी कुछ नियम जारी किए गए। कुछ मामलों में जैसे राजस्व, सैनिक समाचार, जहाजरानी की खबरें छापने पर पाबन्दी लगा दी गई। यह व्यवस्था मोटे तौर पर 1835 तक कायम रही। वेलेजली एक सरकारी गजट और समाचार पत्रिका प्रकाशन करने के पक्ष में थे क्योंकि उनके विचार में निजी समाचार-पत्रों के प्रचार को रोकने का यही उपाय था। लेकिन चूंकि इसमें काफी धन की आवश्यकता थी, इसी से उन्होंने योजना को कार्यान्वित नहीं किया। यहाँ तक कि उन्होंने मिशनरियों द्वारा कलकत्ता में प्रेस स्थापना के प्रस्ताव को भी नामंजूर कर दिया। इसी से मिशनरियों को डच अधिकृत श्रीरामपुर में अपना प्रेस लगाना पड़ा।[10]

लार्ड मिन्टो के जमाने में (1807-1813) मोटे तौर पर तत्कालीन समाचार-पत्र सरकारी आदेशों का ही पालन कर रहे थे। मिन्टो समाचार-पत्रों के प्रति अपने रवैये में थोड़ा परिवर्तन लाये। उन्होंने श्रीरामपुर के मिशनरियों को अपना छापाखाना कलकत्ते में ले आने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः उद्देश्य यह था कि कलकत्ते में इस प्रेस की गतिविधियों पर अच्छी प्रकार निगरानी रखी जा सकती थी। लेकिन मिशनरियों ने आर्थिक कारणों से प्रस्ताव स्वीकार तो नहीं किया लेकिन वे अपनी पत्र-पत्रिकाओं को सेंसर से पास करने को राजी हो गये थे। वैसे 1801 से 1808 के बीच पत्र-पत्रिकाओं पर कुछ और पाबंदियाँ बढ़ा दी गयी थीं। कारण था भारत के विभिन्न हिस्सों में युद्ध की

स्थिति और यूरोप में फ्रांस के साथ टकराव ।[11] 1813 तक प्रेस पर सरकारी नियंत्रण की पकड़ काफी मजबूत हो गई थी ।

सन 1814 में लार्ड हेस्टिंग्स (मारकुइस आफ हेस्टिंग्स) जब गवर्नर जनरल के पद पर आसीन हुए तो एक नई स्थिति पैदा हो गयी । हेस्टिंग्स अपने उदार विचारों के लिए प्रसिद्ध थे । उन्होंने मिशनरियों के प्रति रवैये में काफी परिवर्तन किया । उन्होंने प्रेस रेगुलेशन को किसी सीमा तक सुधारने का प्रयास किया । प्रेस सेंसर नियमों के पालन में कठिनाइयाँ सामने आ ही रही थीं । हेस्टिंग्स ने 19 अप्रैल 1818 को प्रेस सेंसर समाप्त कर दिया और इसके बदले सम्पादकों के लिए कुछ निर्देशक नियम बना दिये । इस प्रकार प्रेस कानून की कठोरता किसी सीमा तक कम हो गई । इन परिवर्तनों से लन्दन में कम्पनी के डायरेक्टर प्रसन्न नहीं हुए । उन्होंने लार्ड हेस्टिंग्स के इस कार्यवाही के विरोध में निन्दा-सूचक ज्ञापन भेजा । भारत में हेस्टिंग्स के नये नियमों को प्रेस के अधिकारों की स्थापना का सूचक माना गया । कलकत्ता और मद्रास के समाचार-पत्रों ने हेस्टिंग्स की भूरि-भूरि प्रशंसा की । लेखों में विचार प्रकट किया गया कि प्रेस की स्वतंत्रता बौद्धिक और सामाजिक उन्नति में लाभकारी सिद्ध होगी । मद्रास के नागरिकों ने इस आशय के बधाई पत्र गवर्नर जनरल को भेजे थे । हेस्टिंग्स ने उत्तर में उदार मनोभाव को दुहराया था ।

इधर कम्पनी के लन्दन स्थित डायरेक्टर इस बात पर हेस्टिंग्स से नाराज थे क्योंकि कई सदस्यों को डर था कि प्रेस की स्वाधीनता से ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो जायगा । प्रेस के माध्यम से भारतीय देश के प्रशासन और विधान सभाओं में अपना अधिकार माँगना शुरू कर देंगे ऐसी आशंका भी प्रकट की गयी । वस्तुतः लन्दन के सरकारी अमले के लोग प्रेस के मामले में सन् 1818 के पूर्व की कानूनी स्थिति को बरकरार रखने के पक्ष में ही थे ।

प्रेस सम्बन्धी इस उदार नीति के काल में पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण घटना थी देशी पत्रकारिता का जन्म । सन 1818 में 15 मई को श्री हरचन्द्र राय ने **'बंगाल गेजेटि'** नाम की एक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की ।[12] इस पत्रिका के मुद्रक और प्रकाशक थे गंगाकिशोर भट्टाचार्य । हरचन्द्र राय ही अपना छापाखाना स्थापित किया तो गंगाकिशोर को, जो छापेखाने और मुद्रण कार्य में पारंगत थे, श्रीरामपुर से ले आये थे । गंगाकिशोर केवल पत्रिका के मुद्रक थे, सम्पादक नहीं । कुछ लोगों की गलत धारणा थी कि वे ही सम्पादक थे । पत्रिका के मालिक हरचन्द्र राय, राममोहन के आत्मीय सभा के सदस्य थे ।[13] इस पत्रिका की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं । यह पत्रिका केवल एक वर्ष चलकर 1819 में बन्द हो गयी थीं । इस पत्रिका का महत्त्व केवल इस बात

से है कि यह पहली देशी पत्रिका थी जिसका संचालन भी देशी लोगों के द्वारा हुआ। इसी पत्रिका में राममोहन की सती प्रथा सम्बन्धी पहला लेख छपा था।

इसी वर्ष अर्थात् सन् 1818 में ही श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन के रेवरेण्ड मार्शमैन और वार्ड महोदय ने एक मासिक बंगला पत्रिका **'दिग्दर्शन'** का प्रकाशन आरम्भ किया। पत्रिका का उद्देश्य देशी जनता और ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया को समझना था। विलियम केरी इस योजना के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि इस प्रकार की योजना से कठिनाइयाँ पैदा होंगी।[14] लेकिन इसी वर्ष मार्शमैन के सम्पादन में **'समाचार दर्पण'** नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस पत्रिका की प्रति लेकर ब्रिटिश सरकार के अनुमोदन के लिए मार्शमैन कलकत्ता गये। उन्हें सरकारी अनुमोदन और डाक की सुविधाएँ भी मिल गयीं। इसके साथ ही उन्होंने एक अँगरेजी पत्रिका **'फ्रेण्ड आफ इंडिया'** का प्रकाशन भी आरम्भ किया। इन दोनों पत्रिकाओं में धार्मिक प्रचार के अतिरिक्त कुछ समाचार आदि दिये जाते थे। 1819 में **'बंगाल गेजेटि'** के बन्द हो जाने के बाद एकमात्र बंगला पत्रिका रह गई थी, श्रीरामपुर के बैप्टिस्ट मिशन की पत्रिका **'समाचार दर्पण'**।

सन 1815 में जब राममोहन कलकत्ता आकर बसे उस समय देश और शासन की स्थिति इतनी उदार नहीं थी और पत्रकारिता की ओर झुकने में वहाँ काफी असुविधाएँ थीं। राममोहन का स्वाभिमान इतना प्रखर था कि सरकारी नियमों का पालन करके पत्रिका सम्पादन करना उनके लिए कठिन था। हम लिख चुके हैं कि **'बंगाल गेजेटि'** का प्रकाशन उनके आत्मीय सभा के सदस्य ने उनके ही सहयोग से किया था। इसी काल में जेम्स सिल्क बकिंघम की पत्रिका **'कैलकटा जर्नल'** ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। बकिंघम किसी सीमा तक प्रगतिवादी राजनैतिक विचारों के थे। इसी से **'कैलकटा जर्नल'** केवल मात्र यूरोपियों में नहीं बल्कि भारतीय पाठकों में भी काफी लोकप्रिय पत्रिका थी। इस पत्रिका के माध्यम से राममोहन के साथ बकिंघम की खासी मित्रता हो गई थी। बकिंघम ने राममोहन के सभी सुधारवादी आन्दोलनों का समर्थन अपनी पत्रिका में किया। हालाँकि **'कैलकटा जर्नल'** और कई एक दूसरी पत्रिकाओं का समर्थन उन्हें प्राप्त था फिर भी अपने बहुमुखी आन्दोलनों के दौरान देशी भाषा की किसी पत्रिका की कमी राममोहन को हमेशा खटकती रही। **'समाचार दर्पण'** पादरियों की पत्रिका थी। वे भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता के बारे में अपने ही दृष्टिकोण से विचार छापते थे। लेकिन देशी लोगों के पास अपने विचार प्रकट करने का कोई माध्यम न था। इसी अभाव की पूर्ति के लिए सम्भवतः राममोहन ने **'संवाद कौमुदी'** का प्रकाशन आरम्भ किया। इसके

पीछे मिशनरियों की पत्रिका **'समाचार दर्पण'** द्वारा राममोहन के उत्तर छापने से इनकार करने की घटना के बारे में हमें पहले ही बताया जा चुका है। **'संवाद कौमुदी'** का प्रकाशन 4 दिसम्बर 1821 को आरम्भ हुआ था।[15] यही पत्रिका देशी प्रबंध में और देशी सम्पादन में पहली महत्त्वपूर्ण पत्रिका मानी जाती है। उस समय के प्रगतिशील और शिक्षित हिन्दू इस पत्रिका के माध्यम से देश सुधार के काम में जुट गये। पत्रिका के उद्देश्यों की स्पष्ट व्याख्या करते हुए पहले ही अंक में लिखा था, इसमें धर्मनीति और राष्ट्र विषयक आलोचना, देश की अन्दरूनी घटनाएँ, देश-विदेश के समाचार पत्रादि अर्थात् लोकहित को ध्यान में रखकर समाचार दिये जायेंगे। श्री ताराचाँद दत्त और भवानीचरण बन्द्योपाध्याय शुरू में पत्रिका के संचालन में थे। सम्पादक चाहे जो भी रहे हों लेकिन पत्रिका के संचालन में राममोहन का पूरा हाथ था। इसी समय सती प्रथा विरोधी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। पत्रिका के सम्पादक भवानीचरण बन्द्योपाध्याय के साथ राममोहन का इस विषय पर मतविरोध पैदा हो गया तो भवानीचरण ने प्राचीन-पंथी हिन्दुओं के नेता राधाकान्त देव के साथ मिलकर **'समाचार चंद्रिका'** का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य राममोहन का विरोध करना था।

'संवाद कौमुदी' और बकिंघम साहब के **'कैलकटा जर्नल'** में निकट का सम्बन्ध और सहयोग था। **'कैलकटा जर्नल'** के अंकों में अक्सर **'कौमुदी'** में प्रकाशित लेखों का अँगरेजी सारांश प्रकाशित होते थे। इधर कुछ अनुदारपंथी अँगरेजी पत्र **'कौमुदी'** की कड़ी आलोचना भी करने से नहीं चूकते थे।

मित्रों के विश्वासघात, सरकारी रोष और अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद राममोहन **'कौमुदी'** को चलाते रहे। सिर्फ यही पत्रिका नहीं इसके बाद 1822 में फारसी भाषा की पत्रिका **'मिरात उल अखबार'** का प्रकाशन आरम्भ किया। इसका इतिहास भी हम पहले ही पढ़ चुके हैं। इस पत्रिका का उद्देश्य पत्र बकिंघम साहब ने अपने **'कैलकटा जर्नल'** में प्रकाशित किया था, उसी का कुछ अनूदित अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। राममोहन ने सम्पादकीय में लिखा था :

"मेरा एकमात्र उद्देश्य है कि मैं जनसाधारण के समक्ष ऐसे उपयोगी समाचार और लेख प्रस्तुत करूँ जिससे उनका ज्ञान और अनुभव बढ़े और सामाजिक उन्नति में सहायक हों। मैं अपनी योग्यतानुसार शासक वर्ग को प्रजा की वास्तविक स्थिति के बारे में सूचित कर सकूँगा और साथ ही प्रजा को प्रचलित कानून और शासक वर्ग के आचार-व्यवहार से परिचित करा सकूँगा। पत्रिका, शासक वर्ग के लिए जनता को तुरंत राहत

पहुँचाने का माध्यम बनेगा और जनता के लिए शासक श्रेणी के बदइंतजामी से सुरक्षा और क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का साधन होगा।"[16]

"मिरात-उल-अखबार" का स्वागत करते हुए "कैलकटा जर्नल" के 20 अप्रैल 1822 के अंक में बकिंघम साहब ने जो सम्पादकीय लिखा था उसका कुछ अंश इस प्रकार है :

> "The Editor is a Brahmin of high rank, a man of liberal sentiment, and by no means deficient in loyalty well versed in Persian language and possessing a competent knowledge of English, intelligent with a considerable share of general information and an insatiable thirst for knowledge ..."[17]

आश्चर्य नहीं कि "मिरात" को थोड़े ही दिनों में पूरे उत्तर भारत में लोकप्रियता मिल गयी थी। फारसी भाषा उस समय पूरे उत्तर भारत की राजकीय और अदालती भाषा थी। समाज के प्रतिष्ठित वर्ग और मुस्लिम प्रतिष्ठित वर्ग की भाषा अभी तक फारसी ही थी।

लार्ड हेस्टिंग्स की उदार नीति से कम्पनी के डायरेक्टर प्रसन्न नहीं थे। ज्योंही हेस्टिंग्स का कार्यकाल समाप्त हुआ और एडम साहब कार्यवाहक गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने तत्काल ही प्रेस की स्वतन्त्रता को समाप्त करने की दिशा में कदम उठाया। पहला हमला सिल्क बकिंघम के "कैलकटा जर्नल" पर हुआ। इसका विवरण और किस प्रकार राममोहन तथा उनके सहयोगियों ने इस आक्रमण का विरोध सुप्रीम कोर्ट और बाद में 'किंग इन काउंसिल' के पास अपना "मेमोरियल" भेजकर किया इसका सविस्तार विवरण पढ़ चुके हैं। इस "मेमोरियल" की भाषा और विचारों के बारे में मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में कहा था "The appeal is one of the noblest pieces of English to which Rammohun put his hand."

इसी अध्यादेश के विरोध में राममोहन ने अपनी फारसी पत्रिका "मिरात-उल-अखबार" बन्द कर दिया था। यह इतिहास भी हम जीवनी खण्ड में पढ़ चुके हैं। यहाँ 1823 के प्रेस आर्डिनेंस के विरुद्ध और सिल्क बकिंघम के भारत से निर्वासन के विरुद्ध राममोहन और उनके सहयोगियों के कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट में पेश किये गये "मेमोरियल", और बाद में 'किंग इन काउंसिल' के पास भेजे गये "अपील" के परिप्रेक्ष्य में ही प्रेस स्वाधीनता से सम्बन्धित इस पहले आन्दोलन पर विवेचन करेंगे क्योंकि स्मरण-पत्र और अपील दोनों के रचयिता राममोहन थे। इन दोनों दस्तावेजों में प्रेस स्वाधीनता की आवश्यकता के बारे में जो तर्क पेश किये गये थे उनका महत्त्व आज भी कुछ कम नहीं।

1823 के प्रेस आर्डिनेंस के अंतर्गत जारी किये अध्यादेश के अनुसार किसी भी दैनिक, साप्ताहिक अथवा किसी भी पत्रिका को कलकत्ता शहर में पुलिस के दफ्तर में हलफनामा पेश किये बिना, तथा चीफ सेक्रेटरी से प्राप्त किये गये लाइसेंस के बिना, प्रकाशित करने की अनुमति नहीं थी। यह लाइसेंस भी सरकार जब चाहे वापस ले सकती थी। सम्पादकों और पत्रिकाओं के मालिकों के लिए कुछ नियंत्रणों की घोषणा की गयी और विशेष प्रकार के समाचार के छापने पर पाबन्दी लगा दी गयी। पाबन्दियाँ मोटे तौर पर इस प्रकार थीं :

(1) राजा तथा राजपरिवार के विरुद्ध निंदासूचक या मानहानिकर समाचार छापने पर;

(2) कम्पनी के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स, इंगलैंड के दूसरे शासक वर्ग तथा भारत सरकार से सम्बन्धित लोगों के चरित्र; संवैधानिक और सरकारी अध्यादेशों या सरकार के विरुद्ध ऐसे समाचार छापना जिससे सरकार के विरुद्ध विद्वेष की भावना पैदा हो या सरकारी तन्त्र को कमजोर करे;

(3) मित्र शक्तियों या सहयोगी राष्ट्रों के बारे में या उनके प्रतिनिधियों के बारे में टीका टिप्पणी करना या राय जाहिर करना;

(4) गवर्नर जनरल, गवर्नरों, कमांडर इन चीफ, काउंसिल के सदस्य, प्रेसीडेंसी कोर्टों के न्यायाधीशों कलकत्ता के बिशप के विरुद्ध या किसी भी सरकारी अफसर के विरुद्ध कोई भी निन्दासूचक या मानहानिकर समाचार या टीका टिप्पणी छापना।

(5) किसी प्रकार का समाचार छापना, जो देशी जनता के मन में आतंक या सन्देह पैदा करे कि धार्मिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप हो रहा है या धार्मिक विचारों पर कोई भी अपमान या निंदासूचक टीका टिप्पणी;

(6) अँगरेजी या दूसरे अखबारों ऐसे लेखों का पुनर्मुद्रण जो उपर्युक्त श्रेणी में आते हैं;

(7) निंदासूचक ऐसे लेख जो देश की शान्ति, सद्भाव और सामाजिक व्यवस्था को हानि पहुँचाये;

(8) कम्पनी या सरकारी अफसरों के विरुद्ध गुमनाम या छद्मनाम से लेख या पत्रादि प्रकाशित करना।[18]

इस प्रकार उक्त आर्डिनेंस के द्वारा प्रेस का गला पूरी तरह घोंट दिया गया। इसी बीच बकिंघम साहब को भारत से निर्वासित करके इंगलैंड भेज दिया गया था। राममोहन तथा उनके मित्रों ने इस आर्डिनेंस के विरुद्ध आवाज़ उठाने का निश्चय किया। कानून के पारित होने से पहले बीस दिन का अन्तरिम समय दिया जाता है। सरकार के पास एक मेमोरियल पेश करने की

तैयारी शुरू हो गई। बहुत दौड़-धूप के बाद भी 30 मार्च तक लोगों के हस्ताक्षर एकत्रित नहीं किये जा सके। जब समय सीमा पार हो चुकी तो शीघ्रता में एक स्मरण-पत्र सुप्रीम कोर्ट में दाखिल कर दिया गया। यह स्मारक-पत्र भाषा शैली और दलील की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। स्मारक पत्र के अनुसार कलकत्ता के नागरिकों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिरता में पूरा विश्वास रहते हुए आशा प्रकट की गयी थी कि बौद्धिक, सामाजिक उन्नति के लिए, और धर्म और सम्पत्ति के लिये, पूरी सुरक्षा मिलेगी। साथ ही साहित्यिक और राजनैतिक उन्नति के लिए सुविधा प्राप्त होगी। जैसा कि नागरिक और धार्मिक अधिकार इंगलैंड में लोगों को प्राप्त है वैसे ही अधिकार, धीरे-धीरे स्थिति के बेहतर होने के साथ यहाँ भी उपलब्ध होंगे। इस बहुमूल्य अधिकार के हनन से लोगों को गहरा दुख होगा क्योंकि इन लोगों ने शायद ही कभी इस अधिकार का दुरुपयोग किया हो। आगे यह भी लिखा गया कि इस समय बँगला भाषा में अनेक प्रकाशन हो रहे हैं, जिनके द्वारा जनता में ज्ञान-विज्ञान की जिज्ञासा फैल रही है साथ ही उनकी सामाजिक दशा के सुधारने की ओर ध्यान देने लगे हैं। केवल इतना ही नहीं इन पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा देश के भीतरी भागों में रहने वाले लोग इंगलैंड और विश्व के दूसरे स्थानों के महत्त्वपूर्ण समाचारों को जान सकते हैं। लेकिन इस अधिनियम के लागू हो जाने पर ज्ञान-विज्ञान के प्रसारण पर पूरी तरह रोक लग जायेगा क्योंकि इसके अंतर्गत अनुवादों पर रोक लगा दी जायगी। स्मारक-पत्र में आगे कहा गया कि इस आर्डिनेंस से ब्रिटिश शासन व्यवस्था, जो इंगलैण्ड में सफलतापूर्वक चल रही है, उनकी राजनैतिक संस्थाएँ तथा निष्पक्ष प्रशासन के लाभ, इस देश के लोग तक नहीं पहुँच पायेगा। किसी भी अच्छे प्रशासन के लिए आवश्यक है कि सरकार को निष्पक्ष और पूरे स्थानीय समाचार तथा न्यायिक विवरण उपलब्ध हों, लेकिन इस नये 'आर्डिनेंस' से यह रास्ता भी बन्द हो जायगा। यह उद्देश्य केवल स्वतन्त्र देशी पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इन पत्रिकाओं ने अभी तक कभी भी सरकार के विरुद्ध कोई भी विद्वेष या घृणा फैलाने वाले समाचार नहीं छापे। देश के लोगों की आर्थिक और सामाजिक अवस्था का विवरण अँगरेजी पत्रिकाओं के माध्यम से यूरोप तक पहुँचता रहा है। इस नये कानून के अन्तर्गत ये सारे संचार के माध्यम बन्द हो जाएँगे क्योंकि अब अनुवादों पर भी पाबन्दी लग रही है। इस प्रकार देशी लोगों के पास सरकारी प्रशासन की गलतियों और अधिकारियों द्वारा किये गये अन्याय को खुले तौर पर और सच्चाई के साथ सरकार तक या इंगलैण्ड के राजा या उनकी मंत्रीसभा तक पहुँचाने का रास्ता ही बन्द हो जायेगा।

स्मारक पत्र में आगे कहा गया कि उनके विचार से सरकार की सुरक्षा जनता को बेखबर रखने में नहीं है। क्योंकि इतिहास की शिक्षा इसी से भिन्न है। जनता को अन्धकार में रखने की नीति हमेशा शासकों के लिए हानिकारक सिद्ध हुई है....इत्यादि।

यह स्मारक पत्र जज के आदेश से रजिस्ट्रार द्वारा पढ़ा गया। प्रतिपक्ष के वकील और सरकारी वकील में काफी बहस हुई। बहस के दौरान कहा गया कि यह आर्डिनेंस पूरी तरह गैर कानूनी और अनुचित है। लेकिन न्यायाधीश ने निर्णय देते समय स्मारक पत्र की पूरी तरह अनदेखी कर दी, क्योंकि सरकारी कानून के दाँव-पेंच के अन्तर्गत न्यायाधीश के पास अध्यादेश को पारित करने के अलावा कोई रास्ता न था। आखिर वे भी कम्पनी के शासन तंत्र का ही एक हिस्सा थे।

राममोहन और उनके सहयोगी इस निर्णय पर स्वाभाविक रूप से दुखी हुए। उन्हें लगा कि उनके आवेदन और योग्य वकालत के बावजूद उनके विचारों की अवज्ञापूर्ण अनदेखी की गयी है। उन्हें लगा कि उनका एक पवित्र अधिकार अचानक ही छीन लिया गया है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्मारक पत्र के ठुकरा दिये जाने पर राममोहन और उनके सहयोगियों ने इंगलैण्ड के सम्राट के पास अपील भेजी। राममोहन ने पत्र-पत्रिकाओं पर लगाये गए प्रतिबन्धों के बारे में तीव्र समीक्षा करते हुए प्रतिबन्धों की निरर्थकता को प्रमाणित करने की चेष्टा की। उन्होंने तर्क प्रस्तुत करते हुए लिखा था कि इंगलैण्ड के सम्राट, या बिशप या कि न्यायाधीशों को जब मानहानि या निंदा के विरुद्ध दूसरे कानून उपलब्ध हैं तब इस नये कानून की भला क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त देशद्रोह या राजद्रोहात्मक प्रकाशन के लिए भी दूसरे कानून उपलब्ध हैं। इसलिए इस नये कानून से अतिरिक्त अधिकार प्राप्त करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी। अपील में आगे लिखा था कि नये कानून के लिए पेश किये गये कारण काल्पनिक भय से पैदा हुए हैं। ये प्रतिबन्ध कतई अनावश्यक हैं। इससे केवल न्याय के स्वाभाविक संचालन में ही बाधा पैदा होगी और न्यायपालिका और प्रशासनिक अधिकारों का एक ही अधिकारी के हाथ में एकत्रित होना नागरिक अधिकारों को नष्ट कर देगा। नये कानून का उद्देश्य केवल इतना ही लगता है To afford Government and all its functionaries from the highest to the lowest, complete immunity from censurs or exposure respecting anything done by them in their official capacity, however desireable it might be that the public conduct of such public men should not be allowed to pass unnoticed."[19]

इस प्रतिबन्धों से अधिकारियों से अन्यायपूर्ण कार्यों को ही शै मिलेगी। इस प्रकार जनता के बीच फैले असंतोष का सरकार तक पहुँचना कठिन हो जायगा जो कि किसी भी सरकार के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। अपील में सम्राट से आगे अँगरेजों के पूर्ववर्ती मुगल शासन काल में फैली अराजकता और कुप्रशासन की ओर ध्यान दिलाया जब राजनैतिक, नागरिक और धार्मिक अधिकारों की पूरी तरह अवहेलना की गयी थी और जिसका नतीजा था असंतोष, विद्रोह और आखिरकार मुग़ल साम्राज्य का पतन। उन्होंने आगे लिखा कि अँगरेजी साम्राज्य की स्थापना पर आशा बँधी थी जिस प्रकार के नागरिक अधिकार ब्रिटिश नागरिकों को अपने देश में उपलब्ध हैं वह इस देश में भी प्राप्त होंगे क्योंकि कम्पनी और ब्रिटिश शासक वर्ग हमेशा कहते आये हैं कि वे इस देश की भलाई चाहते हैं। लोगों में सरकार के प्रति विश्वास इस बात से भी सुदृढ़तर होता चला गया क्योंकि नागरिक अधिकार और बौद्धिक उन्नति के अवसर सबको मिलते रहे।

लेकिन अब यदि उनके अधिकारों पर हमला होता है या केवल एक या दो अधिकारियों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है तो यह तय है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन बने रहने का सुख और आनन्द ही समाप्त हो जायगा।

उन्होंने आगे लिखा कि जिस प्रकार यह अधिनियम पारित किया गया है उससे केवल प्रेस की स्वाधीनता ही नहीं बल्कि ब्रिटिश संसद के कानूनी सुरक्षा के अधिकार से भी हम वंचित होंगे। देश की सामाजिक और राजनैतिक उन्नति के लिए समाचार पत्रों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है और देशी लोगों ने इस सुविधा का पूरी तरह उपयोग किया था। स्वाधीन समाचार पत्र जनता की भावनाओं को सरकार तक पहुँचाने में सहायक होते हैं और किसी भी समाज की उन्नति में यह अनिवार्य माना जाता है।

अपील में आगे भ्रष्टाचार जैसी सामाजिक बुराइयों की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा गया था कि "निरंकुश सत्ता" से जनता को बचाने के लिए किसी न किसी प्रकार के अंकुश की आवश्यकता होती है और केवल पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से खुली समालोचना ही एकमात्र रास्ता है। "जो सरकार अपने को सुधारने के लिए सतर्क है उसे प्रेस की समालोचना से डरने की कतई आवश्यकता नहीं।"

राममोहन ने आगे दलील पेश करते हुए कहा कि जनता की शिकायतों का समुचित प्रकाशन और उसके द्वारा शिकायतें दूर करने से विद्रोह रोके जा सकते हैं क्योंकि शिक्षित और प्रबुद्ध जनता की अपेक्षा अशिक्षित और पिछड़े लोगों में ही अराजकता और विद्रोह की घटनाएँ अधिक पाई जाती हैं।

"प्रबुद्ध राष्ट्रों में, जहाँ अपनी प्रजा के अधिकारों की सुरक्षा की जाती है, सरकार के विरुद्ध विद्रोह की घटनायें विरल हैं ।....शिक्षित जनता का प्रतिरोध कभी भी सत्ता के विरुद्ध नहीं होता, बल्कि सत्ता के दुरुपयोग के विरोध में होता है ।"

यह तो रही अपील की मोटी-मोटी बातों का विवरण। इस अपील में पेश किये गए तर्क और विचार आज के युग में और आधुनिक सरकारों के लिए भी उतने सामयिक और प्रासंगिक हैं, जितने राममोहन के समय में थे। इस अध्यादेश के विरोध में राममोहन ने अपनी फारसी पत्रिका **"मिरात-उल-अखबार"** का प्रकाशन बन्द कर दिया था। पत्रिका को बन्द करते हुए अन्तिम अंक में उन्होंने सरकार के विरुद्ध जिस खरी और व्यंगात्मक शैली का प्रयोग किया था वह उनके ही बूते की बात थी।

1773 के पार्लियमेंट के अधिनियम की धारा, जिसके अंतर्गत कलकत्ता में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई थी, उसी कानून के अनुसार कानूनी आपत्ति 'किंग-इन-काउंसिल' को सुप्रीम कोर्ट के माध्यम से पेश की जा सकती थी। राममोहन इस व्यवस्था से परिचित थे। उन्होंने अपनी अपील सुप्रीम कोर्ट में दाखिल करते हुए उसकी प्रति इंगलैंड के राज मन्त्रिसभा में पेश करने के लिए कर्नल लैसिस्टर स्टेनहोप को भिजवा दी। अपील की यह प्रति जब इंगलैंड पहुँची तो राजनैतिक हलके में खलबली मच गई। उस युग में एक गुलाम देश के नागरिक द्वारा विद्वत्तापूर्ण तर्क और भावपूर्ण शैली में प्रस्तुत किये गये स्मारक-पत्र से नागरिक अधिकार और स्वाधीनता के समर्थक वर्ग को भारी आश्चर्य हुआ। स्टेनहोप ने एक पत्र में राममोहन को लिखा था, "Your memorial demonstrating the usefulness and safety of a Free Press in British India and praying for its restoration I forwarded with a letter to the Secretary of the Board of Control. He honoured me with a courteous reply that it had been graciously received by His Majesty"[20]

इस प्रकार राममोहन की अपील का बौद्धिक समाज और सरकारी हलकों में स्वागत तो अवश्य हुआ लेकिन इसका कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। कम्पनी या सरकार का रवैया ज्यों-का-त्यों बना रहा। हम जानते कि है **"कलकत्ता जर्नल"** के सम्पादक बकिंघम साहब को इसी कानून के अन्तर्गत भारत से निर्वासित कर दिया गया था। लेकिन उन्होंने इंगलैंड जाकर भी इस कानून के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा। इस कानूनी संघर्ष मे बकिंघम साहब ने राम-मोहन के स्मारक-पत्र का पूरी तरह प्रयोग किया। कोई छः महीने के विचार-

विमर्श के बाद प्रीवी काउंसिल ने नवम्बर 1825 को बकिंघम साहब का निवेदन खारिज कर दिया।

इससे आगे का इतिहास प्रेस के लिए सरकार की तरफ से उदार नीति का इतिहास है। एडम साहब के बाद लार्ड एमहर्स्ट गवर्नर जनरल के पद पर आये। वे एडम साहब की कठोर नीतियों के समर्थक नहीं थे। उन्होंने धीरे-धीरे प्रेस कानून में ढील दे दी और लार्ड बेंटिक के जमाने में आकर समाचार पत्र प्रायः स्वाधीन हो गये थे। क्योंकि बेंटिक 'प्रेस' को अच्छी सरकार के संचालन में मित्र स्वरूप समझते थे। आगे चलकर लार्ड मैटकाफ़ के जमाने में 1823 के कानून की जगह एक नया प्रेस विधेयक 1835 में पारित हुआ। प्रेस की इस स्वाधीनता का कलकत्ता और भारत के दूसरे शहरों में भारी स्वागत हुआ। यह एक अलग इतिहास है।

इस आलोचना के अन्तिम छोर पर अर्थात् 1823 के प्रेस स्वाधीनता के समय से राममोहन के 1830 में विदेश यात्रा के समय तक बंगला क्षेत्र में कई नयी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई। ये सभी राममोहन विरोधी पत्र थे। राममोहन ने प्रेस कानून के विरोध में अपनी फ़ारसी पत्रिका "मिरात-उल-अखबार" बन्द कर दिया था। यह विरोध कोई साधारण विरोध नहीं, बहुत ही सोचकर लिया गया साहसपूर्ण कदम था, जिसना कालान्तर में व्यापक प्रभाव पड़ा। राममोहन इस कारण कई वर्ष तक पत्र-पत्रिका के प्रकाशन से दूर रहे। केवल 1829 के मई में जाकर राममोहन ने अपने सहयोगी मन्टगोमरी मार्टिन, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर, नीलरत्न हालदार और राजकृष्ण सिंह से मिलकर अँगरेजी पत्रिका "बंगाल हेराल्ड" का प्रकाशन आरम्भ किया था। यह उस समय किया गया जब लार्ड एमहर्स्ट के गवर्नर जनरल के पद पर आने पर प्रेस कानून में कुछ ढिलाई दिखाई दी। इस साप्ताहिक अँगरेजी पत्रिका के उद्देश्य पत्र में प्रसिद्ध रोमन लेखक सिसिरो का वाक्य जो आदर्श वाक्य या 'मोटो' के रूप में दिया गया था वह इस प्रकार था, "Liberty consists in the power of doing that which is permitted by justice."

इस पत्रिका का उद्देश्य मुख्यतः भारत की घटनाओं का समाचार देना था। लेकिन साथ ही विदेशी और पाश्चात्य देशों की घटनाओं को भी पत्र में पर्याप्त स्थान दिया गया। मन्टगोमरी मार्टिन कोई 16 अंकों के प्रकाशन के बाद स्वदेश लौट गये। उनकी जगह पर डी० एल० रिचर्डसन पत्रिका के सम्पादक बने थे। राममोहन का संबंध इस पत्रिका के साथ बहुत दिनों नहीं रह सका क्योंकि 1830 के नवम्बर में राममोहन इंगलैंड के लिए रवाना हो चुके थे।[21] योजना थी कि "बंगाल हेराल्ड" के सहयोगी पत्र के रूप में बंगला, फारसी और नागरी लिपि में पत्रिकाएँ निकाली जायँ। लेकिन केवल बंगला और

हिन्दुस्तानी पत्रिका "बंगदूत" का ही प्रकाशन हो सका।[22] इसके सम्पादक बने नीलरत्न हालदार।

भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन की भूमिका को सभी समकालीन नेताओं ने पूरी तरह मान्यता दी है। मन्टगोमरी मार्टिन ने लिखा था कि भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन ही एकमात्र व्यक्ति थे, जिनका आभार हम सभी को मानना चाहिए। प्रेस की स्वाधीनता के लिए किये गये संघर्ष में उनकी भूमिका की याद में 9 फरवरी 1838 को उनकी मृत्यु के कई वर्ष बाद एक स्मृति सभा का आयोजन किया गया था जिसमें प्रसन्न कुमार ठाकुर और द्वारकानाथ ठाकुर ने भावभीनी श्रद्धांजलि पेश की थी।[23] स्वाधीन पत्रकारिता के लिए लड़े गये प्रारम्भिक संघर्षों के नेता के रूप में राममोहन हमेशा याद किये जाएंगे। उस काल में पत्र-पत्रिका का संचालन कोई आसान नहीं था। यह एक खर्चीला काम था। अक्सर राममोहन को खर्चा स्वयं ही उठाना पड़ता। कभी-कभी उनकी आत्मीय सभा के सदस्य इस काम में उनके सहयोगी बनते।[24] उन्होंने हमेशा कठिनाइयों के बावजूद प्रतिकूल राजनैतिक परिस्थितियों मे भी देशी पत्रकारिता को मार्गप्रदर्शन दिया और प्रेस की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन का श्रीगणेश किया था।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ

1. मुखोपाध्याय : राममोहन ओ तत्कालीन समाज ओ साहित्य (बंगला), पृ० 108.
2. वही, पृ० 108 में उद्धृत।
3. वही, पृ० 108.
4. वही, पृ० 109 में उद्धृत।
5. Natarajan S., A History of press in India, पृ० 14.
6. वही, पृ० 16.
7. वही, पृ० 19-20.
8. वही, पृ० 23.
9. वही, पृ० 23.
10. वहीं, पृ० 24.
11. सेन०, राजा राममोहन राय, पृ० 37.
12. मुखोपाध्याय, पृ० 128. नटराजन की पुस्तक में इस पत्रिका की प्रकाशन तिथि 1816 दी गई है।
13. वही, पृ० 128.
14. Natarajan, पृ० 28.

15. मुखोपाध्याय, पृ० 129.

16. Majumdar, Raja Rammohan Roy, पृ० 298-299, पूरे उद्देश्य पत्र के लिए देखें।

17. वही, पृ० 296-298 बकिंघम साहब का यह सम्पादकीय बहुत ही महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है।

18. Sen, पृ० 61-62 में दिये गये विवरण से उद्धृत, सारांश।

19. अपील के पाठ के लिए परिशिष्ट देखें।

20. Sen, पृ० 87.

21. मुखोपाध्याय : पृ० 121.

22. वही, पृ० 142.

23. Sen, पृ० 118.

24. मुखोपाध्याय, पृ० 154.

अध्याय 19
भाषा और साहित्य के विकास में अगुआई

पिछले अध्यायों में हमने राममोहन के शिक्षा सम्बन्धी तथा पत्रकारिता के सम्बन्ध में उनके मार्ग दर्शक भूमिका के बारे में विचार किया। इस अध्याय में देशी भाषाओं मुख्यत: बंगला और किसी सीमा तक हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्य की उन्नति और आधुनिकीकरण में राममोहन की भूमिका और योगदान के बारे में विचार करेंगे।

अपने सुधारवादी आन्दोलन के दौरान राममोहन इस तथ्य से अच्छी तरह अवगत थे कि जनजीवन और जनशिक्षा में देशी भाषाओं की क्या भूमिका हो सकती है। राममोहन ने आदर्श हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों के प्रचार के लिए जो पद्धति अपनाई थी वह था धर्मग्रन्थों का संस्कृत से जनता की भाषा में अर्थात् बंगला और हिन्दी में अनुवाद करना। देश की जनता में किसी भी भावना के विस्तार का माध्यम देशी भाषा ही हो सकती है यही राममोहन का दृष्टिकोण रहा है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि राममोहन आधुनिक बंगला गद्य के प्रवर्तक थे, ठीक ही है।

राममोहन से पहले बंगला गद्य का प्रयोग केवल कुछ कानूनी दस्तावेजों में होता था। यह भाषा अरबी-फारसी के शब्दों से बोझिल एक कृत्रिम भाषा थी, जिसमें कोई भी गम्भीर साहित्यिक रचना सम्भव नहीं थी। राममोहन ने ही सबसे पहले बंगला गद्य में अरबी-फारसी शब्दों का तथा क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का बहिष्कार कर भाषा में नया प्राण फूंका। भाषा को जनजीवन और विचारों की आवश्यकता के साथ समन्वित करने का पहला कदम राममोहन ने ही उठाया था। राममोहन द्वारा बंगला और हिन्दी भाषा में धर्मशास्त्रों के अनुवाद, उनके शास्त्रार्थ सम्बन्धी लेख, पत्र-पत्रिकाओं की रचनाएँ उस काल में भाषा की बानगी और सजीवता और शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं।

आधुनिक बंगला गद्य का प्रादुर्भाव सन् 1801 से माना जा सकता है। सन् 1801 से 1814 तक इन पुस्तकों के प्रकाशन के केवल दो स्रोत थे। पहला बैप्टिस्ट मिशन प्रेस और दूसरा फोर्ट विलियम कालेज। बैप्टिस्ट मिशन के प्रमुख केरी साहब बंगला भाषा के लिए कार्य करने के पीछे मुख्य उद्देश्य था, ईसाई धर्म का प्रचार और फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापकों द्वारा बंगला-पुस्तकों के लेखन और प्रकाशन का मूल उद्देश्य था—ब्रिटिश शासन श्रेणी और राइटर्स को आंतरिक शासन के लिए देशी भाषा की शिक्षा देने योग्य पुस्तकों की

रचना। केरी साहब के महान प्रयत्नों का फल था कि बंगला छापाखाने की स्थापना हुई। आगे चलकर जब केरी साहब फोर्ट विलियम कालेज के अध्यापक नियुक्त हुए तो उन्हीं के उत्साह और प्रोत्साहन का फल था कि कालेज में बंगला, हिन्दी और उर्दू के अध्यापक नियुक्त हुए और इन लोगों ने आधुनिक भारतीय भाषाओं की नींव पक्की की। कालेज के अध्यापक मृत्युंजय विद्यालंकार, गोलकनाथ और रामराम बसु ने जिस बंगला पुस्तकों का प्रणयन किया, वे बंगला गद्य की प्रारम्भिक पुस्तकें थीं। इधर केरी साहब धर्म प्रचार के उद्देश्य से बाइबिल के बंगला अनुवाद के साथ दूसरी धार्मिक पुस्तकों का बंगला अनुवाद प्रकाशित कर रहे थे। कुछ अनुवाद फोर्ट विलियम कॉलेज से भी प्रकाशित हुए। राममोहन राय के कलकत्ता के रंगमंच में आने से पहले तथा बंगला गद्य के श्रेष्ठ लेखक के रूप में मृत्युंजय विद्यालंकार उभरे थे। इनकी भाषा क्लिष्ट और संस्कृतनिष्ठ थी।

यहाँ पर 1801 से 1815 तक के बंगला प्रकाशनों के विषयवस्तु का जायजा लेना उपयुक्त होगा। इस काल के प्रकाशनों की सूची इस प्रकार है :

1801 न्यू टेस्टामेंट : विलियम केरी
बंगला व्याकरण : विलियम केरी (अँगरेजी के माध्यम से)
कथोपकथन : विलियम केरी
हितोपदेश : गोलकनाथ शर्मा
राजा प्रतापादित्य चरित : रामराम बसु
1802 कृत्तिवास-रामायण (पहला अध्याय) : विलियम केरी
काशीराम-महाभारत : विलियम केरी
बत्रिश-सिंहासन : मृत्युंजय विद्यालंकार
लिपिमाला : रामराम बसु
1803 ओल्ड टेस्टामेंट : विलियम केरी
ओरिअंटल फेबुलिस्ट : तारिणी चरण मित्र
1805 तोता इतिहास : चण्डी चरण मुंशी
महाराजा कृष्णरायस्य चरित्रं : राजीवलोचन मुखोपाध्याय
1807 ओल्ड टेस्टामेंट : विलियम केरी
1808 हितोपदेश : रामकिशोर तर्कालंकार
हितोपदेश : मृत्युंजय विद्यालंकार
राजा बलि : मृत्युंजय विद्यालंकार
1809 ओल्ड टेस्टामेंट : विलियम केरी
1812 इतिहासमाला : विलियम केरी
1814 पुरुष परीक्षा : हरप्रसाद राय

1815 वेदान्त ग्रन्थ : राममोहन राय
वेदान्तसार : राममोहन राय[1]

ऊपर की सूची से स्पष्ट है कि राममोहन के इस क्षेत्र में आने से पहले ही बेप्टिस्ट मिशन प्रेस और फोर्ट विलियम कॉलेज से कई पुस्तकें बंगला भाषा में प्रकाशित हो चुकी थीं। इन पुस्तकों की भाषा या शैली में कोई बानगी नहीं थी। प्रसिद्ध साहित्य इतिहासकार डॉ० सुकुमार सेन के शब्दों में, आधुनिक युग बंगला गद्य को गिर्जा (पादरियों) और पाठशाला (फोर्ट विलियम कालेज) के परिसर से बाहर निकालकर, विचार और विश्लेषण के उच्चतर चिन्तन के माध्यम के रूप में राममोहन ने पहली बार व्यवहार के धरातल पर प्रतिष्ठित किया।....बहुभाषाविद राममोहन ने शैली विशेष की ओर ध्यान न देकर विषय-वस्तु की ओर ध्यान दिया। इसी से उनके हाथों गद्य का जो रूप बना उसमें भले ही माधुर्य न रहा हो लेकिन स्पष्टता थी....।'[2]

उक्त तथ्य की सच्चाई को प्रायः सभी प्रमुख साहित्य शास्त्रियों ने स्वीकारा है। राममोहन ने ही सबसे पहले अनुभव किया कि संस्कृतनिष्ठ भाषा की अपेक्षा सरल-सीधी बोलचाल की भाषा अधिक उपयोगी और लोकप्रिय सिद्ध होगी। राममोहन ने जब 'वेदान्त ग्रन्थ' और 'वेदान्तसार' लिखना आरम्भ किया था उस समय उनके समक्ष इस प्रकार के गूढ़ विषयों पर लिखने के कोई भाषाई आदर्श नहीं थे क्योंकि इसके पूर्व किसी भी देशी या क्षेत्रीय भाषा में इस श्रेणी के ग्रन्थों की रचना नहीं हुई थी। 'वेदान्त ग्रन्थ' की भूमिका में राममोहन ने लिखा था :

> 'विचारणीय वाक्य संस्कृत शब्दों को छोड़कर केवल स्वदेशी भाषा में वर्णन करना कठिन है इसी से मैंने अपनी क्षमतानुसार सरल बनाने की कोशिश की है। विद्वानों को कहीं कमी दिखाई दे तो कृपया सुधार लें और भाषा की विवशता से ऐसे कुछ शब्दों का व्यवहार हो गया हो तो इस त्रुटि को क्षमा करें....।'[3]

गहन विषयों पर निबन्ध आदि लिखने के लिए कोई भाषाई आदर्श न होने के कारण राममोहन ने इस विषय पर विचार करते हुए लिखा था, "बंगला भाषा में घरेलू व्यवहार के योग्य कुछ शब्द हैं और यह भाषा संस्कृत पर कितना निर्भर है इस बात का अनुभव दूसरी भाषा से इसकी तुलना करते हुए होता है।' यद्यपि सरल बंगला भाषा में गहन विषयों का अनुवाद कठिन कार्य था फिर भी उन्हें इस कार्य में पूरी सफलता मिली। इसी से स्पष्ट है कि राममोहन बंगला और संस्कृत भाषा की संरचनात्मक भिन्नता से अच्छी तरह परिचित थे और दोनों भाषाओं के व्याकरण सम्बन्धी भेद उन्हें मालूम था। जब उनके समसामयिक विद्वानों ने कथा-कहानियों से देशी भाषा की सेवा आरम्भ की तो

राममोहन ने धर्म और दर्शन जैसे दुरूह विषयों से देशी भाषाओं का भण्डार भरना आरम्भ किया। सुकुमार सेन के शब्दों में—

'राममोहन को बंगला भाषा में सर्वप्रथम साहित्यिक गद्य लिखने का श्रेय प्राप्त है उन्होंने बंगला गद्य का उच्च विचारों और दर्शन की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया। उस काल में बंगला गद्य की परिस्थिति को देखते हुए इसे बहुत बड़ी उपलब्धि समझनी चाहिए....।'

यद्यपि धर्म दर्शन जैसे गूढ़ विषयों पर बोलचाल की बंगला भाषा में लिखना कठिन था लेकिन एक संस्कृत पण्डित होते हुए भी उन्होंने ऐसे लेखों में अपनी बंगला भाषा को क्लिष्ट संस्कृत से बचाने का भरसक प्रयत्न किया। जिस भाषा की व्युत्पत्ति संस्कृत से है उसमें कुछ संस्कृत शब्दों का व्यवहार स्वाभाविक ही है। बंगला गद्य रचना की लेखन शैली को समझने के लिए राममोहन ने अपनी पुस्तक 'अनुष्ठान' की भूमिका में इसकी स्पष्ट व्याख्या की है :

'वाक्य का आरम्भ और समाप्ति इन दोनों की अच्छी परख होनी चाहिए। जिस-जिस स्थान पर जब, जो, और जैसे आदि शब्द आते हैं उनका प्रति शब्द तब वहाँ उसी रूप में पहले के साथ अन्वित करते हुए वाक्य समाप्त करना चाहिए। जब तक क्रिया का बोध न हो तब तक वाक्य का अर्थ ढूंढ़ने की कोशिश न करें। किस नाम के साथ क्रिया का अन्वय होगा इसकी खोज अवश्य करें क्योंकि एक ही वाक्य में कभी-कभी कई नाम और कई क्रियाएँ पाई जाती हैं और इसमें किसके साथ किसका अन्वय है इसका ज्ञान न होने पर ठीक अर्थ नहीं समझा जाता....[4]

राममोहन ने इस दिशा में अथक परिश्रम किया। उनके शास्त्रार्थ सम्बन्धी लेख पत्रोत्तर और आगे चलकर पत्रकारिता के क्षेत्र में **'संवाद कौमुदी'** के पृष्ठों में बंगला भाषा निखरने लगी थी। 1815 से 1830 तक राममोहन ने बंगला और अँगरेजी में पुस्तक और पुस्तिकाएं प्रकाशित कीं और इनमें से भी अधिकतर उन्होंने अपने खर्चे पर छपवाकर बँटवायी। बंगला भाषा की उन रचनाओं को यदि ध्यान से देखें तो हमें ज्ञात होगा कि उन्होंने भाषा की सजीवता के लिए कितनी मेहनत की। 'वेदान्त ग्रन्थ' और 'वेदान्त सार' जैसी पुस्तकों और 'चीनी और ईसाई पादरी के बीच बातचीत' जैसी पुस्तकों की भाषागत शैली में भारी भेद है जैसा कि होना ही चाहिए था। प्रसिद्ध साहित्यकार सजनीकान्त दास ने लिखा था :

'यद्यपि राममोहन से पहले ही बंगला गद्य की नींव फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों और अध्यापकों के द्वारा पड़ चुकी थी....फिर भी राममोहन का कृतित्व कुछ कम नहीं था। बंगला गद्य में गम्भीर और गूढ़ विषयों पर पद्य रचना का प्रवर्तन राममोहन ने ही किया। उनके धर्म

शास्त्रीय और वाद-विवाद ग्रन्थों में उनका गद्य निखरता चला गया। उन्होंने भाषा को केवल शैली से नहीं शब्द सम्पदा से अलंकृत कर गम्भीर, सजीव भाषा सौष्ठव का भी प्रवर्तन किया।'[5]

एक साहित्यकार के रूप में राममोहन की ख्याति उनके जीवनकाल में ही इतनी फैल चुकी थी कि कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी ने उनसे छात्रों के उपयुक्त पुस्तकों के लिखने के लिए उनकी सेवाएँ प्राप्त की थीं। उन्होंने 1826 में देशी लोगों की भाषाई समस्या को ध्यान में रखते हुए अंगरेजी के माध्यम से बंगला व्याकरण ग्रन्थ लिखा था।[6] इससे पहले हालहेड और केरी ने जो व्याकरण लिखे थे वे अँगरेज शिक्षार्थियों के लिए लिखा गया था। राममोहन ने बाद में बंगला माध्यम से बंगला व्याकरण (गौड़ीय व्याकरण) प्रकाशित किया। यह व्याकरण उनके अँगरेजी में लिखे बंगला-व्याकरण का अनुवाद नहीं था। यह 1830 से पहले लिखी गयी थी, लेकिन इसका प्रकाशन 1833 में कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी ने किया था।

राममोहन ने ही सबसे पहले बंगला गद्य में विरामादि चिन्ह का प्रयोग आरम्भ किया था। विराम चिह्न और अर्ध-विराम (कॉमा) का प्रयोग तक राममोहन ने अपने को सीमित रखा था। दूसरे चिह्न भाषा की प्रगति के साथ बाद में प्रयोग में लाए गए। सुकुमार सेन के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि राममोहन ने ही बंगला भाषा को संस्कृत और फारसी की जंजीर से मुक्त किया। वस्तुतः राममोहन के युग में बंगला भाषा इन दोनों भाषाओं के बीच पिसी जा रही थी। देशी भाषाओं के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी। विद्वानों की भाषा या तो संस्कृत थी या फारसी। साथ ही अँगरेजी भाषा ने अपना पाँव जमाना आरम्भ कर दिया था। ऐसी परिस्थिति में राममोहन ने बंगला भाषा को आधुनिक रूप देने का प्रयास किया था। उनका "गौड़ीय व्याकरण" यद्यपि 1830 के आस-पास लिखा गया था लेकिन अपनी विदेश यात्रा की व्यस्तता के कारण छप न सका और उसे 1833 में स्कूल बुक सोसाइटी ने प्रकाशित किया था। इस व्याकरण की भूमिका से इस ग्रन्थ के प्रकाशन के इतिहास पर रोशनी डाली जा सकती है। कुछ प्रासंगिक अंश का भावानुवाद इस प्रकार है :

> "सभी देशों की भाषाओं का एक-एक व्याकरण प्रसिद्ध है जिनके द्वारा उक्त भाषा के शुद्धि-अशुद्धि के विवेचन के साथ सुव्यवस्थित लेखन और वाचन की ओर ध्यान देते हैं किन्तु गौड़ीय (बंगला) भाषा का कोई व्याकरण न होने से इसके लेखन और वाचन में किसी उपयुक्त रीति या परिपाटी का ज्ञान नहीं होता और बच्चों को अपनी भाषा के व्याकरण का ज्ञान न होने पर दूसरी भाषाओं के व्याकरण की शिक्षा के समय कठिनाई

होती है, अपनी भाषा का व्याकरण जो थोड़ी मेहनत से ही सीखी जा सकती है। सीख लेने पर दूसरी भाषाओं का व्याकरण ज्ञान सहज ही प्राप्त हो सकता है। इसी कारण स्कूल बुक सोसाइटी के अनुरोध पर श्रीयुत राजा राममोहन राय ने इस गौड़ीय भाषा व्याकरण को उसी भाषा में लिखना आरम्भ किया। परन्तु उनके इंगलैंड जाने का समय निकट आने पर व्यस्तता और समय के अभाव के कारण वे केवल पाण्डुलिपि ही तैयार कर सके इसको दुबारा पुनः परीक्षण का अवसर नहीं मिला। वे जब विदेश के लिए रवाना हुए तो पाण्डुलिपि के प्रामाणिकता और विवेचन का भार कलकत्ता बुक सोसाइटी के अध्यक्ष को सौंप गये थे, जिसे उन्होंने बड़े ध्यान से पूरा किया....''[7]

राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद ने इस पुस्तक की छपाई की देख रेख की थी। अप्रैल 1833 में पुस्तक छपकर तैयार हुई थी।

बंगला गद्य को राममोहन की देन के बारे में डा० सुकुमार सेन के शब्दों का भावानुवाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा—

यह राममोहन ही थे, जिन्होंने इस नवजात, बेडौल, निश्चल और भद्दी भाषा को एक सुन्दर, लचीली, सशक्त और प्रभावशाली भाषा में बदल दिया जो बाद में उच्च विचारों और अभिव्यंजना के वाहक के रूप में भविष्य के बंगला गद्य साहित्य की नींव बनी। जब हम बंगला भाषा और साहित्य के क्षेत्र में राममोहन की देन के बारे में विचार करते हैं तो कम से कम इतना तो कह ही सकते हैं कि उनके बिना सम्भवतः विद्यासागर, बंकिमचन्द्र और रवीन्द्र का अस्तित्व सम्भव न होता।''

हिन्दी गद्य को देन

बँगला गद्य के साथ-साथ हिन्दी गद्य के विकास में भी राममोहन की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। हिन्दी भाषा राममोहन के प्रयासों का सदैव ऋणी रहेगी। बहु भाषाविद् राममोहन बँगला के अलावा जिस भाषा में विशेष रुचि ले रहे थे वह हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा थी। इस भाषा से उनका स्वाभाविक और अंतरंग परिचय उनके वाराणसी और भागलपुर प्रवासकाल में हुआ। इस भाषा पर भी उनका अच्छा खासा अधिकार था, और वे इस भाषा के महत्त्व को समझते थे, यह इसी तथ्य से स्पष्ट होता है कि उन्होंने जब बँगला भाषा में वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित किया तो साथ-ही-साथ हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा में भी वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित किया। हिन्दी या हिन्दुस्थानी में लिखे उनके प्रमुख पुस्तकों की तालिका इस प्रकार है।

(1) वेदान्त ग्रन्थ (मूल बँगला का अनुवाद) 1815

(2) वेदान्त सार (मूल बंगला ग्रन्थ का अनुवाद) 1815
(3) सुब्रह्मण्य शास्त्रीर सहित विचार (हिन्दी संस्करण) 1820

इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी कई लेख और पुस्तिकाओं का प्रणयन एवं प्रकाशन हिन्दी भाषा में किया था। 'वेदान्त सार' और 'वेदान्त ग्रन्थ' की प्रतियाँ दुर्भाग्य से आज उपलब्ध नहीं हैं। पंडित क्षितिमोहन सेन ने 'वेदान्त ग्रन्थ' की एक प्रति अपने बचपन में मिर्जापुर के अभयचरण भट्टाचार्य के घर पर देखी थी।[8] आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने एक लेख में राममोहन की हिन्दी शैली पर विशद विवेचन किया था।[9] उन्होंने लिखा था कि आधुनिक हिन्दी भाषा के प्रथम प्रवर्तकों में सदासुखलाल फ़ारसी लिपि में लिखते थे। लल्लूजी लाल और सदल मिश्र ने देवनागरी लिपि का व्यवहार किया, इंशा-अल्ला खाँ भी फ़ारसी लिपि में ही लिखते रहे। देवनागरी लिपि में लिखने वाले प्रवर्तकों में लल्लूजी लाल और सदल मिश्र के बाद, तीसरा स्थान राममोहन का है। यह तथ्य भी विचारणीय है कि सदल मिश्र और लल्लूजी लाल फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी में थे। और उनका लेखन-कार्य एक सीमा तक उनकी नौकरी के सिलसिले में सरकारी आज्ञा के अधीनस्थ था। लेकिन राम-मोहन ने ही व्यक्तिगत तौर पर सर्वप्रथम जनसाधारण की भलाई के लिए देव-नागरी लिपि का प्रयोग किया। इसके अलावा विषय-वस्तु की दृष्टि से भी राममोहन की रचनाओं में तथा फोर्ट विलियम कालेज के शिक्षकों की रचनाओं में बड़ी भिन्नता थी। राममोहन ने ही पहले पहल धर्म और दर्शन जैसे गूढ़ विषयों को हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया था। जब कि फोर्ट विलियम कालेज के शिक्षकों और पण्डितों द्वारा रचित पुस्तकें केवल किस्सा, कहानी और ऐति-हासिक रेखाचित्र मात्र थे।

पिछले अध्याय में पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन के योगदान पर विचार करते हुए यह बताया जा चुका है कि देशी पत्रकारिता के क्षेत्र में राममोहन ने बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं में पत्रिका प्रकाशन क्षेत्र में समान रूप से पहल की। अंगरेजी पत्रिका 'बंगाल हेराल्ड' के साथ ही राममोहन ने इस पत्रिका के बंगला, हिन्दी और फारसी संस्करण निकालने की योजना बनायी थी।[10] बंगला के साथ हिन्दी 'बंगदूत' का प्रकाशन भी 1829 में हुआ था। वस्तुतः युगल किशोर शुक्ल द्वारा सम्पादित उदन्त मार्तण्ड' (1826) हिन्दी की प्रथम पत्रिका थी। दुर्भाग्य से 1827 में ही इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया। हिन्दी भाषा में दूसरी पत्रिका प्रकाशन का श्रेय राममोहन को जाता है। 'बंगदूत' के माध्यम से राममोहन अपने विचार हिन्दी भाषी जनता तक पहुँचाने का प्रयास करते थे। उस समय हिन्दी जानने समझने वालों की बहुत बड़ी

संख्या कलकत्ता में थी इसी से सम्भवतः उन्होंने हिन्दी पत्रिका के प्रकाशन की बात सोची होगी।

'बंगदूत' के हिन्दी के स्वरूप का एक नमूना इस प्रकार है :

> "जो सब ब्राह्मण सांगवेग अध्ययन नही करते सो सब व्रात्य है, यह प्रमाण करने की इच्छा करके, ब्राह्मण धर्मपरायण श्री सुब्रह्मण्यम शास्त्री जी ने जो पत्र सांगवदाध्याय-हीन अनेक इसके ब्राह्मणों के समीप पढ़ाया है उसमें देखा जो उन्होंने लिखा है—वेदाध्यायहीन मनुष्यों को स्वर्ग और मोक्ष होने शक्ता नहीं।"[11]

यह अंश आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने अपनी पुस्तकों में दिया था। डॉ० शारदा देवी वेदालंकार 27 मई 1829 के **'बंगदूत'** और 1830 के **'ईस्ट इण्डिया मैगजीन'** का हवाला देते हुए भी **'बंगदूत'** का एक अंश उद्धृत किया है।[12]

> "ए समाचार ऐसे ही रायल क्वार्टो चौड़े कागज पर छपेंगे और यही आठ पिठौता ऊपर की भाषों में औ सोलह पिठौते अँगरेजी भाषा में छपेंगे। सब किसी पर छीपी न रहे कि इन सब भाषाओं में जो समाचार और वृत्तान्त छपेगा वैसा ही उसका उलथा नहीं होगा पर भाषा की लिखावट अपने-अपने ढब पर अलग-अलग होगी फिर भी काम पड़ने से कभी उलथा भी होगा।"

'बंगदूत' का प्रकाशन कलकत्ता स्थित बाँसतल्ला लेन से होता था। इसके उद्देश्य पत्र में लिखा था :

> 'बंगदूत नामक काग़ज एशिया संज्ञा पृथ्वी के इस प्रसिद्ध खण्ड में जो कुछ बीते औ होय लिपि की रीति से लिखैं इसलिए इस सम्बन्ध के प्रयोजन के उपयोगी समाचार जो कोई भेजेंगे वह बड़ा उपकार मानकर लिया जायगा।"[13]

ये रहे **'बंगदूत'** में प्रकाशित भाषा के नमूने। हिन्दी गद्य के विकासकाल में यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान था। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि आधुनिक भारत के इस संक्रांति काल में एक व्यक्ति भारत की दो प्रमुख भाषाओं के निर्माण में समान रूप से अपना योगदान दे रहा था। राममोहन की दूरदर्शिता का परिचय इसी बात से मिलता है कि उन्होंने बँगला के साथ हिन्दी भाषा के महत्व और सार्वभौम भूमिका को समझा। अपने हिन्दी अनुवादों, लेखों और पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने हिन्दी गद्य के निर्माण, आधुनिकीकरण और उसके स्वरूप को सँवारने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक निर्माताओं में राममोहन का नाम सदैव स्मरण किया जायगा।

ब्रह्म-संगीत

भाषा और साहित्य के अतिरिक्त राममोहन भजन या धर्मीय संगीत रचना में भी रुचि रखते थे। बँगला में वैदिक या ब्रह्म-संगीत के वही संभवतः प्रथम रचनाकार थे। ये ब्रह्म-संगीत अक्सर आत्मीय सभा और ब्रह्म समाज की बैठकों में गाये जाते। इस ब्रह्म-गीतों में मुख्यतः उनकी अद्वैतवादी भावना और निराकार ईश्वर साधना ही प्रतिपादित विषय हुआ करते थे। उनके जीवनकाल में ही ये गीत पुस्तकाकार प्रकाशित हुए और दो-तीन संस्करण भी निकले। इस ग्रन्थ में उनके कुछ मित्रों और सहयोगियों द्वारा रचित गीत भी सम्मिलित थे। तत्कालीन विद्वानों के मतानुसार राममोहन बहुत ही सुन्दर गीत रचा करते थे। ये गीत विशुद्ध राग-रागिनियों पर आधारित थे। इनमें से कुछ गीत बहुत ही लोकप्रिय हुए। इस ब्रह्म-संगीत की परम्परा को रवीन्द्रनाथ ने आगे पराकाष्ठा पर पहुँचाया था। राममोहन रचित दो ब्रह्म-संगीत के नमूने मूल बँगला में उद्धृत हैं :

राग-राम केली, आड़ा ठेका

मने कर शेषर से दिन भयंकर।
अन्य वाक्य कबे, किन्तु तुमि रबे निरुत्तर।
यार प्रति यत माया, किबा पुत्र किबा जाया
तार मुख चेये तत हइबे कातर।
गृहे हाय हाय शब्द, सन्मुखे स्वजन स्तब्ध,
दृष्टिहीन नाड़ी हीन, हिमकलेवर।
अतएव सावधान, त्यज दम्भ अभिमान,
वैराग्य अभ्यास कर, सत्यते निर्भर।

राग-इमन कल्याण-तेवट

भाव सेइ एके।
जले स्थले शुन्ये ये समान भावे थाके।
ये रचिल ए संसार, आदि अन्त नाहि जार,
से जाने सकल, केह नाहि जाने ताके।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमंच दैवतं।
पतिं पतीनां परमं परस्तात् विदाम् देवं भुवनेशमीडं।[14]

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. मुखोपाध्याय, पृ० 53 से उद्धृत। बी० एन० दासगुप्ता की पुस्तक Life and Time of Raja Rammohun Roy के पृ० 51 में भी ऐसी ही

एक सूची दी गई है। इन दोनों सूचियों में पुस्तकों की प्रकाशन तिथियों में दो एक स्थानों पर थोड़ी भिन्नता है।

2. वही, पृ० 7-8 से उद्धृत।

3. वही, पृ० 329-330 से उद्धृत। पूरे पाठ के लिए राममोहन ग्रंथावली (बंगला) देखें

4. ग्रंथावली देखें।

5. सजनीकान्त दास, बांगला गद्य साहित्येर इतिहास, पृ० 310-311.

6. मुखोपाध्याय, पृ० 332.

7. वही, पृ० 533 में राममोहन ग्रन्थावली से उद्धृत।

8. Collet, पृ० 532 में क्षितिमोहन सेन की बंगला पुस्तक "युगपुरुष राममोहन" से उद्धृत (सम्पादकीय टिप्पणी)।

9. The Father of Modern India, Rammohun Centenary Commemoration Volume में हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेख "हिन्दी भाषाय राममोहन" के हवाले से।

10. मजूमदार, पृ० 326-327 में "बंगाल हेराल्ड" का उद्देश्य पत्र उद्धृत है....

"A native paper to be printed in the Bengalee, Persian and Nagaree character, will be subjoined, but distinct and under the superintendence of the most talented Hindoos...."

इस उद्देश्य से पत्र में राममोहन और उनके सहयोगी प्रकाशकों के नाम हैं।

11. कृष्ण बिहारी मिश्र। हिन्दी पत्रकारिता, पृ० 37 पर उद्धृत।

12. वही, पृ० 449 पर उद्धृत।

13. वही, पृ० 449 पर उद्धृत।

14. चट्टोपाध्याय, राजा राममोहन रायेर जीवन चरित, पृ० 147-153 पर राममोहन रचित ब्रह्म संगीत के नमूने देखें।

अध्याय 20

राजनैतिक चेतना का श्रीगणेश

राजनैतिक स्तर पर राममोहन के सामने दो प्रमुख स्थितियाँ थीं। एक ओर जहाँ मुगलों के पतन के साथ मध्ययुगीन शासन व्यवस्था पूरी तरह टूट चुकी थी और देश छोटे-छोटे स्वार्थों और रजवाड़ों में बँटा हुआ था, वहाँ दूसरी ओर देश में अँगरेजी शासन की नींव पड़ चुकी थी और नये शासक श्रेणी के साथ पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान और आधुनिक अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा रही थी। देश की ऐसी राजनीतिक और सामाजिक परिस्थिति में "राष्ट्रीयता" की एक नयी परिभाषा का जन्म हो रहा था। इस संक्रांतिकाल में देश को राजनैतिक स्थिरता देने और वैचारिक स्तर पर आधुनिकता के दरवाजे पर लाने में राममोहन ने जो कुछ भी किया वह ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। उस समय तक भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता जैसी भावना का जन्म ही नहीं हुआ था। राजनीति या राष्ट्रनीति की ओर साधारण जनता की कोई रुचि नहीं थी। शिक्षित या सचेतन नागरिकों की कोई भी संस्था अभी तक संगठित नहीं थी। अराजकता के उस परिवेश में जनता केवल प्रशासनिक न्याय, धार्मिक स्वतन्त्रता और सुरक्षा की आवश्यकता को महत्त्व देती थी। इधर अँगरेजी शासन ने इन संभावनाओं को जन्म दिया था, और जनता के मन में विदेशी शासन के प्रति आस्था की भावना बढ़ चली थी। कुछ लोग इस शासन को अराजकता और सामन्तवादी अत्याचारों से मुक्ति का रास्ता समझने लगे थे।

राममोहन के लिए राजनैतिक मुक्ति की परिभाषा कुछ अधिक गहरी और व्यापक थी। इस परिभाषा में देश, जाति या सम्प्रदाय की सीमा रेखा का हस्त-क्षेप नहीं था। हमने उनके जीवनी खण्ड में देखा है कि राममोहन ने अमेरिका, फ्रांस, इटली, स्पेन जहाँ कहीं भी स्वाधीनता का संघर्ष या विद्रोह चला, हृदय से समर्थन किया। क्योंकि उनका विश्वास था कि इन स्वतन्त्र संग्रामों से उद्-भूत लोकतन्त्री भावनाएँ एक न एक दिन भारत में न्यायिक-प्रशासन की स्थापना में और राजनैतिक मुक्ति दिलाने में सहायक होंगी। डिगबी साहब और अँग-रेजी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राममोहन पाश्चात्य विचारधारा के संस्पर्श में आये थे। उस काल के प्रगतिशील और उदारवादी पश्चिमी विचारधाराओं ने राममोहन को प्रभावित भी किया था। बुद्धिवादी या युक्तिवादी जिन प्रमुख धाराओं ने उनके विचारों को सँवारने में योगदान दिया वे थे, अठारहवीं शताब्दी

के "ज्ञानोदय" या "एज ऑफ एनलाइटेनमैंट" काल के दार्शनिक, बेनथम और जेम्स मिल जैसे उपयोगवादी दर्शनशास्त्री तथा राबर्ट ओवन जैसे समाजवादी दार्शनिक। इसके अतिरिक्त फ्रांस, स्पेन और अमेरिका के विद्रोह या क्रान्ति का प्रभाव भी राममोहन के विचार-मानस पर पड़ा। इसी से हम राममोहन के विचारों में लोककल्याण और समाज सुधार की भावनाओं का समन्वय पाते हैं।

पाश्चात्य विचारधारा के एक और मूलतत्त्व जिसने राममोहन की विचार-धारा को प्रभावित किया था, वह था स्वाधीनता "लिबर्टी" का आदेश। "स्वाधीनता" राममोहन के लिए कोई नारा या कोरा सिद्धान्त नहीं थी। इस प्रत्यय का उनकी आन्तरिक प्रेरणा से सम्बन्ध था। उनके मित्र एडम साहब के शब्दों में "....He would be free or not be at all....Love to freedom was perhaps the strongest passion of his soul, freedom not of action merely, but of thought...."[1] कर्म और विचार स्वातन्त्र्य के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं था। स्वाधीनता के प्रति अनुराग उनके आत्मा की सबसे प्रबल भावना थी।

धर्म, समाज और राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के प्रयासों में राममोहन ने हमेशा इस आदर्श को सर्वोपरि रखा। उनके सार्वजनिक जीवन के सभी आन्दोलन इसी आदर्श पर आधारित थे। इस आदर्श के साथ उनके व्यक्तिगत आत्मसम्मान की भावना ने व्यापक अर्थ में धर्म, समाज और राष्ट्र के बारे में विचारों को प्रभावित किया। पाश्चात्य जगत के वैचारिक चिन्तन ने भी उन्हें प्रभावित किया। इन क्रांतिकारी विचारों से भली-भाँति परिचित होने के कारण उन्होंने अपने धर्म संस्कार प्रवण, समाज सुधारों और राजनैतिक आन्दोलनों में लोककल्याण की भावना को सर्वोपरि रखा तो दूसरी ओर 'स्वतन्त्रता' का आदर्श। जब वे सतीदाह प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे तो उसके साथ ही हिन्दू नारी के सम्पत्ति के अधिकार का प्रश्न भी उठाया। सम्पत्ति के मामले में "मिताक्षरा" की अपेक्षा "दायभाग" के आधार पर सम्पत्ति का व्यक्तिगत अधिकार के लिए उन्होंने आन्दोलन किया। तत्कालीन राजनैतिक विचारों के द्वारा राममोहन प्रत्येक क्षेत्र में स्वशासन के अधिकार और स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति खुले रूप में सहानुभूति जताते थे। बकिंघम साहब को लिखे एक पत्र में उन्होंने स्वाधीनता के शत्रु (Enemies of Liberty) और तानाशाही के समर्थकों (Friends of despotism) के प्रति अपनी तीव्र घृणा और भविष्य में मानव मुक्ति के संघर्ष में अन्तिम विजय में पूरा विश्वास प्रकट किया था।[2] अपने देश के मामले में भी राममोहन विदेशी शासनमुक्त स्वतंत्र भारत की कल्पना अपने कई लेखों और पत्रों में करते रहे हैं। यद्यपि पाश्चात्य

ज्ञान-विज्ञान, अँगरेजी शिक्षा, कल-कारखानों और उद्योग के बिना देश का आधुनिकीकरण सम्भव नहीं, वे इस सिद्धान्त के भी पक्षपाती थे लेकिन उनकी कल्पना में पराधीन भारत की संभावित समय सीमा पचास वर्ष से अधिक नहीं थी।[3] राष्ट्रीय स्तर पर वे प्रजातन्त्र में ही विश्वास रखते थे, इस तथ्य पर हम आगे विचार करेंगे।

राममोहन की राजनैतिक विचारधारा, उनके धार्मिक विचारधारा में निहित, उपनिषदों में वर्णित मानव के शाश्वत और स्वछन्द स्वरूप पर आधारित है। उनके धार्मिक, सामाजिक सुधारवाद और राजनैतिक आन्दोलनों के बीच गहरा सम्बन्ध रहा है। इस विषय में राममोहन के विचार उनके डिगबी साहब को लिखे एक पत्र के इस अंश से स्पष्ट होता है : "The present system of religion adhered to by the Hindus is not well calculated to promote their political interest. The distinction of castes, introducing innumerable divisions and sub-divisions among them has entirely deprived them of patriotic feeling, and the multitude of religious rights and ceremonies and the laws of purifications have totally qualified them from undertaking any different enterprise....It is I think, necessary that some change should take place in their religion, atleast for the sake of their political advantage and social comfort."[4]

अर्थात्, हिन्दुओं द्वारा अनुवर्तित धार्मिक पद्धति उनके राजनैतिक हितों के परिपंथी हैं, समाज छोटे-छोटे अनगिनत वर्गों में बँटा होने के कारण देश-भक्ति की भावना से वंचित हैं। धार्मिक रीति-रिवाजों की अधिकता और शुद्धीकरण के नियम उद्योग-धंधों के मार्ग में बाधक स्वरूप हैं।

राममोहन के राजनैतिक विचारधारा को समझने के लिए यह पत्रांश महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि सदियों की गुलामी ने देश और जाति को अध:पतन के दरवाजे तक पहुँचा दिया था फिर भी राममोहन को देश और जाति के पुनरुत्थान में विश्वास था, क्योंकि योग्यता की दृष्टि से वे भारतवासियों को किसी भी यूरोपीय से कम नहीं समझते थे। जातिभेद के विरुद्ध राममोहन ने स्पष्ट कहा था कि कोई भी व्यक्ति किसी से ऊँचा नहीं है। एशियाई लोगों पर लगाये गये पौरुषहीनता के आरोप का खण्डन करते हुए उन्होंने कहा था कि प्राचीन काल सभी महापुरुषों का जन्म एशिया खण्ड में ही हुआ। प्राचीन भारत की महानता पर प्रकाश डालते हुए राममोहन ने कहा था कि प्राचीन काल में ज्ञान का प्रकाश सर्वप्रथम भारत में ही हुआ और संसार को इस बात का ऋण स्वीकार

करना चाहिए। आज यदि वे यूरोपीय लोगों से पिछड़ गये हैं तो इसका कारण केवल तकनीकी उन्नति और प्रजातंत्री संस्थाओं की कमी मात्र है।[5]

इस पिछड़ेपन को दूर करने के उपाय के रूप में उन्होंने ब्रिटिश-शासन का इस्तेमाल करने की बात सोची थी। उनका विचार था कि विदेशी संस्पर्श में आने पर भारत के लोग विश्व संस्कृति से सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे और भारत में प्रजातंत्र की स्थापना हो सकेगी। इस प्रकार भारत भी स्वतंत्र और प्रबुद्ध राष्ट्रों की श्रेणी में आ जायगा। क्रिश्चन पब्लिक को लिखी गयी अपनी 'अन्तिम अपील' के अन्त में उन्होंने लिखा था :

'I now conclude my essay by offering up thanks to the Supreme Disposer of the events of Universe for having unexpectedly delivered this country from the long-continued tyranny of its former rulers, and placed it under the government of the English—a nation who not only are blessed with enjoyment of civil and political liberty but also interest themselves in promoting liberty and social happiness, as well as free enquiry into literary and religious subjects, among those nations to which their influence extends.[6]

अर्थात्, भगवान का शुक्र है कि पूर्ववर्ती शासकों के लम्बे चले आ रहे निरंकुश शासन से देश को मुक्ति मिली है और अब देश अँगरेजों के शासनाधीन है जो स्वयं नागरिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता से अभिमंत्रित हैं और जिन्हें दूसरों की स्वाधीनता और सामाजिक उन्नति अभिप्रेत है।

इस उक्ति के पीछे कुछ वास्तविकता और कुछ सभावनाएँ थीं। तत्कालीन परिस्थिति और ब्रिटिश शासन की सुविधाओं को देखते हुए राममोहन दूरदर्शी और व्यावहारिक राजनीतिविद् थे। राममोहन अच्छी तरह समझते थे कि देश की शासन व्यवस्था को आधुनिक ढाँचे पर लाने में पाश्चात्य देशों की शासन व्यवस्था का किसी सीमा तक अनुकरण आवश्यक है। इसी से उस काल के उदार विचारकों के अनुरूप अँगरेजी शासन के मंगलकारी पक्ष की राममोहन ने हिमायत की। इसी से कई आलोचकों ने उन्हें अँगरेजी शासन का समर्थक होने की शिकायत की थी।

लेकिन यह उनकी अन्तिम राय नहीं थी। उनकी अपनी नारी अधिकार विषयक पुस्तिका (Encroachment on the ancient rights of the female) में लिखा था कि यद्यपि ब्रिटिश शासन से देश को कुछ लाभ हुए हैं—लेकिन आने वाली पीढ़ियाँ ही यह बताने की स्थिति में होंगी कि इस शासन से कितना लाभ हुआ है। यह वास्तविकता थी कि अँगरेजों के साथ

नये राजनैतिक और सामाजिक विचारधारा का आगमन हुआ था। देश का युवक वर्ग स्वतन्त्रता, समानता और अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति आकृष्ट होने लगा था। एक नया बौद्धिक मध्यवर्ग का जन्म हो रहा था। राममोहन बचपन से ही स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे। इसी से देश-विदेशों में जहाँ कहीं स्वतन्त्रता का संघर्ष चल रहा था राममोहन ने उसका पूरी तरह समर्थन किया। जब यूरोप में नेपल्स की स्वाधीनता का हनन हुआ तो राममोहन बड़े दुखी हुए थे। लेकिन जब दक्षिण अमेरिका में स्पेन के साम्राज्यवाद से मुक्त होने का संघर्ष चल रहा था तो राममोहन प्रसन्न थे। और इसी तरह जब स्पेन की जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी तो राममोहन ने उनका पक्ष लिया। स्पेन की स्वाधीनता के प्रति राममोहन की सहानुभूति की बात स्पेन के लोगों को भी मालूम थी क्योंकि स्पेनिश संविधान (1812) की एक प्रति राममोहन राय के नाम पर समर्पित पाया गया है।[7] यह सभी को ज्ञात है कि उपनिवेश-वाद के विरुद्ध एक सफल विद्रोह अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम था। यह संग्राम भी राममोहन की प्रेरणा का प्रमुख स्रोत था। फ्रांसीसी-क्रांति ने राम-मोहन को कितना प्रभावित किया था, यह हम पहले पढ़ चुके हैं।

भारत में अँगरेजी राज की स्थापना ने युवा राममोहन के मन को कितना दुखी किया था यह उनके आत्मजीवनी परक पत्र से स्पष्ट झलकता है :"....
I proceeded on my travels and passed through different countries, chiefly within, but some beyond the bounds of Hindustan, with a feeling of great aversion to the establishment of the British power in India...."

अर्थात्, राममोहन भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना पर अत्यन्त दुखी होकर देश के भीतर और हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर कुछ देशों की यात्रा पर चले गये थे।

लेकिन आगे चलकर जब वे पश्चिमी सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान के संस्पर्श में आये तो उनके राजनैतिक विचारों में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन के पीछे रंगपुर प्रवास के दौरान डिगबी साहब का साहचर्य प्रमुख था। धीरे-धीरे राममोहन इस निर्णय पर पहुँचे कि यद्यपि अंगरेजी शासन विदेशी गुलामी हैं फिर भी इसके कुछ परोक्ष लाभ हैं। यह तथ्य सर्वविदित है कि मुगल और पठान काल में अकसर लोगों के धार्मिक अधिकारों का हनन होता रहा है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी तो अराजकता का ही काल था। अंगरेज शासन अधीन आकर ही देश की राजनैतिक स्थिति में कुछ स्थिरता आयी। कानूनी प्रशासन में भी कुछ सुधार नजर आने लगा। राममोहन इस स्थिति का लाभ उठाना चाहते थे। क्योंकि देश की राजनैतिक प्रक्रिया को कायम करने का यही

उपयुक्त समय था। एक जगह उन्होंने कहा था, "India required many more years of English Domination so that she might not have to lose many things while she was reclaiming her political independence.[8]

इस बारे में उनका स्पष्ट विचार था कि देश की प्रशासनिक भलाई के लिए कोई चालीस या पचास वर्ष तक अँगरेजी शासन कायम रहना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में 24 जुलाई 1832 को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सम्मुख भारत में यूरोपीय नागरिकों के बसने के पक्ष में जो दस्तावेज़ पेश किया था उसमें उनकी दूरदर्शिता और परिपक्व राजनैतिक विचारों की झलक मिलती है।[9] लेख के पहले भाग में यूरोपीय नागरिकों के भारत में बसने से होने वाले लाभों का विशद वर्णन है और दूसरे भाग में सम्भावित नुकसानों का जायजा लिया गया है। उपयोगिताओं का विवरण संक्षेप में इस प्रकार है :

(1) भारत में पश्चिमी देशों के अनुरूप आधुनिक कृषि, व्यापार और मशीनीविधा का आरम्भ।

(2) संचार माध्यमों के विकास से देश में फैले अंधविश्वासों का दूरीकरण।

(3) कानून और न्यायिक व्यवस्था में सुधार।

(4) राजनैतिक सत्ता के दुरुपयोग को रोकना।

(5) यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान का प्रचार और स्कूल और शिक्षण संस्थाओं के द्वारा अँगरेजी भाषा की शिक्षा।

(6) प्रशासनिक अधिकारियों के लिए देश के बारे में सही तथ्यों को प्राप्त करने में सहयोग।

(7) विदेशी आक्रमण से सुरक्षा।

(8) ग्रेट ब्रिटेन जैसे प्रबुद्ध उदारवादी प्रजातंत्र के साथ निकट का सम्बन्ध जो इस देश के शासन को भी लम्बे समय तक प्रभावित करेगा।

(9) ऐसी स्थिति में जब दोनों देश एक दूसरे से अलग होने की स्थिति बन जाय तब भी इस देश में बसे यूरोपीय नागरिक इस देश की और पड़ोसी एशियाई देशों की प्रगति में सहयोग दे सकेंगे।

हानि का ब्योरा देते हुए उन्होंने लिखा था, शासक और भारत में बसने वाले यूरोपीय नागरिकों में जातिगत सम्बन्ध होने के कारण हो सकता है कि बसने वाले यूरोपीय मूल के लोग भारतीयों पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश करें और रंग और धार्मिक भिन्नता के कारण भेद-भाव बरतें। इस समस्या का समाधान पेश करते हुए राममोहन ने लिखा था कि पहले बीस वर्षों तक केवल शिक्षित, चरित्रवान और धनी यूरोपीय लोगों को भारत में आने दिया जाय

क्योंकि ऐसे व्यक्ति आमतौर पर दूसरों के धर्म या संस्कृति में हस्तक्षेप नहीं करते।

शासक वर्ग से होने के कारण इस देश में बसने वाले यूरोपीय अक्सर देशी में लोगों पर हावी होने की कोशिश करेंगे। इस समस्या के समाधान के लिए उन्होंने न्यायालयों में देशी और यूरोपीय अटार्नी को बराबरी का दर्जा दिये जाने का प्रस्ताव रखा।

स्वार्थों के टकराव से ऐसी स्थिति उत्पन्न की सम्भावना की ओर संकेत किया जब स्वदेशी और विदेशी स्वार्थों में खुलेआम संघर्ष हो जाय और सरकार देशी लोगों को काबू में लाने के लिए खून-खराबी का सहारा ले। ऐसी हालत में ब्रिटिश साम्राज्य के लगातार कमजोर पड़ने की सम्भावना होगी। इस स्थिति के समाधान के लिए भी राममोहन ने शिक्षित, चरित्रवान और धनी वर्ग के यूरोपीय लोगों को ही इस देश में बसाने का पक्ष लिया।

राममोहन न आगे लिखा कि कुछ लोगों का विचार है कि यूरोपीय लोगों के बसने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जब भारत भी अमेरिका की तरह अपने को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दे। राममोहन के अनुसार ऐसी स्थिति में कम से कम दोनों राष्ट्रों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध और व्यापार कायम रह सकेंगे। इसके अतिरिक्त राममोहन ने इस लेख में कई एक छोटी-छोटी असुविधाओं या हानियों का उल्लेख किया गया है। राममोहन के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि राममोहन कुछ वर्षों के लिए प्रगतिशील और उदारपंथी ब्रिटिश शासन के पक्ष में थे साथ ही उन्हें यह भी विश्वास था कि एक न एक दिन यह देश अपने अधिकारों के बल पर अवश्य ही स्वतंत्र होगा। ब्रिटिश शासन केवल एक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक नहीं का काम करेगी।

1828 में इंग्लैण्ड में अपने मित्र श्री क्रॅफोर्ड को राममोहन ने जो चिट्ठी लिखी थी वह एक भविष्यवाणी ही थी।

"....Supposing that some 100 years hence the Native characters become elevated from constant intercourse with Europeans and the acquirement of general and political knowledge as well as of modern arts and sciences, is it possible that they will not have the spirit as well as the inclination to resist effectually any unjust and oppressive measures serving to degrade them in the scale of society? It should not be lost sight of rhat the position of India is very different from that of Ireland, to any quarter of which an English fleet may suddenly convey a body of troops that

may force its way in the requisite direction and succeed in suppressing every effort of a refractory spirit. Were India to share one fourth of the knowledge and energy of that country she would prove from her remote situation, her riches and her vast population, either useful and profitable as a willing province, an ally to the British Empire or touble-some and annoying as a determined enemy...."[10]

अर्थात्, यदि कल्पना करें कि कोई सौ वर्ष बाद, यूरोपीय लोगों के संसर्ग से प्राप्त राजनैतिक ज्ञान, आधुनिक विज्ञान और तकनीकी दक्षता प्राप्त करने पर, देश के लोगों में चारित्रिक परिवर्तन आता है, तब क्या यह संभव है कि उनमें अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने या प्रतिरोध करने की भावना जागृत न होगी ? यह भूलना नहीं चाहिए कि यह देश आयरलैंड की तरह नजदीक नहीं, कि जब चाहा ब्रिटिश बेड़ा विद्रोह दबाने के लिए भेज दिया। भारत, यदि उस देश की तुलना में एक चौथाई ज्ञान और शक्ति भी प्राप्त कर ले तो वह अपनी दूरी, जनशक्ति और वैभव के बल पर या तो ब्रिटिश साम्राज्य का लाभकारी और इच्छुक प्रदेश बना रहेगा अन्यथा एक उपद्रवी, परेशान करने वाला दृढ़प्रतिज्ञ शत्रु बन जायगा।

इस पत्र में राममोहन ने भविष्य में आने वाले स्वतंत्रता-संग्राम का स्पष्ट संकेत दिया है। इसमें अंगरेजी शासन के परिप्रेक्ष्य में दो प्रकार की सम्भावनाओं का जिक्र है। भारत या तो ब्रिटेन के सहयोगी मित्र राष्ट्र के रूप में उभरेगा या फिर प्रबल शक्तिशाली शत्रु बन जायेगा, जिसको दबाना हजारों मील दूर ब्रिटेन के लिए सम्भव नहीं होगा।

इसी विषय में मिस कोलेट ने अपनी पुस्तक में राममोहन के साथ सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान विक्टर जैकमों से बातचीत का जिक्र किया है जिसमें राममोहन ने कहा था कि भारत को अपनी उन्नति के लिए अभी कई वर्षों तक अंगरेज़ी शासन की आवश्यकता होगी क्योंकि ऐसा न हो कि स्वाधीनता प्राप्ति के अवसर पर इस शासन के निहित लाभों से देश वंचित हो।

राममोहन की राजनैतिक दूरदर्शिता इसी में थी कि उन्हें अंगरेजी शासन की बुराइयों और पराधीनता के कष्टों को झेलते हुए भी देश के लिए एक योग्य प्रशासन की स्थापना के लिए तथा देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए कुछ वर्षों तक ब्रिटिश शासन और पराधीनता को स्वीकार करने में उन्हें कोई झिझक नहीं थी। कई आलोचकों ने राममोहन के इन विचारों को प्रति-क्रियावादी ठहराया है लेकिन ऐतिहासिक मूल्यांकन से स्पष्ट है कि राममोहन अपने समय में दूर भविष्य में देखने की क्षमता रखते थे। इसी प्रसंग में यहाँ

स्पष्ट करना आवश्यक है कि अँगरेजी शासन ने एक नये बुर्जुआ और बौद्धिक मध्यवित्त श्रेणी को जन्म दिया, जिसका सामाजिक और आर्थिक प्रगति में भारी योगदान था। इस श्रेणी ने देश के आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका निभायी। इस बुर्जुआ श्रेणी की ऐतिहासिक भूमिका के बारे में मार्क्स एंजल्स की प्रसिद्ध पंक्तियों को याद करना उपयुक्त होगा "The bourgeoisie, historically has played a most revolutionary part. The bourgeoisie whereever it has got the upper hand, has put an end to all feudal, patriarchal idyllic relation....It has been the first to show that man's activities can bring about...."[11]

यहाँ पर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की भूमिका के बारे में कार्ल मार्क्स के विचारों को उद्धृत करना भी प्रासंगिक होगा क्योंकि इन विचारों के साथ पूर्ववर्ती काल में राममोहन के विचारों का अद्‌भुत सामंजस्य पाया जाता है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "First Indian war of Independence 1857-59" में मार्क्स ने लिखा था :

> "England it is true is causing a social revolution in Hindustan, was actuated only by the vilest interests and was stupid in her manner of enforcing them. But that is not the question. The question is, can mankind fulfil its destiny without a fundamental revolution in the social state of Asia ? If not, whatever may have been the crimes of England she was the unconcious tool of history in bringing about that revolution.....
>
> England has to fulfil a double mission in India ; one destructive, the other regenerating—The annihilation of old Asiatic Society and laying of the material foundations of Western society in Asia..."

अर्थात्, अपने नीच उद्देश्यों के बावजूद इंगलैण्ड भारत में एक सामाजिक क्रान्ति का निमित्त बन रहा है। चाहे इंगलैण्ड का कुछ भी अपराध रहा हो लेकिन भारत में क्रान्ति लाने में उसने इतिहास के एक अनजान हथियार की भूमिका निभाई है। इंगलैण्ड को भारत में दोहरा लक्ष्य पूरा करना होगा। पहला ध्वंसकारी और दूसरा पुनरुज्जीवन का लक्ष्य। एक के द्वारा पुराने एशियाई समाज का ध्वंस होगा और दूसरी ओर एशिया में यूरोपीय आर्थिक समाज व्यवस्था की नींव डाली जायगी।

मार्क्स ने यह विचार 1853 में व्यक्त किये थे, जो कि इससे पहले, इसी शताब्दी में दो दशक पूर्व राममोहन द्वारा प्रतिपादित विचारों की प्रतिध्वनि मात्र कहा जायगा। राममोहन ने भी मध्यवर्गीय श्रेणी की आवश्यकता को अनुभव किया था और मध्ययुगीन सामन्तवाद और अराजकता से देश को आधुनिकता के दरवाजे पर लाने के लिए अँगरेजी शासन की उपयोगिता को समझने वाले राममोहन ही पहले व्यक्ति थे। इंगलैण्ड से अपने प्रिय शिष्य प्रसन्न कुमार ठाकुर को एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "यद्यपि किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए यह असम्भव है कि वह राजनैतिक पराधीनता और विदेशियों पर निर्भरशीलता की बुराइयों को महसूस न कर सके, लेकिन जब हम ग्रेट ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्धों से प्राप्त हुई सुविधाओं की ओर ध्यान देते हैं तो हमें वर्तमान स्थिति से संतोष करना पड़ता है क्योंकि इसी के द्वारा आने वाली पीढ़ियों को स्थायी लाभ की उम्मीद बँधेगी।"[12] इसी विषय पर राममोहन के बारे में उनके परम मित्र एडम साहब ने कहा था '"....He saw—a man of his acute mind and local knowledge could not but see—the selfish, cruel and almost insane errors of the English in governing India, but he also saw that their system of government and policy had redeeming qualities not to be found in the native government.[13]

पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और विदेशी शासन के गुणों का फायदा उठाकर राममोहन ने देश में नवजागरण की मशाल को प्रज्ज्वलित करने में जिस राजनैतिक सूझबूझ का परिचय दिया वह उस काल और परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण था। इस नई राजनैतिक विचाराधारा ने परवर्ती काल में हमारे स्वतंत्रता संग्राम को प्रभावित किया था। काँग्रेस के नरमपंथी दल और गाँधी जी की राजनीति में राममोहन का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। राममोहन की विचार प्रक्रिया के जिन मूल तत्त्वों ने भारत की राजनैतिक चेतना को जागृत करने में सहयोग दिया उनका सारांश इस प्रकार है :

(1) पाश्चात्य दर्शन, ज्ञान-विज्ञान और अँगरेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका;

(2) हिन्दू धर्म के शाश्वत और सार्वभौम मूल्यों का अनुशीलन एवं प्रचार;

(3) लोकमंगल की भावना से धर्म सुधार, समाज सुधार के लिए शास्त्रार्थ और आन्दोलन;

(4) विदेशी शासन और यूरोपीय प्रवासियों के प्रति सहानुभूति और सहयोग का रवैया;

(5) प्रशासनिक, न्यायिक और व्यक्ति स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन, अपील और जनसभाओं का संगठन;

(6) धर्म और जाति निरपेक्ष शासन तंत्र की स्थापना का उपक्रम;

(7) पाश्चात्य दर्शन के अनुरूप स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व के आदर्शों का देश में प्रचार;

(8) प्रकाशन और पत्रकारिता के क्षेत्र में पहल;

(9) ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने भारत के प्रशासनिक मसलों पर विचार करने का व्यावहारिक प्रयत्न एवं;

(10) अन्तर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में भारतीय समस्याओं का अनुशीलन और सम्बन्धों की स्थापना।

हम देख चुके हैं कि राममोहन ने देश की राजनैतिक जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अपनी छाप छोड़ी। प्रेस की स्वाधीनता के लिए उनके आन्दोलन के बारे में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। न्यायालयों और दूसरे प्रशासनिक मुद्दों पर सुधार के लिए राममोहन के आन्दोलन, कृषि और औद्योगिक मसलों पर उनकी पहल के बारे में अगले अध्याय में कुछ विस्तार से विचार किया जायगा। इस प्रकार देखा जाय तो आधुनिक भारत की राजनीति में राममोहन ही पहले युग पुरुष थे जिन्होंने देश में राजनैतिक चेतना को जागृत किया।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ

1. W. Adam. A lecture on the life and labours of Rammohun Roy 2nd ed. Calcutta 1977 : pg. 16-17 मूल पंक्तियाँ इस प्रकार हैं : He would be free or not be at all....Love of freedom was perhaps the strongest passion of his soul, freedom not of action merely, but of thought....The tenacity of personal Independence, this sensetive jealosy of the slightest approach to an encroachment on his mental freedom was accompanied with a very nice perception of the equal rights of others even of those who differed most widely from him in religion and politics...."

2. Collect, pg. 130-131. 11 Angust 1821 जो अपने मित्र श्री बकिंघम को लिखे पत्र मे लिखा था कि वे यूरोप के दुखद समाचारों से उन्हें निराशा हो रही है "....I am obliged to conclude that I shall not live to see liberty universally restored to the nations of Europe and Asiatic nations specially those that are European

colonies, possessed of a greater degree of the same blessing that what they now enjoy....under the circumstances I consider the cause of the Neapolitans as my own and their enemies as ours. Enemies to liberty and friends of despotism have never been and never will be ultimately successful."

3. Crawford. S. C. Rammohun Roy pg. 118 में स्टानफोर्ड आनार्ट के लेख का संदर्भ।

4. वही, पृ० 115 के डिगबी साहब के पत्र से उद्धृत।

5. English works pt. IV pg. 72.

6. वही, Final appeal ot the Christian public से उद्धृत।

7. Collect, पृ० 160-161 के उल्टी तरफ स्पेनिश संविधान के प्रथम पृष्ठ की और समर्पण-पृष्ठ की प्रतिलिपि प्रकाशित है। संभवतः किसी व्यक्ति ने संविधान की व्यक्तिगत प्रति पर राममोहन का नाम मुद्रित करा लिया हो।

8. वही, पृ० 386-387 पर सम्पादकीय टिप्पणी में फ्रांसीसी दार्शनिक विक्टर जैकामों के राममोहन से सम्बन्धित संस्मरणों को उद्धृत किया है।

9. English Works : Remarks on Settlement in India by Europeans (Parliamentary Papers, House of Commons 1831-32 Vol. VIII) मूल पाठ के लिए परिशिष्ट देखें।

10. Collect, पृ० 267-268 से उद्धृत।

11. विश्वास, पृ० 20 से उद्धृत।

12. मजूमदार, प्रोग्रेसिव मूवमेंट : पृ० 394 पर उद्धृत पत्र की प्रतिलिपि देखें।

13. Collect, पृ० 387 से उद्धृत।

अध्याय—21

न्यायिक और प्रशासनिक सुधार के लिए आन्दोलन

पिछले अध्याय में हमने देश में राजनैतिक चेतना को जागृत करने में राममोहन की भूमिका के बारे में पढ़ा। इस अध्याय में इसी संदर्भ में उठाये गये कुछ न्यायालय सम्बन्धी और प्रशासनिक मुद्दों पर कुछ विस्तार से विचार करेंगे। हम पहले ही लिख चुके हैं कि राममोहन के सारे कार्यकलापों के पीछे लोक-मंगल की भावना ही प्रमुख थी। जहाँ कहीं अन्याय या भेदभाव बरता जा रहा था, वहीं उन्होंने डटकर उसका मुकाबला किया। वस्तुतः यहीं से हमारे देश में स्वराज आन्दोलन की नींव पड़ी, जिसने परवर्ती काल में कांग्रेस की स्थापना के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

राममोहन ने प्रशासनिक सुधारों के लिए जिन आन्दोलनों का श्रीगणेश किया था, उनमें न्यायपालिकाओं में सुधार का आन्दोलन प्रमुख था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक काल में न्यायपालिका व्यवस्था अपने विकास के प्रारम्भिक दौर में था। न्यायपालिका के लिए न कोई संहिता थी और न ही कोई नियमावली। सभी नागरिकों के लिए समान कानूनी व्यवस्था भी नहीं थी। शासक श्रेणी और शासित देशी लोगों के बीच भेदभाव बरता जाता था। 1774 के जूरी कानून के अन्तर्गत केवल यूरोपीय नागरिकों को ही जूरी के पद पर आसीन होने का अधिकार था। देश के हिन्दू-मुसलमानों के अलावा देशी ईसाई या एंग्लो इंडियन भी इस अधिकार से वंचित थे। भेदभाव की इस नीति के विरुद्ध 1816 में एक विरोध पत्र नागरिकों की ओर से कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के पास इंगलैण्ड में भेजा गया था। उत्तर में केवल इतना कहा गया कि सुप्रीम कोर्ट के पास देशी नागरिकों को जूरी पद पर नियुक्त करने का अधिकार है,[1] यदि कोर्ट अपने इस अधिकार का प्रयोग नहीं करती है तो यह दूसरी बात है। 1817 में कलकत्ता के देशी नागरिकों ने एक बार फिर सुप्रीम कोर्ट के सामने अपनी माँग दोहरायी। लेकिन यह माँग यह कहकर टाल दी गयी कि पार्लियामेंट ही इस दिशा में कोई कदम उठा सकती है। इस प्रकार बात कोई अगले चार-पाँच साल के लिए टल गयी। 8 जनवरी 1822 को कलकत्ता के नागरिकों की ओर से एक और अपील सुप्रीम कोर्ट के सामने पेश की गयी। ऐसा लगता है कि लगभग इसी समय से राममोहन इस आन्दोलन में शामिल हो गये। राममोहन ने अपनी पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** के 11 दिसम्बर 1821 के अंक में लिखा था—

'ब्रिटिश संविधान के सभी प्रशंसनीय संस्थाओं में फौजदारी मामलों

में बारह निरपेक्ष ईमानदार और बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा निर्णय लेने की प्रथा या 'ट्रायल बाई जूरी' की प्रथा है जो इस महानगर के नागरिकों के लिए सौभाग्य और संतोष का कारण है।[2]

क्योंकि मुगल शासन के दौरान इस प्रकार की न्यायिक व्यवस्था का प्राव-धान नहीं था। इस व्यवस्था में राममोहन को भारत के प्राचीन 'पंचायत' पद्धति की झलक दिखाई दी हो, तो आश्चर्य नहीं। लेकिन इस प्रशंसनीय संस्था में भी प्रयुक्त भेदभाव की नीति ने राममोहन को आन्दोलन छेड़ने के लिए बाध्य किया। क्योंकि उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि न्यायिक प्रशासन के मामले में मोटे तौर पर भारतीयों के अधिकारों का हनन हो रहा है। उन्होंने इस मसले पर एक अनुभवी न्यायशास्त्री की तरह बड़ी योग्यता से आंदोलन का संचालन किया।

इधर जब भारत में प्रचलित जूरी व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन चल रहा था, तो उधर सीलोन (श्रीलंका) में वहाँ के तत्कालीन चीफ जस्टिस सर एलेक्जेण्डर जॉन्सटन स्थानीय नागरिकों को जूरी पद पर नियुक्त करके देशी लोगों में न्यायिक व्यवस्था के प्रति आस्था कायम करने में सफल हुए। इसी प्रयोग के आधार पर उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने प्रस्ताव रखा कि श्रीलंका के अनुभव के आधार पर भारत में भी न्यायिक सुधार किया जा सकता है। इस सिफारिश के आधार पर और चल रहे आन्दोलन के परि-प्रेक्ष्य में ब्रिटिश सरकार ने सभी भारतीय नागरिकों को न्यायिक व्यवस्था के संचा-लन में शामिल करने की बात नीतिगत रूप से मान ली। चूँकि बोर्ड आफ कंट्रोल के प्रेसीडेंट चार्ल्स व्राइन इस ओर सहानुभूतिपूर्ण विचार रखते थे इसी से न्यायिक प्रशासन के लिए एक नया ईस्ट इण्डिया जूरी बिल पेश किया गया। नये बिल में देशी नागरिकों को भी बराबरी के अधिकार दिये गये तो शासक वर्ग में खल-बली मच गई। शासक और शासित बराबरी का दर्जा कैसे पाते भला। वाइन साहब पर काफ़ी दबाव डाला गया तो उक्त विधेयक में एक नयी धारा जोड़ दी गयी। इस धारा के अनुसार साधारण जूरी के पद पर देशी नागरिकों की नियुक्ति हो सकती थी लेकिन प्रधान जूरी के पद पर केवल ईसाई मतावलम्बी ही नियुक्त हो सकेगा। इसके अतिरिक्त यह प्रस्ताव भी रखा गया कि ऐसे मामलों में जहाँ विवाद का सम्बन्ध ईसाई धर्मावलम्बियों से होगा वहाँ सारे जूरी ईसाई ही होंगे। लेकिन हिन्दू या मुसलमानों से सम्बन्धित मामलों में ईसाई जूरी भी न्याय की गद्दी पर बैठ सकेंगे।[3] इस प्रकार धर्म के आधार पर यह भेदभाव पूर्ण ईस्ट इण्डिया जूरी बिल 5 मई 1826 को पार्लियामेंट ने पास कर दिया।

इस नये कानून का पूरे भारत में भारी विरोध हुआ। कलकत्ता और बंगाल

के अलावा मद्रास और बम्बई में भी इस नये जाति भेद-भाव पूर्ण कानून के विरुद्ध विशिष्ट नागरिकों ने आवाज उठाई। राममोहन के लिए यह कानून अपमानजनक था क्योंकि यह, उनके विचार में ब्रिटिश संविधान, आचार-संहिता के विरुद्ध और न्याय संहिता के आधारभूत सिद्धांतों से हटकर था। उन्होंने अपनी पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** के पृष्ठों में इस कानून के विरुद्ध आक्रमण आरंभ कर दिया। उन्होंने **'कौमुदी'** के लेख में कहा कि इस नये कानून के अंतर्गत, हिन्दू और मुसलमानों को ईसाइयों के न्याय को मानना ही पड़ेगा जबकि हम लोगों को जो एक ही देश के वासी हैं ईसाइयों के दोष या गुणों पर विचार करने का कोई भी अधिकार नहीं होगा।[4]

ईसाइयों और भारत के दूसरे धर्मों के बीच इस असंतुलित व्यवहार में राममोहन ने एक धार्मिक षड्यंत्र की आशंका व्यक्त की। राममोहन ने कहा कि पिछले तीस सालों में ईसाई मिशनरी और पादरी किताबें बाँटकर या दूसरे तरीकों से ईसाई धर्म में एक भी सच्चे व्यक्ति को परिवर्तित नहीं कर सके। लेकिन इस नये कानून के कारण लोग शायद ईसाई धर्म की शरण में जायँ।

"When rulers of the country use force or art, to win over their subjects to their own faith from that of their ancestors, who shall have the power to oppose."[5]

राममोहन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि ईसाइयों को अपने न्याय के केवल ईसाई जूरी की व्यवस्था है तो हिन्दुओं और मुसलमानों के मामले में केवल उसी धर्म के जूरी नियुक्त किये जाने चाहिये अन्यथा जैसे हिंदू-मुसलमानों के मुकदमों में ईसाई जूरी को अधिकार है उसी प्रकार ईसाइयों के मुकदमों में हिन्दू और मुसलमान जूरी को न्याय देने का अधिकार मिलना चाहिए।[6] इस प्रकार वे किसी हीनता को सहने के विरोधी थे। उन्होंने आगे कहा कि इस कानून से हिन्दू और मुसलमान सभी अपना मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा के बावजूद ईसाइयों के कदम को चूमने पर मजबूर होंगे। "The order of the parliamentary Act has laid all Hindoos and Musulmans without any regard to rank or respectablity prostrate at the feet of Christians, whether of this or any other place."[7]

इसके पश्चात् राममोहन ने इस आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए एक आवेदन पत्र इंगलैण्ड में भारत के प्रभुओं के पास भेजने के लिए प्रस्तुत किया। इस आवेदन-पत्र पर राममोहन के अलावा अनेक विशिष्ट हिन्दू और मुसलमान नागरिकों ने हस्ताक्षर किये थे। यह आवेदन-पत्र भारतीयों की रक्षा की दिशा में एक भारी पहल थी। इसमें राममोहन ने जिस प्रकार जूरी कानून के विरोध में तर्क प्रस्तुत किये और कुछ एक मूल प्रश्न उठाये उनसे वस्तुतः उनकी ऐतिहासिक

दूरदर्शिता का ही परिचय मिलता है। इस आवेदन-पत्र में जूरी कानून की तीसरी धारा से पैदा हुए भेदभाव के विरुद्ध कई एक तर्क प्रस्तुत किये गये। प्रमुख तर्क था कि धार्मिक आधार पर न्यायिक व्यवस्था में भेदभाव भविष्य के भारत के लिए बहुत ही हानिकारक सिद्ध होगा। देशी नागरिकों में इस प्रश्न को लेकर असंतोष फैलना स्वाभाविक है। इस आवेदन-पत्र को राममोहन ने लंदन में श्री क्रेफोर्ड के माध्यम से पार्लियामेंट में पेश किया। श्री क्रेफोर्ड को लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र में राममोहन ने भारत के भविष्य के बारे में जो विचार रखे थे उसका कुछ अंश पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। आवेदन-पत्र के विचार बहुत सीमा तक राममोहन के **"संवाद कौमुदी"** में प्रकाशित लेख के विचारों के अनुरूप ही थे। इसी से स्पष्ट होता है कि आवेदन-पत्र भी राममोहन ने तैयार किया होगा। इसी आवेदन-पत्र के अंत में कहा गया था कि यदि कानून में से इन असमानताओं को दूर न किया गया तो हो सकता है कि कोई भी हिन्दू या मुसलमान जूरी के पद पर काम करने को तैयार न हो।

"....if these disabilities are not removed in time no Hindu or Mohammedan inhabitant will willingly serve as a juror in any capacity...."[8]

और घटनाएँ भी कुछ इस प्रकार हुईं कि उस वर्ष कोई भी हिन्दू या मुसलमान जूरी के पद पर काम करने के लिए आगे नहीं आया। शायद यही भारत में पहला असहयोग आंदोलन था। कलकत्ता के "जॉन बुल" पत्रिका ने 1 अगस्त 1828 के अंक में लिखा था कि शायद जूरी कानून में अयोग्यता की अपमानजनक धारा के कारण कोई भी हिन्दू-मुसलमान जूरी के पद पर काम करने को राजी नहीं हो रहे हैं। यदि यह अयोग्यता दूर कर दी जाय तो शायद वे लोग जूरी के पद पर काम करने को राजी हो जाएँगे।[9]

राममोहन और उनके साथियों द्वारा पेश किया गया आवेदन-पत्र 1829 के मध्य में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में पेश किया गया। काफी बहस और विचार-विनिमय के बाद बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष श्री वाइन ने केवल इतना कहा कि जूरी एक्ट की कमियों को सुधार दिया जायगा। इसी बीच 1831 में बंबई के नागरिकों का आवेदन-पत्र भी पार्लियामेंट में पेश हुआ जिसमें कानून की इन विशेष धाराओं को हटाने की माँग की गयी थी।

चार्ल्स ग्रान्ट इसी बीच 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' के अध्यक्ष के पद पर आये। वे इन आवेदन-पत्रों में उठायी गयी माँगों के बारे में पूरी जानकारी रखते थे और इस दिशा में कुछ सुधार करना चाहते थे। उन्होंने एक जाँच समिति नियुक्त कर दी। इधर ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को सूचित किया कि वे इस दिशा में एक नया विधेयक पार्लियामेंट में पेश करने जा रहे हैं

जिसके अनुसार पहले जूरी कानून की कमियों को दूर कर सभी भारतीयों को न्याय व्यवस्था में बराबरी का दर्जा दिया जायगा।

'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' के अधिकतर सदस्य ऐसे उदार कानून बनाने के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि इस मामले में तेजी से आगे बढ़ने पर इसी गति से आखिरकार पीछे हटना पड़ेगा और लक्ष्य पर पहुँचना संभव नहीं होगा। इसी से उन्होंने ग्रान्ट साहब को बिल पेश न करने की सलाह दी।

8 दिसम्बर 1831 को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की तरफ से ग्रान्ट साहब के पास प्रश्नों और आपत्तियों की एक लम्बी सूची भेज दी गयी और आपत्तियों पर स्पष्टीकरण माँगा गया।

सौभाग्य से उस समय तक राममोहन इंगलैण्ड की भूमि पर पहुँच चुके थे। ग्रांट साहब ने इन आपत्तियों को राममोहन के पास उनकी टिप्पणियों के लिए भेज दिया। राममोहन ने प्रत्येक आपत्ति का जोरदार खण्डन पेश करते हुए ग्रान्ट साहब के नये बिल का समर्थन किया। इन आपत्तियों का राममोहन द्वारा दिया गया उत्तर एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। नमूने के तौर पर थोड़े से आपत्तियों और उत्तरों का सारांश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।[10]

कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के सदस्यों की ओर से पहली आपत्ति इस बात पर उठाई गई कि देशी लोगों से यह कतई आशा नहीं की जा सकती है कि वे स्वेच्छा से अँगरेजी कानून और संविधान की शिक्षा प्राप्त करेंगे और अपने को इस पद के अनुरूप योग्य बनाने की कोशिश करेंगे।

उत्तर में राममोहन की दलील थी कि प्रस्तावित कानून में देशी लोगों को योग्यता के अनुसार पद देने का प्रश्न है, पद को ग्रहण करने या न करने की अनिवार्यता का प्रश्न नहीं। केवल जो देशी लोग अंगरेजी कानून की शिक्षा लेंगे और ऐसी जिम्मेवारी लेने के इच्छुक होंगे, उन्हें ही पद दिया जायगा।

दूसरी आपत्ति थी कि देशी लोगों से आशा नहीं की जा सकती कि वे अवैतनिक जूरी के पद पर कार्य करने को राजी होंगे जब उन्हें यह ज्ञात होगा कि भूल-चूक के लिए उन्हें सुप्रीम कोर्ट में दोषी ठहराया जा सकता है।

इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि केवल उन्हीं लोगों को, जो इस खतरे को उठाते हुए जिम्मेवारी लेने को तैयार हों उन्हीं को नियुक्त किया जाय। इस प्रकार दोनों पक्षों को किसी असुविधा का सामना नहीं करना पड़ेगा। जबकि जजों की नियुक्ति के लिए अँगरेजी कानून का ज्ञान आवश्यक माना गया है लेकिन प्रमाणित किया जा सकता है कि ऐसे लोग जो जजों के पदों पर नियुक्त हैं वे सभी अंगरेजी संविधान से परिचित नहीं हैं।

तीसरी आपत्ति में कहा गया था कि देशी लोगों में जिस योग्यता की कमी

पाई जाती है वह है विशेष रूप से चारित्रिक दृढ़ता की; न्यायाधीश के पद पर रहते हुए कर्तव्य पालन में जो गुण आवश्यक है।

राममोहन ने उत्तर में कहा कि यह बिल्कुल अस्पष्ट अभियोग है क्योंकि बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के बयान में ही पहले कहा गया है कि "देशी लोगों को कई महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी के पदों पर नियुक्त किया गया है। इनमें न्याय-पालिका, राजस्व, पुलिस और मजिस्ट्रेट जैसे पद भी हैं। प्रश्न उठता है कि इन लोगों को, जिनमें चारित्रिक दृढ़ता का अभाव है, ये पद कैसे दे दिये गये और केवल जूरी के पद पर आसीन होने से कौन-सी विशेष योग्यता की आवश्यकता होगी ? एक ही व्यक्ति एक जिम्मेवारी के पद के योग्य ठहराया जाता है तो दूसरे बराबरी के पद के लिये योग्य क्यों नहीं हैं ?

एक और आपत्ति इस बात पर उठायी गयी कि इस व्यवस्था से देशी लोगों को यूरोपीय लोगों के व्यक्तिगत चरित्र के बारे में पर्याप्त आदर भाव नहीं रहेगा।

इसके उत्तर में राममोहन ने दलील दी कि यूरोपीय चरित्र और व्यवहार से देशी लोग अच्छी तरह परिचित हैं यहाँ तक कि देशी पुलिस को, कानून तोड़ने वाले यूरोपीय नागरिकों को गिरफ्तार करने का भी अधिकार है। प्रश्न यह है कि क्या इस प्रशासनिक बल-प्रयोग से यूरोपीय नागरिकों के सम्मान को कोई हानि पहुँची है, या ब्रिटिश शक्ति में कोई कमी आयी है ?

एक और आपत्ति इस मुद्दे पर उठाई गयी कि अँगरेज और ईसाइयों के मुकदमों का फैसला हिन्दू या मुसलमान जूरी करे यह स्थिति अँगरेजों के लिए असह्य होगी।

राममोहन ने उत्तर में कहा कि यह विचार कि अँगरेज और ईसाइयों का विचार हिन्दू या मुसलमान जूरी नहीं कर सकते क्योंकि वे उनके अपने जाति या धर्म के लोग नहीं है तो यही आपत्ति ईसाइयों के हिन्दू और मुसलमानों के मुकदमों में जूरी बनने पर हो सकती है। दोनों पक्षों के लिए एक ही सिद्धान्त होना चाहिए क्योंकि 'न्याय' किसी व्यक्ति विशेष का लिहाज या पक्षपात नहीं करता।

सारे प्रश्न पर राममोहन ने विस्तार से अपना विवेचन पेश किया था। इसके अतिरिक्त इसी प्रश्न पर राममोहन को 'हाउस ऑफ कॉमन्स' के सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देने के लिए निमंत्रित किया गया लेकिन उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर उक्त कमेटी के सामने जाने से इनकार कर दिया और अपने विचार लिखित रूप से सरकार के पास भिजवा दिये। यह लेख जो प्रश्नोत्तर के रूप में है ब्रिटेन के सरकारी दस्तावेजों में सम्मिलित है, जो बाद में "Exposition of the practical operation of the judicial and Revenue system

of India". के शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस लेख के अन्त में राममोहन ने लिखा था।

"अंत में मैं यह बता देना उचित समझता हूँ कि इन सवाल-जवाब का प्रारूप बनाने में मैं किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित नहीं हुआ, न ही मैं किसी से परामर्श किया, और न ही भारत सम्बन्धी किसी पुस्तक का सहारा लिया। मैंने केवल अपनी स्मरण शक्ति और अनुभव का ही सहारा लिया और अपने विवेक और चिंतन का प्रयोग किया है जो सुधार मैंने सुझाये हैं उनमें मैंने शासक और शासित दोनों के स्वार्थों का ध्यान रखते हुए आर्थिक पहलू को भी ध्यान में रखा है। मेरी अंतिम अभिलाषा है कि भारत में न्यायिक शासन सुदृढ़ नींव पर खड़ी हो।"....[11]

राममोहन ने अपने विचार केवल जूरी पद पर बैठने के अधिकार तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि देशी लोगों के जजों के पद पर नियुक्ति के अधिकार का प्रश्न भी उठाया। राममोहन की दलीलों ने ग्रांट साहब, जो इस मामले में सहानुभूतिशील थे; के हाथों को मजबूत किया और उन्होंने आसानी से आपत्तियों का खंडन करते हुए अंत में कहा था "that the natives of a country sufficiently civilised should be deemed eligible to fill important offices in the administration of its affairs."

और आखिरकार कुछ और बातचीत के बाद जब ग्रांट साहब को लगा कि बोर्ड के सदस्यों से कोई सहयोग मिलने की आशा नहीं है तो उन्होंने स्वयं ही 18 जून 1832 को East India Justice of Peace and Juries Bill पार्लियामेंट से पारित करवा लिया। इस अधिनियम के अंतर्गत जूरी कानून में भारतीयों की अयोग्यता की धारा में संशोधन कर दिया गया और साथ ही पहली बार देशी लोगों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करने की योग्यता प्रदान की गयी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि शासक श्रेणी में अधिकतर पदाधिकारी इस विधेयक के विरोधी थे। बोर्ड के सदस्यों ने इन लोगों को उकसा कर पार्लियामेंट के सामने विरोध पत्र दाखिल करवा दिया। समाचार-पत्रों में भी वाद-विवाद आरम्भ हो गया। लेकिन संतोष की बात थी कि इस विरोध का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इंगलैंड की कुछ पत्र-पत्रिकाओं के साथ भारत के एंग्लो-इंडियन पत्रिकाओं ने भी इस उदार नीति की बड़ी आलोचना की। एक पत्रिका ने यहाँ तक लिखा था, कि बोर्ड के प्रेसीडेन्ट ग्रांट साहब पर राममोहन ने जादू कर दिया होगा।

इसी दौरान लार्ड बेंटिक ने एक और अधिनियम Regulation IV of 1832 of the Bengal Code पारित करवा लिया। इसके अंतर्गत न्यायिक

अर्थात दीवानी और फौजदारी के मामलों के प्रशासन के लिए यूरोपीय शासकों को विशिष्ट देशी नागरिकों की सेवाएँ प्राप्त करने का अधिकार दे दिया। इसको एक प्रशासनिक प्रयोग कहा गया।

उन दिनों, अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक दौर में ये घटनाएँ बहुत ही महत्त्वपूर्ण थीं, क्योंकि यहीं से भारत में मौलिक अधिकारों और देशी लोगों की योग्यता को मान्यता मिलनी आरम्भ हुई। ग्रांट साहब के बिल और नये अधिनियम के पास होने पर चारों ओर खुशी की लहर दौड़ गई। श्रीरामपुर के ईसाई मिशनरियों की पत्रिका **'समाचार दर्पण'** ने, जो अकसर राममोहन का विरोधी रहा था, राममोहन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

> "....We are partial to Rammohun Roy; we confess the charge and would now offer as an additional reason for that partiality that both the benevolent provisions of this Regulation have been distinctly recommended by him to Parliament ..."[12]

एक और पत्रिका **'रिफार्मर'** ने राममोहन की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि यह भारत के लिए सौभाग्य की बात थी कि राममोहन इस समय इंगलैंड की भूमि पर हाजिर थे और उन्होंने अपने अध्यवसाय और प्रभाव के प्रशासनिक सुधार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका सम्पूर्ण श्रेय उनको मिलना चाहिए।[13]

इस विजय से देश के नागरिकों पर कैसी सुखद प्रतिक्रिया हुई होगी यह अंदाजा लगाया जा सकता है। राममोहन स्वयं इस सुखद परिणति पर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता का मुख्य कारण था कि धार्मिक आधार पर देश के नागरिकों में भेदभाव पैदा करने वाले एक अन्यायपूर्ण कानून से देश को मुक्ति मिली और दूसरी ओर देश के हिन्दू-मुसलमान की योग्यता को यूरोपीय और ईसाइयों के समकक्ष मान लिया गया था।

प्रशासनिक सुधार के प्रयास

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि राममोहन को, व्यक्तिगत तथा भारत के प्रतिनिधि की गैरसरकारी हैसियत के होते हुए भी, इंगलैंड के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' द्वारा नियुक्त सलेक्ट कमेटियों के सामने, न्याय, राजस्व, भूमि व्यवस्था तथा दूसरे प्रशासनिक मुद्दों पर गवाही देने के लिए आमंत्रित किया गया था। उन्होंने अपना बयान या उत्तर लिखित रूप में पेश किया था। ये सभी पार्लियामेंटरी दस्तावेजों में (1831-33) परिशिष्ट के रूप में संलग्न है। प्रशासनिक मामलों पर ये प्रश्नोत्तर देश की तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए बड़े

महत्वपूर्ण है। यह दस्तावेज 1832 में लन्दन के स्मिथ एल्डर एण्ड कम्पनी ने अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित की थी। शीर्षक था—

"Exposition of the Practical operation of Judicial and Revenue systems in India and the general Character and condition of its Native inhabitants as submitted in Evidence to the Authorities in England with notes and illustrations and brief Preliminary sketch of Ancient and modern bounderies and the history of that country elucidated by a map."[14]

राममोहन ने इन विषयों पर गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार के बाद ही अपने विवेचनात्मक समाधान पेश किये थे। क्योंकि वे चाहते थे कि उनके विचारों का ईस्ट इंडिया कम्पनी के नए प्रशासनिक चार्टर में उपयोग हो। न्यायिक और प्रशासनिक विषयों पर राममोहन ने पाँच लेख प्रस्तुत किये थे :

(1) भारत में राजस्व प्रणाली पर : इसमें 54 प्रश्न थे, जिनका उन्होंने योग्यतापूर्वक उत्तर दिया था।

(2) भारत की न्याय व्यवस्था पर : इसमें 78 प्रश्न थे, जिनका उत्तर लेख के रूप में है।

(3) भारत की परिस्थिति के बारे में पूछे गए अतिरिक्त प्रश्न : इसमें 13 प्रश्न और उनके उत्तर हैं।

(4) देशी लोगों की विशिष्टता तथा आर्थिक दशा के बारे में।

(5) यूरोपीय लोगों के भारत में बसने की समस्या पर लेख।

इन प्रश्नोत्तरों और लेखों ने आगे चलकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के 1833 के चार्टर को प्रभावित किया था। इन दस्तावेजों में एक विशेष बात यह है कि यह उस व्यक्ति के चरित्र का उजागर करती है जिसने देश के प्रशासन में फैले अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार के विरोध में स्पष्ट रूप से साहस के साथ अपने विचार प्रकट किये और एक सुधारक के रूप में समस्याओं के व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत किया।

राममोहन ने 19 सितम्बर 1831 को भारत के आंतरिक प्रशासन के बारे में अठहत्तर प्रश्नों का उत्तर दिया था। न्यायिक प्रशासन के बारे में विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था, 1793 में लॉर्ड कॉर्नवालिस द्वारा स्थापित व्यवस्था देश की परिस्थितियों के अनुरूप था लेकिन उसके व्यावहारिक परिपालन में त्रुटियाँ आ गयी थीं। इन त्रुटियों का विवरण देते हुए उन्होंने कहा था कि लोक संख्या को देखते हुए न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों की बहुत कमी है इसी से साधारण जनता के लिए न्याय के दरवाजे खटखटाने में कठिनाई होती है। एक और मुख्य कठिनाई थी जजों का स्थानीय भाषा और रीति-

रिवाजों से अनभिज्ञ होना। इस कारण साधारण जनता को न्यायालयों से अपेक्षित लाभ या न्याय, नहीं मिलता था और लोगों का न्यायालयों पर पूरा विश्वास नहीं जमता था।

इन त्रुटियों को दूर करने के उपाय सुझाते हुए राममोहन ने कानूनों को देशी भाषाओं में उपलब्ध कराने का सुझाव दिया था। न्यायिक प्रशासन के सही रूप से लागू करने के उपाय सुझाते हुए उन्होंने कहा था कि दूर-दराज के प्रदेशों के लिए छोटे न्यायालयों (सदर अमीन) की स्थापना की जाय। इसके साथ ही भारत की प्राचीन 'पंचायत' प्रथा का अनुमोदन करते हुए लिखा था कि यह व्यवस्था जो जूरी प्रथा के समतुल्य है, के लागू होने पर देश के लोगों को सुविधा होगी क्योंकि इससे देशी लोगों की विशिष्टताओं, उनके रीति-रिवाजों और भाषाई समस्या का समाधान हो सकेगा। राममोहन का एक और महत्त्वपूर्ण सुझाव था न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग रखने का। उन्होंने एक ही प्रशासनिक अधिकारी को राजस्व या प्रशासनिक कार्य और न्यायपालिका कार्य सौंपने का विरोध किया क्योंकि उनका विचार था कि इस व्यवस्था से भ्रष्टाचार फैलेगा। समाधान के रूप में उन्होंने सुझाया था "to seperate the duties between two distinct sets of officers and double the jurisdiction of each"....,

इस प्रश्न शृंखला के अन्तिम प्रश्न का उत्तर देते हुए राममोहन का सुझाव था कि न्यायाधीशों का वेतनमान इतना होना चाहिए कि वे छोटे-मोटे लालच के शिकार न हों और धीरे-धीरे देशी लोगों को भी न्यायिक प्रशासन में शामिल किया जाय।

राजस्व विभाग के प्रशासन के बारे में भी उन्होंने सुधार के लिए प्रस्ताव पेश किये थे। यद्यपि राममोहन स्वयं जमींदार थे लेकिन जमींदारी प्रथा में फैले दुराचार का पर्दाफाश करने में जरा भी नहीं हिचकिचाए। उन्होंने इस सिलसिले में 'सलेक्ट कमेटी' के सामने लगभग 54 प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत किए थे। इसमें उत्तर भारत में प्रचलित जमींदारी व्यवस्था और दक्षिणी भारत में प्रचलित रैयतवारी व्यवस्था के दोष-गुणों का विश्लेषण करते हुए दिखाया था कि दोनों ही व्यवस्था में भ्रष्टाचार के लिए काफी गुंजाइश है। इसी कारण गरीब किसानों का शोषण हो रहा है। कर का सारा बोझ वस्तुतः किसान के सिर पर होता है। जमींदारी व्यवस्था में किसान जमींदार की दया पर जीता है और रैयतवारी व्यवस्था में सरकारी अमले और पट्टेदारों की मेहरबानी पर। इस प्रकार जमींदारों और पट्टेदारों के अत्याचार और सरकारी उदासीनता के बारे में राममोहन के विचार बहुत ही स्पष्ट थे। किसानों की स्वार्थ रक्षा के लिए सुझाव रखा था कि लगान की दर किसी भी कीमत पर न बढ़ाई जाय

और दोषी जमींदारों को उपयुक्त सजा देने की व्यवस्था की जाय तथा जिलाधीशों को लगातार अपने इलाके का दौरा करके किसानों की स्थिति पर नजर रखनी चाहिए।

एक और प्रश्न के उत्तर में राममोहन ने कहा था कि प्रचलित कानून राजस्व की अदायगी और सरकारी स्वार्थ की रक्षा के लिए पर्याप्त है लेकिन किसानों को अन्यायपूर्ण अदायगी से संरक्षण प्रदान करने की कोई व्यवस्था नहीं है। उनका पहला सुझाव था कि कलेक्टरों को मजिस्ट्रेट के समान अधिकार न दिए जाएँ, और दूसरे, राजस्व अधिकारी के विरुद्ध किसी भी आरोप की तुरन्त न्यायिक जाँच की जाय चाहे मजिस्ट्रेट के सामने कितने ही विचाराधीन मामले क्यों न पड़े हों।

इन्हीं प्रशासनिक सुधार से सम्बन्धित एक और विवादपूर्ण विषय था यूरोपीय नागरिकों के भारत में बसने का प्रश्न। इस पर हम अन्यत्र विचार करेंगे।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. Sen, Amiya Kumar; RAJA RAMMOHUN ROY : A Representative Man, पृ० 172.

2. Majumdar J. K., Raja Rammohun Roy and Progressive Movements in India, पृ० 339-340 में **'संवाद कौमुदी'** के लेख का अनुवाद **'कलकटा जर्नल'** से उद्धृत है। उद्धृत पंक्तियों का अँगरेजी पाठ इस प्रकार है।

"Among all the meritorious institutions of the British constitution, that of the adjudication of Criminal cases by twelve disinterested, honest and intelligent men or in other words 'Trial by Jury' is a source of infinite satisfaction to those who have good fortune to reside in the Metropolis of India...."

3. Crawford, S. C. RAM MOHAN ROY पृ० 133, ईस्ट इंडिया ज्यूरी बिल में धारा 3 इस प्रकार जोड़ा गया :

"That the grand Juries in all cases and all Juries for the trial of persons professing the Christian religion shall consist wholly of persons professing the Christian Religion."

4. Sen : pg. 179 में **'संवाद कौमुदी'** से उद्धृत अंश इस प्रकार है :

"The Consequences of this new Act is that in matter where a man's life is at stake or where banishment, im-

prisonments and severe punishment are awarded we. Hindoos and Musalmans must submit to the verdict of Christians whether they be native of Britain or The off Sprins of British fathers by Indian mothers, whethe they be the Common Portugese of Armenians or the 'Rice Christians' of Serampur.'

5. Sen, पृ० 181 **'संवाद कौमुदी'** दिसम्बर 1826 से **'ओरियण्टल हेराल्ड'** जुलाई 1827 में उद्धृत ।

6. वही, पृ० 182.

7. वही, पृ० 182 में **'संवाद कौमुदी'** से उद्धृत ।

8. वही, पृ० 193 में Petition of Natives against the India Jury Act. अनुच्छेद 11 से उद्धृत ।

9. वही, पृ० 194 में **'एशियाटिक जर्नल'** 1829 से उद्धृत ।

10. पूरे पाठ के लिए English Works देखें ।

11. English works ed. by Nag and Burman pt. 3, पृ० 38 से उद्धृत ।

12. Dasgupta, Vol. 2, पृ० 129-130 में **'समाचार दर्पण'** से उद्धृत ।

13. वही, पृ० 130.

14. English Works द्रष्टव्य ।

अध्याय—22

आर्थिक और औद्योगिक क्रान्ति के सूत्रधार

राममोहन ने 'हाउस ऑफ कामन्स' की 'सिलेक्ट कमेटी' के सामने 1831-32 में जो गवाहियाँ पेश की थीं उनमें उन्होंने देश के प्रशासन और आर्थिक प्रश्नों का समाधान ढूंढ़ने की कोशिश की थी। न्यायिक प्रशासन के क्षेत्र में भारतीय न्यायाधीश और जूरी की नियुक्ति के साथ नागरिक एवं फौजदारी कानून की लिखित व्याख्या की माँग की थी। देश के प्रशासनिक व्यय को कम करने की सलाह के साथ-साथ रक्षा व्यय में कमी करने के उपाय बताते हुए उन्होंने सैनिक शासन को समाप्त करके देश रक्षा के लिए देशी लोगों को प्रशिक्षित करने की सलाह दी थी। न्यायिक-प्रशासन के लिए भारत के प्राचीन पंचायत प्रथा की पैरवी भी की थी। न्यायिक और प्रशासनिक विषयों पर पिछले अध्याय में विचार किया जा चुका है। इस अध्याय में उनके कार्यकलाप और विचारधारा का आर्थिक और औद्योगिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया जायगा।

आर्थिक-क्षेत्र में राममोहन ने जिन पहलुओं पर मुख्य रूप से आन्दोलन चलाया, उनमें किसानों की आर्थिक स्थिति, राजस्व-समस्या, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यावसायिक एकाधिकार का विरोध, फ्री ट्रेड या स्वतंत्र व्यापार की पैरवी, और अन्त में शिक्षित, धनी और चरित्रवान यूरोपीय नागरिकों के भारत में बसने का अधिकार देकर देश की आर्थिक उन्नति में सहयोग देना मुख्य हैं।

1832 में 'पार्लियामेंटरी कमेटी' के सामने अपनी गवाही में किसानों की अवस्था पर अपनी राय जाहिर करते हुए उन्होंने कहा था :

> 'The condition of the cultivators is very miserable. They are placed at the mercy of the Zamidar's avarice and ambition.... the landlords have met with indulgence from government in the assessment of their revenue while no part of its is extended towards the poor cultivators....'[1]

यद्यपि राममोहन की आर्थिक विचारधारा के बारे में हमें कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार विरोधी आन्दोलन में उनकी भूमिका, नमक मजदूरों के शोषण के खिलाफ आन्दोलन और बाद में इंगलैण्ड-प्रवास के दौरान पार्लियामेंट के सामने दी गयी गवाही और प्रकाशित लेखों से विवरण मिलता है लेकिन देश की आर्थिक स्थिति और किसान-समस्या के बारे में राममोहन बहुत पहले

से ही सजग थे और काफी अरसे से इन विषयों पर सोच-विचार कर रहे थे। 15 सितम्बर 1822 में उन्होंने सर जॉन बाउरिंग को एक पत्र में लिखा था :

'....Haviny being principally engaged in compiling my final appeal to the Christian public, I could not pay due attention to my intended long memorial....Revenue documents under the Moghul Government which my native friends of upper provinces have not yet furnished me with.... I am afraid I shall not be able to prepare it before your departure from India. As this will be my first production in political affairs, I am therefore, very anxious to have it as perfect and well—authenticated as possible, so that having established it on a sane foundation no person can justly ascribe it to a party feeling or discontent with the government..."[2]

इस पत्रांश से स्पष्ट होता है कि उस काल में अपने प्रसिद्ध धर्मविषयक तर्क-युद्ध में व्यस्त होते हुए भी राममोहन देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर एक विस्तृत स्मारक-पत्र लार्ड हेस्टिंग्स के सामने पेश करना चाहते थे। उक्त पत्र से यह भी स्पष्ट है कि मुगल कालीन राजस्व और कर सम्बन्धी तथ्य और आँकड़े प्राप्त करने में उन्हें कठिनाई हो रही थी इसी से इस स्मारक-पत्र को पूरा नहीं कर सके। इसके अतिरिक्त उनका विचार था कि यह उनका प्रथम राजनैतिक स्मारक-पत्र होगा इसी से वे चाहते हैं कि यह पूरी तरह प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण हो। इधर सामाजिक, धार्मिक सुधार आन्दोलनों और पारिवारिक झमेलों में व्यस्त रहने के कारण इस स्मारक पत्र को पूरा करने में काफी समय लग गया। यह स्वाभाविक ही था और लगभग सात साल बाद 1829 में लार्ड बेन्टिंक को, उन्होंने अपना वह 'लम्बा' और व्यक्तिगत स्मारक-पत्र पेश किया था। यह दस्तावेज नाटिंघम विश्वविद्यालय में लॉर्ड बेन्टिंक के व्यक्तिगत क़ागज़ात के साथ सुरक्षित है।[3] स्मारक-पत्र में उठाये गये प्रश्नों के साथ राममोहन के पार्लियामेन्ट के सिलेक्ट कमेटी के सामने दी गई गवाही और लेखों की विषय-वस्तु के साथ काफी समानता है। इस पाण्डुलिपि में भारत की आर्थिक और प्रशासनिक समस्याओं पर राममोहन के सुचिन्तित विचार विश्लेषण और समाधान हैं। इसमें ज़मींदार वर्ग के धन और सत्ता हथियाने का संक्षिप्त इतिहास है। साथ ही यह भी स्पष्ट कहा गया कि जब तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यावसायिक एकाधिकार क़ायम रहेगा, देश की आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। उन्होंने आगे कहा कि जब इस मामले में कुछ उदारता बरती गई

और यूरोपीय लोगों को धन लगाने और बसने की सुविधा दी गई तभी से देश ने आर्थिक उन्नति की ओर कदम बढ़ाया। 1813 के चार्टर से यूरोपीय व्यापारियों को कुछ सुविधा दी गई तो उन लोगों ने गाँवों में फैलकर नील की खेती आरम्भ की। इससे अँग्रेज़ों को ही नहीं भारतीयों को भी आर्थिक लाभ पहुँचा। इस स्मारक-पत्र में उन्होंने फ्री ट्रेड या स्वतन्त्र व्यापार की पैरवी की थी क्योंकि यही भारत में पूँजीवाद के प्रसारण का पहला कदम था। वस्तुतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार के जंज़ीर में बँधे होने के कारण पूँजीवाद और मशीनी उद्योग की प्रगति में बाधा पड़ रही थी।

इस स्मारक-पत्र से स्पष्ट है कि राममोहन एक लम्बे अरसे से भारत की आर्थिक समस्या पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे। दूसरे वे कर-भार से पीड़ित और शोषित किसानों की दुर्दशा के प्रति विशेष सहानुभूतिशील थे। बाद में उनके 'हाउस आफ कामन्स' में दिये गवाही से भी यह तथ्य स्पष्ट उभरकर सामने आया। वे किसानों की दुर्दशा पर दुखी थे। इसी से उन्होंने ज़मींदारों के लगान बढ़ाने के अधिकार का सदा विरोध किया, साथ ही ज़मीं-दारों पर कर की दर में कमी करने की भी आवश्यकता पर जोर दिया क्योंकि इसी अनुपात में किसानों का बोझ भी कम हो सकता था। इसी प्रसंग में सर-कारी आय को बढ़ाने के लिए अधिक कर लगाने की नीति का विरोध करते हुए उन्होंने कुछ सुझाव दिये थे :

(1) भोग विलास और अनावश्यक वस्तुओं पर अधिक कर लगाना।

(2) राजस्व विभाग के प्रशासनिक खर्चे मे कमी करना। हजार-डेढ़ हजार वेतन के यूरोपीय कलक्टरों की जगह तीन-चार सौ रुपये के भारतीय कलक्टरों की नियुक्ति का सुझाव। लगान घटने से प्रजा संतुष्ट होगी और सरकारी प्रशासनिक निपुणता बढ़ेगी।

(3) स्थायी विदेशी और देशी सेना के स्थान पर स्थानीय रक्षा-दल की स्थापना करने से प्रशासनिक व्यय में भारी कमी आयेगी और जनसाधारण का सहयोग भी मिलेगा।

जिस चार्टर के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई थी उसी कानून के अनुसार कम्पनी को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार मिला हुआ था। कोई भी यूरोपीय चाहे वह अंग्रेज ही क्यों न हो व्यापार या कृषि उद्देश्य से भारत में बसने देने के अधिकार का भार भी सम्पूर्ण रूप से कम्पनी पर ही था। अपनें व्यापारिक एकाधिकार के प्रति कम्पनी पूरी तरह सजग थी क्योंकि उन्हें डर था कि अबाध या स्वतन्त्र व्यापार के चालू होने से उसकी अनि-यंत्रित लूट पर रोक लग जायगी। भारत में यूरोपीय मूल के बसने वालों के साथ गुलाम भारतीयों जैसा व्यवहार करना सम्भव नहीं था, इसी से ईस्ट

इण्डिया कम्पनी खुले व्यापार और भारत में यूरोपीय उपनिवेश स्थापित करने के पक्ष में नहीं थी। इधर इंगलैण्ड में उन दिनों मुक्त व्यापार या 'फ्री ट्रेड' के पक्ष में एक प्रभावशाली वर्ग आन्दोलन कर रहा था। वे लोग भारत में उपनिवेश स्थापना के अधिकार के लिए भी लड़ रहे थे। इनका प्रभाव भारत स्थित यूरोपीय व्यापारियों पर पड़ना स्वाभाविक था। इसी बीच सीलोन (श्रीलंका) में इस ओर कुछ प्रयोगात्मक कदम उठाये गये। इस सिलसिले में सर एलेक्जेण्डर जॉन्सटन ने ब्रिटिश यूरोपियन लोगों के लिए इन उपनिवेशों के बसने की खुली छूट की जोरदार पैरवी की थी। इस प्रकार 1810 में सीलोन से यूरोपीय मूल के लोगों के उपनिवेश स्थापना के विरुद्ध कम्पनी के सारे प्रतिबन्ध हटा लिये गए थे। इस घटना का प्रभाव भारत में पड़ना स्वाभाविक था।

भारत के ग्रामीण इलाके में स्वतन्त्र रूप से जमीन खरीदकर बसने और खेती बाड़ी करने के अधिकार की माँग यूरोपीय लोग बहुत दिनों से करते आ रहे थे। यह सच है कि 1813 के चार्टर से थोड़ी सुविधाएँ दी गयीं लेकिन वे पर्याप्त नहीं थीं। 1824 में सर्वप्रथम बंगाल सरकार ने 'कॉफी' की खेती के लिए कुछ यूरोपीय व्यापारियों को ज़मीन खरीदने की सुविधा प्रदान की। 1827 में कलकत्ता के यूरोपीय नागरिकों की एक सभा में भारत में यूरोपीय पूँजी और औद्योगिक कारीगरी नियोजन की माँग की गयी। साथ ही यह कहा गया कि इससे ब्रिटेन और भारत दोनों को ही लाभ होगा। लेकिन इस अपील का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद फरवरी 1829 में कलकत्ता के प्रमुख व्यापारियों ने गवर्नर जनरल के पास एक आवेदन पत्र भेजा जो उन्होंने 'कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स' के विचारार्थ लंदन भिजवा दिया। लेकिन डाइरेक्टर्स की ओर से दो टूक जवाब आया कि निर्धारित कानून के अनुसार ही सबको मानकर चलना होगा। इस हुक्मनामे के विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए 15 दिसम्बर 1829 को कलकत्ते के 'टाउन हॉल' में एक सभा बुलाई गई। इस सभा में प्रमुख यूरोपीय व्यापारी वर्ग, संभ्रांत नागरिकों के अलावा कुछ विशिष्ट भारतीय नागरिक भी उपस्थित थे। इन भारतीयों में राममोहन राय, उनके परम मित्र प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार ठाकुर जैसे उनके सहयोगी उपस्थित थे।[4] द्वारिका नाथ ठाकुर ने एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पेश किया—ब्रिटिश प्रजा के जमीन पर अधिकार प्राप्त करने या जमीन खरीदने के विरुद्ध जो कानून है और कम्पनी शासित इलाके में स्वाधीनता पूर्वक रहने के विरुद्ध भी जो कानून है, ये कृषि, व्यापार और व्यवसाय की उन्नति और औद्योगिक उत्पादन के रास्ते में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। यह विचार करके यह सभा पार्लियामेन्ट के समक्ष यह आवेदन भेज रहा है कि ब्रिटिश प्रजा को भारत में खुलेआम आकर बसने के बारे में जो

कानूनी रुकावटें हैं वे दूर की जाएँ क्योंकि ये बाधाएँ देश की व्यापारिक और आर्थिक उन्नति के विरुद्ध हैं।

"....That this meeting considering one of the main legal obstructions to the commercial, agricultural and manufacturing improvements to consist in the obstacles which are opposed to the occupancy or acquisition of land by British subjects and against their free resort to and unmolested residence within the limit to the company's administration, does approve and confirm....[5]

इसी प्रस्ताव में आगे कहा गया कि नील की खेती और यूरोपीयों के बसने से देश के सभी श्रेणी के लोगों को लाभ पहुँचा है। जमींदार भी धनवान बने हैं और किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार भी हुआ है। नील की खेती और कारखानों के इलाकों में जमीन की कीमत बढ़ने लगी है और कृषि उत्पादन में भी उन्नति दीख पड़ती है। अंगरेजों की कार्यकुशलता, पूँजीनिवेश और मेहनत से देश की आर्थिक उन्नति हो सकती है।

राममोहन ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि जो प्रस्ताव अभी पढ़ा गया और इस सम्बन्ध में द्वारकानाथ ठाकुर ने जो कुछ कहा, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ....[6] उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने बंगाल और बिहार के कई जिलों का दौरा किया है और देखा है कि नील कोठियों के आसपास के लोग दूसरे इलाकों के लोगों से अधिक समृद्ध हैं। नील उद्योग और खेती से ग्रामीण क्षेत्र में थोड़ा बहुत नुकसान हुआ होगा लेकिन नील उद्योग से मुख्यतः देश की आर्थिक उन्नति में सहयोग ही मिला है।[7] इस उद्योग की स्थापना से अर्जित धन का एक हिस्सा अब विदेश न जाकर देश में ही लगाया जाने लगा था।

प्रसन्न कुमार ठाकुर ने भी इस प्रस्ताव के समर्थन में अपने विचार व्यक्त किए। राममोहन और द्वारकानाथ ठाकुर के भाषणों से स्पष्ट होता है कि वे दोनों यूरोपीय पूँजी और कार्यकुशलता को देश की औद्योगिक और आर्थिक उन्नति के लिए उसका विनियोग बढ़ाने के पक्ष में थे। यूरोपीय सहायता के बिना देश में पूंजीनिवेश और औद्योगिक क्रान्ति सम्भव नहीं, यह बात राममोहन जैसे दूरदर्शी के लिए समझ पाना कठिन नहीं था।

देश के कुछ विशिष्ट नागरिकों द्वारा विदेशियों के अबाध व्यापार तथा प्रत्यक्ष रूप से विदेशियों को बसाने की माँग, और राममोहन के स्पष्ट समर्थन से कई लोग चकित रह गये थे क्योंकि उनके विचार से इस व्यवस्था से भारतीय आर्थिक स्वार्थों पर विदेशियों के हावी होने का प्रत्यक्ष डर था। लेकिन इन आशंकाओं के बावजूद राममोहन, द्वारकानाथ और उनके सहयोगियों

ने आशंकाओं को निराधार ठहराते हुए प्रस्ताव की उपयोगिता को समझते हुए उसका जोरदार समर्थन किया।

राममोहन और उनके सहयोगियों के इस समर्थन का इंगलैण्ड के फ्री-ट्रेड समर्थक अँगरेजों ने प्रशंसा की। लेकिन देश के प्रतिक्रियाशील जमींदार और व्यापारी वर्ग ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। अनुदारवादी देशी और विदेशी पत्र-पत्रिकाओं ने राममोहन और उनके साथियों की खूब खबर ली। एक ओर **'जानबुल'** और **'समाचार चंद्रिका'** और दूसरी ओर **'संवाद कौमुदी'** जैसी पत्रिकाओं में इस विषय ने विचारोत्तेजक वाद-विवाद का रूप ले लिया।

भारत में औद्योगिक क्रान्ति को लाने के लिए पुरानी उत्पादन प्रणाली को त्यागकर कल कारखाने की स्थापना करना उस युग की ऐतिहासिक आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए राममोहन और उनके सहयोगी देशी या विदेशी, किसी भी कार्यकुशलता का सहयोग लेने को तैयार थे। लेकिन प्रतिक्रियावादी जमींदार वर्ग और व्यापारी वर्ग ने कुटीर उद्योग के नष्ट होने, किसानों को आर्थिक क्षति पहुँचाने का हौवा खड़ा कर दिया। उनका साथ ईस्ट इंडिया कम्पनी की एकाधिकारवादी कुछ सरकारी नौकरशाही और उनकी पत्र-पत्रिकाएँ भी दे रही थीं।

राममोहन विरोधी पत्रिका **'समाचार चंद्रिका'** अचानक गरीब किसानों और मजदूरों का हमदर्द बन बैठी। इसने लिखा कि किसान ही नहीं, जुलाहे, लुहार, सुनार सभी, कल-कारखानों की स्थापना से बेकार हो जाएँगे। राममोहन की पत्रिका **'संवाद कौमुदी'** में इसका मुँहतोड़ उत्तर देते हुए द्वारकानाथ ठाकुर ने, जो स्वयं एक बहुत बड़े जमींदार थे, 'एक निरपेक्ष जमींदार' के छद्मनाम से दो महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये। इन पत्रों में उन्होंने नील की खेती और कृषि के आधुनिकीकरण, कल-कारखानों की स्थापना और विदेशी कार्यकुशलता से होने वाले लाभ की जोरदार पैरवी की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भिक दिनों में नये कल-कारखानों की स्थापना से कुटीर उद्योगों का नष्ट होना स्वाभाविक है। लेकिन औद्योगीकरण से निकट भविष्य में उत्पादन की मात्रा में कई गुणा बढ़ोतरी होगी। उपभोक्ता सामग्री जनसाधारण को कम मूल्य पर उपलब्ध होने लगेगी। कुटीर उद्योगों से जुड़े कुछ लोग शुरू-शुरू में बेकार अवश्य होंगे लेकिन इसी रास्ते से रोजगार के नये आयाम खुलेंगे और साधारण जनता का जीवन स्तर ऊँचा होगा। व्यापारियों को लताड़ते हुए द्वारकानाथ ने कहा कि ये लोग चाहते हैं कि उत्पादन में कमी बनी रहे, जिससे उपभोक्ता वस्तुओं के दाम न गिरें। इन स्वार्थी लोगों का उद्देश्य देश के हित में नहीं हो सकता। उन्होंने आगे लिखा था कि मुट्ठी भर लोगों को बचाने के

बहाने पूरी मानव जाति के कल्याण के लिए औद्योगिक क्रान्ति का रास्ता रोकना उचित नहीं है।

'समाचार चंद्रिका' में प्रकाशित आशंकाओं को गलत ठहराते हुए उन्होंने लिखा था—

'अब जो थोड़े से परिवर्तन हो रहे हैं वे हैं उनसे स्पष्ट है कि उपभोक्ता वस्तुओं का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होने से इनके मूल्य गिर रहे हैं। इससे नुकसान तो हुआ ही नहीं बल्कि इसका नतीजा शुभ ही मानना होगा। पहले गरीब लोग अच्छे कपड़े पहनना चाहते थे लेकिन उनमें खरीदने की क्षमता नहीं थी अब अच्छे कपड़ों के दाम गिर जाने से उन्हें गरीब भी खरीद सकते हैं।....जब अधिकाधिक लोगों को लाभ पहुँच रहा है तो उस समय थोड़े से लोगों का नुकसान भी होगा इस आशंका को सामने रखकर हाय-हाय करना समाज का अहित सोचने के समान है।'[8]

व्यापार में एकाधिकार समाप्त होने पर व्यापार की उन्नति होगी, बहुत से लोगों को उद्योग-धन्धे कायम करने का मौका मिलेगा, जीवन का स्तर ऊँचा होगा, मजदूरों की मजदूरी बढ़ेगी और शिक्षा के विस्तार के साथ धर्मान्धता पूर्वग्रह और कुसंस्कारों से मुक्ति मिलेगी। नये बाजार खुलेंगे तो खरीददारों की संख्या बढ़ेगी, और उत्पादन भी बढ़ेगा। ये सारे स्तर पूंजीवाद और मशीनी उद्योग प्रणाली की आवश्यक प्रक्रिया है। भारत में पूंजीवादी बुर्जुआ और औद्योगिक क्रान्ति को आगे बढ़ाने में राममोहन और उनके सहयोगी द्वारकानाथ ठाकुर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आगे चलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने गवाही देते हुए हम इन्हीं विचारों का विकसित और प्रौढ़ रूप पाते हैं।

भारत में यूरोपीय मूल के लोगों को बसने के बारे में अपने प्रसिद्ध लेख में, जो राममोहन ने पार्लियामेंट के सामने पेश किया था, प्रस्ताव की सुविधाओं और असुविधाओं दोनों ही पक्ष पर अपने विचार रखे थे। असुविधाओं के बावजूद वे देश की आर्थिक और सामाजिक नवजागरण और औद्योगिक क्रान्ति के लिए यूरोपीय पूंजी और कार्यकुशलता को व्यवहार करने के पक्ष में थे। जिस समय राममोहन पार्लियामेंट के सामने अपने विचार पेश कर रहे थे ठीक उसी समय लार्ड बेंटिक ने भी 'बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स' को अपने भेजे गए प्रपत्र में यूरोपीय लोगों को भारत में बसने का अधिकार देने की सिफारिश की थी।

राममोहन का यूरोपीय लोगों के बसने सम्बन्धी यह दस्तावेज[9] बहुत ही महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक माना जाता है। इसमें राममोहन ने यूरोपियों के बसने सम्बन्धी सुविधा और असुविधाओं का, बहुत ही स्पष्ट, तटस्थ और व्यावहारिक विश्लेषण पेश किया था। जो मुख्य प्रश्न उठाये गए उनके बारे में यहाँ कुछ विस्तार से विचार करना उचित होगा।

पहला मुख्य प्रश्न था कि क्या यूरोपीय मूल में लोगों को भारत के जायदाद खरीदने की और बसने की सुविधा देने से लाभ होगा ? राममोहन ने इस प्रश्न के उत्तर में इसके आर्थिक पहलू की ओर ही नजर दौड़ाई। उन्होंने स्पष्ट कहा कि चरित्रवान प्रतिष्ठित और धनवान अंग्रेजों को देश में बसने दिया जाय तो देश की सम्पत्ति और साधन की उन्नति में सहायता मिलेगी। साथ ही देश के लोगों की आर्थिक अवस्था के सुधार में भी यह एक सहायक कदम होगा। क्योंकि यूरोपीय लोगों के कार्यकुशलता का अनुकूल प्रभाव इस देश पर भी पड़ेगा।

एक और प्रश्न के उत्तर में राममोहन ने कहा था कि ऐसे यूरोपीय लोगों को बसाया जाय जो सुशिक्षित और धनवान हों क्योंकि ऐसे लोग ही दूसरे देश की सभ्यता और संस्कृति को आदर की दृष्टि से देख सकते हैं। साधारण यूरोपीय लोगों को बसाने से कोई लाभ नहीं होगा। इस गर्म देश में देशी लोगों के साथ काम करने में उन्हें असुविधा होगी और देश को भी कोई लाभ नहीं होगा।

एक अन्य मुख्य प्रश्न में राममोहन से पूछा गया था कि यूरोपीय लोगों के बसने और धन लगाने से देश की सम्पत्ति और साधन में कैसे सुधार होगा ? अपने उत्तर में राममोहन ने बताया कि इस समय यूरोपीय लोग धन कमाकर अपने देश लौट जाते हैं और देश का धन विदेश में जा रहा है। उन्होंने देश की लूट को साबित करने के लिए कुछ आँकड़े तैयार किए और सिलेक्ट कमेटी के सामने अपने बयान में बताया कि भारत में प्राप्त होने वाले राजस्व का लगभग 30 लाख पौंड प्रतिवर्ष इंगलैंड में लग रहा था इसके अलावा लगभग साढ़े चार लाख पौंड की राशि दूसरे मदों में लगी थी। यूरोपीय लोग यहाँ सपरिवार बसने लगेंगे तो यह धन देश में ही रहेगा और इस प्रकार देश समृद्धि की ओर आगे बढ़ सकेगा। राममोहन ने इस विषय से जुड़ी अन्यान्य समस्याओं पर अपनी गवाही में निष्पक्ष भाव से अपने विचार प्रकट किये। राममोहन की गवाही लार्ड बेंटिंग के डिस्पैच और राममोहन के इंगलैंड निवासकाल में 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में उपस्थिति आदि का नतीजा यह हुआ कि 1833 के 'चार्टर' में यूरोपीय लोगों को भारत में बसने की कुछ सुविधाएँ प्रदान कर दी गयीं। इस निर्णय के दूरदर्शी परिणाम का साक्षी भारत का परवर्ती इतिहास है। देश की कृषि, व्यापार और उद्योग-धन्धों में प्रगति राममोहन और उनके सहयोगियों के सतत प्रयत्नों का ही फल था। यूरोपीय कार्यकुशलता और पूँजी से ही भारत औद्योगिक उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा। भारत में पूँजीवाद का विकास और औद्योगिक विकास के इतिहास में यूरोपीय पूँजी और कार्यकुशलता की भूमिका से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। औद्योगिक, व्यापारिक और

कृषि के क्षेत्र में भारत की आवश्यकताओं को समझकर इस दिशा में पहल करने का श्रेय राममोहन को देते हुए उनके सहयोगी द्वारकानाथ ठाकुर की भूमिका को भी हमेशा याद किया जायगा।[10]

आर्थिक क्षेत्र में राममोहन का दूसरा प्रमुख आन्दोलन ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार के विरुद्ध था। इनमें नमक के व्यापार में कम्पनी के एकाधिकार के विरुद्ध आन्दोलन में राममोहन ने जोर-शोर से भाग लिया था। इसमें भी वे गरीब मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए आगे आये। नमक बनाने वाले मजदूर बंगाल के सुन्दरबन इलाके में समुद्री दलदल में, बीमारी और प्राकृतिक विपत्तियों के अलावा शेर के मुंह में जाने के खतरों को झेलते हुए भी नमक बनाने के कार्य में जुटे थे। ये मुलंगी (नमक मजदूर) भयंकर आर्थिक दुर्दशा के शिकार थे और इनकी इस दुर्दशा का मुख्य कारण कम्पनी का एकाधिकार था। नमक के व्यापार में भी भारी भ्रष्टाचार फैला था। वस्तुतः नमक का सारा व्यापार कलकत्ते के कुछ व्यापारियों के हाथ में था। इसी से नमक की जमाखोरी और ऊँची कीमतों के कारण नमक के व्यापार में कालेबाजारी का बोलबाला था। सिर्फ कालाबाजारी ही नहीं नमक में मिलावट भी की जाती थी। व्यापारी और उनके दलाल सिर्फ इस बात की कोशिश में रहते कि आयातित नमक पर भारी कर लगाकर बाहर से आये नमक को जनता की पहुँच से बाहर रखा जाय।

नमक के व्यापार में इस एकाधिकार, मिलावट, ऊँची कीमतों और नमक मजदूरों की दुर्दशा के विरुद्ध राममोहन ने देश में रहते हुए और इंगलैंड प्रवास के दौरान भी अपना आन्दोलन जारी रखा।

राममोहन ने 'रामहरिदास' के छद्मनाम से एक महत्त्वपूर्ण लम्बा पत्र सरकारी नमक-अफसर के नाम लिखा था जो 'गवर्नमेंट गजट' में प्रकाशित हुआ। पत्र का शीर्षक "Respect us ! We are yet a people— a nation." इस पत्र में नमक व्यापार में चलते सरकारी एकाधिकार, धांधली, जमाखोरी और काले व्यापार के बारे में व्यंगात्मक प्रहार है। व्यंग और चोट के नमूने के लिए पत्रांश का अनुवाद उद्धृत करना प्रासंगिक होगा—

> "मेरा नाम रामहरिदास है। मैं सरकार को सालाना 120 रुपये देता हूँ।....मेरा बेटा उन लोगों में से है जिसने पालकी-सवार एक राजपत्रित, प्रतिष्ठित नमक-असफर की पिटाई करने में योगदान दिया और घर लौटकर शान से बताया कि कैसे टोपी वाला अफसर जान बचाने के लिए भागा था। प्रश्न है कि उसने ऐसा क्यों किया ? और हममें से और भी लोग ऐसा क्यों न करें ? यदि हमारे कटे घाव पर नमक छिड़कने को

कोशिश की गई, तो असम्भव नहीं कि दुर्बल कीड़ा, पाँव तले रौंदे जाने पर, पलट कर चोट करे।

"अब बहस छोड़कर तथ्यों पर आते हैं। क्या आपको कभी नहीं सूझा कि 325 रुपये प्रति सौ मन या सवा तीन रुपये प्रति मन नमक बहुत ही महँगा है जबकि तस्कर-व्यापारी डेढ़ रुपये मन ला रहे हैं। फिर भी आपका सवा तीन रुपये वाला नमक आठ रुपये प्रति मन बिक रहा है। जिसमें दो तिहाई नमक और एक तिहाई रेत की मिलावट है। आप इस सच्चाई पर विश्वास नहीं करते? मैं आपको इस मिश्रण का नमूना भिजवा दूँगा। यदि आप हरजाना अदा करने का वादा करें तो डेढ़ रुपये प्रति मन के हिसाब से सौ मन नमक भिजवा सकता हूँ—जो कम्पनी के गुदामों से ही लायी जायगी...."

इस लम्बे पत्र में सरकारी धांधली और भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन-विद्रोह का स्पष्ट इशारा है।

पत्र के अन्त में राममोहन ने खुलेआम कहा, कि मैं उन लोगों में से हूँ जो अँगरेजों को इस देश में घुसपैठिया समझते हैं—

"I am of those who look upon the whites as intruders into our country and who think they might in decency refrain from mockery of our 'miseries.'[11]

पत्र के अन्त में पत्र-लेखक का पता दिया गया है 'गरीबपुर'। इसकी व्यंगात्मक अभिव्यंजना स्पष्ट है। अँगरेज व्यापारियों के विरुद्ध ऐसी करारी और तीखी चोट करने की हिम्मत उस जमाने में, शायद राममोहन के सिवा और किसी में होना सम्भव नहीं था। जिन कतिपय आलोचकों ने कभी-कभी राममोहन को विदेशी शासन के दलाल के रूप में चित्रित करने की भी कोशिश की उन आलोचकों को 1830 में प्रकाशित इस पत्र के आलोक में राममोहन को फिर से समझने की कोशिश करनी चाहिए। देश के किसानों और मजदूरों की दुर्दशा के विरुद्ध उनका आन्दोलन कलकत्ते से चलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट तक पहुँचा। उन्होंने शासन व्यवस्था, न्यायिक प्रशासन के अतिरिक्त राजस्व और नमक के व्यापार में कम्पनी के एकाधिकार के विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रखा। नमक एकाधिकार के प्रश्न पर दोटूक उत्तर देते हुए उन्होंने नमक में किये जाने वाली मिलावट और ऊँची कीमतों के बारे में कहा था कि अच्छा आयातित नमक केवल अमीर लोग ही खा सकते हैं जबकि गरीबों के लिए मिलावट पूर्ण गंदा नमक ही उपलब्ध है और वह भी अधिक कीमत चुकाने पर। नमक की यह ऐतिहासिक लड़ाई जिसका अन्तिम चरण गाँधीजी का 'नमक सत्याग्रह' था जिसे वस्तुतः राममोहन ने 1830 में ही शुरू की थी।

पार्लियामेंट के सामने राममोहन की दलीलों का नतीजा यह हुआ कि 'सिलेक्ट कमेटी' ने इस एकाधिकार के विरुद्ध कुछ प्रस्ताव रखे।

राममोहन की आर्थिक नीति में अंतर्निहित मुख्य बातें थीं—पाश्चात्य शिक्षा का प्रचार-प्रसार, पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान और टेकनॉलोजी के प्रयोग द्वारा एक नये बुर्जुआ वर्ग का जन्म और इन्हीं की मदद से देश की आर्थिक दशा का सुधार; साथ ही विदेशी शासन से उत्पन्न नागरिक अधिकारों के हनन के विरुद्ध आन्दोलन का उद्देश्य भी भारत की साधारण जनता की आर्थिक दशा में सुधार ही था। राममोहन और उनके मित्र द्वारकानाथ ठाकुर ने देश में अँगरेजों द्वारा उद्योग स्थापना का समर्थन इसलिए किया ताकि किसानों को जमींदारों के बर्बर अत्याचारों से बचने का एक रास्ता मिल सके। सामन्ती अर्थव्यवस्था का पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन का कोई आसान तरीका नहीं है। भारत में भी इस सारी प्रक्रिया को पूरी तरह चलना था। अंगरेजी शासन ही भारत को इस आर्थिक प्रक्रया की धारा में लाने वाला प्रमुख घटक था। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति, जाने-अनजाने भारत में भी आर्थिक क्रांति लाने का कारण बनी। राममोहन और उनके सहयोगी बने सूत्रधार और संवाहक।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. ठाकुर सोम्येन्द्र नाथ, भारतेर शिल्प विप्लव ओ राममोहन : पृ० 3 में उद्धृत।

2. विश्वास, दिलीपकुमार, राममोहन समीक्षा : पृ० 556-557. पत्र की पूरी प्रतिलिपि के लिए इंगलिश वर्क्स देखें।

3. वही पृ० 558. यह पाण्डुलिपि नाटिंघम विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित है। लेख की पूरी प्रतिलिपि पृ० 561-566 में उद्धृत है।

4. ठाकुर, पृ० 77.

5. वही, पृ० 77.

6. वही, पृ० 78.

7. वही, पृ० 78 के पाद टिप्पणी में राममोहन के भाषण का कुछ अंश इस प्रकार उद्धृत है :

'I fully agree with Dwarkanath Tagore, in the support of the resolution just read. As to the Indigo planters I beg to observe that I have travelled through several districts in Bengal and Bihar and I found the native residing in the neighbourhood of Indigo plantations evidently better clothed and better conditioned than those who lived at a

distance from such stations. There may be some partial injury done by the Indigo planters, but on the whole, they performed more good to the generality of the natives of this country, than any other class of Europeans, whether in or out of the service.'

8. वही, पृ० 98.

9. दस्तावेज की पूरी प्रतिलिपि के लिए परिशिष्ट देखें।

10. Majumdar, J.K. Progressive Movements in India पृ० (भूमिका) 86-87.

11. वही : पृ० 461-463 पर 1830 के 'गवर्नमेन्ट गजट' से पूरे पत्र की प्रतिलिपि उद्धृत। पत्र में 22 अक्तूबर 1822 की तिथि है। पत्र का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'My name is Ram Horee Doss. I pay annually to Government a sum of 120 rupees. ....My son was one of those who assisted to thrash the palkee of an honourable covenanted Salt officer, and returned home triumphant to tell of how he had seen the Topee Walla run for his life. Why did he do all this ? Why should more of us not repeat it ? If we find that insult is added ton injury, may you not one day find that the worm will turn when it is trodden upon.

'Let us leave the declamation and come to facts. Did it never occur to you that Rs. 325 per 100 maunds or Rs. $3\frac{1}{4}$ per maund, was somewhat too dear when the smugglers would furnish it at 1 rupee 8 annas ? And then, too, your Rs. $3\frac{1}{4}$ per maund of salt was augmented here to Rs. 8 per maund of two-thirds salt and one third sand. Do you doubt the fact ? I will send you some of the compound, and, if you furnish me with a bill of indemnity, will contract with you to deliver 100 maunds of salt at 1-8 per maund purchased from the....of the Company's golahs....at any spot between Calcutta, Jessore and Kishangur.....'

अध्याय—23

राममोहन अन्तर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में

राममोहन की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारधार के विश्लेषण के समय हमने देखा है कि राममोहन ने विश्व के प्रमुख धर्म हिन्दू, इस्लाम और ईसाई तीनों का केवल अध्ययन ही नहीं किया बल्कि तीनों धर्मों में निहित मूल तत्वों को आत्मसात करते हुए एक धार्मिक समन्वय की ओर बढ़े। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र राममोहन की मनीषा के विकास में यूरोप विशेष रूप से ब्रिटेन के समाजशास्त्रियों के विचारों ने भी काफी प्रभावित किया। हम यह भी देख चुके हैं कि जॉन डिगबी के सम्पर्क में आने से और अंग्रेजी पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से वे उस काल में चल रहे सारे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और आन्दोलनों से केवल परिचित ही नहीं थे बल्कि उनमें पूरी तरह रुचि रखते थे। इन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं तथा सामाजिक और बौद्धिक आन्दोलनों ने राममोहन की विचारधारा के साथ सम्बन्धित कार्यक्रमों को कितना प्रभावित किया इसका विशद विवरण हम अलग-अलग परिच्छेदों में दे चुके हैं। इस अध्याय में राममोहन के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और उनके विचारों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार और प्रभाव के बारे में कुछ विस्तार से आलोचना की जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीयता की पृष्ठभूमि में राममोहन के सार्वभौम के विचारों की विकास प्रक्रिया को समझने के लिए अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रियाओं का संक्षिप्त जायजा लेना प्रासंगिक होगा। यह आकस्मिक नहीं था कि संसार भर में जहाँ कहीं स्वाधीनता के लिए संग्राम हुए, सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन हुए, राममोहन ने हृदय से उनका समर्थन किया।

सन् 1820-21 में इटली के नेपल्स नगर के विद्रोह का उन्होंने समर्थन किया था। जब यह खबर पहुँची कि विद्रोह दबा दिया गया है तो राममोहन स्वाभाविक रूप से दुखी हुए उन्होंने कहा था :

> "I am obliged to conclude that I shall not live to see liberty universally restored to the nations of Europe and Asiatic nations, especially those that are European colonies:...under these circumstances I consider the cause of the Neapolitans as my own and their enemies as ours. Enemies of liberty and freinds of despotism have never been, and never will be ultimately successful."[1]

अर्थात्, मैं संभवतः उस दिन तक जीवित नहीं रहूँगा जब एशिया और यूरोप के देशों में सर्वत्र स्वतन्त्रता कायम होगी, विशेष रूप से उन देशों में जो आजकल यूरोपीय उपनिवेश हैं....। ऐसी परिस्थिति में नेपल्स के लोगों का आन्दोलन मैं अपना आन्दोलन समझता हूँ। उनके शत्रु, मेरे शत्रु हैं। स्वतन्त्रता के शत्रु और निरंकुशता के मित्र कदापि अन्तिम लड़ाई में सफल नहीं हो सकते....।

सन् 1823 में जब दक्षिण अमेरिका के स्पेनिश उपनिवेशों के संघर्ष और स्वाधीनता का समाचार कलकत्ता पहुँचा तो वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने घर में दिवाली मनाई और इस अवसर पर आयोजित भोज सभा में अपने मित्रों को निमंत्रित किया। इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने संक्षिप्त भाषण में कहा था, 'मैं इतना अनुभूतिहीन नहीं हो सकता कि अपने सहप्राणियों के दुख-दर्द से प्रभावित न होऊँ, चाहे धर्म, भाषा या स्थितियों में कितनी ही असमानता क्यों न हो।' इसी प्रकार इधर जब स्पेन में नागरिक स्वतन्त्रता के लिए उदारपंथियों ने आन्दोलन छेड़ा तो राममोहन की सहानुभूति उनके साथ थी। पुर्तगाल के गृह युद्ध में लिबर्टी पार्टी के विजय पर भी उन्होंने प्रसन्नता जाहिर की थी। फ्रांसीसी क्रान्ति के बारे में राममोहन की सहानुभूति और आवेगपूर्ण भावनाओं का जिक्र पहले के अध्यायों में किया जा चुका है।

हम देख चुके हैं कि **'मिरात उल अखबार'** के पृष्ठों में महत्त्वपूर्ण विदेशी घटनाओं पर समाचार और टिप्पणियाँ लगातार छपती थीं। इन्हीं पृष्ठों में उन्होंने बड़े-बड़े शब्दों में आयरलैण्ड के कैथोलिक ईसाइयों पर ब्रिटिश सरकार द्वारा ढाये जा रहे अत्याचारों का खुलेआम विरोध किया था। सन् 1821 के विद्रोह में ग्रीस की टर्की पर विजय की घटना से भी राममोहन काफी प्रसन्न थे।

अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम और ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्ति ने राममोहन को अमेरिका का प्रशंसक बना दिया था। वर्षों से राममोहन का अमेरिका के विशिष्ट धार्मिक नेताओं के साथ पत्राचार होता रहा था। उन्होंने अमेरिका भ्रमण करने की इच्छा भी प्रकट की थी। दुर्भाग्य से अकाल मृत्यु के कारण उनकी यह मनोकामना पूरी न हो सकी।

राममोहन की विचारधारा को जिन पश्चिमी मनीषियों और विचारकों ने विशेषरूप से प्रभावित किया था उनमें टामस पेइन के 'एज आफ रीजन' के अतिरिक्त बेनथम, ह्यूम, रिकार्डो, जेम्स मिल और जान स्टूअर्ट मिल थे। राममोहन भारत में इस 'एज आफ रीजन' या बौद्धिक मुक्ति के जनक थे।[2] यूरोपीय बुद्धिवादियों के साथ राममोहन की कितनी गहरी बौद्धिक एकात्मकता स्थापित हो गई थी इसका परिचय राममोहन के भारत में यूरोपीय नागरिकों

को बसाने के बारे में उनके नीचे दिये गये वक्तव्य से स्पष्ट होता है। उन्होंने कहा था :

> "If European character and capital were allowed to settle in the country....ir would greatly improve the resources of the country, and also the condition of the native inhabitants, by showing them superior methods of cultivations and proper mode of treating their labourers and dependents"....

राममोहन की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के बारे में विचार करने पर हम पाते हैं कि इंगलैंड के विद्वत समाज में राममोहन के धार्मिक विचार और हिन्दू धर्मशास्त्रों के अँगरेजी अनुवादों के माध्यम से उनका काफी परिचय हो गया था। उनके मित्र डिगबी साहब ने राममोहन की कृतियों को इंगलैंड में छपवाकर बँटवाया था। इस प्रकार उनकी प्रतिभा और कार्यकलाप से अँगरेजों को जानने का मौका पहले मिला। यद्यपि जीवन के अन्तिम काल में राममोहन फ्रांस गये थे लेकिन उनके फ्रांस पहुँचने से कई वर्ष पहले, जब वे भारत में अपने आन्दोलन चला रहे थे, तभी 1824 में फ्रांस की सोसायटी एशियाटिक ने उनकी प्रतिभा का सम्मान करते हुए संस्था का सम्मानित मानद सदस्य नियुक्त किया था।[3] फ्रांस में राममोहन की ख्याति 1818 के आसपास पहुँच चुकी थी। उन्हीं दिनों उनके 'वेदान्तसार' और 'वेदान्त ग्रन्थ' के अँगरेजी अनुवाद प्रकाशित हुए थे। इस बात के प्रमाण हैं कि कलकत्ता की एक पत्रिका 'टाइम' के सम्पादक डॉकोस्टा ने फ्रांस के बिशप एबे ग्रगोयर के पास राममोहन विषयक सामग्री और प्रकाशन भिजवा दिये थे। ग्रेगयर ने फ्रेंच भाषा में राममोहन के बारे में एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, यही सामग्री बाद में 1819 के 'Chronique Religieuse' में छपा था।[4] इस लेख का अँगरेजी अनुवाद लंदन के 'Monthly Repository' में भी छपा था।[5] सन 1823 में फ्रेंच एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में राममोहन पर लेख और उनके रचनाओं की सूची छपी थी। सामाजिक क्रांति की जन्मभूमि फ्रांस और प्रसिद्ध फ्रांसीसी क्रांति के राममोहन कितने प्रशंसक रहे यह हम अन्यत्र लिख चुके हैं। विदेश यात्रा के पूर्व ही यूरोप के कई देशों में राममोहन की ख्याति पहुँच चुकी थी। जर्मन-भाषा में उनकी वेदान्त विषयक पुस्तक का अनुवाद 1817 में हो चुका था।

यह जिक्र किया जा चुका है कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान गर्सां द तासी के साथ राममोहन केवल परिचित ही नहीं थे बल्कि राममोहन के साथ हिन्दुस्तानी, फारसी और अँगरेजी में नियमित रूप से पत्र-व्यवहार करते रहे। कहना न होगा कि इस पत्र व्यवहार की विषय वस्तु भारत विद्या ही थी। एक दूसरे

फ्रांसीसी विद्वान विक्टर जैकमो राममोहन के कार्य और विचारों से इतने प्रभावित थे कि जब वे भारत की यात्रा पर आये तो 1829 में उन्होंने राममोहन से कलकत्ते में मुलाकात की। एक अन्य फ्रांसीसी आलोचक ने 1832 में फ्रेंच पत्रिका 'Revue Encyclopedique' के दिसम्बर के अंक में राममोहन के अनुवादों और दूसरे धार्मिक ग्रन्थों पर विस्तृत समालोचना प्रकाशित की। इस आलोचना से स्पष्ट होता है कि राममोहन की पुस्तकें फ्रांस के विद्वत समाज में पहले से ही प्रसिद्ध थीं। 1823 में ही फ्रांस की पत्र-पत्रिकाओं में राममोहन की पुस्तकों के बारे में विज्ञापन प्रकाशित हो रहा था। इसके अतिरिक्त 'Jurnale Asiatique' की 1823 के अक्टूबर के अंक में M. Lanjuinais ने राममोहन के ग्रन्थों की समालोचना प्रकाशित की थी। वस्तुतः इसी काल में यूरोप के देशों में भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य की ओर विद्वानों का ध्यान जाना आरम्भ हो गया था। उन्होंने राममोहन का सम्मान हिन्दू धर्म ग्रन्थों के व्याख्याकार के रूप में ही किया और उसके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के बारे में समालोचना प्रकाशित की।

राममोहन ने विश्वव्यापी ख्याति के पीछे उनकी ईसाई धर्म विषयक पुस्तकें थीं। उनकी पुस्तक Precepts of Jesus से उत्पन्न वाद-विवाद और उनके तीन अपीलें जो उन्होंने ईसाई सम्प्रदाय को सम्बोधित की थीं, वर्ष 1823 में लन्दन से प्रकाशित हुईं। इन पुस्तकों के प्रकाशन में लन्दन के युनिटेरियन सोसाइटी का हाथ था।[6] विलायत का युनिटेरियन समाज राममोहन के ईसाई धर्म सम्बन्धी विचारों और एकेश्वरवादी विचारों के पक्ष में था। इंगलैंड मे इन पुस्तकों के प्रकाशन के साथ विश्व भर के ईसाई समाज में राममोहन की प्रतिष्ठा क्रमशः फैलने लगी। 1826 में अमेरिका में, न्यूयार्क से भी राममोहन की ये पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 1828 में बोस्टन से भी अलग से ये पुस्तकें प्रकाशित हुईं। इसके अतिरिक्त अमेरिकन पत्र-पत्रिकाओं में भी राममोहन के बारे में लेखादि प्रकाशित हो रहे थे। राममोहन की पुस्तकों के अतिरिक्त अमेरिका में उनके कुछ मित्र बन गए थे, जिनसे उनका निरंतर पत्र-व्यवहार बराबर चलता रहता था। राममोहन के बारे में पहला विशेष लेख 1818 में 'North American review' में प्रकाशित हुआ। जब युनिटेरियन और ट्रिनिटेरियन और ईसाइयों के बीच विवाद बढ़ा और एडम साहब राममोहन के साथ हो लिए तो अमेरिका के एकेश्वरवादी ईसाई भी उनकी ओर आकृष्ट हुए। ईसाई पत्रिकाओं में इसकी काफी चर्चा हुई। 'Boston observer', 'Christian reformer' जैसी पत्रिकाओं में काफी लेख प्रकाशित हुए। राममोहन अमेरिका में अपने जीवित रहते ही काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। राममोहन की मृत्यु का समाचार अमरीका की कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। बोस्टन के 'Select

Journal of Foreign Periodical Literature' में राममोहन पर पूरा लेख प्रकाशित हुआ। Adrienne Moore ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Rammohan Roy and America में लिखा था :

> "Until the advent of Roy, the orient had seemed far removed and impersonal to American thought. But with the coming of this great leader there took place a certain fusion of East and West, a realization that inspite of distance and difference, the Indian as personified in Rammohan Roy, was close kin to his American brother.[7]

भारत और अमरिका को एक दूसरे के निकट लाने तथा प्राच्य और पाश्चात्य के बीच सेतु-बन्धन का श्रेय राममोहन को दिया जाता है। हिन्दू धर्म के व्याख्याता और युनिटेरियन वाद के प्रबल समर्थक के रूप में राममोहन का परिचय अमेरिका में हुआ था। यहाँ का बौद्धिक वर्ग राममोहन के विचारों और लेखों से इतना प्रभावित था कि अक्सर लोग अपने भाषणों और लेखों में राम-मोहन को उद्धृत किया करते थे। यहाँ तक कि मिस मूर ने बास्टन पब्लिक लायब्रेरी में सुरक्षित एक पुस्तिका Tracts on slavery' से एक महत्वपूर्ण अंश उद्धृत किया है जिससे राममोहन के प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

> "May no rule of equality, may no lust bf power, that is revolting to an undepraved mind either to exert or to endure, tempt us also to destruction, and convert the garden of the union into a field of blood ! In closing this address, allow me to assume the name of one of the most enlightened and benevolent of the human race now living, though not a white man, Rammohan Roy.[8]

दुर्भाग्य से पुस्तिका का आरंभिक शीर्षक पृष्ट फटा हुआ है और लेखक का नाम मालूम नहीं। लेकिन लगता है यह अमेरिकन काँग्रेस में दिये गए भाषण का हिस्सा है। इसके अतिरिक्त एक युनिटेरियन वादी के रूप में उन्हें युनिटे-रियन समाज में सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त था। 1818 से 1840 के बीच अमेरिकन पुस्तकों में लगभग 25 बार राममोहन के नाम का उल्लेख मूर ने अपने लेख में किया है। अकेले बास्टन के **'क्रिश्चियन रजिस्टर'** में ही 1821-1830 के बीच सौ से अधिक सन्दर्भ पाये जाते हैं।[9]

राममोहन की अमेरिका जाने की तीव्र इच्छा थी। अपने मित्रों को लिखे गये पत्रों में इसका उल्लेख था। उनकी अकाल मृत्यु ने इस सम्भावना को समाप्त कर दिया। अमेरिका में बड़ी संख्या में लोग उनके स्वागत की तैयारी

कर रहे थे। इससे स्पष्ट है कि अमेरिका में राममोहन ने अपना प्रभाव अच्छी तरह जमा लिया था।

राममोहन के अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव के बारे में यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि 1949 में पेरिस के मानव अधिकार सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में जो दस्तावेज प्रदर्शित किये गये, उनमें से चार राममोहन से ही सम्बन्धित थे—

(1) राजा राममोहन राय द्वारा 1831 में लिखे गये एक पत्र की प्रतिलिपि, जो उन्होंने फ्रांस के तत्कालीन विदेश मंत्री को लिखा था जिसमें उन्होंने एक विश्व संस्था की स्थापना की बात कही थी 'All mankind are but one family' (इंडिया आफिस लाइब्रेरी से)

(2) 1823 में राममोहन राय द्वारा लिखे लार्ड एमहर्स्ट को पाश्चात्य शिक्षा के बारे में लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि।

(3) प्रेस अधिनियम के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में दिये गये राममोहन द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के सारांश की प्रतिलिपि। (1823)

(4) नारी अधिकार पर राममोहन के प्रसिद्ध लेख 'Brief remarks regarding modern encroachment on the ancient rights of females' के सारांश की प्रतिलिपि। इस लेख के द्वारा राममोहन उन्नीसवीं शताब्दी में नारी अधिकारों के सबसे बड़े हिमायती सिद्ध होते हैं।[10]

राममोहन के इंगलैंड के उस काल के विद्वानों जिनमें बैनथम, रास्को, राबर्ट ओवन जैसे महारथियों से राममोहन के परिचय के बारे में हम पहले ही लिख चुके हैं। इसके अतिरिक्त राममोहन अनगिनत राजनयिकों, प्रशासकों के संस्पर्श में आये और अपना प्रभाव विस्तार किया। ब्रह्म समाज की स्थापना के पीछे भी राममोहन ने एक उदार विश्वधर्म स्थापना का स्वप्न देखा था। राममोहन यह अच्छी तरह समझते थे कि भारत को यदि उन्नति के मार्ग पर ले जाना है तो इस बहुभाषी, बहुधर्मी और बहुजाति देश में अनेकता में ही एकता की स्थापना करनी होगी। राममोहन इस राष्ट्रीय एकता के प्रथम मंत्रदाता पुरोहित थे। उनकी यह भारत चेतना ही बाद में विश्व-चेतना में बदल गई। उन्होंने अपने देश के सर्वांगीण उत्थान के लिए पाश्चात्य शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, कृषि और टेक्नोलॉजी सभी का स्वागत किया। वे अपने देश को सामन्तवादी संकीर्णता से मुक्ति दिलाना चाहते थे। उनकी विचारधारा केवल मात्र राष्ट्रीयता तक ही सीमित नहीं रही वे संसार के सारे देशों और जनसाधारण के बीच मित्रता कायम करने का सतत् प्रयास करते रहे। 1831 में उन्होंने फ्रांस के विदेश मन्त्री को जो प्रसिद्ध पत्र लिखा था उसमें विश्व संस्था की स्थापना और विश्व मैत्री की ओर स्पष्ट इशारा है। पत्र का कुछ अंश यहाँ प्रासंगिक होगा :

"It is now generally admitted that not religion only but unbiased common sense as well as accurate deductions of scientific research lead to the conclusion that all mankind are one great family of which numerous nations and tribes existing are only various branches. Hence enlightened men in all countries must feel a wish to encourage and facilitate human intercourse, in every manner by removing as far as possible all impediments to it in order to promote the reciprocal advantages and enjoyment of the whole human race.[11]

यह सर्वमान्य है कि केवल धर्म के आधार पर ही नहीं, बल्कि साधारण ज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान से इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सारा मानव-समाज एक बड़ा परिवार है तथा विभिन्न राष्ट्र मात्र उसकी अलग-अलग शाखायें हैं। इसी से सभी देशों के प्रबुद्ध लोगों में स्वाभाविक इच्छा होनी चाहिए कि सारी बाधायें दूर करके वे एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आयें। इस आदान-प्रदान की भावना से सभी को लाभ होगा और सारा मानव-समाज सुखी हो सकेगा।

लीग आफ नेशन की स्थापना के वर्षों पहले राममोहन ने इसी पत्र में एक ऐसी संस्था की स्थापना का सुझाव दिया था जिसके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों की राजनैतिक समस्याओं का समाधान खोजा जा सके। उन्होंने फ्रांस और इगलैंड के बीच ऐसी ही एक काँग्रेस का प्रस्ताव किया था, जिससे उनके राजनैतिक और व्यावसायिक मतभेदों को मैत्रीपूर्ण ढंग से सुलझाया जा सके और दोनों देशों में परस्पर मित्रता और शान्ति कायम रखी जा सके।

राममोहन का स्वदेश प्रेम इस प्रकार विश्वप्रेम में परिवर्तित हो गया था। राष्ट्रीयता और अंतर्राष्ट्रीयता के बीच सहज समन्वय की यह भावना राममोहन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

सन्दर्भ और टिप्पणियाँ

1. Collect, Raja Rammohun Roy पृ० 130-131 बकिंघम साहब को 11 अगस्त 1821 को लिखे एक पत्र से उद्धृत।
2. मुखोपाध्याय, राममोहन तत्कालीन साहित्य ओ समाज : पृ० 15.
3. विश्वास, राममोहन समीक्षा, पृ० 499
4. वही, पृ० 500.
5. वही, पृ० 500.

6. विश्वास, राममोहन समीक्षा पृ० 549 प्रीसेप्ट्स और ईसाइयों ने नाम तीन अपील बोस्टन, अमेरिका से 1828 में प्रकाशित हुई थी।

7. Moore, Adrienne. Rammohun Roy and America, पृ० 164 से उद्धृत।

8. वही, पृ० 164 की पाद-टिप्पणी से।

9. Dasgupta, Life and Times of Raja Rammohun Roy-last phase, पृ० 245 में टिप्पणी देखें।

10. वही, पृ० 212-213.

11. पूरे पत्र की प्रतिलिपि के लिए परिशिष्ट देखें।

●

अध्याय—24

नवजागरण के अग्रदूत

राममोहन भारतीय इतिहास के उस संक्रान्ति-काल में पैदा हुए थे जब एक ओर घोर अंधकार व्याप्त था और दूसरी ओर अँगरेजों और दूसरे यूरोपीय व्यापारियों के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान की पहली किरण का देश में आना आरम्भ हुआ था। राजनैतिक भारत सैकड़ों टुकड़ों में बँटा था। मुगल साम्राज्य अपनी अंतिम साँस ले रहा था, और चारों ओर अराजकता का बोलबाला था। भारत में विदेशी साम्राज्य के उदय का इससे अच्छा समय भला और क्या हो सकता था? पुस्तक के पहले खंड में इसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में विस्तार से लिखा जा चुका है।

इससे लगभग आठ-नौ वर्ष पहले भारत में मुस्लिम धर्म और संस्कृति का आगमन हुआ था। दुर्भाग्य से धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय के स्थान पर विरोध और विघटनात्मक प्रवृत्तियों का ही बोलबाला रहा। हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के बीच की खाई कभी पाटी न जा सकी। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में नानक, कबीर, दादू आदि महामति सन्तों ने धर्मों के बीच समन्वय की भावना को स्थापित करने की भरसक कोशिश की लेकिन मध्ययुगीन संकीर्णता और धार्मिक रूढ़िवाद की बाढ़ में प्रगतिवादी स्रोतों के आगे बढ़ने ही न दिया। नतीजा यह हुआ कि लगभग एक हजार वर्ष तक साथ-साथ रहते हुए भी हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का परस्पर विरोध मिट न सका। दोनों ही धर्म अपनी-अपनी संकीर्णता की चहारदीवारियों के पीछे छिपे रहे। सत्रहवीं या अठारहवीं शती के भारत में कहीं भी समन्वय या एकीकरण का कोई केन्द्र न था।

इधर मुगल शासन व्यवस्था के पूरी तरह टूटने की प्रक्रिया में कुछ समय लगा। लेकिन अँगरेजी शासन की नींव पड़नी आरम्भ हो गयी थी। यह नींव मराठा शक्ति के पतन तक पूरी तरह जम गई थी। 1818 में गवर्नर जनरल हेस्टिंग्स ने ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत की भूमि पर सर्वभौम सत्ता स्थापित करने की घोषणा की। राममोहन ने अपने बचपन और यौवन में इस राजनैतिक नाटक को देखा था। उन्होंने यह भी देखा कि कैसे इस प्राचीन देश की शिथिल राष्ट्रीय एकता की भावना के साथ एक नया विदेशी-शासन तत्त्व आ जुड़ा। आधुनिक भारत में राममोहन ने ही सबसे पहले अनुभव किया कि इस पाश्चात्य शासन के पीछे एक ऐसी आधुनिक सभ्यता है, जिसके सम्पर्क में आने से भारतीय

सभ्यता और संस्कृति और औद्योगिक पुनर्निर्माण को सक्रिय बनाया जा सकता है। युग परिवर्तन के इस परिप्रेक्ष्य में भारत को मध्ययुगीन अंधकार से निकाल कर आधुनिक युग की नयी रोशनी में लाया जा सकेगा। इस बात को समझने में भी उन्हें देर न लगी कि इस ज्ञान के आलोक के साथ शिल्प-विज्ञान को देश में प्रतिष्ठित करने के लिए यूरोपीय पद्धति द्वारा संचालित किसी शासन-व्यवस्था को कायम करना आवश्यक है। लेकिन उन्होंने देश के पुनरुत्थान और निर्माण में पाश्चात्य आदर्शों को ही एकमात्र साधन नहीं माना बल्कि देश की सांस्कृतिक और सामाजिक विचारधारा के समन्वित स्वरूप को देश के पुनरुत्थान में सहायक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया। राममोहन के जीवन और कार्य पर विचार करने से, हमें जरा भी झिझक नहीं होनी चाहिए कि आधुनिक भारत के निर्माताओं में राममोहन का स्थान सर्वोपरि है। यहाँ पर यह समझना आवश्यक है कि इतिहास के एक ऐसे काल में पश्चिमी आलोक ने इस देश में प्रवेश करना आरम्भ किया जब हम लोग धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों से एक अराजक परिस्थिति में गुजर रहे थे। ऐसा नहीं था कि भारत में शिक्षा का प्रचार-प्रसार ही न रहा हो। हमारे देश ने प्राचीन काल में शिक्षा, संस्कृति और प्रशासन के क्षेत्र में काफी उन्नति की थी। लेकिन मध्ययुगीन अंधकार के घटाटोप में हमारी उपलब्धियाँ छिपी पड़ी थीं। प्राचीन ही नहीं बल्कि मुगल काल में भी हमारा देश आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में कोई पिछड़ा हुआ देश नहीं था। वस्तुतः यह इतना समृद्ध देश था कि इस 'सोने की चिड़िया' पर बार-बार हमला होता रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी इसी उद्देश्य से इस देश में पाँव जमाना आरम्भ किया था। लेकिन मुगल साम्राज्य के विघटन प्रक्रिया के काल में, अर्थात् सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में देश का आर्थिक और प्रशासनिक ढाँचा पूरी तरह ध्वस्त हो गया था। दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर धार्मिक रूढ़िवाद और संकीर्णता ने समाज को खोखला बना दिया था। ऐसी स्थिति में देश प्रगतिशील विकास की कोई भी प्रक्रिया अपनाने की स्थिति में नहीं था।

विदेशी शासन के साथ-साथ स्वाभाविक रीति से पश्चिमी ज्ञान का आलोक इस देश में भी फैलने लगा। इतिहास बताता है कि पश्चिमी शिक्षा के विरुद्ध मुल्लाओं और पण्डों ने जोरदार आन्दोलन खड़ा किया था। इसका कारण केवल यही था कि इस देश में शिक्षा का प्रचार ईसाई-पादरियों के माध्यम से शुरू हुआ था जिनका मुख्य उद्देश्य धर्म प्रचार ही नहीं, धर्म परिवर्तन भी था। यह राममोहन ही थे जिन्होंने इस नये ज्ञान का स्वागत किया और धार्मिक चंगुल से निकालकर असाम्प्रदायिक शिक्षा की नींव रखी।

मुस्लिम भारत यद्यपि धार्मिक रूप से अधिक संगठित था लेकिन ऐतिहासिक

कारणों से और अपनी रूढ़िवादी और साम्प्रदायिक संकीर्णता के कारण पश्चिमी विचारों और ज्ञान को ग्रहण करने की स्थिति में नहीं था। इसका नतीजा यह हुआ कि मुस्लिम जनता शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ गई और उन्होंने इसका यथोचित लाभ नहीं उठाया। लेकिन हिन्दुओं ने इस ओर काफी उत्साह दिखाया और उनके अगुआ बने, राममोहन।

राममोहन 1815 में जब कलकत्ता आकर पूरी तरह बस गये और अपना सार्वजनिक कार्य आरम्भ किया तो उनके सामने एक ऐसा सड़ा-गला समाज था कि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि कार्य कहाँ से शुरू करें। वे बचपन से ही धर्म के रूढ़िवादी स्वरूप का विरोधी होने के कारण उन्होंने इस प्रश्न पर अपना घर छोड़ दिया था। सारे समाज पर संकीर्ण धार्मिक रूढ़ियों का कठमुल्ला नियंत्रण था। समाज को इस धार्मिक संकीर्णता से मुक्त करने का बीड़ा राममोहन ने तत्काल उठाया। प्रारंभिक उपाय के रूप में उन्होंने आधुनिक शिक्षा का प्रचार शुरू कर दिया। धर्म के शाश्वत मूल्यों को स्थापित करने और शिक्षा-प्रचार के रास्ते से उन्होंने देश को आधुनिकता के दरवाजे तक ले आने में पथ-प्रदर्शक का काम किया।

नवजागरण या रेनासां का पारिभाषिक अर्थ है प्राचीन ज्ञान और संस्कृति को नये वातावरण और काल के परिप्रेक्ष्य में भविष्य के लिए परिवर्तित या रूपायित करना। एक नयी चेतना के आधार पर ऐसी भविष्य का निर्माण जिसमें मानव के विचार शक्ति की सम्भावनाओं पर पूरी आस्था रखी जाय। इसके द्वारा मानव समाज की वैचारिक दृष्टि को अनुकूल आदर्शों के अनुरूप उदार और बौद्धिक आधार दिया जाता है। विभिन्न देशों की सामाजिक और आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि पर रेनासां अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूप लेता रहा है। कुछ देशों में नवजागरण का अंकुरण मुख्यत: साहित्य और कला के क्षेत्र में हुआ और कहीं धर्म, दर्शन, विज्ञान, संगीत, स्थापत्य के क्षेत्र में हुआ। इटली में राष्ट्रीयता की भावना के उन्मेष के साथ-साथ क्लासिक्स या गौरव ग्रन्थों को फिर से मान्यता प्राप्त हुई। कला और स्थापत्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति दिखाई दी। फ्रांस में साहित्य और दर्शन नये रूप में निखर कर सामने आया। इंगलैंड में साहित्य, दर्शन, धर्म और विज्ञान के क्षेत्र में, तथा जर्मनी में दर्शन शास्त्र की ओर रुचि बढ़ी और संगीत का भी व्यापक पुनरुत्थान हुआ। इस प्रकार रेनासां-युग यूरोप में पन्द्रहवीं शती में आरम्भ हुआ और परवर्ती चार शताब्दियों तक चलता रहा। लेकिन भारत में इस लहर को पहुँचते-पहुँचते कुछ समय लग गया। इसके ऐतिहासिक और राजनैतिक कारणों को समझना आवश्यक है। वस्तुत: भारत में नवजागरण का काल अठारहवीं शती के मध्य से आरम्भ होकर बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक

मानना चाहिए अर्थात् इस प्रक्रिया में दो सौ वर्ष लग गये। नवजागरण या रेनासां की संकल्पना या इसके सैद्धान्तिक परिभाषा के बारे में विद्वानों में सहमति नहीं है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यूरोपीय सांस्कृतिक पुन-र्जागरण के प्रभाव में आकर गैर-यूरोपीय देशों में रेनासां की हवा चली। लेकिन कुछ दूसरे विद्वानों ने कहा है कि गैर-यूरोपीय देशों में रेनासां यूरोपीय आदर्शों पर नहीं बल्कि यूरोपीय आधुनिकता के संस्पर्श में आने पर भारतीय नवजागरण की लहर देश की स्थानीय विशेषताओं को साथ लेकर आगे बढ़ी। इस नवजागरण का काल निर्धारण भी एक समस्या है। यूरोपीय रेनासां की घटना-क्रम के साथ एशिया में पुनर्जागरण की समय-सारिणी को मिलाने की कोशिश करना भी न तो उचित होगा और न सर्वमान्य। इधर कई विद्वानों ने 'रेनासां' को पारम्परिक समाज व्यवस्था से सर्वथा अलग नयी राष्ट्रीयता, या राष्ट्रीय संचेतना के उदय को पुनर्जागरण की परिभाषा दी है। वस्तुतः जब 'रेनासां' को राष्ट्रीय जागरण और आधुनिकता के संदर्भ में देखा जाने लगा तभी इस प्रत्यय का सही मूल्यांकण सम्भव हुआ। अठारहवीं शताब्दी में भारत में नवजागरण की प्रक्रिया के आरम्भ करने में दो सहायक तत्त्व थे। पहला था सार्वभौम मानव अधिकार की मान्यता के साथ राष्ट्रीयता और आधुनिकता की लहर, और दूसरा, ब्रिटिश शासकों में प्राच्य-विद्या सम्बन्धी रुचि। इसके द्वारा प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य की एक नयी भावमूर्ति स्थापित की जा सकी।

भारत में रेनासां का इतिहास कमोवेश देश में अँगरेजी साम्राज्य की स्थापना के इतिहास से सम्बन्धित है। ईस्ट इंडिया कम्पनी का अपने हाथों राजशासन सम्हालना, ईसाई धर्म के प्रचार के प्रयास में शिक्षा का प्रसार, साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ प्रशासनिक आवश्यकताओं के लिए पश्चिमी शिक्षा और आधुनिक विचारों का प्रवर्तन आदि इसी काल में आरम्भ हुआ। ऐतिहासिक अनिवार्यता ने इस लहर को भारत की भूमि पर ला दिया।

भारत में नवजागरण का प्रारम्भिक चरण वारेन हेस्टिंग्स के शासन-काल (1772 से 1785) से आरम्भ होता है। इस काल में वारेन हेस्टिंग्स की प्रेरणा से सरकारी पदाधिकारियों में एक छोटे से बुद्धिजीवी दल ने सबसे पहले इस महान देश की प्राचीन-समृद्धि और परम्परा को जानने और उद्धार करने का प्रयत्न आरम्भ किया। इनमें से बंगाल और पूर्वी भारत में नैथानील हालहेड, कोलब्रुक, चार्ल्स विलकिन्स और सर विलियम जोन्स जैसे प्रमुख विद्वान और प्राच्यविद थे। इन लोगों ने लगभग चार दशक तक इस देश की विभिन्न भाषाओं, बोलियों, साहित्य और गौरव ग्रन्थों के उद्धार एवं प्रकाशन के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किया। सर विलियम जोन्स ने 1784 में एशियाटिक सोसाइटी

की स्थापना की। इन लोगों ने भाषा और साहित्य के अलावा धर्म दर्शन से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थों का भी पुनरुद्धार किया। अँगरेजी अनुवाद के माध्यम से विश्व के सामने भारतीय साहित्य और संस्कृति की गरिमा को प्रचारित किया। शायद भारत में नवजागरण का यही पहला चरण था। यहाँ एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है कि इस अवधि में इन प्राच्यविदों के साथ कोई भी भारतीय सहयोगी नहीं था और यही विदेशी विद्वान इस देश में नवजागरण के पुरोगामी बने। भारतीय विद्वान अभी तक अपने मठों, मकतबों में पर्दे के पीछे बैठे थे। क्योंकि उनके विचार से इस प्रकार का प्रचार परम्परा के अनुकूल नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि जब जोन्स ने संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की तो कोई भी ब्राह्मण इस म्लेच्छ को संस्कृत पढ़ाने के लिए राजी नहीं हुआ था। उन्होंने एक गैर-ब्राह्मण से संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी।

1786 में कॉर्नवालिस ने गवर्नर जनरल का पदभार सम्हाला। वे हेस्टिंग्स की तरह भारत-विद्या या शास्त्रों के बारे में इतने उत्साही न थे, फिर भी अपने पहले गवर्नर जनरल द्वारा किये गये वादों और योजनाओं को उन्होंने निभाया। उनका अधिकतर समय भूमि-व्यवस्था और आर्थिक मामलों की ओर लगा। इसके बावजूद उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में कई एक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। जोनथन डंकन को बनारस के संस्कृत कालेज से कलकत्ता ले आये। शिक्षा के क्षेत्र में डंकन ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसके अलावा दूसरे क्षेत्रों में प्रगति कुछ ढीली चल रही थी। नवजागरण के क्षेत्र में दूसरा दौर लॉर्ड वेलेज़ली के शासन काल (1798-1805) में आया।

वेलेजली 1798 में गवर्नर जनरल बने और दो साल के भीतर उनका सबसे बड़ा कारनामा था फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना। 10 जुलाई 1800 को वेलेजली ने इस कॉलेज की स्थापना की घोषणा की। इसका मुख्य उद्देश्य था ब्रिटिश शासकों को देश शासन के लिए उपयोगी शिक्षा और प्रशिक्षण देना। इसकी कक्षाओं में केवल बौद्धिक आदान-प्रदान के अलावा रचनात्मक भाषा और साहित्य सम्बन्धी प्रशिक्षण आरम्भ हो गया। सैकड़ों की संख्या में मूल संस्कृत, फारसी, उर्दू और कई देशी भाषाओं की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए कॉलेज की ओर से आर्थिक सहायता दी गई। दक्षिण भारत, यहाँ तक कि सुदूर श्रीलंका तक संस्कृत हस्तलेखों की खोज में दल भेजे गये। एशियाटिक सोसाइटी के सहयोग से भारतीय गौरव ग्रन्थों के अँगरेजी और दूसरी यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हुए। 1805 तक कॉलेज ने एक प्रयोगशाला का रूप ले लिया जहाँ विशिष्ट यूरोपीय और भारतीय विद्वान भारतीय भाषाओं के व्याकरण, ग्रन्थ-पाठ तथा रूपान्तर आदि को नियमित और व्यवस्थित रूप देने की चेष्टा कर रहे थे। कई एक कोश तैयार किये गये और आधुनिक

भाषाओं के व्याकरण बनाने का काम आरम्भ हुआ। वस्तुतः उत्तर भारत की सारी आधुनिक भाषाएँ जिनमें हिन्दी, उर्दू, बंगला प्रमुख थीं उनका आधुनिक स्वरूप इसी प्रयोगशाला में जन्म ले रहा था।

उसी काल में इस नवजागरण-यज्ञ में एक और प्रमुख केन्द्र काम कर रहा था, श्रीरामपुर का बेप्टिस्ट मिशन। यद्यपि इस संस्था का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था लेकिन यहाँ के पादरियों ने देशी भाषा और साहित्य के पुनरुत्थान में महत्त्वपूर्ण काम किया। आगे चलकर फोर्ट विलियम कालेज और श्रीरामपुर मिशन के बीच सहयोग और भी घनिष्ट हुआ क्योंकि उन्नीसवीं शती के आरम्भ तक श्रीरामपुर मिशन ही देशी भाषाओं और संस्कृति को जानने और समझने की स्थिति में था। मिशन के विलियम केरी ने ही सभी देशी भाषाओं के अध्ययन और पठन-पाठन के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज में व्यवस्था की थी। श्रीरामपुर मिशन के प्रेस में ही सबसे पहले भारत की कई भाषाओं में जैसे बँगला, उर्दू, उड़िया, तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मराठी भाषाओं में छपाई का काम होने लगा था। केरी ने कई एक भारतीय भाषाओं के व्याकरण और कोश तैयार करवाने में पहल की। यद्यपि उनका इन उपकरणों की सहायता से ईसाई धर्म का प्रचार ही प्रमुख उद्देश्य था।

इस प्रकार एशियाटिक सोसाइटी, फोर्ट विलियम कालेज और श्रीरामपुर का बेप्टिस्ट मिशन, तीनों ने, शताब्दी पुराने लुप्तप्राय शास्त्र, धर्म, न्याय भाषा और साहित्य की पुस्तकों का उद्धार करके, सम्पादित और अँग्रेजी के अलावा यूरोप की और भाषाओं में अनुवाद करके भारतीय संस्कृति को एक बार फिर से जागृत कर दिया।

लार्ड वेलेजली के संरक्षण में यह सारा कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। यह कार्यक्रम आगे 1830 तक चला। 1815 के आसपास इस कार्य में एकमात्र भारतीय मनीषी सामने आये, वह थे राजा राममोहन राय। राममोहन के सामने सर विलियन जोन्स, कोलब्रुक और विलकिन्स जैसे महानुभावों का प्रयास, एशियाटिक सोसाइटी और श्रीरामपुर मिशन के महत्त्वपूर्ण कार्य-कलाप थे। इस वस्तुस्थिति ने उनको अवश्य प्रभावित किया होगा। राममोहन ने अपने छात्रावस्था में ही पटना प्रवास के दौरान इस्लाम के मूल तत्त्वों का अध्ययन पूरा कर लिया था इसके पश्चात कई वर्ष वाराणसी में हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन में लगाये। वहाँ से लौटे तो नौकरी के दौरान डिगबी और वुडफोर्ड जैसे सुसंस्कृत यूरोपीय लोगों के द्वारा पश्चिम विचारधारा और ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आए। वे शायद प्रथम भारतीय थे जिन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास, धर्म और साहित्यिक वैभव को आधुनिक पश्चिमी ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सही मूल्यांकन और प्रचार-प्रसार की ओर ध्यान दिया। राममोहन ने गौरव-

पूर्ण वैदिक-युग के वैभव और विद्या की श्रेष्ठता का केवल प्रचार ही नहीं किया बल्कि इसकी अन्तःशक्ति का सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए विनियोग किया। राममोहन की यही सबसे बड़ी देन थी।

भारत में नवजागरण की लहर ऐतिहासिक कारणों से बंगाल से आरम्भ हुई। अठारहवीं शताब्दी में विश्वव्यापी यातायात और संचार व्यवस्था का आरंभ, यूरोप और इंगलैण्ड में रेनासां और औद्योगिक क्रांति; भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और प्रशासन में कुछ व्यावहारिक नीतियों का प्रवेश, कई सुसंस्कृत पदाधिकारियों का इस देश में आगमन; ईसाई मिशनरियों का धर्म प्रचार के लिए कार्य और कलकत्ते का देश की राजधानी बनना, आदि कुछ प्रमुख कारण थे यद्यपि इनमें से कुछ घटनाएँ आकस्मिक लगती है लेकिन ये ही नवजागरण के प्रमुख उपादान बने।

इनमें एक और प्रमुख उपकरण, जिसने नवजागरण की भावना को भारतीय स्वरूप प्रदान किया वह था राममोहन का इस आन्दोलन में शामिल होना। राममोहन के बहुमुखी कार्यक्रमों में जो एक विशेष संगति परिलक्षित होती है वह है, भारतीय परम्परा के बारे में उनके प्रौढ़ विचार। राममोहन के विचारों और लेखों से यह स्पष्ट है कि वे अपने भीतर भारतीय नवजागरण के बीज को पल्लवित कर रहे थे। राममोहन ने एक बार पादरी एलेक्जेण्डर डफ से कहा था मुझे लगता है कि यूरोपीय रेनासां के समानान्तर कुछ भारत में भी घटित हो रहा है।[1]

1815 में राममोहन जब कलकत्ता आकर बस गये और उन्होंने अपना सार्वजनिक कार्यक्रम आरम्भ किया तो उसमें पहला काम था, वेदान्त का बँगला और अँग्रेजी अनुवाद। स्पष्ट है कि वे भारतीय धर्म और संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के बारे में पूरी तरह सचेत और वचनबद्ध थे। इसी वचनबद्धता को उन्होंने मृत्युपर्यन्त निभाया। उन्होंने पश्चिमी संस्कृति और ईसाई धर्म दोनों को अच्छी तरह समझा था लेकिन विदेशी संस्कृति की चकाचौंध और लालच से वे बचते रहे और अपनी शक्ति देश की धार्मिक और सामाजिक मूल्यों की व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन में लगाया। उन्होंने एक ओर श्रीरामपुर मिशन के पादरियों के हिन्दू धर्म विरोधी प्रचार का डटकर मुकाबला किया तो दूसरी ओर रूढ़िवादी संकीर्णता के विरुद्ध अपने पण्डों और पुरोहितों के विरुद्ध भी सतत संघर्ष चलाते रहे। नतीजा यह हुआ कि एक ओर यूरोपीय वर्ग उनका विरोधी बना तो दूसरी ओर देश का प्रतिष्ठित वर्ग भी उनका विरोधी बन गया।[2]

राममोहन ने सबसे पहले वेदान्त सूत्र, वेदान्त सार, कठोपनिषद, केनोपनिषद, मण्डुकोपनिषद आदि का बंगला और अँगरेजी में अनुवाद किया। पौराणिक कहानियों और धार्मिक पाखण्डों को ही धर्म मान लेने की गलती और

धार्मिक संकीर्णता के दलदल में फँसे हिन्दू धर्म को पुनर्जीवित करने का बीड़ा राममोहन ने उठाया। वे एक ओर हिन्दू धर्म के पण्डों और ठेकेदारों से मोर्चा ले रहे थे तो दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों के साथ। ईसाइयों के इस झूठे प्रचार के विरुद्ध कि भारत के लोग सिर्फ मूर्ति पूजक और पाखण्डी हैं, राममोहन ने उपनिषद के अद्वैतवाद और वैदिक एकेश्वरवाद की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया। ईसाई धर्म के 'त्रित्ववाद' के विरुद्ध भी उन्होंने श्रीरामपुर बेप्टिस्ट मिशन के पादरियों से बराबर तर्क युद्ध करते रहे। ईसाई धर्म में प्रचलित पाखण्डों के विरुद्ध भी उस समय में, जब ईसाई धर्मराज धर्म था, खुले तौर पर आलोचना करने का साहस केवल राममोहन में ही था। इस तर्क युद्ध में बड़े-बड़े महारथियों को परास्त किया, लेकिन साथ ही ईसामसीह के उपदेशों और नीतिवाक्यों का उन्होंने आदर किया स्वयं संकलन प्रकाशित किया। यही नहीं इस्लाम के निराकार-एकेश्वरवाद और सूफ़ीवादी उदारता को भी देश के सामने रखा। लेकिन अन्त में उन्होंने उपनिषदों पर आधारित वैदिक हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित किया। इस प्रकार केवल भारत मे ही नहीं शायद विश्व में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इन तीनों धर्मों के तुलनात्मक विवेचन की ओर ध्यान दिया।

केवल धर्म के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि देश की राष्ट्रीय धारा में उनकी देन असाधारण मानी जायगी। राममोहन ने आत्मीय सभा की स्थापना करके कुलीन प्रथा (बहु विवाह) कन्याविक्रय, जाति भेद प्रथा तथा पिता और पति की सम्पत्ति में नारी का सामानाधिकार जैसे कई मूल सामाजिक प्रश्नों पर सफलता पूर्वक आन्दोलन का नेतृत्व किया।

देश में राजनैतिक आन्दोलन का आरम्भ भी राममोहन ने ही किया। न्यायालयों में देशी जूरी नियुक्ति के प्रश्न पर उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के दस्तख्तों के साथ एक अपील ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को भेजी थी। तीन वर्ष तक आन्दोलन चलाने के बाद किसी सीमा तक उनकी माँगों को मान लिया गया।

प्रेस की स्वाधीनता के लिए भी राममोहन ने भारी संघर्ष छेड़ा था। 'लाइसेंसिग सिस्टम' के खिलाफ उन्होंने सुप्रीम कोर्ट में भी अपील की थी। इसके विरोध स्वरूप उन्होंने अपना फारसी भाषा का अखबार **'मिरातुल अखबार'** बन्द कर दिया। इसके अलावा बंगला पत्रिका 'संवाद कौमुदी' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। कई एक अँगरेजी और बंगला अखबार **'द बेंगल गजेट', 'बेंगल हेरल्ड'** और **'बंगदूत'** जैसे पत्र-पत्रिकाओं से राममोहन घनिष्ट रूप से सम्बन्धित रहे। इस प्रकार पत्रकारिता, विशेष रूप से देशी भाषाओं की पत्रकारिता के संस्थापकों में राममोहन का स्थान है।

उस काल में शायद राममोहन ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इतिहास की पगध्वनि को पहचानकर अनुभव किया कि देश को आधुनिक बनाने के लिए सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विषयों पर इस देश की आवश्यकताओं के अनुरूप विचार करना होगा। इसी से उन्होंने जहाँ एक ओर अँगरेजी का समर्थन ही नहीं किया बल्कि अँगरेजी और वैज्ञानिक शिक्षा के लिए जहाँ जी तोड़ प्रयत्न किया वहाँ दूसरी ओर भारतीय भाषाओं के विशेषरूप से बँगला के आधुनिकीकरण में भारी योगदान दिया। यहाँ तक कि हिन्दी भाषा के लिए किये गये प्रयत्नों के बारे में हम पढ़ चुके हैं। देशी भाषाओं में संस्कृत शास्त्रों के अनुवाद की परम्परा राममोहन ने ही कायम की। धार्मिक, सामाजिक और सुधारवादी आन्दोलन का श्रीगणेश इन्हीं अनुवादों के माध्यम से आरम्भ हुआ था। रूढ़िवादी पुरोहित, पण्डे और समाज के ठेकेदार राममोहन के शत्रु बने केवल इसलिए कि अब ये धर्मशास्त्र मुट्ठी भर ब्राह्मणों की सम्पत्ति न रहकर साधारण जनता तक पहुँचने लगे। लोगों को झूठे ढकोसलों से बहकाना मुश्किल हो गया। इसके अतिरिक्त राममोहन पहले भारतीय अनुवादक थे जिन्होंने धर्मशास्त्रों का अँगरेजी में प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किया। इसके अलावा अँगरेजी में उनके ईसाई धर्म सम्बन्धी लेख केवल भारत में नहीं उनके जीवित रहते ही इंगलैण्ड, यूरोप और अमेरिका में प्रचारित हो चुके थे। पश्चिम के कई विचारक और बुद्धिजीवी उनके लेखों और विचारो पर गम्भीरता से विचार करने पर मजबूर हो गये थे।

राममोहन ने अँगरेजी और बंगला में ही नहीं हिन्दी में भी महत्त्वपूर्ण अनुवाद प्रकाशित किये। बँगला भाषा उस समय अपरिपक्व अवस्था में थी। राममोहन के अथक प्रयत्नों का फल था कि भाषा ने आधुनिक रूप ग्रहण किया। राममोहन से पहले विलियम केरी ने बँगला भाषा के लिए काफ़ी काम किया था लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था। 1778 में हालहेड ने बँगला व्याकरण बनाया था, लेकिन सही अर्थों में इस भाषा का प्रयोग राममोहन के लेखों, पुस्तकों, अनुवादों और पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा ही प्रचलित हुआ।

राममोहन के राजनैतिक, न्यायिक, सामाजिक और आर्थिक कार्य-कलाप और विचारों के बारे में विस्तार से आलोचना किया जा चुका है। राममोहन समस्त विश्व के प्रगतिवादी, समाजवादी और स्वाधीनता आन्दोलनों के समर्थक रहे। उनके विचारों में इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता के संकेत स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

राममोहन अपने युग के सबसे महत्त्वपूर्ण, आकर्षक किन्तु विवादास्पद व्यक्तित्व रहे। पश्चिमी विचारों और ज्ञान-विज्ञान के प्रणेता के रूप में जहाँ

उन्हें प्रशंसा मिली वहीं भारी विरोध का भी सामना करना पड़ा। यह विचार करने योग्य है कि राममोहन के कार्यों और विचारों में कहीं-कहीं असंगतियाँ दिखाई देती हैं लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि वे भारतीय धर्म और संस्कृति के शाश्वत परम्परा और वास्तविक शक्ति के बारे में पूरी तरह आश्वस्त थे। उनके विचारों के विकास की धारा का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह उनके बहुमुखी संघर्ष का नतीजा था। धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू रूढ़िवाद और ईसाई त्रित्ववाद के विरुद्ध उनका ऐतिहासिक संघर्ष उनके विचारों को मूर्तरूप देने में सहायक हुआ। 1815 में जब उन्होंने वेदान्त का अनुवाद प्रकाशित किया था तब से जीवन के अन्तिम क्षण तक वे भारतीय संस्कृति और धर्म का समर्थन करते रहे। ईसाई धर्म के इतने निकट होने पर भी उन्होंने अपने धर्म को त्यागने का कभी भी विचार नहीं किया बल्कि उन्होंने अपना समय अपने धर्म ग्रन्थों की सही व्याख्या खोजने में लगाया।

इस युग विशेष में एक ओर जहाँ बुद्धिवाद ने धर्म, दर्शन और राजनीति में प्रवेश किया वहीं वैज्ञानिक विचारधारा ने जीवन के दूसरे हिस्सों मे प्रवेश पाया। इस प्रकार मानव ने सदियों से चली आई रूढ़िगत संस्कारों की जंजीर को तोड़ने की पहलकदमी की। पाश्चात्य विचारधारा का भारत के नवयुवक बुद्धिजीवी वर्ग पर घातक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उस चकाचौंध करने वाली रोशनी के आगे अपने देश की संस्कृति, परम्परा सब कुछ तुच्छ लगने लगा था। ऐसे समय आवश्यकता थी एक ऐसी शक्ति की जो जनजीवन और जनमानस को पुनर्जीवित कर सके। अन्यथा अपना अस्तित्व ही खोने का डर था। इस काल में हिन्दू चेतना के अलावा सात-आठ सौ वर्षो की इस्लामी मानसिकता ने भारत में अपना स्थान बना लिया था और अब एक और नया मानस भारतीय सांस्कृतिक धारा से आ जुड़ा था वह था, ईसाई धर्म। प्रश्न यह था विश्व की इन प्रधान धर्मों की तीनों धाराओं का समन्वय कैसे हो। और इस मिली-जुली संस्कृति का स्वरूप क्या बने, जिस पर भविष्य के आधुनिक भारत का उत्थान निर्भर था। पूर्व और पश्चिम के चौराहे पर खड़े होकर राममोहन एक युग प्रतिनिधि के रूप में उभरे। राममोहन के सामने एक ओर पश्चिम का उपयोगवादी बुद्धिवाद, दूसरी ओर इस्लामी सूफ़ी रहस्यवाद का उदार दर्शन और तीसरी ओर ईसा मसीह के जीवन और नीति कथाओं की करुणाधारा प्रवाहित थी। इन सबके ऊपर शाश्वत वैदिक धर्म से भावात्मक योग था। वस्तुतः आपात दृष्टि से इन सारी भावनाओं में अंतर्विरोधी तत्त्व थे। राममोहन के सामने ये सारे तत्त्व विद्यमान थे और जब पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की बाढ़ आई तो राममोहन को चिन्ता हुई कि कैसे बचा जाय। कहीं इस आधुनिकता के दलदल में हम फँस तो नहीं जाएँगे! नवजागरण के

अग्रदूत के रूप में राममोहन विरोधात्मक भावनाओं के समन्वय की अनोखी चेष्टा कर रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि आने वाली पीढ़ी उन्हें देश के आधुनिकीकरण और पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के प्रवर्तक के रूप में मानती रहे, यहाँ तक कि उन्हें आधुनिक भारत के जनक का सम्मान भी दिया जाता रहा है। यहाँ तक कि कई विद्वान वर्ष '1815' को, जब राममोहन कलकत्ता आकर बसे थे, ही भारतीय नवजागरण का आरम्भ मानते हैं उनके विचार से राममोहन के व्यक्तित्व में ही नवजागरण के बीज मौजूद थे।

संस्कृति-संक्रमण इस काल की विशेषता थी। ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में इस संक्रमण प्रक्रिया की आधारशिला रखी गयी। वस्तुतः इसका आरम्भ वारेन हेस्टिंग्स के जमाने में हो चुका था जो आगे चलकर प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी गुटों में बँट गया था और लार्ड बेन्टिक के समय (1828) तक आते-आते पाश्चात्यवादी और अँगरेजी शिक्षा के समर्थकों ने प्राच्यविदों पर पूरी तरह अपना प्रभाव जमा लिया था। इस अनिश्चयता का अन्त 1835 में मैकॉले के अँगरेजी शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव के पास होने पर हुआ, जो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के समर्थकों की प्राच्यविदों पर स्पष्ट विजय थी। कलकत्ता महानगर और देश के कुछ और महानगरों में तब तक अँगरेजी शिक्षण संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं। हिन्दू कॉलेज की स्थापना का इतिहास हम पढ़ चुके हैं। इसके अतिरिक्त अँगरेजी और भारतीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन भी आरम्भ हो गया था। इसी दौरान विशेषरूप से कलकत्ता महानगर में एक नया बुद्धिजीवी-वर्ग पैदा हो चुका था, जो अपनी समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा के बारे में सजग होने के साथ ही देश को आधुनिकता के पथ पर ले जाने के लिए कृत संकल्प था। ब्रिटिश शासक वर्ग में भी जो प्रमुख प्राच्यविदों का दल पैदा हुआ उनमें विलियम जोन्स, कोलब्रुक, विलियम केरी, विलसन और जेम्स प्रिंसेप ने प्राच्य विद्याओं के अन्वेषण और प्रचार-प्रसार के द्वारा देश के बुद्धिजीवियों को केवल प्रभावित ही नहीं बल्कि अपनी साहित्य और संस्कृति के बारे में सजग प्रहरी बना दिया था। हमने यह देखा ही है कि राममोहन ने देश की प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को बचाने के लिए उतना ही संघर्ष किया जितना अँगरेजी-शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए।

इस काल की एक और महत्त्वपूर्ण घटना जिसने बंगाल क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया को तेज करने में विशिष्ट भूमिका निभाई, वह थी एक एंग्लो-इंडियन प्रतिभाशाली युवक हेनरी डिरोजिओ का शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्र में आविर्भाव। हिन्दू स्कूल (कॉलेज) के अध्यापक के रूप में विद्यार्थियों में नये युग चेतना और आधुनिकता के दर्शन को सम्मुख लाने का श्रेय इस प्रतिभाशाली

नवयुवक शिक्षक को जाता है। अपने छोटे से जीवन काल (1809-1831) में हिन्दू कालेज में शिक्षक की हैसियत से केवल चार वर्ष (1828-1831) के दौरान उन्होंने अपने हिन्दू शिष्यों पर जैसी गहरी छाप और इतना प्रभाव डाला था वह आश्चर्यजनक घटना ही मानी जायगी। डिरोज़िओ के जीवनीकार टॉमस एडवर्ड की ये पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं :

"The force of his individuality, his winning manner, his wide knowledge of books, his own youth, which placed him in close sympathy with his pupils, his open, generous chivalroious nature, his humour and playfulness his fearless love for truth, his hatred of all that was unmanly and mean, his love of India, evidenced in his conversations,....his social intercourse with his pupils, his unrestricted effort for their growth in virtue, knowledge and manliness produced an intellectual and moral revolution in Hindu society since unparalleled."[8]

इस प्रतिभाशाली शिक्षक व्यक्तित्व के बारे में सन्देह का तनिक अवकाश नहीं है क्योंकि इसके तत्कालीन कई मौलिक प्रमाण उपलब्ध हैं। डिरोजिओ की दार्शनिक विचारधारा से सीधे-सीधे प्रभावित होने वाले प्रतिभाशाली शिष्यों का एक छोटा सा दल तैयार हो गया था जो बाद में 'यंग बंगाल' या 'यंग कैलकटा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी। इसकी पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें राममोहन के 1815 से कलकत्ता में बसने, शिक्षा, समाज सुधार और धार्मिक आन्दोलनों के आरम्भ के साथ-साथ इस युवा-मानस में वैचारिक क्रान्ति पैदा हो गई थी। मानव मुक्ति का मार्ग खोजने की चेतना उस काल की विशिष्टता थी। नवजागरण की चेतना को जगाकर राममोहन ने जो हलचल पैदा की थी, उनमें 1817 में हिन्दू कालेज की स्थापना का इतिहास भी प्रमुख घटना थी। 1828 में डिरोज़िओ केवल उन्नीस वर्ष की आयु में इस विद्यालय के शिक्षक नियुक्त हुए थे। इस प्रतिभाशाली के मधुर मिलनसार स्वभाव, पाण्डित्य, विशिष्ट शिक्षा पद्धति और आकर्षक चरित्र ने अपने शिष्यों को इतनी तीव्रता से आकर्षित किया कि डिरोजिओ उनके गुरु, साथी, मित्र और प्रेरणा के केन्द्र बन बैठे। उनकी शिक्षा पद्धति के बारे में यहाँ इतना बताना उचित होगा कि वे अपने छात्रों को सर्वदा स्वतंत्र चिंतन के लिए उत्साहित करते थे। किसी भी प्रचलित संस्कार या रीति को बिना प्रश्न या बिना विचार ग्रहण न करने का ही उपदेश देते। उनका मुख्य उद्देश्य था युक्तिवाद या बुद्धिवाद की स्थापना और हर प्रकार की धूर्तता,

झूठ-फरेब और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध सर उठाने के लिए अपने छात्रों को तैयार करना। डिरोजिओ का अपने शिष्यों से सम्बन्ध केवल स्कूल की कक्षाओं तक ही सीमित नहीं रहता था, वे कक्षा से बाहर भी उनका अपने शिष्यों के साथ अनौपचारिक सम्बन्ध रहता। उन्होंने एक एकाडेमिक एसोसियेशन की स्थापना की थी जिसकी सभाओं में दर्शन, इतिहास, समाजशास्त्र पर वाद-विवाद चलता, मूर्ति-पूजा, जात-पात, भाग्यवाद, स्वदेश प्रेम आदि विषयों पर खुलकर आलोचना चलती। इस गुट द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'पार्थेनन' में क्रान्तिकारी लेख प्रकाशित होते। केवल इतना ही डिरोजिओ के विचार से प्रभावित सात और गोष्ठियाँ कलकत्ता शहर में स्थापित हो गयी। डेविड हेयर ने अपने स्कूल में डिरोजिओ के लिए नियमित व्याख्यान की व्यवस्था की थी। इस प्रकार थोड़े से समय के भीतर एक नया वैचारिक आन्दोलन तेजी से फैलने लगा। आक्रमण का मुख्य लक्ष्य स्वाभाविक रूप से हिन्दू धर्म ही था क्योंकि उनके सभी शिष्य हिन्दू धर्मावलंबी थे। हिन्दुओं के रूढ़िगत संस्कारों, रीति-रिवाजों पर डिरोजिओ-शिष्यों ने भारी हमला आरम्भ कर दिया। वे खुलेआम हिन्दू धर्म के रीति-रिवाजों का मखौल उड़ाने लगे। नतीजा यह हुआ कि पुरातनपंथी हिन्दू नेता एक बार फिर चिन्तित हो उठे। एकजुट होकर उन्होंने डिरोजिओ और उनके शिष्यों के कार्यकलाप को रोकने की ठानी। हिन्दू कालेज के प्रबन्धक समिति पर जोर डालकर ऐसी सभाएँ बन्द करवा दी गयीं, पत्रिका का प्रकाशन रुकवा दिया गया। डिरोजिओ और उनके शिष्यों के बारे में मन-गढ़न्त झूठी अफवाहें फैलाकर प्रतिष्ठित हिन्दू समाज में भय और आतंक फैला दिया गया। लोग अपने बेटों को हिन्दू कालेज से हटाने लगे। अन्त में कालेज की प्रबन्ध समिति ने अप्रैल 1831 को डिरोजिओ को कालेज से निकालने का प्रस्ताव पास करवा दिया। डिरोजिओ ने इस्तीफा दे दिया। इसी वर्ष के अन्त में केवल 23 वर्ष की आयु में डिरोजिओ की मृत्यु हैजे की बीमारी से हो गई थी। जीवन के अन्तिम कुछ महीने उन्होंने पत्रकारिता और साहित्य सेवा में लगाये थे। इस प्रकार एक देदीप्यमान होनहार जीवन पूरी तरह खिलने से पहले ही मुरझा गया।

शिक्षक के रूप में डिरोजिओ का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में विचार-स्वतन्त्रता की भावना जगाना, नैतिक सच्चाई और चारित्रिक दृढ़ता पैदा करना था। वे स्वयं इन गुणों के परिपोषक थे और विद्यार्थियों को अनुप्राणित करने में सफल हुए। डिरोजिओ का प्रभाव इतनी तीव्र गति से फैला कि उनके शिष्य वर्ग ने हिन्दू धर्म के रूढ़िवाद, रीति-रिवाजों और अंधविश्वास के विरुद्ध तत्काल अपना विद्रोह आरम्भ कर दिया था। यहाँ तक कि बाद में उनके कुछ शिष्य ईसाई धर्म स्वीकार करने से भी नहीं हिचके। डिरोजिओ स्वयं पूरी तरह

धर्म निरपेक्ष और युक्तिवादी थे और उन्होंने अपने जीवनकाल में किसी को धर्म परिवर्तन के लिए नहीं उकसाया। वस्तुतः ईसाई धर्म स्वीकार करने के पीछे पादरी एलेक्जैण्डर डफ का प्रमुख हाथ था, जिन्होंने डिरोज़िओ के शिष्यों में फैले असंतोष का फायदा उठाया था।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि राममोहन के साथ डिरोज़िओ का परिचय था या नहीं। दोनों में उम्र के व्यवधान के बावजूद, डिरोज़िओ के जीवनीकार मैज[4] के अनुसार दोनों एक दूसरे से परिचित थे। लेकिन समसामयिक प्रमाण के अभाव में कुछ भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। वैसे डिरोज़िओ ने अपने भाषणों, लेखों में राममोहन की समालोचना की थी। फिर भी इतना निश्चित कहा जा सकता है कि जब पुरातनपंथी हिन्दू नेताओं ने डिरोज़िओ को हिन्दू कालेज से निकालने की साजिश की, उस समय यदि राममोहन कलकत्ता में होते तो यह निष्कासन इतना आसान नहीं होता।

कतिपय विद्वानों का विचार है कि राममोहन के सुधारवाद और प्रगतिवादी विचार और डिरोज़िओ का युक्तिवादी चिन्तन समानान्तर धाराओं में बहते रहे, और इनका मेल कहीं नहीं हुआ। लेकिन यह निष्कर्ष भ्रमपूर्ण है। यहाँ पर एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि 1830 में जब राममोहन ने देश छोड़ा उस समय डिरोज़िओ और उनके शिष्य दोनों ही से राममोहन की उम्र का व्यवधान काफी अधिक था। इसी से इन बालकों का राममोहन के आंदोलन से या उनके विचारों से सीधे-सीधे सम्पर्क में आने का प्रश्न ही नहीं था। राममोहन की विचारधारा और सुधारवादी आन्दोलन को 'रिफार्मेशन' की संज्ञा दी गई और डिरोज़िओ के चिन्तन को क्रान्तिकारी या रेनासां कहा गया। लेकिन इस सारी प्रक्रिया को जरा गहराई से जाँचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि धारा एक ही थी और फर्क सिर्फ इतना ही था कि राममोहन पहले आये डिरोज़िओ बाद में। दोनों ने ही अठारहवीं शताब्दी के मध्य से चले आ रहे परिवर्तन की धारा को आगे बढ़ाने में अपनी-अपनी भूमिका निभाई। दोनों के ध्येय और गंतव्य तथा सीमा-सामर्थ्य में जो अन्तर था, उसका कारण ढूँढ़ना भी कठिन नहीं है। डिरोज़िओ विदेशी पिता और देशी माता की संतान और ईसाई धर्मावलंबी होने के कारण हिन्दू धर्म और संस्कृति के अन्तर्निहित मूल्यों को समझने और परखने की वैसी स्थिति में नहीं थे जैसी सुविधा राममोहन को थी। उनकी राष्ट्रीयता और भारतीयता की जड़ें उतनी गहरी नहीं थीं जितनी राममोहन की हो सकती थीं। डिरोज़िओ और उनके शिष्यों ने राममोहन को खुलेआम 'हाफ लिबरल' या नीम-उदारवादी कहा था और आरोप लगाया था कि राममोहन हमेशा 'हिन्दू' ही रहे।[5]

यंग-बंगाल के प्रारम्भिक उत्साह के दौरान राममोहन के प्रति उनका रुख

जैसा भी रहा हो लेकिन बाद में डिरोज़िओ के निकट शिष्यों में कई 'ब्रह्म समाज' के सदस्य बने और प्रायः सभी शिष्यों ने राममोहन के सुधारक भूमिका की सराहना की थी। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राममोहन ने भारतीय संस्कृति और शाश्वत वैदिक धर्म की आधारभूमि पर रहते हुए जिस युक्तिवाद और नवजागरण की धारा का प्रवर्तन किया था, उसी को सम्पूरक धारा के रूप में डिरोज़िओ ने अपने युक्तिवाद और विचार-स्वातंत्र्य के माध्यम से आगे बढ़ाया। वस्तुतः भारत में पुनर्जागरण की चेतना अठारहवीं शती के मध्य में एक क्षीण धारा के रूप में आरम्भ हुई थी, 1815 में राममोहन के कलकत्ता आगमन के समय से एक शक्तिशाली प्रवाह के रूप में आगे बढ़ी और इसमें डिरोज़िओ का योगदान अवश्य ही महत्त्वपूर्ण कदम था।

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के मूल्यांकन के आधार पर जब किसी अविकसित समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का अभ्युदय होने लगता है तो हम किसी निश्चित सिद्धान्त पर पहुँच• सकते हैं कि यह इस अविकसित समाज के साथ किसी विकसित प्रगतिशील राष्ट्र के संघात-संगमन का ही फल है। भारत में उपनिवेशीय शासन कायम होने पर, एक नई आर्थिक प्रक्रिया के फलस्वरूप, विदेशी पूँजी के प्रवेश से यहाँ एक नया धनी-वर्ग और जमींदार वर्ग पैदा हुआ।[6] इस नये वर्ग के आदर्शपरक भावनाओं के प्रवक्ता के रूप में एक नया बुद्धिजीवी वर्ग भी जन्म ले रहा था। यह इस काल की स्वाभाविक ऐतिहासिक घटना थी। अठारहवीं शती के सामंतवादी, ह्रासोन्मुख गलित भारतीय सभ्यता पर पाश्चात्य प्रगतिशील, विकासोन्मुख सभ्यता के आक्रमण के फलस्वरूप एक नये प्रत्यय का विकास बुद्धिजीवी-वर्ग के अविर्भाव का कारण बना।

कलकत्ता शहर, जो संयोगवश तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी बना, का परिवेश इस नयी तलाश के बहुत ही अनुकूल था। यहाँ केवल सारे भारत से व्यापारी और धनी वर्ग का समावेश ही नहीं बल्कि सारे देश के विभिन्न संस्कृतियों का समावेश भी हुआ। इसके अतिरिक्त यूरोपीय प्रबुद्ध वर्ग के जमाव और सुसंस्कृत शासक-वर्ग के संपर्क में आने के कारण कलकत्ता में एक नये बुद्धिजीवी वर्ग का जन्म हो रहा था। इसी काल में कुछ यूरोपीय प्राच्यविदों की प्रचेष्टा से हिन्दू साहित्य और संस्कृति के पुनरुत्थान एवं पुन-र्मूल्यांकन भी इस प्रक्रिया को तेज करने में सहायक सिद्ध हुई।

मध्ययुगीन परिप्रेक्ष्य में तथा आधुनिकता के इस युग-प्रवर्तन की प्रक्रिया के मूल में जिस सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता थी उसके बारे में राममोहन तथा उनके सहयोगियों के विचार कितने स्पष्ट थे, इस पर भी विचार करना आवश्यक है। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से राममोहन पूरी तरह प्रभावित थे और पश्चिमी सभ्यता के इतिहास से भी वह परिचित थे। उनके सामने यूरोप के

बुर्जुआ श्रेणी के उद्भव और उनकी पूंजीवादी औद्योगिक अर्थनीति और शासन व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का इतिहास था। यह कोई साधारण परिवर्तन नहीं था यह एक सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति थी। अठारहवीं शती के इस औद्योगिक संक्रान्ति ने बुर्जुआ श्रेणी विकास में भारी तेजी ला दी। इसी समय फ्रांसीसी क्रान्ति के माध्यम से आधुनिक युग में राजनैतिक मुक्ति और मानवाधिकार जैसी भावनाओं ने मूर्तरूप धारण किया। बुर्जुआ श्रेणी की इस ऐतिहासिक भूमिका के बारे में मार्क्स-एंगल्स की प्रसिद्ध उक्ति को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा :

> The Bourgeoisie historically, has played a most revolutionary part. The bourgeoisie wherever it has got the upper hand, has put an end to all fendal, patriarchal, idyllic relations.....It has been the first to show what man's activity can bring about."[7]

यह ठीक है कि ये शब्द केवल बुर्जुआ श्रेणी के शोषण के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए कहे गये थे लेकिन इस बुर्जुआ श्रेणी के उदय से ही मध्ययुगीन सभ्यता का आधुनिकीकरण सम्भव हो सका। राममोहन और उनके सहयोगी इस सामाजिक विवर्तन के परिचित थे। 'बंगाल हेराल्ड' और 'संवाद कौमुदी' के पृष्ठों में बुर्जुआ मध्यवित्त श्रेणी की ऐतिहासिक भूमिका के बारे में कई लेखों मे स्पष्ट इशारा मिलता है। 'हेराल्ड' के एक सम्पादकीय लेख का कुछ अंश उद्धृत करना प्रासंगिक होगा।

> "By means of this territorial value, a class of society has sprung into existence, that were before unknown, these are placed between aristocracy and poor and are daily forming a most inftuential class. Previous to their formation, the wealth of the country was in the hands of few individuals, while all others were dependent on them.....It is the dawn of a new era. Whenever such an order of men have been created freedom has followed in its train."[8]

बुर्जुआ-मध्यवित्त श्रेणी की चेतना का परिचय इस सम्पादकीय में स्पष्ट है।

पाश्चात्य सभ्यता से और युक्तिवाद से परिचय का भारतीय मनःस्थिति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भाग्यवाद, कर्मफल और जन्मान्तर के घेरे से निकलने की कसमसाहट पैदा होने लगी थी। सन् 1803-1804 में राममोहन की कृति 'तुहफात उल मुवाहुद्दीन' इसी नयी भावना का परिचायक था।

वस्तुतः उस समय तक राममोहन प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश प्रभाव में नहीं आये थे।

युक्तिवाद के समर्थन में राममोहन ने 'तुहफात' में कहा था—'जिस विषय का कोई प्रमाण नहीं, जो युक्ति विरुद्ध है, उसको एक युक्तिवादी कैसे ग्रहण या स्वीकार कर सकेगा ? जिसकी दृष्टि है वे इसी से सावधान हों।' इसी लेख के उपसंहार में उन्होंने कहा था 'सभी जाति, रंग और धर्म के सभी मनुष्यों का हृदय प्रेम से जीतना ही इस प्रकृति के रचयिता ईश्वर की एकमात्र विशुद्ध पूजा है।'[6] इन विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि राममोहन शुरू से चले आ रहे अंधविश्वासों और युक्तिहीन आचरणों से ऊपर उठकर मानवीय एकता और समन्वय की भूमिका बना रहे थे। बाद में जब वे शास्त्रार्थ में उतरे तो इस युक्तिवादी तर्क-पद्धति पर ही जमे रहे। धर्म विषयक सैद्धान्तिक तर्क युद्ध के लिए उन्होंने कितनी मेहनत से तैयारी की, यह हम पढ़ चुके हैं। अनेकानेक सामाजिक कार्यों में व्यस्त होने पर भी देशी और विदेशी भाषाओं में उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त की थी क्योंकि इस ऐतिहासिक संधिकाल में वे अपने दायित्व के बारे में पूरी तरह सजग थे। इसी से ज्ञान के मूल स्रोतों को ढूंढ़ने के लिए उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी के अलावा ग्रीक, हिब्रू भाषा का अध्ययन किया था।

बाद की पीढ़ियों ने राममोहन की आलोचना अनेकानेक दृष्टिकोण से की है। कुछ आलोचकों ने श्रद्धा और आदर से उनको 'आधुनिक भारत का जनक' कहा तो कुछ आलोचक उनकी भूमिका को 'विदेशी दलाल' जैसा फतवा देने तक से नहीं चूके। लेकिन इस वास्तविकता को मानना ही पड़ेगा कि उनकी विचारधारा का अभ्युदय बुद्धिवाद या युक्तिवाद के अनुसन्धान के रास्ते राष्ट्रीयता की सीमा को लाँघकर विश्वमानवता या सार्वभौमता के क्षेत्र में पहुँच गया था। हो सकता है कि उनका व्यक्तिगत या व्यावहारिक आचरण कभी-कभी उनके इन आदर्शों के अनुरूप न रहा हो, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उस काल में भारत में वे अकेले व्यक्ति थे जिनकी चेतना में सार्वभौम धर्म और मानव अखण्डता की भावनाओं का उन्मेष हुआ था। यह विचारधारा पूर्व और पश्चिम के संघात से उत्पन्न बौद्धिक नवजागरण की पृष्ठभूमि थी।

यह हम पढ़ चुके हैं कि यूरोप और अमेरिका में जहाँ गुलामी और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संग्राम हुए या क्रान्ति; उसका राममोहन ने हार्दिक स्वागत किया। विजय होने पर वे उत्सव मनाते थे और हार होने पर दुखी होते। इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि उस काल में जो बुद्धिवादी अँगरेजों के संस्पर्श में आया वह इंगलैण्ड की ओर मुँह बाये समस्याओं का हल ढूंढ़ने लगा था। राममोहन भी किसी सीमा तक इस मोह के शिकार हुए थे। यह भी

सत्य है कि राममोहन ने अपने देश के किसान और मजदूरों की समस्याओं की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितनी कि एक युग पुरुष से आशा की जाती थी। इन सबके बावजूद भावना और विचार के परिप्रेक्ष्य में राममोहन ने अपूर्व दूरदर्शिता का परिचय दिया था जो उनके बहुमुखी कार्यकलाप, लेखों, पुस्तक पुस्तिकाओं स्मारक-पत्रों और पत्रों से स्पष्ट है। यह भी स्पष्ट है कि तमाम विश्व के स्वाधीन और प्रजातांत्रिक आन्दोलनों के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध था। समकालीन उदारपंथी, प्रगतिवादी मानस के प्रतीक के रूप में राममोहन ने विश्व भर के बौद्धिक समाज में सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया था। सामग्रिक रूप से विचार किया जाय तो राममोहन पूर्व और पश्चिम की विचारधारा और सांस्कृतिक संघात की उपज थे, जिन्होंने एक अवरुद्ध समाज को गति प्रदान की।

यहाँ पर राममोहन की विचारधारा में निहित अंतर्विरोध पर थोड़ा विवेचन करना उचित होगा। हम देख चुके हैं कि राममोहन ने यूरोप और अमेरिका में जहाँ कहीं भी स्वाधीनता या मानव अधिकार के लिए संघर्ष हुए, उनका समर्थन किया। लेकिन भारत में ब्रिटिश शासन को ईश्वर के आशीर्वाद के रूप में मानते रहे जो उनके पत्रों, कई अपील और स्मारक पत्रों से स्पष्ट है। उनके अनुसार एक विकासशील सभ्यता के प्रतिनिधि होने के नाते ब्रिटिश शासन को आक्रमणकारी, अत्याचारी शासन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। राममोहन ने देश के तत्कालीन परिस्थिति में विदेशी शासन का विरोध नहीं किया बल्कि देश में अगले चालीस-पचास वर्ष तक विदेशी शासन के कायम रखने की पैरवी की। धनी, चरित्रवान और शिक्षित यूरोपीय लोगों को भारत में बसने की सिफारिश की। भारत में उस काल की अराजक परिस्थिति ने शायद राममोहन के विचारों को प्रभावित किया हो। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने ब्रिटिश शासन का कहीं भी विरोध नहीं किया—केवल इतना ही—महत्त्वपूर्ण है कि विरोध से सहयोग का स्वर कहीं अधिक ऊँचा था। इस विषय पर एकाधिक समालोचकों ने अपनी राय जाहिर की है। लेकिन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में केवल इतना विचारणीय है कि देश को मध्ययुगीन पिछड़ेपन, अराजकता और रूढ़िवादी धार्मिक जीवन पद्धति से निकालकर देश को आधुनिकता के पथ पर लाने और राष्ट्रीय संचेतना को जगाने में राममोहन की क्या भूमिका रही?

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक वातावरण या परिसर की उपज होता है। केवल वही दूरदर्शी नेता या नायक का स्थान लेता है जो अपने परिवेश का अतिक्रमण करके भविष्य की विधायक दिशा में सफल हो। राममोहन की पहली रचना 'तुहफात' में उन्होंने जिस निरपेक्ष और युक्तिवादी मानस का परिचय दिया

था, वह उस युग में एक नई घटना थी। आगे चलकर उनका यही विवेक उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा से समन्वित हुआ। इस युक्तिवादी चिन्तन में वे हमेशा अपने को कायम रखने में सफल हो सके या नहीं, यह विवादास्पद हो सकता है लेकिन इस चिन्तन प्रक्रिया के द्वारा उन्होंने एक नई चेतना और परम्परा को जन्म दिया जिस पर आधुनिक भारत की नींव रखी गई। यही उनकी सफलता थी।

राममोहन की पहली मृत्यु शतवार्षिकी (1933 ई०) के अवसर पर कलकत्ता में एक सभा हुई। उस सभा में महाकवि रवीन्द्रनाथ टाकुर ने एक भाषण दिया था। जो बाद में **'भारत पथिक राममोहन'** के शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसी लेख में राममोहन पर लिखी प्रसिद्ध बंगला कविता की कुछ पंक्तियों का भावानुवाद इस प्रकार है :

> हे राममोहन आज एक शताब्दी बाद
> सारा देश तुम्हें प्रणाम कर रहा है।
> मृत्यु का आवरण भेद कर अपना अक्षय दान देते जाओ
> जरा-जीर्ण में जगाओ प्राणों का स्पन्दन,
> अपनी आत्मा के स्पर्श-मणि से व्याप्त मूढ़ता दूर करो,
> अभिनव-शक्ति का करो संचार।[10]

इस पारस-मणि के प्रभाव से ही उत्तरकाल मे दयानन्द बंकिमचन्द्र, विवेकानन्द, सुरेन्द्रनाथ बंद्योपाध्याय, विपिन चन्द्र पाल, गोखले, तिलक, अरविन्द, भारती और गांधी आदि युग पुरुषों ने जन्म लेकर देश मे स्वाधीनता और वैचारिक स्वतंत्रता की नींव डालने में सक्षम हो पाये।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. विश्वास : राममोहन समीक्षा, पृ० 320-321 में जी० स्मिथ द्वारा लिखित The Life of Alezander Duff से उद्धृत मूल पाठ इस प्रकार है :

Having read about the rise and progress of Christianity in apostolic times and its corruption in succeeding ages and then of Christian Reformation which shook off these corruption and restored it to its primitive purity, I began to think that something similar might have taken place in India and similar results might follow here from a reformation of popular idolatry."

2. Koff British Orientalism and Bengal Renaissance : pg. 199.

3. Edwards Thomas, Henry Derozio (1980ed,), pg. 65.

4. Madge, E. W. Henry Derozio : The Eurasian Poet and Reformer के अनुसार राममोहन और डिरोज़िओ में मित्रता थी। (विश्वास की पुस्तक में पृ० 432 पर उद्धृत)

5. विश्वास : राममोहन समीक्षा, पृ० 432-433.

6. पोद्दार, अरविन्द राममोहन उत्तर पक्ष, पृ० 9.

7. विश्वास : पृ० 20-21 में कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो से उद्धृत।

8. Majumdar, J. K. Raja Rammohun Roy, Progressive movements....पृ० 434-435 पूरे सम्पादकीय लेख के लिए देखें।

9. तुहफात इ मुवाहहउद्दीन से उद्धृत।

10. मूल कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"हे राममोहन, आजि शतेक वत्सर करि पार
मिलिल तोमार नामे देशेर सकल नमस्कार।
मृत्यु अंतराल भेदि, दाओ तव अन्तहीन दान,
जाहा किछु जरा जीर्ण ताहाते जागाओ नवप्राण।
जाहा किछु मूढ़ ताहे चित्तेर परशमणि तव
एने दिक उद्बोधन, एने दिक शक्ति अभिनव।"

●

परिशिष्ट—1

प्रेस कानून के विरोध में 'मिरातुल अखबार' का अंतिम सम्पादकीय लेख :
[ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा प्रेस पर लगाये गये निषेधाज्ञा के विरोध में राममोहन ने अपने फ़ारसी समाचार-पत्र 'मिरातुल-अखबार' का प्रकाशन बन्द कर दिया था। इसके अंतिम अंक में राममोहन ने एक सारगर्भित सम्पादकीय द्वारा सरकार पर चोट की। एक भारतीय द्वारा प्रेस-स्वाधीनता के पक्ष में सम्भवतः यह पहला वक्तव्य था। इस सम्पादकीय का अँगरेजी अनुवाद 10 अप्रैल 1823 के 'कैलकटा जर्नल' में प्रकाशित हुआ था]

MIRAT-OOL-UKHBAR

Friday, April 4, 1823. (Not included in the Regular Numbers)

It was previously intimated, that a Rule and Ordinance was promulgated by His Excellency Honourable The Governor General in Council, enacting, that a Daily, Weekly, or any Periodical paper should not be published in this city, without an affidavit being made by its Proprietor in the Police Office, and without a License being procured for such publication from the Chief Secretary to Government; and that after such License being obtained, it is optional with the Governor General to recall the same, whenever His Excellency may be dissatisfied with any part of the Paper. Be it known, that on the 31st of March, the Honourable Sir Francis Macnaghten, Judge of the Supreme Court, expressed his approbation of the Rule and Ordinance so passed. Under these circumstances, I, the least of all the human race, in consideration of several difficulties, have, with much regret and reluctance, relinquished the publication of this Paper (MIRAT-OOL-UKHBAR). The difficulties are these :—

First—Although it is very easy for those European Gentlemen, who have the honour to be acquainted with the Chief Secretary to Government, to obtain a License according

to the prescribed form; yet to a humble individual like myself, it is very hard to make his way through the porters and attendants of a great personage; or to enter the doors of the Police Court, crowded with people of all classes, for the purpose of obtaining what ts in fact, already in my own option. As it is written—

Abrooe kih bu-sud khoon i jigur dust dihud
Bu-oomed-i kurum-e, kha'juh, bu-durban mu-furosh

The respect which Is purchased with a hundred drops of heart's blood, do not thou, in the hope of a favour, commit to the mercy of a porter.

Secondly—To make Affidavit voluntarily in an open Court, in the presence of respectable Magistrates, is looked upon as very mean and censurable by those who watch the conduct of their neighbours. Besides the publication of a Newspaper is not incumbent upon every person, so that he must resort to the evasion of establishing fictitious proprietors, which is contrary to law, and repugnant to conscience.

Thirdly—After incurring the disrepute of solicitation and suffering the dishonour of making Affidavit, the constant apprehension of the license being recalled by Government which would disgrace the person in the eyes of the world, must create such anxiety as entirely to destroy his peace of mind. Because a man by nature liable to err, in telling the real truth cannot help sometimes making use of words and selecting phrases that might be unpleasant to Government. I however, here prefer silence to speaking out :

Guda—e goshuh nusheenee to Khafiza mukhurosh
Roo mooz muslubut-i khesh khoos-rowan danund.
Thou O Hafiz, art a poor retired man, be silent :
Princes know the secrets of their own Policy.

I now entreat those kind and liberal gentlemen of Persia and Hindoostan, who have honoured the MIRAT-OOL-UKHBAR with their patronage, that in consideration of the

reasons above stated, they will excuse the non-fulfilment of my promise to make them acquainted with passing events, as stated in the introductory remarks in the First Number; and I earnestly hope from their liberality, that wherever and however I may be situated, they will always consider me, the humblest of the human race, as devoted to their service.

परिशिष्ट—2

पाश्चात्य शिक्षा के समर्थन में लार्ड एमहर्स्ट को लिखा राममोहन का पत्र : [यद्यपि 1813 के सनद के अनुसार प्रतिवर्ष कोई एक लाख रुपया देशी साहित्य के पुनरुद्धार और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिए खर्च करने का प्रावधान था लेकिन सरकार की ओर से सारा धन एक संस्कृत कालेज की स्थापना पर खर्च करने का प्रस्ताव था। राममोहन अँगरेजी और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के पक्ष में थे। इसी से उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध पत्र में संस्कृत कालेज की स्थापना का विरोध किया और अँगरेजी के साथ गणित, जड़ और जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र और शरीर-विज्ञान की शिक्षा के लिए इस धन का प्रयोग करने के लिए जोरदार दलील पेश की थी। यह पत्र भारत में अंगरेजी और आधुनिक शिक्षा की स्थापना में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ माना जाता है।]

RAMMOHUN ROY'S LETTER TO LORD AMHERST ON WESTERN EDUCATION.

To

His Excellency the Right Hon'ble William Pitt.
Lord Amherst.

My Lord,

Humbly reluctant as the natives of India are to obtrude upon the notice of Government the sentiments they entertain on any public measure, there are circumstances when silence would be carrying this respectful feeling to culpable excess. The present Rulers of India, coming from a distance of

many thousand miles to govern a people whose language, literature, manners, customs, and ideas are almost entirely new and strange to them, cannot easily become so intimately acquainted with their real circumstances, as the natives of the country are themselves. We should therefore be guilty of a gross dereliction of duty to ourselves, and afford our Rulers just ground of complaint at our apathy, did we omit on occasions of importance like the present to supply them with such accurate information as might enable them to devise and adopt measures calculated to be beneficial to the country, and thus second by our local knowledge and experience their declared benevolent intentions for its improvement.

The establishment of a new Sanscrit School in Calcutta evinces the laudable desire of Government to improve the Natives of India by education,—a blessing for which they must ever be grateful; and every well wisher of the human race must be desirous that the efforts made to promote it, should be guided by the most enlightened principles, so that the stream of intelligence may flow into the most useful channels.

When this Seminary of learning was proposed, we understood that the Goverment in England had ordered a considerable sum of money to be annually devoted to the instruction of its Indian subjects. we were filled with sanguine hopes that this sum would be laid out in employing European Gentlemen of talents and education to instruct the natives of India in Mathematics, Natural Philosophy, Chemistry, Anatomy and other useful Sciences, which the nations of Europe have carried to a degree of perfection that has raised them above the inhabitants of other parts of the world.

While we looked forward with pleasing hope to the dawn of knowledge thus promised to the rising generation, our hearts were filled with mingled feelings of delight and

gratitude; we already offered up thanks to Providence for inspiring the most generous and enlightened of the Nations of the West with the glorious ambitions of planting in Asia the Arts and Sciences of modern Europe.

We now find that the Government are establishing a Sangscrit school under Hindoo pundits to impart such knowledge as is already current in India. This seminary (similar in character to those which existed in Europe before the time of Lord Bacon) can only be expected to load the minds of youth with grammatical niceties and metaphysical distinctions of little or no practicable use to the possessors or to society. The pupils will there acquire what was known two thousand years ago, with the addition of vain and empty subtelties since produced by speculative men, such as is already commonly taught in all parts of India.

The Sangscrit language so difficult that almost a life time is necessary for its perfect acquisition, is well known to have been for ages a lamentable check on the diffusion of knowledge; and rhe learning concealed under the almost impervious veil is far from sufficient to reward the labour of acquiring it. But if it were thought necessary to perpetuate this language for the sake of the portion of the valuable information it contains, this might be much more easily accomplished by other means than the establishment of a new Sangscrit College; for there have been always and are now numerous professors of Sangscrit in the different parts of the country, engaged in teaching this language as well as the other branches of literature, which are to be the object of the new Seminary. Therefore their more diligent cultivation, if desirable, would be effectually promoted by holding out premiums and granting certain allowances to those most eminent Professors, who have already undertaken on their own account to teach them, and

would by such rewards be stimulated to still greater exertions.

From these considerations, as the sum set apart for the instruction of the Natives of India was intended by the Government in England, for the improvement of its Indian subjects, I beg leave to state, with due deference to your Lordship's exalted situation, that if the plan now adopted be followed, it will, completely defeat the object proposed; since no improvement can be expected from inducing young men to consume dozen of years of the most valuable period of their lives in acquiring the niceties of the Byakurun or Sangscrit Grammar. For instance, in learning to discuss such points as the following : *Khad* signifying to eat, *khaduti,* he or she or it eats. Query, whether does the word *khaduti* taken as a whole, convey the meaning *he, she,* or *it eats,* or are separate parts of this meaning conveyed by distinct portions of the word ? As if in the English language it were asked, how much meaning is there in the *eat,* how much in the *s* ? and is the whole meaning of the word conveyed by those two portions of it distinctly, or by them taken jointly ?

Neither can such improvement arise from such speculations as the following, which are the themes suggested by the Vedant :—In what manner is the soul absorbed into the deity ? What relation does it bear to the divine essence ? Nor will youths be fitted to be better members of society by the Vedantic doctrines, which teach them to believe that all visible things have no real existence; that as father, brother, etc., have no actual entity, they consequently deserve no real affection, and therefore the sooner we escape from them and leave the world the better. Again, no essential benefit can be derived by the student of the Meemangsa from knowing what it is that makes the killer of a goat sinless on pronouncing certain passages of the Veds and what is the real nature and operative influence of passages of the Ved, etc.

Again the student of the Nyaya Shastra cannot be said to have improved his mind after he has learned it into how many ideal classes the objects in the Universe are divided, and what speculative relation the soul bears to the body, the body to the soul, the eye to the ear, etc.

In order to enable your Lordship to appreciate the utility of encouraging such imaginary learning as above characterised, I beg your Lordship will be pleased to compare the state of science and literature in Europe before the time of Lord Bacon, with the progress of knowledge made since he wrote.

If it had been intended to keep the British nation in ignorance of real knowledge the Baconian philosophy would not have been allowed to displace the system of the schoolmen, which was the best calculated to perpetuate ignorance. In the same manner, the Sangscrit system of education would be best calculated to keep this country in darkness, if such had been the policy of the British Legislature. But as the improvement of the native population is the object of the Government, it will consequently promote a more liberal and enlightened system of instruction, embracing mathematics, natural philosophy, chemistry and anatomy, with other useful sciences which may be accomplished with the sum proposed by employing a few gentlemen of talents and learning educated in Europe, and providing a college furnished with the necessary books, instruments and other apparatus.

In representing this subject to your Lordship I conceive myself discharging a solemn duty which I owe to my countrymen and also to that enlightened Sovereign and Legislature which have extended their benevolent cares to this distant land actuated by a desire to improve its inhabitants and I therefore humbly trust you will excuse the liberty I have taken in thus expressing my sentiments to your Lordship.

Calcutta, I have etc.,
The 11th December 1823. RAMMOHUN ROY.

परिशिष्ट—3

सती-प्रथा उन्मूलन पर लार्ड बेंटिक को दिये गए बधाई मानपत्र और लार्ड बेंटिक का उत्तर :

[4 दिसम्बर 1829 को सदियों से चले आ रहे घृणित सती-प्रथा उन्मूलन कानून पास होने पर राममोहन और उनके सहयोगियों ने इस ऐतिहासिक घटना पर खुशियाँ मनाईं। 16 जनवरी 1830 को एक सभा में लार्ड बेंटिक को इस सफलता के लिए बधाई का मानपत्र पेश किया गया। इसके उत्तर में 30 जनवरी को बेंटिक ने एक छोटा-सा उत्तर भेजा था। दोनों दस्तावेजों की मूल प्रतिलिपि।]

English Address

To the Right Honorable Lord William Cavendish Bentinck K. C. B. G. C. H. Governor General in Council, Fort William.

My Lord—With hearts filled with the deepest gratitude, and impressed with the utmost reverence, we the undersigned Native inhabitants of Calcutta and its vicinity, beg to be permitted to approach your Lordship, to offer personally our humble but warmest acknowledgements for the invaluable protection which your Lordship's Government has recently afforded to the lives of the Hindoo Female part of your subjects and for your humane and successful exertions in rescuing us, for ever, from the gross stigma hitherto attached to our character, as wilful murderers of females and zealous promoters of the practice of suicide.

Excessive jealousy of their female connections operating in the breasts of Hindoo Princes rendered those despots regardless of the common bonds of society, and of their incumbent duty as protectors of the weaker sex, in so much that with a view to prevent every possibility of their Widows forming subsequent attachments, they availed themselves of their arbitrary power, and under cloak of religion, introduced the practice of burning Widows alive, under the first impressions of sorrow or despair, immediately after the demise of

their Husbands. This system of female destruction, being admirably suited to the selfish and servile disposition of the populace, has been eagerly followed by them, in defiance of the most sacred authorities such as Oopunishuds or the principal part of the Veds and the Bhugvut Geeta, as well as of the direct commandment of Munoo, the first and the greatest of all the Legislators, conveyed in the following words :—

"Let a Widow continue till death forgiving all injuries performing austere duties, avoiding every sensual pleasure, &c." (Ch. V. v. 158).

While in fact, fulfilling the suggestions of their jealousy, they pretended to justify this hideous practice by quoting some passages from authorities of evidently inferior weight, sanctioning the wilfull, (sic.) ascent of a widow on the flaming pile of her husband, as if they were offering such female sacrifices in obedience to the dictates of the Shastrus, and not from the influence of jealousy. It is however very fortunate that the British Government, under whose protection the lives of both the males and females of India have been happily placed by Providence, has, after diligent enquiry, ascertained that even those inferior authorities, permitting wilful ascent by a Widow to the flaming pile, have been practically set aside, and that, in gross violation of their language and spirit, the relatives of Widows, have, in the burning of those infatuated females, almost inveriably used to fasten them down on the pile and heap over them large quantities of wood and other materials adequate to the prevention of their escape, an outrage on humanity which has been frequently perpetrated under the indirect sanction of Native Officers undeservedly employed for the security of life and preservation of peace and tranquility.

In many instances in which the vigilance of the Magistrate has deterred the Native Officers of Police from indulging their own inclination, widows have either made their

escape from the pile, after being partially burnt, or retraced their resolution to burn when brought to the awful task, to the mortifying disappointment of instigators; while in some instances, the resolution to die has been retraced on pointing out to the widows the impropriety of their intended undertaking, and on promising them safety and maintenance during life, notwithstanding the severe reproaches liable thereby to be heaped on them by their relatives and friends.

In consideration of circumstances so disgraceful in themselves and so incompatible with the principles of British Rule, your Lordship in Council, fully impressed with the duties required of you by justice and humanity, has deemed it incumbent on you for the honour of the British name, to come to the resolution that the lives of your female Hindoo subjects should be henceforth more efficiently protected, that the heinous sin of cruelty to females may no longer be committed and that the most ancient and purest system of Hindoo Religion should not any longer be set at nought by the Hindoos themselves. The Magistrates in consequence are, we understand, positively ordered to execute the resolution of the Government by all possible means.

We are, my Lord, reluctantly restrained by the consideration of the nature of your exalted situation from indicating our inward feelings by presenting any valuable offering as commonly adopted on such occasions, but we should consider ourselves highly guilty of insincerity and ingratitude, if we remained negligently silent, when urgently called upon by our feelings and conscience to express publicly the gratitude we feel for the everlasting obligation you have graciously conferred on the Hindoo Community at large. We however are at a loss to find language sufficiently indicative even of a small portion of the sentiments we are desirous of expressing on this occasion. We must therefore conclude this Address, with entreating, that your Lordship will cond-

escendingly accept our most grateful acknowledgements for this act of benevolence towards us, and will pardon the silence of those who, though equally partaking of the blessing bestowed by your Lordship, have through ignorance or prejudice omitted to join us in this common cause.

We have the honour to be
My Lord
Your Lordship's Obdt. and Humble Servts.
[Signed] Callynath Roy Choudhury
Rammohun Roy
Dwarakanath Tagore
Prossanno Comar Tagore
&c. &c. &c.

लार्ड बेंटिक का उत्तर :

It is very satisfactory to me to find that according to the opinions of so many respectable and intelligent Hindoos, the practice which has recently been prohibited, not only was not required by the rules of their religion, but was at variance with those writings which they deem to be of the greatest force and authority. Nothing but a reluctance to inflict punishment for acts which might conscientiously be believed to be enjoined by religious precepts, could have induced the British Government at any time to permit, within territories under its protection, an usage so violently opposed to the best feelings of human nature. Those who present this Address are right in supposing that, by every nation in the world, except the Hindoos themselves, this part of their customs has always been made a reproach against them, and nothing so strongly contrasted with the better features of their own national character, so inconsistent with the affections which unite families, so destructive of the moral principles on which society is founded, has ever subsisted amongst a people, in other respects so civilized. I trust that the reproach is removed for ever, and I

feel a sincere pleasure in thinking that the Hindoos will thereby be exalted in the estimation of mankind to an extent in some degree proportioned to the repugnance which was felt for the usage which has now ceased.

[Signed] W. C. Bentinck.

Calcutta, Jan. 16, 1830.

परिशिष्ट—4

राममोहन-साहित्य

अरबी-फारसी

1. **तुहफात-उल-मुवाहहिदीन**—मुर्शिदाबाद से 1803-04 में प्रकाशित। इस पुस्तिका की भूमिका अरबी भाषा में, और पाठ फारसी में है। 1884 में ढाका मदरसा के प्रसिद्ध विद्वान मौलवी ओबेदुल्लाह ने इसका अंगरेजी अनुवाद Tuhfat-Ul-Muwahhidin or a Gift to Deists किया था, जिसका प्रकाशन आदि ब्राह्मो समाज ने 1884 में किया। बाद में मूल फारसी से बंगला अनुवाद गिरीशचन्द्र सेन ने और अंगरेजी के माध्यम से बंगला अनुवाद ज्योतिरीन्द्र दास ने किया है।

2. **मनजिरात-उल-आदियान**—विभिन्न धर्मों पर विचार। यह पुस्तक कभी प्रकाशित हुई या नहीं इस पर विद्वान एक मत नहीं हैं। वैसे राममोहन ने तुहफात के पृष्ठों में इस रचना का हवाला दिया है। विद्वान काजी अब्दुल वदूद का विचार है कि यह पुस्तक सम्भवतः हस्तलिखित या मुद्रित आकार में सीमित रूप से वितरित किया गया था।

3. **जवाब इ तुहफात-उल-मुवाहहिदीन**—An Anonymous defence of Rammohun Roy's 'Tuhfat........' against the attack of the Zoroastrians. Calcutta, 1820 ?

पुस्तिका में लेखक का नाम नहीं है। लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में रखी प्रति में भी लेखक का नाम मुद्रित नहीं है। राममोहन विशेषज्ञ श्री दिलीपकुमार विश्वास का मत है कि पुस्तिका राममोहन के किसी सहयोगी मित्र ने जोराष्ट्रीयन धर्मावलंबी के आक्रमण के विरुद्ध यह उत्तर दिया था। इसका बंगला अनुवाद राममोहन समीक्षा (ले० दिलीपकुमार विश्वास) में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

बंगला, संस्कृत, हिन्दी

1. **वेदान्त ग्रंथ**—(ब्रह्म सूत्र का भाषा विवरण) 1815. 17+166 पृ०

The Bengalee translation of the Vedant or Resolution of all the Veds; the most celebrated and revered wotk of Brahmanical theology, establishing the unity of Supreme Being, and that he is the only object of worship. Together with a preface by the translator. Calcutta. From the Press of Ferris and Co., 1815.

वेदान्त ग्रंथ (हिन्दी या हिन्दुस्तानी अनुवाद बंगला से) 1815 ?

2. **वेदान्त सार** : 1815. 22 पृ० (वेदान्त ग्रन्थ का संक्षिप्त रूप) वेदान्त सार (हिन्दी अनुवाद) 1815 ?

3. **तलबकार उपनिषद्** : (केनोपनिषद्) 1815. 17 पृ० । शंकराचार्य की टीका के अनुरूप बंगला अनुवाद ।

4. **ईशोपनिषद्** : जुलाई 1816. 20+4+13 पृ० । शंकराचार्य की टीका पर आधारित बंगला अनुवाद ।

5. **उत्सवानन्द विद्यावागीशेर सहित विचार** : 1816-17, संस्कृत भाषा में इस शास्त्रार्थ ग्रन्थ के अंतर्गत तीन पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई थीं । ये उत्सवानन्द बाद में राममोहन के अनुयायी बने ।

6. **भट्टाचार्येर सहित विचार** : 1817. 3+64 पृ० । मृत्युंजय विद्यालंकार से । वेदान्त चन्द्रिका के उत्तर में लिखित बंगला पुस्तिका ।

7. **कठोपनिषद्** : (बंगला) 1817. 57 पृ० । शंकराचार्य की टीका पर आधारित बंगला अनुवाद ।

8. **माण्डूक्योपनिषद्** : (बंगला) 1817. 23+19 पृ० । शंकराचार्य की टीका पर आधारित बंगला अनुवाद ।

9. **गोस्वामीर सहित विचार** : (बंगला) 1818. 50 पृ० । यह शास्त्रार्थ बंगला में किसी वैष्णव पण्डित के तर्कों के उत्तर में दिया गया था ।

10. **सहमरण विषये प्रवर्तक ओ निवर्तकेर संवाद** : (बंगला) नवम्बर 1818. पृ० 22 । सती-प्रथा विषयक पहली बंगला पुस्तक ।

11. **गायत्रीर अर्थ** : (बंगला) 1818. प्रसिद्ध गायत्री मंत्र का बंगला विवेचन ।

12. **मुण्डकोपनिषद्** : (बंगला) मार्च 1819 । शंकराचार्य की टीका पर आधारित बंगला अनुवाद ।

13. **आत्मानात्मविवेक** : 1819 ? शंकराचार्यकृत ग्रन्थ का बंगला अनुवाद । इस ग्रन्थ की प्रकाशन तिथि के बारे में कुछ संदेह है ।

14. **सहमरण विषयक प्रवर्तक निवर्तकेर द्वितीय संवाद :** (बंगला) नवम्बर 1819. 33 पृ० । मिशन प्रेस में मुद्रित । सती-प्रथा विषय पर शास्त्रार्थ के ढंग पर दूसरा आक्रमण ।

15. **कविताकारेर सहित विचार :** (बंगला) 1820. 23+49 पृ० । यह भी एक शास्त्रार्थ ग्रन्थ है।

16. **सुब्रह्मण्य शास्त्रीर सहित विचार :** बंगीय साहित्य परिषद् ग्रन्थावली (बंगला, संस्कृत, हिन्दी और अंगरेजी भाषाओं में) 1820. 103 पृ० । यह भी एक शास्त्रार्थ ग्रन्थ है ।

17. **ब्राह्मण सेवधि : ब्राह्मण ओ मिसनरी संवाद :** (बंगला) 1821. तीन अंक प्रकाशित हुए । इस लेख में ईसाई मिशनरियों के आक्रमण के विरुद्ध हिन्दू धर्म का समर्थन है । इसका अंगरेजी संस्करण द ब्राह्मनिकल मैगजीन : द मिशनरी एण्ड द ब्राह्मण भी प्रकाशित हुआ था ।

18. **चारि प्रश्नेर उत्तर :** (बंगला) 1822. 26 पृ० । समाचार दर्पण में प्रकाशित पुरानपंथी हिन्दुओं के चार प्रश्नों का उत्तर । यह 'धर्मसंस्थापनाकांक्षी' के छद्मनाम से प्रकाशित हुआ था ।

19. **प्रार्थना पत्र :** 1823. 4+77 पृ० बंगला और अंगरेजी में एक साथ प्रकाशित हुआ ।

20. **पादरी ओ शिष्य संवाद ;** (बंगला) 1823 ? अंगरेजी अनुवाद भी साथ प्रकाशित हुआ । इस पुस्तिका में ईसाई धर्म के त्रित्ववाद की तीव्र आलोचना की गई थी ।

21. **गुरुपादुका :** (बंगला) 1823. 6 पृ० समाचार चंद्रिका के लेख के उत्तर में मूर्तिपूजा के विरुद्ध राममोहन का उत्तर ।

22. **पथ्यप्रदान :** (बंगला) 1823. 261 पृ० पण्डित काशीनाथ तर्कपंचानन के पाषण्ड पीड़ण नामक पुस्तिका के उत्तर में लिखित । अंगरेजी अनुवाद भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ ।

23. **ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थेर लक्षण :** (बंगला) 1826 ।

24. **कायस्थेर सहित मद्यपान विषयक विचार :** (बंगला) 1826 रामचन्द्र दास के छद्मनाम से प्रकाशित ।

25. **वज्रसूची :** 1827. 78 पृ० संस्कृत पाठ और बंगला अनुवाद के साथ । महायान बौद्ध ग्रन्थ वज्रसूची उपनिषद् पर आधारित जाति प्रथा विरोधी ग्रन्थ ।

26. **गायत्र्या परमोपासनाविधानम् :** 1827. संस्कृत-बंगला पुस्तिका । अंगरेजी अनुवाद भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ । गायत्री मंत्र के द्वारा ईश्वरोपासना पद्धति ।

27. **ब्रह्मोपासना :** 1828. ईश्वरोपासना पर पुस्तिका।

28. **ब्रह्म संगीत :** 1828. राममोहन और उनके सहयोगियों द्वारा रचित भजन और गीत जो ब्रह्म-समाज या आत्मीय सभा की सभाओं में गाये जाते थे।

29. **अनुष्ठान :** 1829. बंगला पुस्तिका। उपासना पद्धति पर राममोहन के विचारों पर प्रश्न-उत्तर के ढंग पर लिखित एक महत्वपूर्ण पुस्तिका। इसमें गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, मनुसंहिता, महानिर्वाणतंत्र से उद्धृतियाँ दी गई हैं।

30. **सहमरण विषय :** बंगला पुस्तिका (1829) 11 पृ० यह सती-प्रथा पर राममोहन का अंतिम बंगला लेख था।

31. **क्षुद्र पत्री :** (प्रकाशन तिथि अज्ञात) पुस्तिका में ब्रह्म विषयक कुछ मंत्र और गीत हैं।

32. **गौड़ीय व्याकरण :** 1833. 97 पृ० अंगरेजी में अनुरूप व्याकरण के नमूने पर जो 1826 में प्रकाशित हुई थी।

33. **ब्राह्म पौत्तलिक संवाद :** 1819-20 ? मूर्तिपूजा विषयक पुस्तिका। यह ब्रजमोहन मजूमदार के नाम से प्रकाशित हुई थी। रेवरेण्ड लांग ने इस पुस्तिका को राममोहन की कृति माना है। राममोहन अक्सर अपने सहयोगियों के या छद्मनाम से पुस्तकें प्रकाशित करते थे।

34. **भगवद्गीता :** 1819. 190 पृ० संस्कृत मूल पाठ के साथ बंगला पद्यानुवाद। बैकुण्ठनाथ बंद्योपाध्याय के नाम से प्रचारित। दुर्भाग्य से इस पुस्तक की प्रति आज भी उपलब्ध नहीं है।

संकलित रचना संग्रह (बंगला)

1. **राजा राममोहन राय-प्रणीत ग्रन्थावली :** 1880। 814 पृ०। राजनारायण बसु और आनन्द चन्द्र वेदान्तवागीश द्वारा संकलित।

2. **राममोहन ग्रन्थावली :** कलकत्ता, बंगीय साहित्य परिषद्, 1944. 7 खण्डों में प्रकाशित ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय और सजनीकान्त दास द्वारा सम्पादित और प्रकाशित।

अंगरेजी रचनाएँ

1. Translation of an Abridgement of the Vedant or Resolution of all the Vedas; the most celebrated work of Brahmanical theology; establishing the unity of the Supreme Being and that the alone is the object of propitiation and worship. Calcutta 1816. 3 + 14 p.

यह वेदान्तसार ग्रन्थ का अनुवाद है। इसका जर्मन अनुवाद Auflosung des Wedant 1817 में प्रकाशित हुआ।

2. Translation of the Cena (Kena) Upanishad, one of the chapters of Sama Veda. according to the gloss of the celebrated Shancaracharya....Calcutta. 1816.

3. Translation of the Ishopanishad, one of the chapters of Yajur Ved : according to the commentary of the celebrated Shankaracharya. Calcutta 1816. 22+8 p.

4. A Defence of Hindoo Theism in reply to the attack of an Advocate for Idolatry at Madras. Calcutta, 1817. 29 p.

5. A Second Defence of the Monotheistical system of the Veds, in reply to an Apology for the present state of Hindoo worship. Calcutta, 1817. 58 p. मृत्युंजय विद्यालंकार की पुस्तिका के उत्तर में।

6. Counter-Petition of the Hindoo inhabitants of Calcutta against Sutter. Calcutta 1818. बाद में यह एशियाटिक जर्नल में जुलाई 1819 में छपा था। विद्वानों का विचार है कि यह राममोहन की रचना थी।

7. Translation of a Conference between an Advocate for, and opponent of, the practice of Burning Widows Alive; from original Bungla. Calcutta 1818.

8. Translation of the Moonduk Oupunishad of the Uthurvu Ved : according to the gloss of the Celebrated Shunkurach-arya. Calcutta, Times Press, 1819. 25 p.

9. Translation of Kuth-Oupunishad of the Ujoor-Ved : according to the gloss of the Celebrated Sunkurachryu. Calcutta 1819, 40 p.

10. An Apology for the pursuit of Final Beatitude, independently of Brahmunical Observances. Calcutta 1820 'सुब्रह्मण्य शास्त्रीर सहित विचार' का अंगरेजी अनुवाद।

11. A Second Conference between an Advocate and the opponent of the practice of burning Widows Alive. Calcutta, Baptist Mission Press, 1820. मूल बंगला पुस्तिका का अनुवाद।

12. The Precepts of Jesus, the guide to peace and happiness, extracted from the books of New Testament, ascribed to the Four Evangelists, with translation into Sungscrit and Bengalee, Calcutta, Baptist Mission Press, 1820, 4+20 p. संस्कृत और बंगला अनुवाद सम्भवतः प्रकाशित नहीं हो सके ।

13. An Appeal to the Christian Public in Defence of the 'Precepts of Jesus', by a Friend to Truth. Calcutta, 1820. 20 p.

14. Second Appeal to the Christian Public, in defence of the Precepts of Jesus. Calcutta 1821, 173 p.

15. The Brahmunical Magazine or the Missionary and the Brahmun. Being an vindication of Hindoo religion against the attacks of Christian Missionaries by Shivu Prusad Surma. Nos. 1, 2, 3. 1821., No. 4 Calcutta 1823. पहले तीन अंक अंगरेजी और बँगला में साथ-साथ प्रकाशित हुए थे। चौथा अंक केवल अँगरेजी में छपा था ।

16. Brief remarks regarding modern encroachments on the ancient rights of Females, according to the Hindoo law of Inheritance. Calcutta, Unitarian Press, 1822.

17. Final Appeal to the Christian Public in Defence of the Precepts of Jesus, Calcutta, Unitarian Press, 1823. 7+379 p.

18. Humble suggestion to his countrymen who believe in the true God. Calcutta 1823. राममोहन के सहयोगी प्रसन्नकुमार ठाकुर के नाम से प्रकाशित ।

19. Petitions against Press regulations.
   (a) Memorial to Supreme Court. 1823.
   (b) Appeal to the King in Council 1825.

20. A Few queries for the serious considerations of Trinitarians. pt. I & II. Calcutta 1823.

21. Two Dialogues. Calcutta 1823. 8 p.
   (a) Dialogue First between a Trinitarian Missionary and three Chinese Converts.
   (b) Dialogue Second between a unitarian Minister and an itinerant Bookseller.

इनमें दूसरी रचना 'राईट' नामक किसी अंगरेज की मानी जाती है।

22. A Vindication of the Incarnation of the Deity, as the common basis of Hindooism and Christianity, against the Schismatic attacks of R. Tytler, esq. M. D. by Ram Doss. Calcutta, Harkaru Press, 1823.

23. A letter to Lord Amherst on Western Education. Calcutta 1823.

24. A letter to the Reverend Henry Ware on the Prospects of Christianity in India. Calcutta, 1824.

25. Translation of a Sunskrit Tract on Different modes of worship by a Friend of the Author. Calcutta, 1825.

26. Bengalee Grammar in English language. 1826 Unitarian Press, Calcutta.

27. A Translation into English of a Sunskrit Tract inculcating the Devine worship; esteemed by those who believe in the Revelation of Veds as most appropriate to the nature of the Supreme Being. Calcutta. 1827.

28. Answer of a Hindoo to the question "why do you frequent a unitarian place of worship instead of the numerously attended Established Churches ?" Calcutta 1827.

29. Symbol of the Trinity. 1828 (Printed in Asiatic Journal July 1829).

30. The universal Religion : Religious instructions founded on Sacred Authorities. Calcutta 1829.

31. Petition of the Padishad (Akbar II) of Delhi to King George IV of England. 1829.

32. Petition to the Government against Regulation III of 1828 for the Resumption of Lakheraj Lands. 1829. (1830 के एशियाटिक जर्नल में प्रकाशित)।

33. Address to Lord William Bentinck, Governor General of India upon the passing of the act for the Abolition of the Suttee. 1830 (1830 के गवर्नमेण्ट गजट में अंगरेजी और बंगला बयान प्रकाशित हुआ)।

34. Abstract of the arguments regarding the burning of Widows, considered as a religious rite. Calcutta, 1830.

35. Essay on the right of Hindoos over ancestral property, according to law of Bengal. Celcutta, 1830. 47 p.

36. Letters on Hiodoo law of Inheritance, Calcutta, 1830.

37. Counter-Petition to the House of Commons to the memorial of the Advocates of Suttee, 1830. यह स्मारक पत्र हाउस आफ कामन्स में पेश किया गया था।

38. On the possibility, practibility and expediency of substituting the Bengali language for the English. (प्रकाशन तिथि अज्ञात। यह व्यंग्य-रचना सर्वप्रथम 1928 में माडर्न रिव्यू में प्रकाशित हुई। सम्भवतः अप्रकाशित रचना रही होगी)।

39. Hindu Authorities in favour of slaying the cow and eating its flesh.

40. Opinion on Grants Jury Bill 1833.

इंगलैण्ड से प्रकाशित अँगरेजी पुस्तकों की सूची

1. Translation of an Abridgement of the Vedanta by Rammohun Roy, London, T. and J. Hott, 1817.

2. The Precepts of Jesus....to which are added the First and Second Appeal to the Christian Public, in reply to the observations of Dr. Marshman, of Serampore, London, 1823.

3. Final Appeal to the Christian Public in defence of the 'Precepts of Jesus', London, Hunter, 1823.

4. Answers to queries by the Rev. H. Ware of Cambridge (U. S,) C. Fox, 1825.

5. Treaty with the King of Delhi. Decision thereon by the Governor-General of India. Reports of the British Resident and Political Agent at Delhi with Remarks, London, John Nichols, 1831.

6. Some Remarks in Vindication of the Resolution passed by the Government of Bengal in 1829 abolishing the Practice of Female Sacrifices in India, Nichols and Sons, London, 1831.

7. Essay on the Right of Hindoos over Ancestral Property according to the Law of Bengal. Second Edition : With an appendix, containing letters on the Hindoo Law of Inheritance. Smith, Elder and Co., 1832.

8. Exposition of the practical operation of the Judicial and Revenue systems of India, and of the general character and condition of the native inhabitants, as submitted in evidence to the Authorities in England. With notes and Illustrations; also a brief preliminary sketch of the ancient and modern boundaries, and of the historty of the country, Smith, Elder and Co. 1832.

9. Questions and Answers on the Judicial system of India, London, August 19, 1831.

10. Questions and Answers on the Revenue System of India, London, September 19, 1831,

11. Paper on the Revenue System of India, London August 19, 1831.

12. Additional queries respecting the condition of India, London, September 28, 1831.

13. Remarks on Settlement in India by Europeans. London, July 14, 1832.

14. Answers of Rammohun Roy to Queries on the Salt Monopoly, March 19, 1832.

15. Translation of several Principal Books, Passages and Texts of the Veds and of some controversial works in Brahmunical Theology. 2nd Edn. London, Parbury, Allen & Co. 1832, p. 282. (इसका डच अनुवाद 1840 में प्रकाशित हुआ)।

16. Appeal to the British Nation against a violation of common justice and a breach of public faith by the Supreme Government of India with the Native Inhabitants, London, 1832.

17. Translation of the Creed maintained by the Ancient Brahmins, as founded on the sacred Authorities, 2nd. Edn., London, Nichols and Son, 1833, p. 16.

18. Autobiographical Sketch, October 1833. (Published by S. Arnat after the death of Rajah in the Athenaenum. October 5, 1833).

Collected works

1. English works of Raja Rammohan Roy including some additional letters and an English translation of the Tuhfatul Muwahiddin with an introduction by Ramananda Chatterjee, Allahabad Office, 1906.

2. The English works of Raja Rammohan Roy. Edited by Jogendra Chandra Ghosh. Vol. I 1885; Vol. 2 1887.

3. The English works of Raja Rammohan Roy. Edited by Kalidas Nag and Debajyoti Burman. Calcutte, Sadharan Brahma Samaj, 1945-51 (I–VI pts.)

इनके अतिरिक्त अमेरिका से उनकी कई पुस्तकों के संस्करण प्रकाशित हुए। विशेष रूप से 'प्रीसैप्ट्स आफ जीसस' और ईसाई जनता के नाम उनके 'अपील', 1825, 1826,1828 में प्रकाशित हुए थे। अंग्रेजी के अलावा जर्मन और डच भाषाओं में भी राममोहन की रचनाओं के अनुवाद हुए थे।

परिशिष्ट—5

निर्वाचित संदर्भ सूची

इस ग्रन्थ की रचना में जिन पुस्तकों की सहायता ली गई है तथा राममोहन राय पर लिखित अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकों की सूची—

बंगला

1. अरविन्द पोद्दार। **राममोहन उत्तरपक्ष**। कलकत्ता, उच्चारण 1982।

2. एबादत होसेन। **मार्क्सवादेर विचारे राममोहन**। कलकत्ता, सप्तर्षि, 1983।

3. क्षितिमोहन सेन। **युगगुरु राममोहन**। कलकत्ता, 1952।

4. दिलीप कुमार विश्वास। **राममोहन समीक्षा**। कलकत्ता, सारस्वत लाइब्रेरी, 1983।

5. नगेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय। **महात्मा राजा राममोहन रायेर जीवन चरित**। कलकत्ता, 1881। (पाँचवाँ सं० इंडियन प्रेस 1928)। कलकत्ता, देज पब्लिशिंग (नया मुद्रण 1972)।

19. Sarkar, S. C. ed. Rammohun Roy on Indian Economy. Calcutta, Rare Book Publishing Syndicate, 1965.

20. Sen, Amiya Kumar. Raja Rammohun Roy : The Representative man. Calcutta, Calcutta Text Book Society, 1967.

21. Sinha, N. K. Economic History of India.

22. Tarachand. History of Freedom Movement in India, Vol. 1.

परिशिष्ट—6

1. प्रेस कानून के विरोध में 'मिरातुल अखबार' में प्रकाशित अंतिम सम्पादकीय लेख (अंगरेजी अनुवाद की प्रतिलिपि) ।

2. पाश्चात्य शिक्षा के समर्थन में लार्ड आमहर्स्ट को लिखा पत्र ।

3. सती-प्रथा उन्मूलन पर लार्ड बेंटिक को दिया गया मानपत्र और लार्ड बेंटिक का उत्तर ।

4. राममोहन साहित्य ।

परिशिष्ट—7

1. लार्ड मिण्टो को भागलपुर के कलक्टर सर फ्रेडरिक हैमिल्टन के व्यवहार के विरुद्ध लिखे पत्र की प्रतिलिपि ।

2. प्रेस रेगुलेशन के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में राममोहन के आवेदन-पत्र की प्रतिलिपि ।

3. प्रेस कानून के विरोध में 'मिरातुल अखबार' में प्रकाशित अंतिम सम्पादकीय लेख (अंगरेजी अनुवाद की प्रतिलिपि) ।

4. पाश्चात्य शिक्षा के समर्थन में लार्ड आमहर्स्ट को लिखा पत्र ।

5. ब्रह्म-समाज भवन का न्यास-संलेख (ट्रस्ट डीड) ।

6. सती-प्रथा उन्मूलन पर लार्ड बेंटिक को दिया गया मानपत्र और लार्ड बेंटिक का उत्तर ।

7. भारत में यूरोपीय नागरिकों के बसने की समस्या पर राममोहन की टिप्पणी ।

8. पत्र (अ) प्रसिद्ध समाजशास्त्री राबर्ट ओवन के सुपुत्र डेल ओवन को लिखा पत्र।

(ब) फ्रांस के विदेश मंत्री प्रिंस टेलेरेण्ड को लिखे पत्र की प्रतिलिपि।

9. राममोहन साहित्य।

राजा राममोहन राय—एक कालानुक्रमणिका

1757 प्लासी का युद्ध, ब्रिटिश शासन की स्थापना।

1772 22 मई को राधानगर, कृष्णनगर के निकट (जिला हुगली) पश्चिम बंगाल में राममोहन का जन्म। पिता रमाकान्त राय। जन्मतिथि के बारे में मतभेद। 1774, कई विद्वानों के अनुसार।

1780-82 अरबी-फारसी की शिक्षा के लिए पटना प्रवास। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा और तीसरा विवाह।

1784 सर विलियम जोन्स द्वारा 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना।

1787 घर छोड़कर देश-विदेश की घुमक्कड़ी। तिब्बत की यात्रा।

1790-91 वाराणसी में प्रवास-काल।

1800 राममोहन के बड़े पुत्र राधाप्रसाद का जन्म।

1801 जोन डिगबी से राममोहन का प्रथम परिचय।

1803 ढाका-जलालपुर में कलक्टर टॉमस वुडफोर्ड के 'खासमुंशी' नियुक्त। पिता रमाकान्त की मृत्यु। नौकरी से त्यागपत्र। एक बार फिर मुर्शीदाबाद में वुडफोर्ड के दीवान नियुक्त।

1804 राममोहन की पहली पुस्तक 'तुह्फात-उल-मुवाहिद्दीन' का मुर्शीदाबाद से प्रकाशन।

1805-09 जोन डिगबी के दीवान के रूप में रामगढ़, भागलपुर और रंगपुर में।

1809 रंगपुर में। 1815 तक रहे।

1811 बड़े भाई जगमोहन की मृत्यु और उनकी विधवा पत्नी का सती होना।

1812 राममोहन के दूसरे पुत्र रमाप्रसाद का जन्म।

1814-15 ब्रिटिश सरकार की ओर से भूटान यात्रा। जोन डिगबी रंगपुर से चले गये। राममोहन रंगपुर छोड़कर कलकत्ता आ बसे। 'आत्मीय सभा' की स्थापना। 'वेदान्त ग्रन्थ' और 'वेदान्त सार' का प्रकाशन।

1816 वेदान्त सार का अंगरेजी और बंगला अनुवाद। ईश, केन उपनिषदों का अंगरेजी और बंगला अनुवाद।

1817	हिन्दू कालेज की स्थापना (20 जनवरी)। माण्डूक्य, मुण्डक और कठ उपनिषद् का बंगला, अंगरेजी अनुवाद। 'अ डिफेन्स आफ हिन्दू थीइज्म' का प्रकाशन। मृत्युंजय विद्यालंकार के साथ शास्त्रार्थ।
1818	सती-प्रथा के विरुद्ध पहली पुस्तिका का प्रकाशन।
1819	सुब्रह्मण्य शास्त्री के साथ बिहारी लाल चौबे के घर पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थ।
1820	सती-प्रथा के विरुद्ध दूसरी पुस्तिका का प्रकाशन। 'प्रीसेप्टस ऑफ जीसस' का प्रकाशन। 'अपील टू द क्रिश्चन पब्लिक' का प्रकाशन।
1821	क्रिश्चन पब्लिक के नाम दूसरी अपील का प्रकाशन। ऐडम साहब का युनिटेरियन वाद स्वीकार करना। ब्राह्मनिकल मैगजीन का प्रकाशन। युनिटेरियन कमेटी की स्थापना। 'संवाद कौमुदी' का प्रकाशन आरम्भ।
1822	'मिरातुल अखबार' का प्रकाशन। विलियम ऐडम के साथ एंग्लो-हिन्दू स्कूल की स्थापना।
1823	'फाइनल अपील टू क्रिश्चन पब्लिक' का प्रकाशन। प्रेस आर्डिनेन्स के विरुद्ध स्मारक पत्र पेश। विरोध में 'मिरातुल अखबार' का प्रकाशन बन्द। पारिवारिक मुकदमों का दौर आरम्भ। अंगरेजी और वैज्ञानिक शिक्षा के पक्ष में लार्ड आमहर्स्ट को लिखा प्रसिद्ध पत्र।
1824	रेवरेण्ड वेयर को भारत में ईसाई धर्म के बारे में पत्र।
1825-26	वेदान्त कालेज की स्थापना। अंगरेजी भाषा में पहले बंगला व्याकरण का प्रकाशन। राममोहन के पुत्र राधाप्रसाद का घूसखोरी के मुकदमे में बरी होना।
1827	ब्रिटिश इंडियन युनिटेरियन एसोसिएशन की स्थापना।
1828	ऐडम साहब का युनिटेरियन एसोसिएशन से त्यागपत्र। लार्ड आमहर्स्ट का भारत त्याग। लार्ड बेंटिक का भारत आगमन। ब्रह्मसमाज की स्थापना (20 अगस्त)।
1829	लार्ड बेंटिक द्वारा सती प्रथा उन्मूलन सम्बन्धी कानून जारी।
1830	सती-प्रथा उन्मूलन पर लार्ड बेंटिक को बधाई पत्र (16 जनवरी)। दिल्ली के बादशाह द्वारा राममोहन को राजा की उपाधि, और एलची नियुक्त। आदि ब्रह्म समाज भवन का उद्घाटन (23 जनवरी)। एलेक्सेण्डर डफ के स्कूल की स्थापना। इंगलैण्ड के लिए रवाना (15 नवम्बर)।

1831 इंगलैण्ड की भूमि पर उतरे, 8 अप्रैल (लिवरपूल)। मैनचेस्टर होते हुए लन्दन पहुँचे। रीजेण्ट स्ट्रीट में निवास। बाद में बेडफोर्ड स्ट्रीट में। युनिटेरियन ऐसोसिएशन के समक्ष भाषण। ईस्ट इंडिया कम्पनी की भोज सभा में निमन्त्रण। इंगलैण्ड के राजा से भेंट।

1832 पार्लियामेण्ट में रिफार्म बिल अनुबन्धित। भारत में यूरोपीय नागरिकों के बसने के प्रश्न पर दिया गया प्रसिद्ध वक्तव्य। पार्लियामेण्ट में भारत सम्बन्धी कई लेख और वक्तव्य पेश। पेरिस की यात्रा, सम्भवतः तीन महीने रहे।

1833 वापस लन्दन में। सती-प्रथा विरोधी कानून के विरुद्ध रूढ़िवादियों की अपील खारिज। ईस्ट इण्डिया कम्पनी बिल पास। सितम्बर में लन्दन से ब्रिस्टल रवाना। स्टेपलटन ग्रोव में निवास। 9 सितम्बर को रोगशय्या पर। 27 सितम्बर 1833 को मृत्यु। 18 अक्टूबर को शव दफना दिया गया।